आधुनिक काव्य   नवीन सास्कृतिक चेतना

मूल्य 250 00 रुपये

प्रथम सस्करण 1991

प्रकाशक हरीराम द्विवेदी
पाडलिपि प्रकाशन
ई 11/5 कृष्णनगर, दिल्ली 110 051

आवरण जोशी

मद्रक कमल प्रिंटस
9/5866 गाधीनगर दिल्ली 110 031

AADHUNIK KAVYA NAVEEN SANSKRITIK CHETANA
By Dr Rajpal Sharma Price Rs 250 00

समर्पण



(गोलोकवास—आश्विन शुक्ला नवमी, 2039 वि०)
पूज्यपाद् पिताश्री रामस्वरूप शर्मा की
पुण्यस्मृति मे
सविनय—सादर

निवेदन

साहित्य अथवा काव्य को समाज का दर्पण या मुखरित हृदय स्वीकार करना इस दृष्टि से सर्वथा युक्तियुक्त है कि उसके प्रणेता समाज के सर्वाधिक संवेदनशील एवं जागरूक सदस्य होते हैं और उनकी कृतियों में युग जीवन की धड़कनों का स्पष्ट स्पंदन सुना जा सकता है। इसी दृष्टि से हमारा पी-एच० डी० का शोधविषय ब्रजभाषा के वीरकाव्य में अभिव्यंजित हुए सामाजिक सांस्कृतिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता रहा था। आधुनिक काव्य का पठन पाठन करते समय हमारे हृदय में यह तथ्य बार-बार उभरता था कि आधुनिक काल के कवियों ने देश के सांस्कृतिक जीवन के सम्बन्ध में ऐसे अनेक उद्गार व्यक्त किये हैं जो मध्ययुगीन सांस्कृतिक जीवन के परिपार्श्व में पर्याप्त भिन्न अथवा नवीन प्रतीत होते हैं जिससे हमारी इस अभिलाषा में अभिवृद्धि होती रही थी कि आधुनिक काव्य में व्यंजित हुई चेतना के आधार पर इस तथ्य का निरूपण किया जाना चाहिए कि आधुनिक काल में हमारा सांस्कृतिक जीवन अपने परम्परागत स्वरूप से किस मात्रा में भिन्न हो चुका है। आधुनिक काव्य नवीन सांस्कृतिक चेतना शीर्षक प्रस्तुत कृति हमारी इस इच्छा का ही प्रतिफलन है, जो कुमायूँ विश्वविद्यालय नैनीताल द्वारा डी० लिट० की उपाधि-हेतु स्वीकृत किये गये शोध प्रबन्ध का किंचित् संक्षिप्त किया गया रूप है।

आधुनिक काल के किसी कवि, काल-खंड अथवा काव्यधारा विशेष की कृतियों के आधार पर सामाजिक सांस्कृतिक जीवन या उसके किसी पक्ष विशेष का शोध परक अध्ययन करने सम्बन्धी कई प्रयास हुए हैं। 'आधुनिक हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना (डा० श्री हरि दामोदर) तथा हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना (डॉ० जनेश्वर वर्मा) प्रभृति अध्ययनों में आधुनिककालीन काव्यकृतियों के आधार पर सांस्कृतिक जीवन के पक्ष विशेषों जैसे राष्ट्रीय अथवा मार्क्सवादी चेतना के विकास का निरूपण किया गया है। आधुनिक काल में रचित सम्पूर्ण हिन्दी काव्य के आधार पर सामाजिक-सांस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत करने की दिशा में, हमारे देखने में मात्र दो ही शोध प्रबन्ध आये हैं। इनमें से प्रथम है कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से स्वीकृत हुआ आधुनिक काव्य में नवीन जीवन मूल्य शीर्षक

शोध प्रबन्ध (डॉ० हुकुमचन्द राजपाल) जो शोध विषय की दृष्टि से तो हमारे शोध विषय का बहुत कुछ अंशों में समानार्थक है किन्तु इस शोध-कार्य की आधार सामग्री पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि तथ्य सम्पूर्ण आधुनिक काव्य का नहीं अपितु मात्र राम और कृष्ण काव्य से सम्बन्धित काव्यकृतियों का ही आश्रय लिया गया है। राजस्थान विश्वविद्यालय से स्वीकृत हुए 'आधुनिक हिन्दी कविता का सामाजिक दर्शन' (डा० प्रेमचन्द विजयवर्गीय) शीर्षक शोध प्रबन्ध में यद्यपि सन 1920 से लेकर 1966 तक की कालावधि में रचित लगभग 650 काव्य कृतियों का आश्रय लिए जाने का दावा किया गया है तथापि इस शोध-कार्य से भी हमारे शोध विषय का महत्व कम नहीं होता। कारण यह है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में एक ओर तो सन 1900 से लेकर 1920 तक की कालावधि अर्थात द्विवेदी युगीन उन काव्य-कृतियों को सम्मिलित नहीं किया गया है जो राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्य धारा का मेरुदण्ड रही हैं। इसी प्रकार उसमें पैंसठोत्तरी काल के अनेक काव्य गुटों की वे कृतियाँ भी सम्मिलित नहीं हैं जिनमें मुख्यतः सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन की स्थिति को उभारते हुए स्वातन्त्र्योत्तरकालीन अनुपलब्धियों की तीव्र भर्त्सना की गयी है। उक्त शोधकार्य तथा हमारे शोध विषय के मध्य एक अन्य व्यावर्तक लक्षण यह भी है कि डा० विजयवर्गीय की दृष्टि आधुनिक काव्य में व्यंजित हुए 'सामाजिक दर्शन' के निरूपण की ओर रही है जबकि हमारी दृष्टि आधुनिक काव्य में व्यंजित हुए मात्र उन तथ्यों की ओर सन्द्रित रही है जिनमें हमारे परम्परागत सांस्कृतिक जीवन से भिन्न अथवा परिणत मनोदृष्टि या कहिये नवीन सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यंजना हुई है। ऐसी दशा में हमारे शोध काल की सीमा तो सन्दर्भगत शोध प्रबन्ध की काल सीमा की अपेक्षा तीस वर्ष अधिक है ही, दोनों शोध अध्ययनों के मूल में विद्यमान अन्तर्दृष्टि में भी पर्याप्त भिन्नता है। अभिप्राय यह है कि हमारा 'आधुनिक काव्य में अभिव्यंजित नवीन सांस्कृतिक चेतना' शीर्षक शोध प्रबन्ध इस दिशा में एक सर्वथा मौलिक प्रयास ही है, और इसमें सन 1900 से लेकर 1975 तक की कालावधि में रचित काव्य-कृतियों के आधार पर हिन्दी भाषी क्षेत्र के सांस्कृतिक जीवन में आये उतार-चढ़ावों तथा समाज के सदस्यों की विभिन्न सांस्कृतिक तथ्यों के सम्बन्ध में पूर्णतः परिणत अथवा संक्रान्तिमयी मनोदृष्टि की झांकी प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। यह सत्य है कि *किसी भी देश या समाज के सांस्कृतिक जीवन में अचानक ही ऐसे उत्क्रान्त* परिवर्तन घटित नहीं होते हैं कि सम्बन्धित संस्कृति को नवीन संस्कृति कहा जा सके, किन्तु यह तथ्य भी उतना ही सत्य है कि हमारा बीसवीं शती का सांस्कृतिक जीवन बहुत कुछ अंशों में या तो मध्ययुगीन सांस्कृतिक जीवन से विच्छिन्न हो चुका है, अथवा होता जा रहा है। सौभाग्यवश भारत की लगभग अस्सी प्रतिशत जनता ग्रामों में निवास करती है और यह जनता ही किन्हीं अंशों में परम्परागत

सस्कृति के मान मूल्यो की रक्षा और उनका निर्वाह कर रही है अन्यथा हमारे महानगरो के निवासियो के जीवन से तो प्राचीन सस्कृति के प्राय सभी उदात्त मान-मूल्य और रूढि रीतियाँ विलुप्त हो चुके हैं।

प्रस्तुत अध्ययन विषय प्रवेश के अतिरिक्त छह अध्यायो म विभक्त है। विषय प्रवेश के अतगत आधुनिक काव्य के अभिप्राय का स्पष्टीकरण करते हुए सन 1900 से 1975 तक की कालावधि के विभिन्न काव्य धाराओ से सम्बन्धित कवियो पर इस दृष्टि से विचार किया गया है कि उनकी कृतियो म अपने समकालीन राष्ट्रीय जीवन के उतार-चढावो का किस सीमा तक मुखरण हुआ है और उनकी कृतियाँ वण्य वस्तु की दृष्टि से हमारे सास्कृतिक जीवन के किन पक्ष विशेषो से अधिक सम्बद्ध मिलती हैं।

प्रथम अध्याय म वण और जातियो की दृष्टि स समाज के सघटन तथा सामान्य रहन-सहन स सम्बन्धित तथ्यो के विषय मे व्यजित हुई नूतन मनोदृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। वण-व्यवस्था के सम्बन्ध म बहुत कम कवियो न उदगार व्यक्त किये हैं, जबकि परिणत युग-बोध के अनुरूप वण-व्यवस्थागत ऊच नीच की धारणा तथा उसकी आनुषगिक उपज छुआछूत की भावना को मिटान का अनेक कवियो न समथन किया है। सामान्य रहन सहन के सदभ म पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति स अपनाये गये वस्त्रादि उपकरणो के प्रति प्रथम चार दशको की कृतियो म प्राय व्यग्य विद्रूपात्मक उद्गार ही व्यक्त किये गये है। खान पान मनोरजन और यातायात के साधनो तथा आवासो के निर्माण म आये परिवतनो से सम्बन्धित चेतना पर भी इसी अध्याय मे प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय म परम्परागत सस्कृति म आदश के रूप म प्रतिष्ठित रहे सयुक्त परिवारो क ही विघटन के सम्बन्ध म नही अपितु पति-पत्नी और उनके बच्चा-मूलक परिवारो म भी विशृखलता और विभिन्न सदस्यो क पारस्परिक सम्बन्धो म शथिल्य आते जाने से सम्बन्धित चेतना का निरूपण किया गया है। आधुनिक काव्य म युग-युग स पददलित प्रपीडित नारी जाति के सम्बन्ध म अत्यधिक सवेदनशील मनोदृष्टि की व्यजना हुई है अत इस अध्याय का बृहदश नारियो की दशा सुधारे जाने से सम्बन्धित चेतना के निरूपण स सम्बद्ध रहा है। बहु विवाह वृद्ध विवाह अनमल विवाह और दहेज प्रथा के विरोध तथा विधवा विवाह और नारियो को तलाक का अधिकार दिये जाने की सशक्तिमयी चेतना के साथ ही विवाह आदिक पारिवारिक सस्कारो सम्बन्धी नवीन धारणाओ पर इसी अध्याय म प्रकाश डाला गया है।

आधुनिक काल के बौद्धिकता प्रधान वातावरण म धम विरोधी चेतना तीव्र गति स पनपी है। कतिपय वज्ञानिक खोजो के कारण परम्परागत आस्था विश्वासो को ठेस पहुँचने क साथ ही मावसवाद जसे नूतन दशनो ने भी धम तथा धार्मिक

सस्थाओ को बूर्ज्वावादी सस्कृति का अग मानकर उन पर तीव्र प्रहार किये हैं। इन नूतन धारणाओ की आधुनिक काव्य मे प्रबल अनुगूज विद्यमान है। हाँ इस धम विरोधी चेतना का दूसरा पहलू यह भी है कि कवियो ने मात्र गाधीजी को ही देवा की कोटि म स्थान नही दिया है, अपितु उन्होंने लेनिन क भी देव-तुल्य दशन किये जाने की प्रक्रिया आरम्भ हो जाने का चित्रण किया है। ततीय अध्याय म धम सम्बन्धी इस सक्रान्तिमयी चेतना का निरूपण करने के साथ साथ 'नर को ही नारायण' तथा स्वग-नरक का पृथ्वी पर ही अस्तित्व समझने, ढोगी साधु-सन्तो और पडे पुजारियो की भत्सना तथा धार्मिक सौमनस्य एव वमनस्य सम्बन्धी चेतना पर प्रकाश डाला गया है। परम्परागत धार्मिक तथा वतमान राष्ट्रीय-पर्वों, भाग्य फल, शकुन अपशकुन तथा नतिक मानदण्डो के ह्रास से सम्बन्धित परिणत मनोदृष्टि का स्पष्टीकरण भी इसी अध्याय मे किया गया है।

चतुथ अध्याय म आधुनिक कालीन सामाजिक जीवन म अथ की ही सर्वाधिक महत्ता होने तथा अर्थोपाजन की दृष्टि से सभी प्रकार के परम्परागत मान-मूल्यो की अवहेलना किये जाने स सम्बन्धित चिन्ताजनक सास्कृतिक स्थिति का निरूपण किया गया है। रामराज्य समाजवाद, पचवर्षीय योजनाओ विदेशी ऋण, महँगाई बेरोजगारी और हडतालो सम्बन्धी चेतना के साथ साथ आर्थिक दृष्टि से विकसित हुए समाज के उच्च, मध्यम तथा निम्न वर्गों का जीवन-दशा और चारित्रिक विशेषताओ तथा नगर और ग्राम जीवन के साथ ही कृषक मजदूरो की दयनीय दशा का सुधारे जाने से सम्बन्धित चेतना पर भी इसी अध्याय मे प्रकाश डाला गया है।

पचम अध्याय के आरम्भ म स्वदश प्रेम और देशोद्धार की चेतना के साथ साथ सन 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-सघष विषयक धारणाओ का निरूपण किया गया है। तत्पश्चात देश की स्वाधीनता प्राप्ति की दिशा म क्रान्तिकारी देशभक्तो तथा राष्ट्रीय काग्रेस दल के योगदान पर प्रकाश डाला गया है। देश क विभाजन तथा इस अवसर पर हुए साम्प्रदायिक दगो के सम्बन्ध म कवियो ने गहन विषादमयी चेतना व्यक्त की है। तदनन्तर भारतीय लोकतन्त्र, चुनाव प्रणाली, ससद सासद और मन्त्रियो सम्बन्धी विद्रूपात्मक चेतना पर प्रकाश डाला गया है। भारत पर बाहरी आक्रमणो के समय देश म आयी नव-जागृति और राष्ट्रीय एकता की चेतना तथा युद्ध और आणविक शस्त्रास्त्रो के प्रसार की विरोधी चेतना पर भी इसी अध्याय म प्रकाश डाला गया है।

छठे अध्याय मे कला, साहित्य काव्य राष्ट्रभाषा, शिक्षा-व्यवस्था तथा विज्ञान सम्बन्धी चेतना का विवेचन किया गया है। काव्य के उद्देश्य के सम्बन्ध मे अधिकाश कवियो ने 'कला कला के लिए' के सिद्धान्त का विरोध करते हुए उसका मूलोद्देश्य जन हितकारी वातावरण की सृष्टि करने की धारणा व्यक्त की है। इस

तथ्य की भी तीव्र भर्त्सना की गयी है कि हमारा कवि-कलाकार-वर्ग, क्षुद्र सुविधाओं की प्राप्ति-हेतु अपनी अन्तरात्मा को समाज के पूंजीपति वर्ग के हाथों गिरवी रख देता है। विज्ञान से हानि लाभों के सम्बन्ध में निन्दा-स्तुतिपरक अर्थात् सभ्रान्तिमयी चेतना व्यक्त हुई है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की मौलिकता तथा उसके द्वारा ज्ञान के क्षेत्र में किये जाने वाले योगदान के सम्बन्ध में हम इससे अधिक क्या कहें कि हम तो निज कवित्त केहि लागि न नीका की उक्ति के अनुरूप प्रायः पूरे शोध प्रबन्ध की ही सामग्री, अभी तक हुए शोध-कार्यों के परिप्रेक्ष्य में मौलिक प्रतीत होती है। चाहे आधुनिक काव्य का सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वेक्षण हो अथवा संस्कृति शब्द के अर्थ विकास की परम्परा का उद्घाटन और उसके स्वरूप का निर्धारण इन प्रकरणों में अनेक नवीन तथ्यों का उद्घाटन किया गया है। इसी प्रकार मूल शोध भाग में विवेचित नवीन अथवा परिणत सांस्कृतिक चेतना का निरूपण शोध विषय की अन्तरात्मा के अनुकूल ही इस दिशा में किये गये अन्य शोध-कार्यों की सामग्री से भिन्न है। हमारी विषय-सूची पर सरसरी निगाह डालने से ही इस तथ्य का आभास मिल जाना चाहिए कि प्रस्तुत प्रबन्ध में वर्णित विवेचित अधिकांश सांस्कृतिक तथ्य अन्य शोधकों द्वारा किये गये सांस्कृतिक अध्ययनों में विवेचित तथ्यों से भिन्न हैं। इसी प्रकार भारतेन्दु काल से लेकर सन् 1975 तक की लगभग सौ वर्षों की कालावधि के सभी काव्य धाराओं से सम्बन्धित छोटे-बड़े सहस्रों कवियों के काव्योद्गारों का हमारे विचार से अभी तक किसी भी शोधकार्य में उपयोग नहीं किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि विगत सौ वर्षों की कालावधि में हिन्दी भाषा के कवियों द्वारा सामाजिक सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पहलुओं के सबंध में जो कुछ भी नवीन अथवा परम्परा स्वीकृत तथ्यों से भिन्न अथवा सभ्रान्तिमयी धारणाएं व्यक्त की गई हैं उन समस्त धारणाओं का स्पंदन प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में स्पष्टतया अनुभव किया जा सकता है। वस्तुतः विवेच्य-वस्तु की दृष्टि से इस शोध प्रबन्ध को परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों के विघटन की कहानी आधुनिककालीन कवियों की जुबानी कहा जा सकता है।

अन्ततः प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सम्मिलित कवियों काव्य-कृतियों उद्धरण देने की रीति तथा विवेच्य तथ्यों के सम्बन्ध में अपनायी गयी नीति का स्पष्टीकरण करते हुए हम यह निवेदन करना चाहते हैं कि हमारे द्वारा नवीन सांस्कृतिक चेतना का निरूपण प्रसिद्ध कवियों की कृतियों के परिप्रेक्ष्य में ही करने का मार्ग भी अपनाया जा सकता था किन्तु उस दिशा में उभरने वाला चित्र बीसवीं शती के सांस्कृतिक जीवन का पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। महान् कवियों के साथ महान और उदात्त विषय तथा उदात्त शैली का ऐसा गठबन्धन रहता है कि उनकी कृतियों में क्षुद्र सामान्य लोगों की हीन क्षुद्र धारणाओं की अभिव्यंजना प्रायः

उपेक्षित ही रह जाती है। काव्य-कला के उत्कर्ष की दृष्टि से महान् या प्रसिद्ध कवि हमारी दृष्टि मे भी प्रणम्य अवश्य हैं, किन्तु जहाँ तक सास्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षो से सम्बन्धित यथार्थ धारणाओ या चेतना की अभिव्यजना का प्रश्न है काव्य कौशल से विहीन कवियो की रचनाओ मे महान कवियो की कृतियो से भी अधिक उपयोगी उद्गार उपलब्ध हो सकते हैं। इसी तथ्य के परिपार्श्व म हमने अपनी शोध-सामग्री के सचयन म बीसवी शती म रचित समस्त काव्य कृतियो तथा छोटे-बड़े प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध सभी कवियो के काव्य-सकलनो अथवा किसी कवि की किसी काव्य-सकलन मे प्रकाशित हुई दो-चार कविताओ का भी उपयोग करने म सकोचानुभव नही किया है। हमारी आधार सामग्री के 'ख' भाग म निर्दिष्ट काव्य सकलनो म न जाने एसे कितने कवियो की कविताएँ भी सकलित हैं, जिनके अभी तक कोई स्वतन्त्र कविता-सकलन प्रकाशित नही हुए हैं। ब्रजभाषा की भी अनेक कृतियो म नवीन सास्कृतिक चेतना का स्फुरण हुआ है अत हमने यथा प्रसग उनका भी उपयोग किया है। इसी प्रकार सास्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षो के सम्बन्ध म लोकगीतो तथा उर्दू-काव्य मे व्यजित हुई धारणाओ का भी यथा प्रसग आश्रय लिया गया है। पृष्ठभूमि निरूपण की दृष्टि से भारतेन्दुकालीन कवि उद्गारो का भी प्रचुर मात्रा म उपयोग किया गया है।

उद्धरण देने की रीति के सन्दर्भ म यह तथ्य उल्लेखनीय है कि छायावाद-काल से ही मुक्त छन्द म कविताए लिखने की जो परम्परा चली थी उसका परवर्ती काल म ऐसा घोर प्रचलन रहा है कि एक दो पक्तियो मे समाविष्ट हो जाने वाली शब्दावली ही तोड मरोडकर पूरे पृष्ठ पर फलाकर उसको कविता का रूप प्रदान कर दिया गया है। कागज की महँगाई का देखते हुए ऐसे उद्धरणो को यथावत रूप म उद्धृत करना अव्यावहारिक नही रह गया है। इसीलिए उद्धरणो म प्राय तिरछी लाइनें देकर पृथक पक्तियो के अस्तित्व को सकेतित किया गया है। इस पद्धति का आश्रय न लिए जाने की दशा म प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का आकार निश्चय ही दुगना तिगुना हो गया होता। हमने उद्धरणो के सम्बन्ध मे इस नीति को भी अपनाया है कि मूल शोध भाग म किसी कवि के विचारो का गद्यात्मक उल्था करके पाद टिप्पणी म उससे सम्बन्धित उद्धरण को देने के स्थान पर कवि के नामोल्लेख सहित मूल उद्धरण को काँट छाँटकर विवेचन क्रम मे ही उद्धृत करते हुए पाद टिप्पणी म मात्र सम्बन्धित काव्य-कृति का ही नामोल्लेख किया है। एसा करने से कृति का आकार तो परिसीमित हुआ ही है यह पद्धति हम इस दृष्टि स भी विशेष उपयोगी प्रतीत हुई है कि कवियो का उनके रचनाकाल के अनुक्रम म नामोल्लेख करते जाने के फलस्वरूप, विभिन्न सास्कृतिक तथ्यों से सम्बन्धित चेतना म जो उतार चढ़ाव या परिवर्तन घटित हुए हैं वे स्वत ही उद्घाटित होते गये हैं। जिन कवियो की रचनाएँ विविध काव्य सकलनो मे

प्रकाशित हुई हैं, उनके सम्बन्ध में यह रीति अपनायी गयी है कि या तो कवियो के नामो का उल्लेख मूल शोध भाग में करके पाद टिप्पणी में सम्बन्धित सकलन का नामोल्लेख कर लिया गया है अथवा उस काव्य-सकलन को 'सक०' के रूप मे निर्दिष्ट करते हुए उसके साथ सम्बन्धित कवि का ही नामोल्लेख किया है उस सकलन के सम्पादक का नाम प्राय नही दिया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लेखन की दिशा में सहधर्मिणी नवलेश शर्मा से मिली प्रेरणा और उनके सतत सहयोग की महत्ता को मैं धन्यवाद ज्ञापन द्वारा हल्का नही करना चाहता। पाण्डुलिपि प्रकाशन के भाई हरीराम द्विवेदी का मैं आभारी हूँ जिन्होने इस कृति को प्रकाशित करने का दायित्व निभाया है। शुद्ध छपाई की दिशा में भरसक चेष्टा करने पर भी ग्रथ में यत्र-तत्र कुछ अशुद्धियाँ रह ही गयी हैं। उन अशुद्धियो को छोडकर जहाँ किसी मात्रा, बिन्दु या रेफ के टूट जाने के कारण शब्द रूप बिगड जाने पर भी साफ समझ में आता है कुछ शब्दो के शुद्ध रूप 'शुद्धि पत्र' में निर्दिष्ट कर दिये गये हैं। अन्तत हम उन सभी विद्वज्जनो कवियो के आभारी हैं जिनके मत और धारणाओ का निर्व्याज भाव से खडन मडन करते हुए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध की गुण-वृद्धि हुई है।

24 जून 1991
सी 2/75 नवल निकेतन,
जनकपुरी नया दिल्ली 58

विदुषा अनुचर
राजपाल शर्मा

विषयानुक्रमणिका

विषय प्रवेश (16 86)

(क) आधुनिक काव्य अभिप्राय प्रवृत्त्यानुसार वर्गीकरण तथा सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वेक्षण (16 53) (ख) नवीन सांस्कृतिक चेतना अभिप्राय और स्वरूप (53 86) (i) नवीन चेतना (53 56) (ii) संस्कृति और कल्चर शब्दों के पर्यायत्व के सम्बन्ध में विवाद (57 59) (iii) संस्कृति और कल्चर शब्दों के व्युत्पत्यर्थ एवं उनकी भिन्नार्थक प्रयोग-परम्परा (59 73), संस्कृति और कल्चर की परिभाषाएँ तथा संस्कृति का स्वरूप (73 86)

प्रथम अध्याय सामाजिक संघटन तथा सामान्य रहन सहन (87 122)

(अ) परम्परावादी कवियों द्वारा परिष्कृत वर्णव्यवस्था का समर्थन (87 90), (आ) जाति-पाँतिगत ऊँच नीच का विरोध (90 91) (इ) जाति और हिन्दी शब्दों का राष्ट्रबोधक अर्थ में प्रयोग (91 92) (ई) हिन्दू जातीयता का समर्थन (92 93), (क) छुआछूत विरोधी चेतना (94 97) (ख) खान-पान सम्बन्धी आचार विचार (97 104) (ग) वेशभूषा के पाश्चात्य उपकरणों तथा फैशन-परस्ती की निन्दा (104 07) (घ) मूछें, चोटी और यज्ञोपवीत (109 14) (ङ) आभूषण विरोधी चेतना (114 15), (च) रेडियो, सिनेमा और पाश्चात्य नृत्य (115 18) (छ) बस और रेलयात्राओं द्वारा सांस्कृतिक मूल्य संक्रमण (118 20) (ज) फ्लैट और झुग्गी-झोपड़ियाँ (120 27), निष्कर्ष (122)

द्वितीय अध्याय पारिवारिक एवं नारीजीवन सम्बन्धी नवीन चेतना (123 178)

(क) पारम्परिक संयुक्त परिवारों का विघटन (124 26),'(ख) पति पत्नी सम्बन्धों में शथिल्य और तनाव (127 33) (ग) विवाह विरोधी चेतना (133 35), (घ) माता पिता और सन्तान के सम्बन्धों

म विघराव (135 41) (ड) परिवार नियोजन समथन और विरोध (141 45) (च) ववाहिक कुरीतियो का विरोध (145 47) (छ) तलाक पुनर्विवाह और विधवा विवाह (147 62) (i) तलाक और पुनर्विवाह (147 56), (ii) विधवा विवाह (156 62) (ज) नारी जीवन विषयक सत्रातिमयी चेतना (162 69) (झ) सतीत्व विषयक परिणत चेतना (161 71) (ञ) वेश्याओ के प्रति सहानुभूतिपरक मनोदृष्टि (171 77) निष्कष (177 78)।

तृतीय अध्याय धार्मिक आस्था विश्वास तथा नतिक मूल्यों सम्ब धी नवीन चेतना (179 232)

(क) ईश्वर की मत्यु और अनस्तित्व (181 84) (ख) धम धम स्थल और पूजापासनादि सम्ब धी परिणत चेतना (184 88) (ग) नर के नारायणत्व तथा धरा पर ही स्वग होने सम्ब धी चेतना (188 91) (घ) नेताओ का दवीकरण तथा नवीन तीथस्थल (191 94) (ङ) साधु-सत और पडे-पुजारियो की नि दा (194 95) (च) गो रक्षा सम्ब धी परिणत चेतना (195 97) (छ) सव धम समभाव या जातीय एकता (197 99) हि दू और सिख (199 200) हि दू तथा ईसाई (200 02) हि दू और मुसलमान (i) पारस्परिक [सौमनस्य (202 06) (ii) साम्प्रदायिक वमनस्य (206 12) (ज) परम्परागत त्योहारो सम्ब धी नवीन चेतना (212 18) नूतन राष्ट्रीय पव (218 19)। (झ) नतिक धार्मिक मा यताओ सम्ब धी सत्रातिमयी चेतना (220 30) निष्कष (230 32)।

चतुथ अध्याय अर्थोपाजन के माध्यमों तथा देश की आर्थिक दशा सुधारने सम्ब धी चेतना (234 82)

(क) अर्थोपाजन के विभिन्न माध्यमो सम्ब धी चेतना (234 46) (i) वाणिज्य व्यापार और उद्योगो म परिव्याप्त भ्रष्टाचार (234 38) (ii) सरकारी गर-सरकारी नौकरियों तथा कार्यालयादि म परिव्याप्त भ्रष्टाचार (238 43) (iii) कृषिकम तथा कृषको की दयनीय दशा सुधारने सम्ब धी चेतना (243 46) (ख) उच्च मध्यम तथा निम्न वग (246 54) (ग) ग्राम एव नगर-जीवन (254 61), (घ) दासता काल म देश की आर्थिक दुरवस्था (261 65) (ङ) स्वात त्र्योत्तर काल मे देश का समुचित आर्थिक विकास न हो

पाने की निन्दा आलोचना (265 69) (च) पचवर्षीय योजनाएँ (269 71) (छ) महँगाई बेकारी प्रशन और हड़तालें (271 81) निष्कर्ष (281 82)।

पाँचवा अध्याय स्वाधीनता, देशभक्ति गणतन्त्र आदि राजनीतिक तथ्यों सम्बन्धी चेतना (284 361)

(क) स्वदेश गौरव तथा मातभूमि की महिमा (284 86), (ख) स्वाधीनता की लालसापूर्ति पर हर्षोल्लास (286 89) (ग) महाराणा प्रताप तथा छत्रपति शिवाजी पर स्वाधीनता सेनानियो का अध्यारोप (289 90) (घ) प्रथम स्वाधीनता सग्राम (291-95) (ङ) रानी लक्ष्मीबाई (295 98), (च) स्वतन्त्रता-सग्राम मे क्रान्तिकारी देशभक्तो का योगदान (298 306), (छ) स्वाधीनता की प्राप्ति म गाधीवादी सत्याग्रह आन्दोलनों का योगदान (307 14), (ज) भारत विभाजन की विषादमयी घटना (314 15) (झ) रामराज्य और समाजवाद का मिथ्या ढिंढोरा (316-18) (ञ) देश को मिली आजादी का खोखलापन (318 21), (ट) जनतन्त्र प्रणाली की विफलता (321 27) (ठ) गाधीजी क नाम और सिद्धातो की छीछालदर (327 29) (ड) दूषित चुनाव प्रणाली (329 32) (ढ) ससद और सासद तथा मन्त्रियो का भ्रष्टाचरण (332 39) (ण) सीमा सघर्ष तथा राष्ट्रीय एकता (339 48), (त) युद्ध विरोधी चेतना (348 53) द्वितीय विश्व-युद्ध तथा नेताजी सुभाषचन्द्र बोस (353 60) निष्कर्ष (360 61)

छठा अध्याय साहित्य कला शिक्षा भाषा और विज्ञान सम्बन्धी नवीन चेतना (362 402)

(क) साहित्य और कला (362 66) (ख) काव्य की परिभाषा, विषय-वस्तु और उद्देश्य (366 73) (ग) साहित्यिक गुटबाजी से अनुप्रेरित पारस्परिक छीटाकाशी (373 79) (घ) कवि सम्मेलनो कवि और कविताएँ (379 80) (ङ) नियोजित काव्य-साधना (380 81) (च) साहित्यकारा द्वारा अन्तरात्मा वचन की भर्त्सना (381 88), (छ) शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा-पद्धति सम्बन्धी चेतना (388 95), (ज) विज्ञान और वज्ञानिक उपलब्धियो सम्बन्धी चेतना (395 404) (झ) राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भाषाई दगो सम्बन्धी चेतना (404 12), आधार एव सहायक ग्रन्थ सूची (413 26) शुद्धि-पत्र (427-28)।

विषय प्रवेश

(क) आधुनिक काव्य अभिप्राय, वर्गीकरण एव सास्कृतिक सर्वेक्षण

(अ) अभिप्राय

'आधुनिक काव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी साहित्य के 'आधुनिक काल मे रचित काव्य से रहा है। समग्र हिन्दी साहित्य के परिप्रेक्ष्य म आचार्य शुक्ल ने आधुनिक काल का आरभ सवत 1900 अर्थात सन 1843 से स्वीकार किया था जबकि डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने उसका आरभ सन् 1850 से[1], डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1860 से, तथा डॉ० नगेन्द्र[3] और डॉ० बच्चन सिंह[4] न सन् 1857 स स्वीकार किया है। इन अभिमतों मे से हम आधुनिक काल की आरभिक सीमा रेखा का सम्बन्ध भारत के सास्कृतिक जीवन के एक अत्यधिक महत्वपूर्ण वष सन 1857 से जोडना अधिक समीचीन प्रतीत होता है क्योंकि जैसा कि यथास्थान स्पष्ट किया गया है हिन्दू मुस्लिम सौहार्द्र तथा विदेशी विधर्मी शासको को भारत स बाहर खदेडने की चेतना से प्रसूत हुआ सन 1857 का जन विप्लव या सास्कृतिक विस्फोट भारत के लगभग एक हजार वष के सास्कृतिक इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना है। गद्य और पद्यात्मक समग्र साहित्य की दृष्टि से आधुनिक काल का आरभ सन 1857 से स्वीकार करते हुए भी हम मात्र काव्य कृतियो की दृष्टि से आधुनिक काल का आरभ सन् 1900 से स्वीकार

---

1 दे०, हिन्दी साहित्य कोश' भाग 1, पृ० 544

2 हिन्दी साहित्य' पृ० 357 63

3 आधुनिक भारत के इतिहास की प्रथम महत्वपूर्ण घटना है सन् 1857 का स्वतन्त्रता सघष जो इस युग की पहली सीमा रेखा है। राष्ट्रीय चेतना और राजनीति के जागरण का यह आदोलन वास्तव मे मध्ययुग की समाप्ति और आधुनिक युग के आरभ का पहला उदघोष था।"

— हिन्दी साहित्य का इतिहास सपा० डॉ० नगेन्द्र पृ० 431

4 'सन 1857 अपने अतर्विरोधी स्वरूप के कारण आधुनिक युग का प्रारभिक बिन्दु माना जायगा। — आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास', पृ० 17

करना ही समुचित प्रतीत होता है। कारण यह है कि आधुनिक काल के प्रारंभिक चरण अर्थात भारतेन्दु काल मे रचे गये काव्य म आधुनिक भावबाध की अपेक्षा मध्ययुगीन मनोदृष्टि का प्राधान्य मिलता है अत इस काल खड को काव्य की दृष्टि से रीतिकाल और आधुनिक काल का 'संधि युग'[1] अथवा संक्रांति काल[2] कहा जाना हमे भी उपयुक्त लगता है। आचाय शुक्ल ने भी यद्यपि भारतेन्दु युग के कवियो को पुरानी धारा (स० 1900 स 1925) और नई धारा (स० 1925 से 1950) के दो वर्गों मे विभक्त किया है किन्तु उनकी नई धारा के कवि भी ऐसे ही हैं जिनमे नवीनता की अपेक्षा पुरानेपन (रीतिकालीन परिपाटियो के अनुपालन) का प्राधान्य है। इस नई धारा के कविया मे शिरोमणि भारतेन्दु के सम्बन्ध मे स्वय आचाय शुक्ल की ही यह टिप्पणी हमारे मतव्य की पुष्टि करती है "गद्य को जिस परिमाण मे भारतेन्दु ने नय विषया की ओर लगाया उस परिमाण मे पद्य को नही। उनकी अधिकाश कविता तो कृष्ण भक्त कवियो के अनुकरण पर गेय पदो के रूप म है जिसम राधा कृष्ण की प्रेम लीला और विहार का वणन है। देश दशा पर दो एक होली या वसत आदि गाने की चीजें फुटकल रूप मे भी मिलती हैं पर उनकी कविताओ के विस्तत सग्रह के भीतर आधुनिकता कम ही मिलेगी।'[3] उन्होने यह भी कहा है कि भारतेन्दु ने हिन्दी काव्य को नये विषया की ओर उन्मुख तो अवश्य किया था किन्तु उसके भीतर किसी नवीन विधान या प्रणाली का सूत्रपात नही किया।[4] ऐसी दशा मे हमारी डा० केसरी नारायण शुक्ल के इस मत से पूण सहमति है काव्य भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो जाने पर खडी बोली का इतिहास ही आधुनिक काव्य का इतिहास है।[5]

1 'ऐसे ही महाशक्तिशाली संक्राति काल के दशन हिन्दी का भारतेन्दु युग कराता है जब आधुनिक काव्य रीतिकाल की भावना और मनोदृष्टि की पुरानी पद्धति त्यागकर नूतन पथ को ग्रहण करने की चेष्टा कर रहा था।'
— आधुनिक काव्य धारा डा० केसरी नारायण शुक्ल पृ० 3

2 (क) 'भारतेन्दु युग पुरातन और नवीन के संधि स्थल पर स्थित है फलस्वरूप कवियो के विचार दशन म या तो एक प्रकार की उलझन है अथवा समकालीन परिवेश ने उन्हे परस्पर विरोधी दृष्टिया अपनाने के लिए विवश किया है।
— हिन्दी साहित्य का इतिहास' सपा० डा० नगेन्द्र, पृ० 472

(ख) डॉ० शभुनाथ सिंह ने सन् 1850 से 1900 की कालावधि को संक्रांति युग की सज्ञा प्रदान की है। दे० हिन्दी काव्य की सामाजिक भूमिका' पृ० 153

3 4 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' पृ० 590 91

5 आधुनिक काव्य धारा पृ० 2

मारी आधार सामग्री म यद्यपि आधुनिक या नूतन मनोभावों से युक्त कुछ व्रज-भाषा की काव्य-कृतियाँ भी सम्मिलित हैं, किन्तु उसमे खडी बोली मे रचित कृतियो का ही बाहुल्य है।

सन 1900 से आरभ हुई खडी-बोली की काव्य परम्परा, वण्य वस्तु और उसकी प्रस्तुति की दष्टि से भारतेन्दु कालीन काव्य कृतियो से पर्याप्त भिन्नता रखती है। भारतेन्दु-युगीन कवियों के प्रमुख वर्ण्य विषय भक्ति और शृगार रहे हैं जबकि उन्होने गौण रूप म देश प्रेम पाश्चात्य सभ्यता की निन्दा, आग्ल शासन की प्रशसा और राजभक्ति सम्बन्धी कविताएँ लिखी हैं। भारतेन्दु परवर्ती काव्य मे भक्ति और शृगार की स्रोतस्विनी सूखती गयी है जबकि अतीत गौरव, भारत भू-महिमा देश भक्ति और समाज सुधार प्रमुख वण्य विषय हो गय हैं। खडी बोली की कविताओ म राज भक्ति का वह स्वर भी नही है जिसकी भारतेन्दु काल म पर्याप्त अनुगूज सुनाई पडती है। *यह सत्य है कि भारतेन्दु के यह उदगार कि* 'परम मोक्षफल राजपद-परसन जीवन माहि/बृटन देवता राजसुत पद परसहु चित चाहि'[1] मात्र चाटुकारिता से प्रेरित होकर नही, अपितु युगीन परिस्थितियो के दबाव वश लिखे गये हैं, तो भी यह स्वीकार करना पडेगा कि इन उद्गारो म वह मध्ययुगीन मानसिकता भी बोल रही है जो राजा महाराजाओ मे ईश्वर का अश विद्यमान समझती थी। सन 1900 के परवर्ती काव्य मे ऐसे उद्गार खोजने पर भी नहीं मिलते जिसके मूल म परिवर्तित राजनीतिक परिस्थितियो के साथ ही परिणत मनोदष्टि का भी हाथ है। इसी प्रकार भारतेन्दु युग के कवियो ने देशोद्धार की दृष्टि स जातीय पौरुष या सामथ्य पर भरोसा करने अथवा देशवासियो को तदथ प्रबुद्ध करने की अपेक्षा भगवत्कृपा का अधिक आश्रय लिया है। भारतेन्दु के — कहाँ करुणानिधि केसव सोये? जागत नाहि अनेक जतनकरि भारतवासी रोये?' जसे ईश्वराश्रित आत्मग्लानि और नराश्यपरक उद्गार द्विवेदी-युगीन खडी बोली क काव्य म किसी भी कवि ने व्यक्त नही किये हैं। इन्ही सब कारणा स हम आधुनिक काव्य का आरभ भारतेन्दु-परवर्ती अर्थात् सन 1900 से आरभ होने वाले उस द्विवेदी युग स स्वीकार करना उचित प्रतीत हुआ है, जब गद्य के साथ साथ पद्य के क्षत्र मे भी खडी बोली का आधिपत्य हो गया था। प्रस्तुत सदभ मे इस तथ्य का उल्लेख आवश्यक है कि भारतेन्दु युग म ब्रजभाषा मे काव्य प्रणयन आरभ करन वाले राय देवीप्रसाद पूर्ण, नाथूराम शर्मा शकर, गयाप्रसाद शुक्ल सनही श्रीधर पाठक अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि कवियो की वास्तविक कवि प्रतिभा का विकास द्विवेदी युग मे ही आकर हुआ है, अत इन कविया की द्विवेदी-युगीन कृतियाँ तो हमारी विवेच्य सामग्री म स्वत ही समाविष्ट हैं जबकि

---

1 'भारतेन्दु ग्रथावली', भाग 2, पृ० 703

भारतेन्दु प्रेमघन प्रतापनारायण मिश्र प्रभृति संक्रांतिकालीन कवियों के उद्गारों का भी हमने बीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जीवन में स्फुरित नवीन चेतना की पृष्ठभूमि के रूप में यथासाध्य प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। अभिप्राय यह है कि हमारे विवेचन क्रम में भारतेन्दु युगीन गौण कवियों की रचनाएं भले ही छूट गयी हों, अन्यथा इस शोध प्रबन्ध में लगभग सौ वर्षों की कालावधि में प्रणीत काव्य कृतियों में अभिव्यंजित हुई नवीन सांस्कृतिक चेतना का समाहार करने का प्रयास किया गया है।

(आ) आधुनिक काव्य प्रवृत्त्यनुसार वर्गीकरण

सन् 1900 के परवर्तीकालीन काव्य को विद्वानों ने अनेक प्रकार से वर्गीकृत करने का प्रयास किया है किन्तु इन सभी विभाजनों में किसी-न किसी प्रकार की न्यूनता परिलक्षित होती है। इन वर्गीकरणों के अपूर्ण या त्रुटिपूर्ण प्रतीत होने के मूल में क्रियाशील एवं महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह रहा है कि सन 1900 से 1975 तक की कालावधि अनेक नामधारी काव्य आन्दोलनों से आक्रान्त रही है जिनमें से कुछ आन्दोलन तो समानान्तर भी चले हैं। इस कालावधि के कुछ कवियों का अनेक काव्य प्रवृत्तियों से सम्बद्ध रहना तथा उनका लम्बा साहित्यिक जीवन भी यह समस्या उत्पन्न करता है कि उन्हें किस वर्ग विशेष में स्थान में स्थान प्रदान किया जाये। इस कालावधि के तीन महत्त्वपूर्ण कवियों मैथिलीशरण गुप्त पंत और दिनकर की काव्यकृतियाँ इस दिशा में अच्छा सिर दर्द पैदा करती हैं। इससे भी बड़ी समस्या यह है कि जैसे भारतीय गणतंत्र अपनी बहुत-सी राजनीतिक पार्टियों के लिए विश्व के गणतांत्रिक देशों में इस तथ्य के लिए बदनाम है कि ये विभिन्न दल राष्ट्रोत्थान में ठोस योगदान करने के स्थान पर अपनी-अपनी विचारधारा की अलग-अलग खिचड़ी पकाते रहते हैं, उसी प्रकार विशेषतः छायावादोत्तर कालीन कवि भी अनेक छोटे छोटे गुटों में विभक्त होकर अपने काव्य गुट की साहित्यिक स्वीकृति और दूसरे काव्य गुटों को उखाड़ने-पछाड़ने की दूषित मनोवृत्ति से संपीड़ित रहे हैं। यह तथ्य कम विडम्बनापूर्ण नहीं है कि कालावधि की दृष्टि से हिन्दी साहित्य के सबसे छोटे 'रीति-काल' में दो सौ वर्षों के कवियों की कृतियाँ समाहित हैं जबकि आधुनिक काल के मात्र साठोत्तरी काल के कवि ही अकविता ताजी कविता बीट कविता एब्सर्ड कविता अस्वीकृत कविता, स्पष्ट कविता श्मशानी पीढ़ी की कविता, प्रतिश्रुत कविता, प्रतिबद्ध कविता युयुत्सावादी कविता समकालीन कविता, साम्प्रतिक कविता विचार कविता आदि नामों के पच्चीस-तीस झंडे उठाये हुए उन्हें हिन्दी काव्य जगत् में एक स्वतंत्र नाम और पृथक पहचान प्रदान करने की सर्वथा अपूरणीय माँग प्रस्तुत करते हुए अपने अपने साहित्यिक मंचों से तदर्थ धुआँधार प्रचार भी करते रहे हैं। इन विषम

परिस्थितियो म बीसवी शती के का य का प्रवत्तियो की दप्टि से वर्गीकरण करते समय हि दी साहित्य के इतिहासकारो के समक्ष विकट समस्याएँ उत्प न होती रही हैं, जिन पर सक्षप म आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

डॉ० बच्चनसिंह न सन् 1900 से बाद के हि दी साहित्य को तीन युगो म विभक्त किया है (1) पूव स्वच्छ तावादी युग (सन् 1900 से 1920) (2) स्वच्छदतावाद युग (सन 1920 से 1940) (3) उत्तर स्वच्छदवाद युग (सन् 1940 से 1970 तक)। तदन तर उत्तर स्वच्छदतावाद युग के उ होंने 'नव्य स्वच्छ तावाद, प्रगतिवाद' 'राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्य, 'प्रयोगवाद और नयी कविता तथा 'सातवें दशक का मोह भग काल' नामक विभाग किये हैं।[1] स्वच्छदतावाद को के द्र बि दु बनाकर प्रस्तुत किये गय इस वर्गीकरण स ध्वनित होता है कि मात्र 1920 से 1940 ई० के मध्य गद्य पद्यात्मक साहित्य साधना करने वाले साहित्यकार ही सर्वाधिक स्वच्छ तावादी थे जो पूव स्वच्छदतावादी युग (द्विवेदी युग) के परिप्रेक्ष्य म तो सही है कितु यही तथ्य उत्तर स्वच्छदतावादी साहित्य के सदभ म वस्तुस्थिति की उपेक्षा करता है। छायावादोत्तर काल के नाटक, उप यास कहानी, आलोचना और काव्य के क्षत्रो पर दृष्टिपात किया जाय तो मात्र हि दी आलोचना को कि ही अशो म छोडकर शेष क्षत्रो म परम्परा भजन की ही प्रबल प्रवत्ति विद्यमान मिलती है। कम से कम काव्य के क्षत्र मे तो छायावाद युगीन कवियो की अपेक्षा, प्रगतिवादी प्रयोगवादी, नयी कविता और साठोत्तरी कविता से सम्बद्ध कवि अपनी पूववर्ती काव्यधाराओ की परम्परागत विरासत को स्वीकृति प्रदान करने का तो कहना ही क्या उनके नाम मात्र स बिदकते मिलते हैं और क्या भाषा, क्या भाव, क्या प्रस्तुति सभी क्षत्रो म अपनी नयी खोजो के बढ बढकर दावे प्रस्तुत करते हैं। ऐसी दशा मे आधुनिक काव्य के काल विभाजन के सदभ म हम प्रस्तुत वर्गीकरण की अपेक्षा तो यह वर्गीकरण ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि उसको पूव छायावादी युग छायावादी युग तथा 'छायावादोत्तर युग' के रूप मे विभक्त किया जाये क्योंकि इस वर्गीकरण के साथ कम से कम यह 'छायावाद' शब्द तो जुडा हुआ है, जिसके अतगत रचित काव्यकृतियाँ ही आधुनिक काल के का य क्षत्र मे सर्वाधिक गौरवमयी हैं।

डा० शम्भुनाथ सिंह ने आधुनिक भारत के सास्कृतिक इतिहास को चार युगो मे विभाजित किया है (1) सक्राति युग (सन् 1850 1900), (2) पुनरुत्थान युग (सन 1900 1920), (3) विद्रोह युग (सन 1920 40) तथा (4) सामजस्य युग (1940 से आगे)। सस्कृति के इतिहास को दृष्टि स तो यह विभाजन

1 आधुनिक हि दी साहित्य का इतिहास दे०, अनुक्रम प० 169

2 हि दी काव्य की सामाजिक भूमिका पृ० 153

कि्हीं अंशो मे हमे भी स्वीकार्य है, किंतु यदि इसको काव्यक्षेत्र पर लागू किया जाये तो यह विडम्बनामयी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि अपेक्षाकृत शांत सौम्य छायावादी काव्य तो विद्रोही साहित्य का पर्याय बन जाता है जबकि नाना प्रकार के गुटों और खेमों म आबद्ध होकर एक दूसरे के साथ जुतियाव लतियाव करने वाला चालीसोत्तरी, विशेषत साठोत्तरी काव्य सामजस्यवादी काव्य का अर्थबोधक बन जाता है। चालीसोत्तरी काव्य को हम सांस्कृतिक दृष्टि से भी सामजस्य युग कहना इसलिए उचित प्रतीत नहीं होता है कि स्वातत्र्योत्तर कालीन काव्य मे सांस्कृतिक सामजस्य की अपेक्षा सांस्कृतिक विघटन की अभिव्यजना ही अधिक हुई है। डा० बच्चन सिंह द्वारा अकविता के परिप्रेक्ष्य म सातवें दशक को 'मोहभग काल' बताना उचित ही है, किंतु यह मोहभग या विघटन छठे दशक के उत्तरार्द्ध मे ही आरम्भ हो चुका था। छठे दशक की अनेक कविताओ म इस तथ्य की अभिव्यजना हुई है कि देश को प्राप्त हुई स्वतत्रता निस्सार है, जबकि स्वय प० जवाहरलाल नेहरू ने भी छठे दशक को नये और पुराने मूल्यों की सक्रातिमयी स्थिति का काल स्वीकार किया था।[1] ऐसी दशा में चालीसोत्तरी काल के काव्य को न तो काव्य प्रवृत्तियो की दृष्टि से ही सामजस्य काल की सज्ञा प्रदान की जा सकती है और न सांस्कृतिक दृष्टि से ही उसको 'सामजस्य युग' कहना समीचीन प्रतीत होता है।

डा० गणपति चन्द्र गुप्त ने बीसवी शताब्दी के काव्य को चार युगों म विभक्त किया है (1) द्विवेदी युग (सन् 1900 1920) (2) छायावाद युग (सन 1920 1936), (3) प्रगतिवादी युग (सन् 1937 1945) और (4) *प्रयोगवाद युग (सन 1945 1965)*[2]। *यह वर्गीकरण सामान्यतया* उचित ही है किन्तु इस वर्गीकरण म वयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा और नयी कविता की सर्वथा उपेक्षा कर दिये जाने से हम यह विभाजन भी अपूर्ण ही प्रतीत होता है। डा० सुरेश चन्द्र गुप्त ने भारतेन्दु परवर्ती काव्य परम्परा को पहले दो युगों म विभक्त किया है, (1) द्विवेदी युग (स० 1950 76 वि०) और (2) वर्तमान युग (स० 1975 स आगे)। तदनन्तर उन्होंने वर्तमान युग को *पाँच उपवर्गों में विभक्त किया है राष्ट्रीय सांस्कृतिक कविता छायावाद युग*, वैयक्तिक कविता, प्रगतिवादी कविता और प्रयोगवादी कविता। इनमे स उन्होंने

---

1 *हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं न नवीन और हम बिना यह जाने हुए* बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं? नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड है न कोई दूसरी ऐसी चीज जिससे वह अपने चिंतन या कर्म को नियन्त्रित कर सके।"— संस्कृति के चार अध्याय' भूमिका, पृ० 10

2 'हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' पृ० 603

मात्र छायावाद की काल सीमा स० 1975 से 1995 वि० निर्दिष्ट की है जबकि अन्य काव्यधाराओं की व्याप्ति स० 1975 से लेकर अब तक स्वीकार की है[1] जो हम भी सर्वथा उचित प्रतीत होती है। हाँ इस वर्गीकरण म राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता का आरभ द्विवेदी युग के पश्चात् स्वीकार किया गया है जो वस्तु स्थिति के विपरीत है। यदि राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा का आरभ भी स० 1950 से स्वीकार करते हुए द्विवेदी युग और वतमान युग का पृथक पृथक उल्लेख न किया जाये तो आधुनिक काव्य के प्रस्तुत वर्गीकरण की इस असगति का भी परिहार हो सकता है कि इसम छायावाद और प्रगतिवाद को वतमान युग' शीषक के अतगत रखा गया है, जिससे ऐसी भ्राति होती है मानो ये दोनो काव्यधाराएँ अब भी प्रवहमान हैं।

हमारे विचार से आधुनिक काल म रचित काव्य का वर्गीकरण निम्नाकित उपशीषकों के अतगत किया जा सकता है—

(1) राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा—सन् 1900 से 1975 तक।
(2) वयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा—सन् 1915 से 1975 तक।
(3) छायावादी काव्यधारा—सन् 1920 से 1940 तक।
(4) प्रगतिवादी या प्रगतिशील काव्यधारा—सन् 1930 से 1975 तक।
(5) प्रयोगवादी और नयी कविताधारा—सन् 1940 से 1965 तक।
(6) अधुनातन या पैमठोत्तरी काव्यधारा—सन 1965 से 1975 तक।

प्रस्तुत वर्गीकरण के सम्बध मे इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक है कि हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों द्वारा आधुनिक हिन्दी काव्य का विभिन्न काव्य प्रवत्तियो के आधार पर राष्ट्रीय सास्कृतिक कविता छायावाद प्रगतिवाद, वयक्तिकतापरक रोमानी काव्य प्रगतिवाद तथा नयी कविता के रूप म जो विभाजन किया गया है वह मूलत इन वादो स सबधित काव्य कृतियो मे वस्तु की प्रस्तुति के वभिन्य पर आधत है क्योंकि वण्य वस्तु की दष्टि स यह नही कहा जा सकता कि इन काव्यधाराओं की काव्य वस्तु एक दूसरी से सवथा विच्छिन्न है। उदाहरण के लिए छायावादी कवियो की काव्य वस्तु का अतर्भाव राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा और वैयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा स सम्बधित काव्यकृतियो की वण्य वस्तु क साथ हो जाता है। प्रगतिशील या प्रगतिवादी काव्य भी मात्र इस अतर के साथ कि इस काव्यधारा की कविताओ मे दलित कृषक मजदूर (विशेषत मजदूर) वग का दीन दशा पर कुछ अधिक ही अश्रुपात किया गया है मूलत इस राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्यधारा का ही प्रखर उद्दाम रूप है। कहा जा सकता है कि बीसवी शती के प्रथम दो दशको म आविर्भूत हुई राष्ट्रीय सास्कृतिक

1 'आधुनिक हिन्दी कवियो के काव्य सिद्धान्त पृ० 20

कविता धारा ही आगे चलकर छायावाद की सौम्य शात शालीन तथा प्रगतिवाद की प्रखर-वाचाल उद्दड दो अन्य उपधाराओं मे भी विभक्त होकर त्रिधारा बन गयी है। छायावाद की सरस्वती तो सन् 1940 के लगभग विलुप्त अदश्य हो जाती है, किन्तु राष्ट्रीय सास्कृतिक तथा प्रगतिशील कान्य धाराएँ किंचित् बदले हुए रूपो मे हमारे शोध काल के अत तक प्रवहमान रहती हैं। इन दोनो ही काव्यधाराओ को स्थूल रूप मे सामाजिक सास्कृतिक चेतनापरक कान्यधाराओ की सज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसी प्रकार वयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा का आविर्भाव बच्चन-अचल नरेन्द्र शर्मा के काव्योदय से स्वीकार करना, इस दष्टि स अधिक सुविचारित नही प्रतीत होता कि इस प्रकार की कविताए सन् 1915 के आस पास से ही प्रसाद पत और निराला की कवित्रयी द्वारा भी प्रचुर परिमाण मे लिखी जाने लगी थी। इन दोनो पीढियो के कवियो की प्रस्तुति के ढग मे अतर अवश्य है, किन्तु प्रसाद के 'आँसू', पत की 'ग्रथि' और निराला की 'गीतिका' मे सकलित कविताएँ इस तथ्य म रचमात्र भी सदेह का अवकाश नही छोडती कि बच्चन अचल नरेन्द्र ने यह वयक्तिकता प्रधान रोमानी प्रवत्ति अपने अग्रज काव्य बन्धुओ से ही ग्रहण की है। प्रयोगवाद और नयी कविता से सम्बद्ध कवियो म भी यह पूववर्ती चेतना धाराएँ अर्थात 'सामाजिक सास्कृतिक' तथा 'वैयक्तिक रागद्वयमयी' काव्यधाराए ही प्रवहमान रही हैं। चालीसोत्तरी कान्य मे 'सामाजिक सास्कृतिक काव्यधारा के नेतृत्व का श्रेय मुक्तिबोध को प्रदान किया जा सकता है, जबकि वयक्तिक राग द्वयमयी काव्य धारा का नतत्व अज्ञेय ने वहन किया है। पैसठोत्तरी कान्य म भी वण्य वस्तु की दृष्टि से इसी प्रकार का स्पष्ट दष्टि भेद लक्षित होता है। राष्ट्रीय सास्कृतिक या सामाजिक-सास्कृतिक काव्यधारा इस काल में आकर प्रतिश्रुत कविता प्रतिबद्ध कविता मेहनतकश जनता की कविता जसे कवि गुणो की कविताओं मे प्रवहमान है तो वैयक्तिकता प्रधान कान्यधारा ने अकविता एब्सड कविता रुष्ट कविता श्मशानी पीढी की कविता बीटनिक कविता आदि नये अभिधान धारण कर लिए हैं।

(इ) आधुनिक काव्य सास्कृतिक सर्वेक्षण

अब हम सक्षप म इस तथ्य के स्पष्टीकरण का प्रयास करेंगे कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियो के परिप्रेक्ष्य मे, उपयुक्त काव्यधाराओ म राष्ट्र की सास्कृतिक चेतना का किस सीमा तक मुखरण परिलक्षित होता है।

(1) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा—इस कान्यधारा के उत्थान मे प० महावीर प्रसाद द्विवेदी हरिऔध राय देवी प्रसाद पूण मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियो का प्रमुख हाथ रहा है, जो भारतेन्दु काल मे आरभ हुई स्वदेश प्रेम सम्बन्धी कविताओ की अगली कडी है। भारतेन्दु कालीन कान्य मे

राजभक्ति की भावना भी प्रचुर मात्रा मे व्यक्त हुई है, जो इस काव्यधारा मे देश भक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है। देशभक्ति के साथ ही इस काव्यधारा मे देशोद्धार की चेतना जाग्रत करने का भी प्रयास किया गया है, किंतु तदर्थ कवियों को छदम-कौशल का आश्रय लेना पड़ा है। भारत के उस दासता काल के किसी भी राष्ट्रीय या देशभक्ति सम्बन्धी भावनाएँ उदबुद्ध करने वाले कवि से, हमे यह अपेक्षा करनी ही नही चाहिए कि उसकी काव्य कृति म आग्ल शासन को पलटने की स्पष्ट शब्दो मे अभिव्यक्ति मिल सकती है। कारण यह है कि आग्ल शासन ने सन 1869 70 से ही भारतीय दड विधान की धारा न० 124 ए लागू कर दी थी जिसके अनुसार, "उस व्यक्ति को जो उच्चारित अथवा सकेत या स्पष्ट प्रदर्शन द्वारा, या किसी अन्य प्रकार से साम्राज्ञी अथवा ब्रिटिश भारत मे विधिवत स्थापित सरकार के प्रति, अभक्ति की भावनाएँ उत्तजित करता है, अथवा उत्तेजित करने का प्रयत्न करता है, दड दिया जा सकता था।[1] इस दड का स्वरूप यह था कि वह 'आजीवन अथवा किसी अल्प अवधि के लिए देश निर्वासन और साथ म जुर्माना भी हो सकता था अथवा तीन वर्ष के लिए कारावास और साथ म जुर्माना हो सकता था, अथवा केवल जुर्माना ही हो सकता था।"[2] इस ऐक्ट म भी समय समय पर सशोधन करके उस और भी अधिक कठोर रूप दिया जाता रहा और लोकमान्य तिलक का सन् 1908 म इस विधान के अतगत ही देश निष्कासन का दड दिया गया था। स्पष्ट है कि ऐसी दशा मे कोई भी व्यक्ति या साहित्यकार अपनी कृति म ऐसी भावनाओं की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति नही कर सकता था, जिन्हें हम स्वातन्त्र्योत्तर काल के नागरिक यह स्वीकृति प्रदान कर सकें, कि इस कृति म देशोद्धार या कहिये भारत को दासता पाश स मुक्त कराने का दो-टूक सदेश दिया गया है। सभवत या तो ऐसी कृतियाँ बहुत कम लिखी गयी होंगी और यदि रची गयी होंगी, तो आग्ल शासन के जासूस तत्र द्वारा जब्त कर ली गयी होंगी। स्वय गुप्त-जी की भारत भारती भी मात्र इसी कारण जब्त होते होते रह गयी थी कि देश प्रेम या स्वाधीनता की भावनाओं को उत्तजित करने वाली रचनाओ की जब्ती से सम्बन्धित विभाग को इस कृति का अभिप्राय 'जनाना हिन्दुस्तान बताया गया था।"[3] आगे चलकर दिनकर के 'जहाँ बोलना पाप वहाँ क्या गीतो से समझाऊँ मैं',[4] तथा नवीन की सन 1932 की बसत शीर्षक कविता म व्यक्त हुए, 'नही दिखा सकता हूँ दिल के शोलो की आतिशबाजी/कही साफगोई न बढ़ा दे

1 2 'भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास' गुरुमुख निहाल सिंह पृ० 93

3 गुप्त जी द्वारा भेंट वार्ता मे डॉ० रणवीर राग्रा को बताया गया तथ्य, दे० 'सृजन की मनोभूमि', पृ० 3

4 'हुकार' पृ० 1

5 हम विषपायी जनम के', पृ० 431

कविता धारा ही आगे चलकर छायावाद की सौम्य शांत शालीन तथा प्रगतिवाद की प्रखर-वाचाल उद्दंड दो अन्य उपधाराओं में भी विभक्त होकर त्रिधारा बन गयी है। छायावाद की सरस्वती तो सन् 1940 के लगभग विलुप्त अदृश्य हो जाती है किन्तु राष्ट्रीय-सांस्कृतिक तथा प्रगतिशील काव्य धाराएं किंचित् बदले हुए रूपों में हमारे शोध काल के अंत तक प्रवहमान रहती हैं। इन दोनों ही काव्यधाराओं को स्थूल रूप में सामाजिक सांस्कृतिक चेतनापरक काव्यधाराओं की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसी प्रकार वैयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा का आविर्भाव बच्चन अंचल नरेन्द्र शर्मा के काव्योदय से स्वीकार करना, इस दृष्टि से अधिक सुविचारित नहीं प्रतीत होता कि इस प्रकार की कविताएं सन् 1915 के आस-पास से ही प्रसाद-पंत और निराला की कवित्रयी द्वारा भी, प्रचुर परिमाण में लिखी जाने लगी थीं। इन दोनों पीढ़ियों के कवियों की प्रस्तुति के ढंग में अंतर अवश्य है, किन्तु प्रसाद के 'आंसू', पंत की 'ग्रंथि' और निराला की 'गीतिका', में संकलित कविताएँ इस तथ्य में रंचमात्र भी सन्देह का अवकाश नहीं छोड़तीं कि बच्चन, अंचल नरेन्द्र ने यह वैयक्तिकता प्रधान रोमानी प्रवृत्ति अपने अग्रज काव्य बन्धुओं से ही ग्रहण की है। प्रयोगवाद और नयी कविता से सम्बद्ध कवियों में भी यह पूर्ववर्ती चेतना धाराएँ अर्थात 'सामाजिक सांस्कृतिक' तथा 'वैयक्तिक रागद्वेषमयी काव्यधाराएं ही प्रवहमान रही हैं। चालीसोत्तरी काव्य में 'सामाजिक सांस्कृतिक काव्यधारा के नेतृत्व का श्रेय मुक्तिबोध को प्रदान किया जा सकता है, जबकि वैयक्तिक राग द्वेषमयी' काव्य धारा का नेतृत्व अज्ञेय ने ग्रहण किया है। षष्ठोत्तरी काव्य में भी वर्ण्य वस्तु की दृष्टि से इसी प्रकार का स्पष्ट दृष्टि भेद लक्षित होता है। राष्ट्रीय सांस्कृतिक या सामाजिक-सांस्कृतिक काव्यधारा इस काल में आकर प्रतिश्रुत कविता, प्रतिबद्ध कविता, मेहनतकश जनता की कविता जैसे कवि गुटों की कविताओं में प्रवहमान है तो वैयक्तिकता प्रधान काव्यधारा ने अकविता, एब्सर्ड कविता, क्रुद्ध कविता श्मशानी पीढ़ी की कविता बीटनिक कविता आदि नये अभिधान धारण कर लिए हैं।

(ख) आधुनिक काव्य सांस्कृतिक सर्वेक्षण

अब हम संक्षेप में इस तथ्य के स्पष्टीकरण का प्रयास करेंगे कि तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में, उपर्युक्त काव्यधाराओं में राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना का किस सीमा तक मुखरण परिलक्षित होता है।

(1) राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा—इस काव्यधारा के उत्थान में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी हरिऔध, राय देवी प्रसाद पूर्ण, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों का प्रमुख हाथ रहा है, जो भारतेन्दु काल में आरंभ हुई स्वदेश प्रेम सम्बन्धी कविताओं की अगली कड़ी है। भारतेन्दु कालीन काव्य में

राजभक्ति की भावना भी प्रचुर मात्रा में व्यक्त हुई है, जो इस काव्यधारा म देश भक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है। देशभक्ति के साथ ही इस काव्यधारा म देशोद्धार की चेतना जाग्रत करने का भी प्रयास किया गया है, किंतु तदथ कवियों को छद्म-कौशल का आश्रय लेना पड़ा है। भारत के उस दासता काल के किसी भी राष्ट्रीय या देशभक्ति सम्बन्धी भावनाएँ उदबुद्ध करने वाले कवि स, हम यह अपेक्षा करनी ही नहीं चाहिए कि उसकी काव्य-कृति म आंग्ल शासन को पलटने की स्पष्ट शब्दो म अभिव्यक्ति मिल सकती है। कारण यह है कि आंग्ल शासन न सन 1869 70 स ही भारतीय दंड विधान की धारा नं० 124 ए लागू कर दी थी जिसके अनुसार, 'उस व्यक्ति को जो उच्चारित अथवा संकेत या स्पष्ट प्रदशन द्वारा, या किसी अन्य प्रकार से साम्राज्ञी अथवा ब्रिटिश भारत म विधिवत स्थापित सरकार के प्रति, अभक्ति की भावनाएँ उत्तजित करता है, अथवा उत्तेजित करने का प्रयत्न करता है, दंड दिया जा सकता था।'[1] इस दंड का स्वरूप यह था कि वह "आजीवन अथवा किसी अल्प अवधि के लिए देश निर्वासन और साथ म जुर्माना भी हो सकता था अथवा तीन वष के लिए कारावास और साथ म जुर्माना हो सकता था, अथवा कवल जुर्माना ही हो सकता था।"[2] इस ऐक्ट म भी समय समय पर सशोधन करके उस और भी अधिक कठोर रूप दिया जाता रहा और लोकमान्य तिलक का सन् 1908 म इस विधान के अंतगत ही देश निष्कासन का दंड दिया गया था। स्पष्ट है कि एसी दशा म कोई भी व्यक्ति या साहित्यकार अपनी कृति म एसी भावनाओ की सुस्पष्ट अभिव्यक्ति नही कर सकता था, जिन्हें हम स्वातन्त्र्योत्तर काल के नागरिक यह स्वीकृति प्रदान कर सकें, कि हाँ इस कृति म देशोद्धार या कहिये भारत को दासता-पाश स मुक्त करान का दो-टूक संदेश दिया गया है। संभवत या तो एसी कृतियाँ बहुत कम लिखी गयी होंगी और यदि रची गयी होंगी, तो आंग्ल शासन के जासूस तंत्र द्वारा जब्त कर ली गयी होगी। स्वय गुप्त जी की भारत भारती' भी मात्र इसी कारण जब्त होत होत रह गयी थी कि देश-प्रम या स्वाधीनता की भावनाओ को उत्तजित करने वाली रचनाओ की जब्ती से सम्बंधित विभाग को इस कृति का अभिप्राय 'जनाना हिन्दुस्तान' बताया गया था।'[3] आगे चलकर दिनकर क 'जहाँ बोलना पाप वहाँ क्या गीतो से समझाऊँ मैं',[4] तथा नवीन की सन् 1932 की 'बसन्त शीषक कविता म व्यक्त हुए, 'नहीं दिखा सकता हूँ दिल के शोलों की आतिशबाजी/कहो साफगोई न बढ़ा दे

1 2 'भारत का वधानिक एव राष्ट्रीय विकास', गुरुमुख निहाल सिंह पृ० 93

3 गुप्त जी द्वारा भट वार्ता म डॉ० रणवीर रांग्रा को बताया गया तथ्य, दे० सजन की मनोभूमि', पृ० 3

4 'हुकार' पृ० 1

5 हम विषपायी जनम के', पृ० 431

प्रिय की अगली नाराजी',[5] जैसे उदगारो म इसी घुटन की ओर सकेत किया गया है। हाँ कतिपय कवियो जैसे मैथिलीशरण गुप्त निराला प्रसाद आदि ने इस घुटन से बचने का यह माग खोज लिया था कि उन्होने भारत के पौराणिक ऐतिहासिक प्रसगों को अपनाकर उनके पात्रो के माध्यम से ऐसे उदगार व्यक्त कराये हैं जो प्रबन्ध निर्वाह की दृष्टि से किसी पात्र विशेष की उक्तिया प्रतीत होते हुए भी प्रकारान्तर से कवि द्वारा राष्ट्र को दिये गये सदेश ही हैं। उदाहरण के लिए गुप्त जी के सन् 1910 मे प्रकाशित हुए जयद्रथ वध की यह पक्तिया द्रष्टव्य हैं—

"अधिकार खोकर बैठ रहना यह महा दुष्कम है
न्यायाथ अपने बधु को भी दड देना धम है।"

ये पक्तियाँ हम तो पढ़ते ही लोकमान्य तिलक की उस उदघोषणा का स्मरण कराती हैं कि स्वतत्रता मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है और मैं उसको प्राप्त करके रहूँगा। इन पक्तियो म कवि हम देश के नवयुवक वग को अभिप्राय रूप मे यह सदेश देता प्रतीत होता है कि जब अपने उचित अधिकार की प्राप्ति के लिए बधु जनो तक को दडित करना, धम या पावन कत्तव्य है तो फिर विदेशी विधर्मी शासको को उन दिनो क्रान्तिकारियो द्वारा अपनाये जाने वाले आतकवादी माग द्वारा भारत से खदेडने का प्रयास करना भी अपकम न होकर सदधम ही है। इस सदभ म यह तथ्य उल्लेखनीय है कि तिलक ने भी महाराज शिवाजी द्वारा अफ्जल खाँ का धोखे से वध करना इस तर्काधार पर नैतिक सिद्ध किया था कि शिवाजी ने ऐसा आचरण अपनी तथा देश की स्वतत्रता की रक्षा के लिए किया था। पूर्वोक्त सभावना की पुष्टि इस तथ्य स भी होती है कि अर्जुन के कई नाम होते हुए भी कवि ने तदथ भारत' सज्ञा का चयन करते हुए मानो उन दिनो आग्ल सरकार के दमन चक्र से सत्रस्त देशवासियो को यह समाश्वासन देने का प्रयास किया था—

'दुख शोक जब जो आ पडे सो धैयपूवक सब सहो।
होगी सफलता क्यो नही कत्तव्य पथ पर दढ रहो।[2]'

सन् 1907 से 1910 के मध्य की कालावधि आग्ल सरकार के क्रूर दमन चक्र के नगे नाच का समय रही थी। इन वर्षों म नासिक काण्ड के सावरकर बधुओ अलीपुर बम काड के बारीन्द्रकुमार और अरविन्द घोष भ्राताओ तथा ग्वालियर की नवभारत समिति के सदस्यो की गिरफ्तारियाँ करक उन्हे तो फाँसी और देश निष्कासन आदि दड दिये ही गय थे लोकमान्य तिलक लाला लाजपतराय और सरदार किसन सिंह (भगतसिंह के चाचा) को भी देश निष्कासन का दड दिया गया था। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि उस समय लगभग पच्चीस

---

1 2 'जयद्रथ वध' पृ॰ 5

वय के युवक गुप्तजी इन घटनाओ के निरासक्त दर्शक नही रहे होंगे और उन्होने कदाचित् इस देशव्यापी संताप सत्रास को दूर करने के लिए ही—

'हे दीन भारत ! हो न आरत ! शोक को कुछ कम करो ।'[1]

जैसी अभिव्यंग्यात्मक पंक्तियाँ लिखी होगी। इसी प्रकार गुप्तजी की बीसवी शती के चतुर्थ दशक की 'नहुष' शीर्षक काव्य कृति मे शची के मुख से व्यक्त कराये गये यह उद्गार भी अवलोकनीय हैं—

'क्या थी, अब कौन हूं ? कहाँ थी, अब मैं कहाँ ?/क्या न था, परन्तु अब मेरा क्या रहा यहाँ ?/आज मैं विदेशिनी हूँ अपने ही देश मे/बन्दिनी सी आप निज निर्मम निवेश म ।'[2]

—कहना न होगा कि शची के इन उद्गारो मे कवि ने निश्चय ही भारतमाता का ही आर्तनाद भर दिया है। इस धारा के अन्य कवियो ने भी प्राय इसी प्रकार के अप्रत्यक्ष सकेतो द्वारा देश प्रेम, स्वदेश गौरव, प्राचीन कालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति गर्वानुभूति जाग्रत करते हुए देश को स्वाधीन कराने की चेतना उद्बुद्ध की है और उनके इन उद्गारो मे भारतेन्दु के 'रोअहु सब मिलिक आवहु भारत भाई/हा हा ! भारत दुर्दशा न देखी जाई ।'[3] जैसी दीनतामयी चेतना नही मिलती।

बहुत से अंग्रेज लेखको ने भारत का अर्द्ध सभ्य जगली बर्बर लोगो का देश बताते हुए उन्हे सरकारी सेवाओ मे ऊँचा स्थान देने का विरोध किया था। श्वेत जातियाँ, भारत के काले लोगो को असभ्य क्यों समझती थी और किन विचित्र तर्कों के आधार पर उन्होने अपनी इस धारणा की सपुष्टि भी कर ली थी इसका उद्घाटन करते हुए टी० आर० मेटकाफ ने दिखाया है कि इस धारणा के मूल मे गोबिन की सन् 1853 मे प्रकाशित कृति म प्रस्तुत इस सिद्धात का हाथ था कि शेर बाघ और चीते अथवा कुत्ता, लोमडी, भेडिया और गीदड के मध्य भी जातिगत आधार पर उतना अतर नही होता जितना अतर एक श्वेत व्यक्ति, मगोल और नीग्रो के मध्य होता है।[4] भारतीय लोग इन श्रेणियो म से अधिक से अधिक मगोलों के साथ परिगणित किये जा सकते थे। मेटकाफ के अनुसार सन् 1857 म भडके

---

1 'जयद्रथ वध' पृ० 35

2 'नहुष', पृ० 17

3 भारतेन्दु ग्रथावली, भाग 2 पृ० 684

4 "There are no greater differences between the lion tiger and panther or the dog fox, wolf and jackal than between the white man Negro and Mongol"

'The aftermath of Revolte' p 310

विप्लव ने भी अंग्रेजी शासकों को इस निष्कर्ष पर पहुँचा दिया था कि यहाँ के भोजन भट्ट सिपाहियों और सन्तुष्ट किसानों द्वारा अकारण ही आंग्ल शासन के विरुद्ध युद्ध छेड़ने और विभिन्न स्थानों पर यूरोपियन नर-नारियों बच्चों की नृशंसतापूर्वक हत्या करने से स्पष्ट है कि इन असभ्य-बर्बर जंगली लोगों का अभी तक समुचित मानसिक विकास नहीं हो सका है।[1] इस तथ्य से अनुप्रेरित हावर बाँदा के जिला-अफसर ने तो सन् 1857 में भारतीयों के शस्त्रास्त्र जब्त करने के संदर्भ में आंग्ल अफसरों को यह अधिकार दिये जाने की माँग की थी कि वे शस्त्र-कानून का उल्लंघन करने वालों को सात वर्ष की कैद, पाँच हजार रुपया जुर्माना या सौ कोड़ों की सजा दे सकें। उसका तर्क था कि यदि हम भारतीयों पर प्रभावशाली ढंग से शासन करना है तो यह तथ्य नितांत आवश्यक है कि हम उनके साथ व्यवहार करते समय उन्हें सभ्य अथवा बुद्धिमान न समझकर उन्हें वैसे ही समझें जैसे कि वे हैं[2] अर्थात उनके साथ असभ्यों बर्बरों के साथ किया जाने वाला व्यवहार ही किया जाना चाहिए। अधिकांश अंग्रेजों के द्वारा भारतीयों को हीन समझने की इस धारणा में उनके भारत छोड़ने के समय तक कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं हो सका था और लार्ड कर्जन आदि आंग्ल अधिकारियों के उच्छृंखल से उद्‌गारों ने इस जातीय विद्वेष को बार बार हवा दी थी। इस तथ्य की हिन्दी काव्य जगत में ऐसी तीव्र प्रतिक्रिया मिलती है कि बीसवीं शती के चतुर्थ दशक तक प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों ने कुछ ऐसी कविताएं अवश्य लिखी हैं जिनका सम्बन्ध भारत भू की प्रशंसा, मातृ भू वन्दना, महान पूर्वजों का श्रद्धापूर्वक स्मरण करने से होने के साथ साथ उनमें इस चेतना की भी व्यंजना हुई है कि हमारे पूर्वज अत्यधिक सुसंस्कृत और ज्ञानवान थे और उन्होंने ग्रीक आदि पाश्चात्य जगत के निवासियों को परास्त ही नहीं किया था, अपितु उन्हें ज्ञान और संस्कृति की शिक्षा भी प्रदान की थी। विषय वस्तु की दृष्टि से बाल विवाह, बहु विवाह, वृद्ध विवाह, और छुआछात का खंडन तथा स्त्री शिक्षा, विधवा विवाह आदि सामाजिक सुधारों का मंडन इस धारा के कवियों का प्रिय विषय रहा है। इस धारा के कवियों का दृष्टि परम्परागत संस्कृति के उच्चादर्शों, जैसे पातिव्रत्य,

---

1 Indeed the mutiny with its inexplicable uprising of a pampered army and contented peasentry seemingly confirmed the view of these scientific' athropologists xxx Kanpur massacre taught much the same thing"
The Aftermath of Revolt, p 313

2 "if we ever wish to govern the natives of India effectively, we must treat them as they are and not as civilised and intellectual beings Ibid, p 310

भ्रात भाव संयुक्त कौटुम्बिक जीवन आदि की पुनप्रतिष्ठा की ओर भी केंद्रित रही है। इस धारा के कवियो मे से हरिऔध मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, सियाराम शरण गुप्त आदि कवियो ने कृषको खेतिहर मजदूरो की दयनीय दशा के विषय म भी कविताए लिखी हैं और सूदखोरो को भी आडे हाथो लिया है जो मूलत प्रगतिवादी कवियों का विषय क्षेत्र कहा जा सकता है। हरिऔध की निम्नांकित पंक्तियां किसी सौम्य प्रगतिशील कवि द्वारा ही लिखी प्रतीत होती हैं—

"क्या कहें बात अमीरो की, आप होंगे दुखी उस सुनके
बेकसों का गला दबा देना खेल है बायें हाथ का उनके।"

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा के कवियो की कृतियो के हमारे मूल शोध भाग मे प्राय सभी सांस्कृतिक पक्षो के विवेचन म उदाहरण देखकर इस तथ्य का सहज अनुमान किया जा सकता है कि इन कवियो ने मजदूरों की दयनीय दशा पर आंसू बहाने या 'विप्लव और'क्रांति जैसे विषयो पर कविताए लिखने क अतिरिक्त सांस्कृतिक जीवन के सभी पक्षो को खुली आंखो से देखा है।

आंशिक रूप परिवर्तन के साथ यह काव्य धारा स्वातन्त्र्योत्तर काल म भी प्रवहमान रही है और उसमे पाकिस्तान तथा चीन से हुए युद्धो के समय की राष्ट्रीय जागृति का प्रचुर परिमाण मे चित्रण हुआ है। भारत सरकार की अकमण्यता, खोखली एव दूषित राजनीति नेताओ के भ्रष्ट आचरण चोर बाजारी, बेरोजगारी आदि समस्याओ के सम्बन्ध म अभिव्यजित हुए उदगार वस्तुत राष्ट्रीय सांस्कृति काव्यधारा से ही सम्बन्धित माने जाने चाहिए। राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति की दृष्टि स राय देवी प्रसाद पूर्ण, महावीर प्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शर्मा शकर गया प्रसाद शुक्ल सनेही, हरिऔध, मथिली शरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी माखनलाल चतुर्वेदी, सियाराम शरण गुप्त श्याम नारायण पाडेय, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश केदारनाथ अग्रवाल, ताराचन्द्र हारीत हरदयालु सिंह, श्रीकृष्ण सरल रघुवीर शरण मित्र प्रभृति कवि विशेषत उल्लेखनीय हैं।

(2) वयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा—जसा कि हम उल्लेख कर चुके हैं इस काव्यधारा के बीज-वपन का श्रेय निराला-पत प्रसाद को बीसवी शती के द्वितीय शतक मे लिखी वैयक्तिकतापरक रोमानी कविताओ को ही दिया जाना चाहिए यह दूसरी बात है कि आगे चलकर यह कवित्रयी वयक्तिक की अपेक्षा समाजोन्मुखी अधिक हो गयी है। बच्चन अचल नरेन्द्र को हम इस काव्यधारा के पल्लवन पुष्पीकरण के श्रेय दोष का ही अधिकारी समझते हैं। वैस तो दिनकर और नवीन तथा स्वय को दीन दलितो का मसीहा समझने के भ्रम म ग्रस्त अनेकानेक प्रगतिवादी या प्रगतिशील कवियो ने भी अपने काव्य जीवन का श्रीगणेश पत

की 'वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान' में व्यंजित धारणा के अनुरूप ही किया है किन्तु विशेषत बच्चन और कुछ अंशों में अंचल इस वैयक्तिकतापरक रोमानी काव्यधारा के कुछ काल तक दो उत्तुंग शिखर बने रहे हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से हम 'अंचल' को इस तथ्य के लिए विशेष अपराधी नहीं समझते कि वे महादेवी वर्मा की एकान्त साधना के अनुरूप कुछ काल तक प्रेम मदिरा का ही अनुपान क्यों करते रहे थे क्योंकि यह वस्तुत कवि का निजी दृष्टिकोण है कि वह अपने दुःख सुख का रोना उत्तम समझता है अथवा समाज के सुख दुःख की अभिव्यक्ति में भी सम्मिलित होना चाहता है। 'किरण वेला' और 'करील' शीर्षक संकलनों की कविताओं में अंचल की दृष्टि समाजोन्मुखी मिलती भी है। हाँ भारत का सांस्कृतिक इतिहास बच्चन को युग चिन्तन के प्रतिकूल काव्यधारा प्रवाहित करने के लिए क्षमा नहीं कर सकता। अपनी साठोत्तरी काल की कविताओं में बच्चन भी सामाजिक सांस्कृतिक चेतना के मुखरण की दृष्टि से अन्य कवियों से दो कदम आगे ही मिलते हैं किन्तु उनके उस मधुशाला-वाद और हाला वाद के सम्बन्ध में क्या कहा जाये जो उन दिनों राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में मद्य निषेध की नीति को लेकर चलाये जाने वाले आंदोलनों की मूल भावना को छार छार कर रहा था। विडम्बना यह है कि एक ओर तो वे स्वयं भी सन 1930 31 में कांग्रेस के सत्याग्रह आंदोलन में शामिल होकर गाँवों में घूम घूमकर नमक बनाने तथा चरखा कातने के साथ-साथ विदेशी वस्तुओं की विक्रय विरोधी पिकेटिंग में भाग लेते थे।[1] यह पिकेटिंग शराब की दुकानों पर भी की जाती थी और न जाने कितनी स्वयं सेविकाओं का शराब की दुकानों के आगे धरने देते हुए दुकानदारों उनके गुंडों और इन दुकानदारों की सरपरस्त सरकार के पुलिस मैनों के हाथों अपमानित सपीड़ित होना पड़ रहा था और दूसरी ओर कवि सम्मेलनों की दृष्टि से आधुनिक काल का कदाचित सर्वाधिक लोकप्रिय कवि लोगों को यह रागिनी सुना-सुनाकर गुमराह कर रहा था मन्दिर मस्जिद बैर कराते, मेल कराती मधुशाला[2] अथवा यह वसीयत लिख रहा था—

> 'प्राणप्रिय यदि श्राद्ध करो तुम मेरा तो ऐसा करना
> पीने वालों को बुलवाकर खुलवा देना मधुशाला।[4]

स्वयं बच्चन और उनके समर्थक आलोचकों ने इस 'मधु' का सम्बन्ध आध्यात्मिक प्रेम की मदिरा से जोड़ने का प्रयास किया है जो वस्तुत बच्चन की ही इस प्रकार की उक्तियों—

---

1 4 दे० आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि बच्चन, सपा० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, परिचय पृ० 6, 6 26, 27

'वह पुण्य कृत्य, यह पाप कर्म/कह भी दू तो क्या सबूत/
कब कचन मस्जिद पर बरसा/कब मदिरालय पर गिरी गाज ।[1]"

अथवा—

"इस पार प्रिय तुम हो, मधु है/उस पार न जाने क्या होगा । "

—के परिप्रेक्ष्य म उपहासास्पद ही प्रतीत होता है। हाँ दुआ तोष न्याय से यदि यह मान भी लिया जाये कि उन दिनों लगभग तीस बत्तीस वष के तरुण बच्चन की आत्मा असमय ही प्रभु मिलन की आध्यात्मिक अनुभूति मे तडप उठी थी तो भी सामाजिक सास्कृतिक योग क्षेम की दृष्टि स बच्चन से यह प्रश्न तो किया ही जायगा कि उन्होंने अपनी इस अनुभूति की अभिव्यजना क लिए एसा प्रतीक क्या चुना था जो तत्कालीन राष्ट्रीय चेतना या कहिए राष्ट्रीय आदोलन के सवथा प्रतिकूल था ? इस प्रतीकार्थ' का हमारी दृष्टि म जन सामान्य पर वैसा ही विघातक प्रभाव पडा होगा जसा कि पच मकार के गूढार्थों को न समझने वाले मध्ययुगीन साधक—

' मद्य मास च मीन च मुद्रा मथुनमेव च ।
मकार पचक प्राहुर्योगिना मुक्तिदायकम् ।[3]"

इस श्लोक मे उल्लिखित मदिरा, मास मत्स्य भक्षण, मुद्रा सग्रह और मथुन कम मे लिप्त रहने को ही मोक्ष प्रदायक समझकर अतत तदनुकूल आचरण करने लगे थे। मद्य निषध की नीति स्वातत्र्योत्तर काल मे भी क्रियान्वित नही की जा सकी है, जबकि बच्चन की मधुशाला के विषय म कहा गया है कि बिक्री की दृष्टि से उसकी प्रतियाँ मात्र रामचरित मानस स पीछे हैं ।[4] इस तथ्य से स्पष्ट है कि युग की आत्मा गाधी जी क मद्य निषध के साथ न होकर बच्चन के ही साथ थी, तो भी हिन्दी काव्य पर जब कभी सास्कृतिक योग-क्षेम के सदभ मे दृष्टिपात किया जायेगा बच्चन अपराधियों के ही कठघरे मे खडे किय जायेंगे। वयक्तिकतापरक रोमानी कविताएँ भगवती चरण वर्मा रामकुमार वर्मा, आरसी प्रसाद सिंह, शिवमगल सिंह सुमन वीरेन्द्रकुमार जन नीरज, इदीवर, शकर शैलेन्द्र, बाल स्वरूप राही, रामावतार त्यागी, गगाराम पथिक धमवीर भारती प्रभृति कवियो ने भी पर्याप्त मात्रा मे लिखी हैं। किसी भी प्रसिद्ध पुस्तकालय की अलमारियो मे वैयक्तिक प्रेम सम्बन्धी कविताओ के हजारो हजार काव्य सकलन देखे जा सकते

---

1 2 दे० आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि बच्चन', स० चद्रगुप्त विद्यालकार, पृ० 31, 33

3 उद० आय सस्कृति', बलदेव प्रसाद मिश्र, पृ० 314

4 'आज के लोक० हिन्दी कवि बच्चन', परिचय, पृ० 4 5

हैं जो इस तथ्य का ज्वलत प्रमाण है कि आधुनिक काल म कदाचित इसी प्रकार की कविताएँ सर्वाधिक मात्रा मे लिखी गयी हैं। इनकी विषय वस्तु का आगे के सास्कृतिक अध्ययन सम्बन्धी मूल शोध भाग म यत्किंचित् ही उपयोग हुआ है क्योंकि इस सकलनो म सामाजिक सास्कृतिक जीवन के चित्रण के स्थान पर अधिकाशतया वयक्तिक राग द्वेष की ही रागिनी झकृत की गयी है। प्रस्तुत प्रसग म प्रेम-भाव की अभिव्यक्ति के सम्बन्ध म इन कवियों के परिवर्तित दृष्टिकोण का यह निर्देश उपयोगी रहेगा कि पत जसे पुरानी पीढ़ी के कवि तो मात्र यह कहकर ही रह गय हैं—

'धिक रे मानव तुम स्वस्थ मुक्त निश्छल चुबन
अकित कर सकते नही प्रिया के अधरो पर।[1]'

इसके विपरीत नयी पीढ़ी के धमवीर भारती जैसे कतिपय कवियो की दृष्टि उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे की उक्ति को चरितार्थ करती है, जब वे समाज को चुनौती भरे स्वर म ललकारते हुए कहते हैं—

"अगर मैंने किसी के होठ के पाटल कभी चूमे,
अगर मैंने किसी के नन के बादल कभी चूमे,
महज इससे किसी का प्यार मुझ पर पाप कैसे हो
महज इससे किसी का स्वग मुझ पर शाप कसे हो ?[2]'

भारतीजी की चुनौती का सास्कृतिक योग क्षम की दृष्टि से यही उत्तर दिया जा सकता है कि जनाब ! समाज द्वारा स्वीकृता प्रेयसी (पत्नी) के अधर पाटलो को एकान्त स्थल म चूमते हुए आप स्वर्गीय सुख की अनुभूति म निमग्न होते हैं तो कोई बात नहीं, अन्यथा आपको सरे आम चाहे जिस खेत मे मुह मारते देखकर तो समाज डडा उठायगा ही। इसी प्रकार बच्चन की 'मैं छिपाना जानता तो जग मुझे साधू समझता/शत्रु मेरा बन गया है छल रहित व्यवहार मेरा[3]' जसी दलीलो के विषय म यही कहा जायगा कि सामाजिक कल्याण की दृष्टि स हम न जाने कितने आचरण माता पिता और बच्चो की आँखें बचाकर करने पडत हैं। यह सत्य है कि बच्चन की मधुशाला पढ सुनकर ही लोगो न मद्य पान करना आरम नहीं कर दिया होगा और पत या भारती की सलाह मानकर युवक युवतियाँ गली चौराहो पर चुम्बनो का आदान प्रदान नहीं करने लगेंगे, किन्तु

---

1 'ग्राम्या पृ० 86
2 ठडा लोहा पृ० 22
3 आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि बच्चन, पृ० 46 47

परम्परागत सांस्कृतिक मूल्यों को शिथिल विघटित करने की यह शुरूआत ही शनै शनै विघातक रूप धारण कर लेती है। ऐसी उक्तियों का सम्बल पाकर, स्वभावत ही कुप्रवृत्तियों की ओर लालायित रहने वाले मानव मन की इस प्रकार की परम्परा विरोधी क्रियाओं की ओर उच्छृखलता बढ़ती रहती है—उसे एक प्रकार का नैतिक सम्बल सा प्राप्त हो जाता है।

(3) **छायावादी काव्यधारा**—कुछ लोगों की खोटी नियति के अनुरूप ही छायावादी काव्यधारा के भाग्य मे भी अग्रज अनुज या कहिये पूर्वज वंशज सभी के हाथों मार खाना उनके व्यंग्याक्षेप और कुतर्कों को सहना बदा हुआ लगता है। अपनी उपहासाधृत संज्ञा को ही अतल काव्य वस्तु और उसकी प्रस्तुति के स्पृहणीय चारुत्व के अथ का पर्याय सिद्ध कर दिखाने का मूलाधार प्रसाद, पंत और निराला की महान कवि प्रतिभा ही कही जा सकती है अन्यथा उसको शांतिप्रिय द्विवेदी प० नंददुलारे वाजपेयी और डॉ० नगेन्द्र आदि आलोचकों द्वारा प्रदत्त बैसाखियाँ काव्य जगत में स्थिर खड़े रहने की दृष्टि से कहाँ तक सहारा प्रदान कर सकती थी ? किंतु जैसी कि आजकल की सामान्य मनोवृत्ति है यह युग ही महानों के पैर काटकर उनको अपने समान बौना कर लेने का है। छायावाद की कवित्रयी की बात छोड़िये राम कृष्ण, सीता युधिष्ठिर आदि महान् पात्रों को आधुनिक काल में उनके उत्तुंग गौरव शिखर से पर्याप्त मात्रा में नीचे खिसका लिया गया है जबकि रावण, कैकेयी आदि परम्परागत दुष्ट पात्रों का पर्याप्त परिशोधन करने का प्रयास किया गया है। छायावादी काव्य का सम्बन्ध एक प्रकार से प्रथम वर्ग से है, अत छायावाद के परवर्ती दिनकर, अज्ञेय, माचवे, मुक्तिबोध आदि महारथियों के अन्य प्रहारों की तो बात छोड़िये, उन्होंने घर के भेदी पंतजी को भी अपने दल में मिलाकर छायावादी काव्य को जितने भी कल्पित वास्तविक दूषण हो सकते हैं उन समस्त दूषणों की खान सिद्ध किया है। परवर्ती काल में आकर छायावादी कवि होना एक प्रकार से गाली सी बन गया है और जिस किसी भी कवि अथवा काव्य आंदोलन को निकृष्ट निकम्मा सिद्ध करना होता है उसे छायावादी संस्कारों से युक्त अथवा नवछायावादी कह दिया जाता है। उदाहरणार्थ सन् 1975 तक छायावादोत्तर काल में जितने भी काव्यांदोलन चले हैं उनमें से प्राय प्रत्येक एक दूसरे पर नव छायावादी होने का लांछन लगाते हुए स्वयं को उससे भिन्न मार्ग का अन्वेषक घोषित करता रहा है। हाँ हम विषय वस्तु अथवा सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से छायावादी काव्य द्विवेदी युगीन राष्ट्रीय सांस्कृतिक काव्यधारा का ही अपेक्षाकृत सौम्य शांत शालीन स्वरूप प्रतीत होता है और उस पर छायावादोत्तर काल के कवियों द्वारा जन-जीवन से पराङमुखता आत्मरति, मृत्यु प्रेम कुहासाच्छन्नता, संसारातीत या अदृश्य आध्यात्मिक सामरस्यवाद की ओर ले जाने वाला आदिक जिन दोषों

की बौछार की गयी है वे प्राय निर्मूल ही प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए प्रभाकर माचवे ने छायावाद और नयी कविता [redacted] वण्य वस्तु की दृष्टि से कोई अतर न मानते हुए इन कायधाराओ से सम्बद्ध कवियो को बडे भयकर मानसिक रोगो से प्रपीडित दिखाया है 'आधुनिक हिन्दी कविता म आत्म रति, मृत्यु प्रेम और सकेत से स्वप्न पूर्ति करने की आदत के कारण घोर अनिश्चय ये तीन दोष (मनोविज्ञान की शब्दावली मे ऑटोएरोटिज्म नेक्रोफिलिया और एबूलिया) इतने स्पष्ट हैं कि उन्हे प्रमाणित करने की आवश्यकता नही। छायावाद हिस्टीरिया की भाँति हिन्दी कविता का एक मानसिक रोग है। दोनो मे स्मृतियो की प्रच्छन्न और अज्ञात पुनरावत्ति तथा तज्जन्य अहेतुक त्रास (फ्रायड की भाषा म एसाटजबिल्डुग और फ्लाटिएरण्डे ओंगस्ट) दिखायी देते हैं। अत एक तरुण स्वस्थमना कवि के लिए छायावाद का माध्यम स्थविर स्त्रण, और जीण जान पडता है।"[1] उक्त दोषो मे से आत्म रति सम्बन्धी दोष को तो किसी सीमा तक हम भी उचित स्वीकार करते हैं किन्तु उसे हिस्टीरिया जसा मानसिक रोग और मृत्यु की ओर उन्मुख करने वाला काव्य मानने का आधार क्या है इस तथ्य को माचवे जी ही जानते हैं और चूँकि वे उसको प्रमाणित करने की आवश्यकता नही समझते अत हम भी अपनी इस धारणा के परिष्कार का अवसर नहीं मिल पाता कि छायावादी काव्य वस्तुत कमठता पौरुष और जीवनोल्लास के सदेश स गर्भित काव्य है।

हमारी दृष्टि म सर्वाधिक विस्मय तथ्य यह है कि मुक्तिबोध जसा जागरूक विचारक भी किन्ही निहित स्वार्थों वश कामायनी के साथ उचित न्याय नही कर सका है और पतजी को 'विशुद्ध ऐतिहासिक अनुभूति के फलस्वरूप जनता के साथ' मानते हुए भी कामायनीकार को किसी अरूप अज्ञात आध्यात्मिक लोक से सम्बद्ध दिखाता है "ध्यान रखिये कि कवि चतुष्टय मे से प्रसादजी समाज और सभ्यता की व्याख्या करते हुए अरूप आध्यात्मिक सामरस्यवाद की ओर निकल गये ससारातीत रहस्यवाद की आनदमयी भूमि मे विचरण करने लगे।[2] सामान्यत प्रसाद के ले चल मुझे भुलावा देकर शीर्षक गीत की डोर पकडकर छायावादी काव्य को पलायनवादी अथवा जन जीवन से पराड्मुख सिद्ध कर देने की प्रवत्ति रही थी, किन्तु मुक्तिबोध तो उस कामायनी को भी किसी अरूप आध्यात्मिक सामरस्य वादी जगत से जोड देते हैं जिसका तीन चौथाई [redacted] अधिक भाग उनकी इस धारणा को सवथा छिन्न भिन्न करते हुए प्रसादजी के मुखपात्र श्रद्धा द्वारा सांसारिक कर्मों की ओर प्रवृत्ति, तप को जीवन सत्य समझने की भ्रांत धारणा के निरसन,

1 'तारसप्तक, वक्तव्य, पृ० 125

[redacted] नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबध, पृ० 85

प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के उदबोधन, वैयक्तिक स्वार्थों की निन्दा सवजन कल्याण अथवा मानवता को विजयिनी बनाने के शुभ-सकल्प और सदेश स ओतप्रोत है। उदाहरणाथ कामायनीकार की श्रद्धा का मनु को प्रथम सदेश ही यह है कि जीवन सग्राम से विमुख होकर—कुछ आपदाओ स घबडाकर ही—जीवन का दाँव हार बठने के भ्रम म पडकर तपोरत हो जाना सर्वथा अनुचित है तप नही केवल जीवन सत्य/करुण यह क्षणिक दीन अवसाद।[1] उसका दूसरा सदेश या परामश है शक्तिशाली हो, विजयी बनो, विश्व म गूज रहा जयगान।' तदनन्तर वह प्राकृतिक शक्तियों के ही नही अपितु विद्युत्कणो (इलेक्ट्रो स) तक को वशीभूत करके मानवता को विजयिनी बनाने का शुभ सकल्प सुझाती है, ' शक्ति के विद्युतकण जो व्यस्त/विकल बिखरे हैं हो निरुपाय,/समन्वय उनका कर समस्त/विजयिनी मानवता हो जाय।''[3] इसके साथ ही वह यह चेतावनी भी देती है कि व्यक्ति का स्वार्थी होना अपने विनाश का बीज बोना है, ''यह एकान्त स्वाथ भीषण है अपना नाश करेगा।''[4] यही नही जब हम उसको किसी अच्छ स अच्छे जनवादी कवि की तरह यह सदेश देते देखते हैं—''औरो को हँसते देखो मनु/हसो और सुख पाओ/अपने सुख को विस्तत कर लो/सबको सुखी बनाओ''[5] तो समझ म नही आता कि मुक्तिबोध ने कामायनी पढ़ी भी थी अथवा उन्होंने उसकी दाशनिक दृष्टि से ही की गयी आलोचना प्रत्यालोचनाओ को पढकर यह भ्रम पाल लिया था कि 'कामायनी' का इस जीवन जगत् से कोई सम्बन्ध न होकर किसी अरूप-आध्यात्मिक जगत के सामरस्यवाद अथवा ससारातीत रहस्यवाद की आन दमयी भूमि स है। हाँ छायावादी काव्य मे युग धडकन के मुखरण की दृष्टि स यह तथ्य हमे भी अखरता है कि उसमे सन 1927 मे 'सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल म है' के अमर गायक रामप्रसाद बिस्मिल और उनके साथियो तथा सन् 1931 म सरदार भगतसिंह और उनके साथियो की गतिविधियो और फाँसी की झलक तक नही मिल पाती, जबकि भगतसिंह की फाँसी को लेकर तो समस्त उत्तरी भारत आलोडित हो उठा था।

छायावाद की प्रसिद्ध कवित्रयी तथा रहस्यवादी कवयित्री के रूप मे स्वीकृत महादेवी को मिलाकर कवि चतुष्टय द्वारा अपने समकालीन सास्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षो की अभिव्यक्ति किये अथवा न किए जाने के सदभ मे यह तथ्य उल्लखनीय है कि यह मत तो प्राय सवमान्य ही है कि पूरे आधुनिक काव्य म इन चार कवियो से अधिक प्रतिभाशाली कवि नही हुए हैं। हरिऔध, मथिलीशरण गुप्त, दिनकर, अज्ञेय और मुक्तिबोध भी आधुनिक काल के प्रतिभाशाली कवि

---

1 5 'कामायनी क्रम० पृ०, 64 66, 68, 36, 136

अवश्य हैं और काव्यक्षेत्र में उनका योगदान भी महत्वपूर्ण है फिर भी हम नहीं समझते कि काव्योत्कर्ष की दृष्टि से इनमें से किसी भी कवि को छायावाद के कवि चतुष्टय में शामिल कवियों से ऊंचा स्थान दिया जा सकता है। यहाँ हमारा अभिप्रेत किसी कवि को छोटा या बड़ा सिद्ध करना नहीं है अपितु इस मनोवैज्ञानिक तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करना है कि कवि प्रतिभा की दृष्टि से जो कवि जितने ही अधिक महान होते हैं, उसी अनुपात में उनका काव्य अपने समसामयिक जीवन की अभिव्यक्ति के स्थान पर विश्व संस्कृति के सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक तथ्यों की प्रस्तुति की ओर उन्मुख रहता है। हेनरी पियरी ने उचित ही कहा है कि महान् कवियों की सृजनात्मक प्रतिभा सामयिकता का प्रतिरोध करते हुए उन्हें सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक तत्वों की कल्पना करने की अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।[1] अभिप्राय यह है कि वैसे तो छायावादी कवि अपने काल के सांस्कृतिक परिवेश से कटे हुए नहीं हैं तो भी उनकी उक्तियों में राष्ट्रीय जागरण एवं सामाजिक सुधारों के प्रति द्विवेदीयुगीन या प्रगतिवादी कवियों की भाँति जो जोश खरोश नहीं मिलता वह इन धीर गंभीर प्रतिभाशाली कवियों के संदर्भ में स्वाभाविक ही कहा जा सकता है। छायावाद युगीन कवियों में कवि चतुष्टय के अतिरिक्त रामकुमार वर्मा भगवतीचरण वर्मा उदयशंकर भट्ट नरेन्द्र शर्मा रामेश्वर शुक्ल अंचल हरिकृष्ण प्रेमी, मोहनलाल महतो वियोगी जानकी वल्लभ शास्त्री, सुमित्रा कुमारी सिनहा, विद्यावती कोकिल और हंसकुमार तिवारी का परिगणन किया जाता है।[2]

(4) प्रगतिवादी या प्रगतिशील काव्यधारा—प्रगतिवादी काव्यधारा के साथ मार्क्सवादी दर्शन की इतनी अधिक चर्चा की गयी है कि हिन्दी के बहुत कम कवि ही उसकी कसौटी पर खरे उतर सकते हैं[3], अतः डॉ० रणजीत की तरह हम भी इस काव्यधारा को 'प्रगतिशील काव्यधारा' कहा जाना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है, और जैसा कि हम आगे स्पष्ट करेंगे हमारी दृष्टि में इस काव्यधारा का सर्वाधिक सार्थक अभिधान उग्र मानवतावादी अथवा उग्र राष्ट्रीयतावादी

1 "The great artists always transcended their own times their originality clashed with the test of their contemporaries their imagination transfigured the environment in which they lived — The failure of Criticism Henri Peyre p 235

2 हिन्दी साहित्य कोश भाग 1 पृ० 298

3 प्रगतिवादी कविता तो एकांत रूप से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की ही काव्यात्मक अभिव्यक्ति है वह तो एक प्रकार से मार्क्स दर्शन के साथ पूर्णतः आबद्ध है। आधु० हि० कवि० की मु० प्रव०', डॉ० नगेन्द्र पृ० 4

काव्यधारा ही हो सकता है। डा० केसरी नारायण शुक्ल ने इस सदभ म 'सघष शील मानवतावाद' की चर्चा की है[1], कितु प्रगतिशील कवियो की मनोदृष्टि के परिप्रेक्ष्य म हम उन्हें 'उग्र मानवतावादी' कहना ही अधिक युक्तिपूण प्रतीत होता है। सन् 1936 मे प्रगतिशील लेखक सघ की स्थापना तथा पत की 'युगान्त' शीषक कृति के प्रकाशित होने के तथ्यो का आश्रय लेकर सामायत इस काव्य धारा का विकास भी सन् 1936 स ही स्वीकार किया जाता है। डॉ० नगेन्द्र ने प्रगतिवाद के उद्भव का समय तो निर्दिष्ट नही किया है, हां पत के सदभ म लिखा है "यह एक विचित्र सयोग है कि हिदी म प्रगतिवाद का भी सबसे पहला कवि, जिसने उसे गौरव दिया, वही व्यक्ति है जो छायावाद का भी एक प्रमुख प्रवतक था।"[2] डा० रणजीत ने डा० नगेन्द्र के मत स सहमति व्यक्त करते हुए कहा है "पत जी एक एस कवि थे जिन्होंने हिदी म प्रगतिशील काव्य सृजन की वास्तविक परम्परा का प्रवतन किया। फिर वे अपन अन्य समसामयिक प्रगतिशील कवियो (जैस दिनकर और नवीन) की अपेक्षा प्रगतिशील आन्दोलन की मूल सृजनात्मक चेतना स भी अधिक सम्पृक्त थे।"[3] नवीन और दिनकर की अपेक्षा पत को प्रगतिवादी काव्य को मूल सजन चेतना के समीप बताना उचित ही है क्योकि नवीन और दिनकर की प्रगतिवादी कविताएँ माक्सवाद की अपेक्षा तुगनव द्वारा प्रवर्तित नाशवाद के अधिक निकट हैं। डॉ० नामवर सिंह और ललित मोहन अवस्थी न प्रगतिवादी काव्यधारा का आरभ सन 1930 स स्वीकार किया है[4] जो हम भी उचित प्रतीत होता है यद्यपि प्रगतिशील रुझान की कविताओ की परम्परा सन 1918 म गया प्रसाद शुक्ल स्नेही की कविताओ से आरभ हो चुकी थी।[5]

प्रगतिवादी या प्रगतिशील कविताओ म माक्सवादी दशन की नही अपितु उसके दीन दलित कृषक मजदूर वग की विशेषत मजदूर वग की दशा सुधारने का पक्ष ही अधिक ग्रहण किया गया है। इस दशा को सुधारने के सम्बध म चूकि इन कवियो ने मजदूर हडतालो का समथन किया है और क्रान्ति की भी चर्चा की है अत हम इस काव्यधारा को 'उग्र मानवतावादी' या 'उग्र राष्ट्रीयतावादी' काव्यधारा कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। डॉ०नगेन्द्र के इस अभिमत से हमारी पूण सहमति है कि "हिदी मे शुद्ध प्रगतिशील रचनाएँ तो मिल जायेंगी परन्तु

---

1 हिदी साहित्य का वहत इतिहास, भाग 14, पृष्ठ भूमि और परिस्थितियाँ, पृ० 46 47

2 उद० 'हिदी की प्रगतिशील कविता' डा० रणजीत पृ० 148

3 4 हिदी की प्रगतिशील कविता पृ० 148 पृ० 146 की पा० टि०

5 दे० हिदी काव्य म माक्सवादी चेतना' डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० 234

इस वैधानिक दृष्टिकोण को सर्वथा ग्रहण कर लेने वाला पूर्णत प्रगतिशील कवि या लेखक अभी सामने नहीं आया ।"[1] वस्तुस्थिति यह है कि पंत न भी मार्क्सवाद के भारतीयकृत एसे स्वरूप की ही प्रशंसा की है जिसे 'गांधीवादी मार्क्सवाद' अथवा 'उग्र मानवतावाद' कहना ही समीचीन है। उदाहरण क लिए पंत ने मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्राणित काव्य-सृजन करने के प्रयों म ही युगवाणी (सन् 1939) की 'संकीर्ण भौतिकवादियों से' शीर्षक कविता म मार्क्सवादियों स व्यंग्यपूर्वक यह प्रश्न किया था—

' हाड़ मांस का तुम आज बनाओगे मनुज समाज
हाथ पाँव संगठित चलावेंगे जग के काज ? "

पंत आध्यात्मिकता को नहीं छोड़ना चाहते, अत उन्होंने यह भाव व्यक्त करते हुए कि संकीर्ण भौतिकतावादियों द्वारा तन के भूखों को अब 'निरुपाय मनों का दुहरा दारिद्रय' प्रदान करने की चेष्टा की जा रही है, यह व्यंग्य भी किया था—

'आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सवारकर चाम ।[2] '

पंत, मार्क्सवाद के प्रति आस्थावान अवश्य हैं और उन्होंने इसी कृति म बड़े ही उल्लसित स्वरों मे कार्लमार्क्स की प्रशंसा मे, "धन्य मार्क्स ! चिर तमच्छन्न पृथ्वी के उदय शिखर पर/तुम त्रिनेत्र के ज्ञान चक्षु से प्रकट हुए प्रलयंकर"[3] जैसे श्रद्धापरक उदगार व्यक्त करते हुए 'साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण [4] का भाव भी व्यक्त किया है, किन्तु वस्तुत उन्हें लेनिनवादी मार्क्सवाद के स्थान पर 'गांधीवादी मार्क्सवाद'—अर्थात जिसम दीन दलितों की दशा सुधारने की दिशा म गांधीवादी मानवता का परित्याग न किया गया हो—ही स्वीकार्य है और इसीलिए उनके एतद्विषयक मत का सार यह है—

"मनुष्यत्व का तत्व सिखाता निश्चय हमको गांधीवाद
सामूहिक जीवन विकास की साम्य योजना है अविवाद ।[5]"

स्पष्ट है कि पंत साम्यवादी प्रणाली को सामूहिक जीवन के विकास की दृष्टि स निर्विवाद रूप म उत्कृष्ट प्रणाली स्वीकार करते हुए भी मनुष्यत्व के गांधीवादी तत्त्व को नहीं छोड़ना चाहते और विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से ... का कल्याण" के तथ्य म आस्था व्यक्त करते हैं जो निश्चय ही मार्क्सवाद की रक्त क्रांति की सर्वथा विरोधी भावना है। इस प्रकार की धारणा व्यक्त करने की दिशा म पंत अकेले नहीं हैं, अपितु उन अधिकांश कवियों ने जिन्हें हम 'उग्र मानवतावादी' या उग्र राष्ट्रीयतावादी कहना उचित समझते हैं किन्तु जिनका

---

1 आधु० हि० क० की प्र० प्रवृ०', डॉ० नगेन्द्र पृ० 17
2 7 'युगवाणी' पृ० 48, 48, 44, 45, 47, 47

परिगणन प्रगतिवादी या मार्क्सवादी कवियों में किया जाता है इसी प्रकार का दृष्टिकोण व्यक्त किया है। ये कवि दीन दलित कृषक-मजदूर वर्ग की दशा सुधारने के प्रति व्यग्र तो हैं किन्तु तदर्थ रक्त क्रांति के स्थान पर ईश्वरीय अनुकम्पा, अथवा अधिक से अधिक समझौतों में भंग हो जाने वाली हड़तालों का सुझाव देकर ही रह जाते हैं। उदाहरण के रूप में हम सन 1920 से 1936 तक की कालावधि से सम्बन्धित उन कवियों के ऐसे उद्‌गार देख सकते हैं, जिन्हें हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना शीर्षक शोध ग्रंथ में मार्क्सवादी चेतना के उदाहरण रूप उद्धृत किया गया है—

गयाप्रसाद शुक्ल सनेही की सन 1918 में प्रकाशित 'वीर प्रण' शीर्षक कविता में दलित श्रमिक कृषक वर्ग की दयनीय स्थिति के परिप्रेक्ष्य में आक्रोश-पूर्वक कहा गया है, अन्यायी अन्याय करें यो हाय! सरे बाजार/और खड़े चुप देखें हम तो नयनों को धिक्कार/न होने देंगे अत्याचार [1]। कवि ने धनिकों को 'दुनिया' के भार रूप ही पैदा होने वाले बताते हुए, इसी वर्ष की एक अन्य कविता में भाग्य चक्र अब फिरा, तुम्हें यह चूर चूर कर डालेगा' की चेतावनी भी दी थी। इसी वर्ष की एक अन्य कविता में सनेही ने अनाज के काला-बाजारियों को अब पिशाच अनेक अन्न भरकर रखे हैं कहकर आड़े हाथों लिया तो था किन्तु इस समस्या के समाधान हेतु उन्होंने पाप पुण्य बोध के इस निरर्थक-से समाधान का ही आश्रय लिया है, ईश्वर का भी नहीं हृदय में डर रखे हैं/बड़े मुदित हैं पाप भार सिर पर रख हैं। यही नहीं कबीर की तरह सनेहीजी का भी विश्वास रहा था, देंगी उनको मिटा दीन जन की ये आह। [4] सनेहीजी को मजदूरों की हड़ताल का समर्थन करने की दृष्टि से हिन्दी का पहला कवि स्वीकार किया जा सकता है मिल मिल के मेल से हड़तालें बोल दी [5] और साम्यवाद विषय पर भी उनकी इसी शीर्षक से सन् 1920 में एक लम्बी कविता प्रकाशित हुई थी। इस कविता में श्रम किसका है मगर मौज हैं कौन उड़ाते/हैं खान को कौन कौन उपजा कर लाते [6] तथा सांसारिक संपत्ति पर सबका सम अधिकार हो/वह खेती या शिल्प हो, विद्या या व्यापार हो [6] की शुभषणा के रूप में मार्क्स वाद के सैद्धांतिक पक्ष की तो व्यंजना हुई है किन्तु फिर भी कवि की दृष्टि मूलतः दया, धर्म तथा शान्तिपूर्ण समझौतों की ओर केन्द्रित रही है। उदाहरणार्थ उनकी इसी काल की एक कविता में कहा गया है शांति निकेतन रहा सदा ही देश हमारा/ डंका फिर बज जायगा साम्य और सुख शांति का। अंधकार मिट जायगा वैर स्वार्थ की भ्रांति का।[7] इस कालावधि के सनेही मंडल के अन्य कवियों ने भी

1-7 उद्धृत हिन्दी काव्य में मार्क्सवादी चेतना', डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ०, 234, 235, 236, 237, 239, 240, 237

प्राय इसी प्रकार के उद्‌गार व्यक्त किये हैं। देवीदत्त मिश्र की सन् 1921 की 'आह्वान' शीर्षक कविता म 'जगती तल से एक तंत्र शासन का हो अवसान/ साम्य भाव से रहें सभी राजा या रंक किसान' की शुभेच्छा व्यक्त की गयी है। सियाराम गुप्त 'कुसुम' की 'साम्यवाद' शीर्षक कविता का सार है, 'मनुज मात्र उन्नति करे, यह उसका उपदेश है।'[1] हाँ बेचन शर्मा उग्र की सन् 1922 (मर्यादा, फाल्गुन सं० 1979) की 'दशा' ता शीर्षक कविता निश्चय ही कुछ अधिक उग्र है, जिसमे किसी प्रासाद को 'दुर्बल लोगो के रक्त स विनिर्मित' बताते हुए कहा गया है—

"दीन हड्डियों पर इसकी बुनियाद है
निर्माता गण हैं दानवता भक्त से।[2]"

अनुमानत यह पूँजीपतियों के प्रति विद्वेष भाव उभारकर, दुर्बलों दलितो के प्रति संवेदना जाग्रत करने वाली प्रथम क्रांतिकारी सी कविता है। क्रांतिकारी सी इस दृष्टि से है कि इस समस्या के समाधान हेतु 'उग्र' द्वारा सुझाया गया समाधान सर्वथा अनुग्र है—

"देख दृश्य यह रहे लहू हम घूटकर,
किन्तु न तुम करुणा कर करुणा कर रहे।[3]"

कवि का इस अत्याचार को देखकर भी खून का घूट पीकर रह जाना और उसके निराकरण हेतु, मार्क्सवादियों की दृष्टि स धूर्त धर्मों द्वारा आविष्कृत ईश्वर की अनुकम्पा की याचना करना निश्चय ही बेचन शर्मा को मार्क्सवादी चिन्तन सरणि से विच्छिन्न कर देता है। हाँ उन्हें इस तथ्य का श्रेय देना ही पड़गा कि दिनकर आदि कवियों द्वारा इस प्रकार की चतुर्थ दशक म लिखी जाने वाली कविताओं का, उन्होंने तृतीय दशक के आरंभ म ही शुभारंभ कर दिया था। जगदम्बाप्रसाद मिश्र हितैषी की भी सन् 1923 की मजदूर शीर्षक कविता इस दृष्टि से उल्लेखनीय है कि उसमे वर्ग विद्वेष की भावना को 'तू ही सब चीजों का कर्ता तू ही सब चीजो से दूर' के रूप म उभारते हुए मजदूर वर्ग का यह क्रांतिकारी मार्ग भी दिखाया गया है 'तू चाहे तो पल में कर दे इस दुनिया को चकनाचूर।'[4] छैल बिहारी दीक्षित कंटक की सन् 1934 की कविता मे भी इसी प्रकार की उत्तेजक धारणा व्यक्त की गयी है 'मैं मजदूर विश्व का पोषक मैं जग का सिरताज/ दुनिया का धन मालमता सब मेरा सकल साज।'[5] अतत रामेश्वर करुण कृत 'करुण सतसई' उल्लेखनीय है जिसमे साम्यवाद की प्रशंसा 'ह्वै न भयो ह्वै है नहीं साम्य वाद सम आन' के रूप म करते हुए उसको 'जग की व्याधि अगाधि की सांच्यो सही

---

1 6 उद्धृत, 'हिन्दी काव्य मे मार्क्सवादी चेतना' डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० 241, 242, 246, 246, 274, 315

निदान'[1] घोषित किया गया है। करुण ने 'धम निकारयो रूस त फिरि क्यो कहत अजान', 'श्रमकारी भयी भलौ विनु श्रम विप्र अछूत'[3] के साथ ही इस मार्क्सवादी धारणा का भी मुखरण किया है 'इक पूजीपति निदयी, इक श्रमकारी दीन/जाति-पाति कहु विश्व मे इन त भिन्न लखो न।'[4] करुण ने तो आगे चलकर सन 1944 मे प्रकाशित 'तमसा' शीषक कृति मे वेदो को भी दीपशलाका दिखान की वकालत की है हा जैसा कि हमने अछूतोद्धार सम्बधी प्रकरण मे दिखाया है, 'करुण का यह धम शास्त्र विद्रोह उनके सच्चा मार्क्सवादी होने का प्रमाण नही है, अपितु हरिजनो क लिए पृथक निर्वाचन अधिकार को लेकर हुए आदोलन के समय वास्तव म ही धम ग्रथो को जलाये जान के तथ्य की काव्याभिव्यक्ति है। अभिप्राय यह है कि हम पत के साथ ही उपयुक्त अय कवियो को भी प्रगतिवादी के स्थान पर 'उग्र मानवतावादी' या 'उग्र राष्ट्रीयतावादी' कवि स्वीकार करना ही समीचीन प्रतीत होता है।

मजदूर वग की सहानुभूति म लिखी गयी कविताओ के अतिरिक्त प्रगतिशील कवियो म से विशेषत दिनकर और नवीन न क्राति अथवा विप्लव के आह्वान स सम्बधित अनेक कविताए लिखी हैं, जिन पर स्पष्ट ही तुगनेव के सन 1862 म प्रकाशित हुए 'फादर एण्ड सज शीषक उपयास द्वारा प्रवर्तित नाशवादी या शूयवादी दशन का पर्याप्त प्रभाव है। भारत के क्रातिकारी दल की गतिविधियो पर भी इस विचारधारा का पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित होता है। सी० डी० एम० केटलबी के अनुसार इस नाशवादी दशन की विचारधारा के मुख्य तत्त्व इस प्रकार थे कि उससे प्रभावित प्रबुद्ध समाजवादी सुधारक किसी भी सत्ता के सम्मुख झुकना स्वीकार नहीं करत थे। उनकी न तो किसी प्रकार के धार्मिक सिद्धा तो म आस्था थी और न वे अपने काल की राजनीतिक और पारिवारिक सस्थाओ मे ही विश्वास करते थे। वे जार के स्वेच्छाचारी एकतत्र क साथ ही चच की पवित्रता और सत्यता तथा समाज के उपकारो की मायता का समूल नाश कर देना चाहते थे। उनके विचार इस दिशा म स्पष्ट तो नही थे कि भावी नवीन समाज की रूप रेखा क्या होगी, हाँ वे समाज रूपी जमीन को इस सीमा तक साफ कर देने के अभिलाषी थे कि उस पर कुछ भी पुरानी वस्तु शेष न रह जाये, वे उसे नवजात शिशु के कोरी स्लेट के समान मस्तिष्क की भाँति साफ कर लेना चाहते थे। उनकी धारणा थी कि प्राकृतिक विकास के सिद्धात के अनुकूल सृष्टि का पुन स्वत विकास हो जायेगा अथवा नवीनतम जव वज्ञानिक और दाशनिक सिद्धातो क आधार पर उसका पुनर्विकास किया जा सकता है। इस विचारधारा का क्रियावयन आरभ म कुछ जोशीले युवा सुधारको द्वारा शुरू किया गया था किंतु शीघ्र ही

1 4 'करुण सतसई, पृ 90, 92, 12, 14

इसने क्रांतिकारी विप्लववाद का रूप धारण कर लिया था और जार सरकार ने लगभग डेढ लाख शून्यवादियों को गिरफ्तार करके साइबेरिया भेज दिया था। शून्यवादियों द्वारा सरकारी अधिकारियों और भेदियों की हत्या का व्यापक रूप म आश्रय लेते हुए राजकुमार क्रोपाटकिन और रूस की पुलिस के मुख्याधिकारी की गोली मार कर हत्या कर दी गयी थी, जबकि जार की हत्या के भी कई प्रयास किये गये थे।[1] नवीन' की विप्लव गायन शीर्षक कविता मे इस नाशवादी दर्शन के अनेक तथ्यों की स्पष्ट अनुगूज विद्यमान है। उदाहरणार्थ इस कविता मे— 'नाश और सत्यानाशो का धुआँधार जग मे छा जाये', 'अतरिक्ष म एक उसी नाशक तर्जन की ध्वनि मडराये, नाश ! नाश !! हाँ महानाश !!!, की प्रलयकरी आँख खुल जाये', चकनाचूर करो जग को गूजे ब्रह्माण्ड नाश के स्वर स, 'एक एक अगुन परिचालन मे नाशक ताडव को देखें के रूप म छह बार महानाश की कामना तो व्यक्त की ही गयी है इसके साथ ही 'पाप-पुण्य सदसद भावो की धूल उड उठे दायें बायें', 'अधे मूढ विचारो की वह अचल शिला विचलित हो जायें 'नियम और उपनियमो के बधन टूक टूक हो जायें तथा सिर खक्कर खान लग जाये टूटे ब धन शासन गुण का' के रूप म धम, मूढ विश्वास, सभी प्रकार के नियम उप नियम और शासन के पाशो की विच्छिन्नता आदि तथ्यों का ऐसा वणन मिलता है, मानो कवि ने तुर्गनेव के सिद्धातो को सामने रखकर ही यह कविता लिखी हो ! नवीन की अन्य कविताओ म भी इस विप्लव या महानाश की कामना व्यक्त की गयी है और अतत कवि इस भावना स इतना अधिक अभिभूत हो उठा है कि भरव भटनागर शीर्षक कविता मे उसने शांति और अहिंसा के मूर्तिमान स्वरूप महात्मा गाधी को भी प्रलयकर शकर के रूप म वर्णित किया है।[3]

दिनकर की भी अनक कविताओं म नाशवादी दशन क कई पक्ष मुखरित हुए हैं। उनकी सन 1933 की ताडव शीर्षक कविता मे आदि प्रलय ! अवढर ! शकर ! से ताडव नत्य करने की प्रार्थना करते हुए सष्टि को ओर छोर तक भस्म' कर देने का आग्रह किया गया है तथा विधाता स निवेदन किया गया है, रच दो फिर से इसे विधाता तुम शिव सत्य और सुदर।[4] उनको सन 1931 की कस्मै देवाय शीर्षक कविता म नाशवादियो की वह धारणा व्यजित हुई है जिसके अनुसार वे सष्टि का एक बार पूर्ण नाश हो जाने के पश्चात उसका प्राकृतिक विधानानुसार पुन उत्कृष्ट रूप मे विकास होने के प्रति आस्थावान थे। दिनकर ने इस कविता म यह भाव व्यक्त किया है कि जब 'असहायो का शोणित शोषण

---

1 'आधुनिक काल का इतिहास', अनु० विश्वप्रकाश पृ० 375 77

2 3 'हम विषपायी जनम के, पृ० 429 31, 420 21

4 रेणुका', पृ० 1 3

करने वाली सभ्यता के आडम्बर और पाप क्रांति की लपटो मे भस्म हो जायेंगे, तो हम वाष्प-यन्त्रो और विद्युत् के अनुचर न होने का भी तथ्य नही अखरा करेगा।[1] तब मानव समाज कद, मूल और फलो को खाकर तथा इगुदी (हिंगोट) का तेल जलाकर परस्पर प्रेम भाव से निवास किया करेगा।[2] हुकार की सन 1939 की 'दिगम्बरि' शीर्षक कविता म रुद्र और उनकी प्रलयकरी शक्ति 'दिगम्बरि' को सम्बोधित करते हुए उन्हें 'आ गयी वेला प्रलय की' तथ्य का स्मरण कराते हुए 'जरा तू बोल तो, सारी धरा हम फूक देंगे/पड़ा जो पथ मे गिरि, कर उसे दो टूक देंगे'[3] के रूप म महानाश का सकल्प व्यक्त किया गया है। विगत छह वर्षों म कवि विधाता के विधान के उपयुक्त होने मे भी आस्था खो चुका था, अत वह अपनी ताडव' शीर्षक कविता मे व्यक्त भावो की तरह उससे सृष्टि के 'शिव सत्य और सुदर रूप म पुनर्निर्माण की याचना करके ही नही रह गया है, अपितु विधाता को यह चुनौती देते मिलता है—

> "कहो कुछ पूछने बूढ़ा विधाता आज आया
> कहेंगे, हाँ, तुम्हारी सृष्टि का हमने मिटाया।
> जिला फिर पाप को, टूटी धरा को जोड देंगे
> बनेगा जिस तरह, उस सृष्टि को हम फोड देंगे।[4]"

दिनकर और नवीन की नाशवादी या शून्यवादी दर्शन से प्रभावित इन कविताओ के परिप्रेक्ष्य म हमारा विश्वास है कि दिनकर की सन् 1933 मे लिखी 'हिमालय' शीर्षक कविता की इन पक्तियो मे कि—

> "रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उसको स्वर्ग धीर।
> पर फिरा हमे गाडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।[5]"

उल्लिखित अर्जुन और भीम निश्चय ही शहीद भगतसिंह और चन्द्रशेखर के प्रतीक

---

1 "आह सभ्यता आज कर रही/असहायो का शोणित शोषण।
क्रांति धात्रि कविते! जागे उठ/आडम्बर मे आग लगा दे,
पतन, पाप, पाखड जलें/जग म ऐसी ज्वाला सुलगा दे।
क्या होगा, अनुचर न वाष्प हो/पडे न विद्युत-दीप जलाना,
मैं न अहित मानूगा चाहे/मुझे न नभ के पथ चलाना।"
— रेणुका', पृ० 32 34

2 "कद, मूल नीवार भोग कर, सुलभ इगुदी-तेल जलाकर
जन समाज सतुष्ट हो रहे/हिल मिल आपस म प्रेम बढ़ाकर।"
—वही, पृ० 35

3 5 'हुकार', पृ० 26, 26, 56

हैं। इसी प्रकार नवीन की 'पराजय गीत' शीर्षक कविता की—

> 'आज खड्ग की धार कुंठित, है खाली तूणीर हुआ
> विजय पताका झुकी हुई है लक्ष्य भ्रष्ट यह तीर हुआ।'[1]

पंक्तियों का सम्बन्ध गांधीजी के असहयोग आंदोलन की अचानक समाप्ति से मानने[2] के स्थान पर, उनको क्रांतिकारी दल पर सन् 1931 में अचानक वज्रपात होने से उत्पन्न हुई स्थिति का व्यंजक समझना चाहिए। इस वर्ष क्रांतिकारी दल के दोनों ही प्रमुख सेनानी चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह क्रमशः पुलिस समर में और फांसी पाकर इस दुनिया से चल बसे थे, जिससे क्रांतिकारियों की गतिविधियां मृतप्राय हो गयी थीं। हमारे विचार से इस राष्ट्रीय औदास्य को ही 'नवीन' ने उपर्युक्त पंक्तियों में उभारा है और 'जहां विजय के दिपासात हो गये, आँख की ओट कई/जहां जूझकर मरे अनेकों, जहां खा गये चोट कई', पंक्तियां भी इसी ओर संकेत करती हैं। इस कविता की दो अन्य पंक्तियां भी अर्धनग्न, तृष्णा, कपूत की माँ का लज्जा-वसन कहां ??[3] तथा कायरता के पंकिल से देश सना भी विशेषतः भगतसिंह की ओर ही संकेत करती हैं, क्योंकि पंडित नेहरू ने भी अपनी आत्म-कथा में इस तथ्य को स्वीकार किया है कि भगतसिंह उत्तरी भारत के घर घर में राष्ट्रीय सम्मान के रक्षक के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके थे।[4]

चूंकि नवीन और दिनकर की इन कविताओं में उनकी दृष्टि वर्ग शत्रुओं पर केंद्रित नहीं रही है और वे अपने पराये सभी के विनाश की कामना व्यक्त करते हैं अतः उनका यह सिद्धान्त मार्क्सवादियों को स्वीकार्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इन कवियों की अपेक्षा निराला की दृष्टि वर्ग शत्रुओं पर केन्द्रित रही है। उन्होंने भी विनाश की देवी से एक बार बस और नाच तू श्यामा के रूप में विनाश नृत्य करने का आह्वान किया तो है किंतु वे कितने ही हैं असुर के रूप में उससे मात्र पूंजीपतियों के ही मुंडों की माला धारण करने का आग्रह करते हैं 'कर मेखला मुण्डमालाओं से मन बन अभिरामा।' कवि की अभिलाषा यह भी रही है कि इस अवसर पर वह काली के खप्पर में शोषकों के रक्त की अंजुलियाँ स्वयं भी भरेगा।[5]

पंत के गा कोकिल बरसा पावक कण/नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन/पावक

---

1 'हम विषपायी जनम के' पृ० 423
2 दे० वही समर्पण, लक्ष्मीचंद्र जैन पृ० 4
3 हम विषपायी जनम के पृ० 424 25
4 दे० मेरी कहानी, पृ० 281
5 'परिमल' पृ० 115

पग धर आवे नूतन/हो पल्लवित नवल मानवपन[1] म व्यक्त हुए विचार भी सतुलित हैं क्योकि वे मात्र जीर्ण शीर्ण और जड बन्धनों के विनाश की ही कामना व्यक्त करते हैं। इस सदभ मे अतत छलबिहारी दीक्षित कटक की 'क्रान्ति' शीर्षक कविता की भी कुछ पक्तियाँ अवलोकनीय हैं जिसका नवीन की 'विप्लव गायन' शीर्षक कविता से पर्याप्त साम्य होने पर भी, कवि की दृष्टि सवनाश पर नहीं, अपितु मात्र पूजीपतियों शासको के ही विनाश पर केन्द्रित रही है। इस कविता का आरम्भ तो 'सवनाश की रौरव रचना रच जाय, अखिल विश्व म मुण्डोद्धार फिर मच जाय' की कामना से ही हुआ है हाँ इस सवनाश के रौरव नरक म भी कवि कुछ ऐसी व्यवस्था कर लेना चाहता है कि मात्र नाशक शासक सहम सम्राटों के सिहासन डोले/हटें गद्दियाँ लुटें खजाने फिर बन्दी बन्धन खोलें।' इसी क्रम म उसने पश्ची स अत्याचार तथा धन सत्ता की मान महत्ता' के मिटने 'गुडडम और पाखडों के नष्ट भ्रष्ट होने तथा उडे पताका साम्यवाद की अवनति का पथ खाली हो' की अभिलाषा भी व्यक्त की है। हाँ जसा कि पीछे कहा जा चुका है मार्क्सवादी चेतना स ओत प्रोत बताये जाने वाले कवियो का दुर्भाग्य यह है कि व भारत के धम प्राण और अहिसावादी वातावरण के सस्कारो स मुक्ति प्राप्त नही कर पात अत कटकजी भी अतत यह शुभचणा व्यक्त करना नही भूलत—

मिटे अनीति नीति की जय हो दया धम का हो अवतार।
परदा फटे खुल पडे सहसा बन्द स्वग का सुदर द्वार।[2]'

दया धम और नतिक मान्य मूल्यो द्वारा भारत म साम्यवादी स्वग क अवतरण की अभिलाषा करन वाल इन कवियो का हम सौ दो सौ वर्षों तक और प्रतीक्षा करते रहने का सत्परामश देन क अतिरिक्त और कर ही क्या सकते हैं ! हाँ सातवें-आठवें दशक के जनवादी या प्रतिबद्ध कवि इस दिशा म अवश्य सजग रहे हैं कि उनकी कविताओं म कही इस प्रकार की दया धम और नतिकता सम्बन्धी बातें समाविष्ट न हो जायें जो उनके उत्तम आत्म-सयम का प्रमाण कहा जा सकता है। प्रगतिशील या उग्र मानवतावादी विचारधारा की अभिव्यक्ति की दृष्टि स गयाप्रसाद शुक्ल सनेही निराला पत, दिनकर, बालकृष्ण शर्मा नवीन, रामेश्वर करुण, नरेन्द्र शर्मा रामेश्वर शुक्ल अचल जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द शिवमगल सिंह सुमन रामविलास शर्मा, नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन शास्त्री, रागेय राघव शील महेन्द्र भटनागर और सुदशन चक्र की काव्य कृतियाँ विशेषत उल्लेखनीय हैं।

(5) प्रयोगवाद और नयी कविता—प्रयोगवाद और उसके परवर्ती रूप नयी

---

1 युगपथ पृ० 10

2 उद्धृत हिन्दी का० म मा० चेतना पृ० 278 79

कविता में अधिकांश कवियों का सम्बन्ध वयक्तिकता प्रधान रोमानी काव्यधारा से जोड़ा जा सकता है, जबकि इसके कतिपय कवियो जस भारत भूषण अग्रवाल, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, आदि का सम्बन्ध प्रगतिशील काव्यधारा स। डॉ० रणजीत की तो मान्यता है कि 'वास्तव म तार सप्तक और दूसरा सप्तक मोटे तौर पर नयी प्रगतिशील कविता के ही प्रारंभिक सकलन थे—दो तिहाई कवियों ने स्वय को मार्क्सवादी घोषित किया है।[1] प्रयोगवाद म वैयक्तिकता पर विशेष बल दिये जान की परिचायक इस धारा के पुरस्कर्ता अज्ञय की यह पक्ति ली जा सकती है 'अच्छी कुठा रहित इकाई साँचे म ढले समाज से।[2] छायावादी काव्य की अमासल शृगार चेतना के सवथा विपरीत अज्ञेय गिरिजाकुमार माथुर और धमवीर भारती प्रभृति कवियो ने मासल शृगार भावना पर विशष बल दिया है। अज्ञय की पुकार है 'आह मरा श्वास है उत्तप्त/धमनियो म उमड आयी है लहू की धार—/प्यार है अभिशप्त—/तुम कहाँ हो नारि!' माथुर ने कसे हुए बन्धन म झरे चूडी के टुकड म परदेशिन प्रियतमा की लज्जित तस्वीरें देखने म रस लिया है तो भारती किसी के फीरोजी होठो पर अपनी जिन्दगी बरबाद कर देने की तमन्ना लिए दीखत हैं। विषय वस्तु की दृष्टि से इस काव्यधारा म कुठा हताशा निराशा सत्रास अकेलेपन, अजनबीपन भोगवाद लघुमानव की गरिमा आदि तथ्यो की अभिव्यक्ति पर विशष बल मिलता है। नागरिक जीवन की विडम्बनामयी दशा से सम्बन्धित चेतना की अभिव्यक्ति के सदभ मे दिये गये उद्धरण मुख्यत इसी काव्यधारा से सम्बद्ध कवियो क हैं जिन पर सरसरी दृष्टि डालने स ही इस तथ्य का स्पष्टीकरण हो जाता है कि इन कवियो पर अस्तित्व वादी विचारधारा का भी गहन प्रभाव रहा है। प्रयोगवाद और नयी कविता से सम्बन्धित कवियो द्वारा इस प्रकार की अनास्था कुठा और सत्रासपरक भावनाएँ व्यक्त करन के सदभ म आक्षेप किया जाता है कि इनमे आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति की अपेक्षा उन पाश्चात्य कवियो का अधानुकरण अधिक किया गया है जो द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका के भुक्तभोगी रहे हैं। लघु मानव की गरिमा व्यक्ति की कुठा रहित इकाई की महिमा आदि स सम्बन्धित भावनाओ के सदभ मे समाजवादी आलोचको का मुख्य आक्षप यह है कि इस प्रकार की भावनाएँ उस पूजीवादी षडयत्र का सुनियोजित अग हैं जो लोगों का ध्यान समाज की महत्तर समस्याओ से हटाकर व्यक्तिगत हितो की ओर केन्द्रित करना चाहता है। हम इन धारणाओ मे आशिक सत्य ही प्रतीत होता है क्योंकि स्वतन्त्रता की प्राप्ति क अवसर पर हुई भयकर साम्प्रदायिक मारकाट और किन्ही अशो म खोखली

1 'प्रतिश्रुत पीढी' स० डा० रणजीत भूमिका, पृ० 13
2 अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ० 16

सिद्ध हुई स्वतंत्रता की प्राप्ति ने—जिसके सम्बन्ध मे पराधीनताकालीन भारतीयो ने न जाने क्या क्या स्वर्णिम स्वप्न सँजो रखे थे—एक विचित्र प्रकार के सांस्कृतिक विघटन को उत्पन्न किया है। ऐसी दशा मे स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारत की विघटित सांस्कृतिक स्थिति से सम्बन्धित बेचैनी और हताशा हमको किन्ही अंशों म उचित ही प्रतीत होती है। सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से कहा जा सकता है कि इस काव्यधारा की कविताओं म समग्र समाज के सुख दुःख और समस्याओ की अभिव्यंजना तो नही हुई है तो भी कम से कम वे समाज के एक ऐसे वर्ग की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करती ही हैं, जिनकी दृष्टि म जीवन की स्थूल आवश्यकताओं के स्थान पर व्यक्ति के आत्मिक स्वातन्त्र्य तथा आंतरिक मूल्यो का अधिक महत्व रहता है, जो कतिपय सामाजिक रूढ़ियो को इस कारण भंग करना चाहते हैं कि व्यक्ति का जीवन कुछ अधिक मुक्त स्वच्छंद हो सके।

प्रयोगवाद और नयी कविता से सम्बन्धित कवियो मे एक ओर तो तीनो सप्तको म छपे कवि प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल गजानन माधव मुक्ति बोध रामविलास शर्मा, गिरिजा कुमार माथुर नेमिचन्द्र जैन अज्ञेय भवानी प्रसाद मिश्र शकुन्त माथुर हरिनारायण व्यास शमशेर बहादुर सिंह नरेश मेहता रघुवीर सहाय धर्मवीर भारती प्रयाग नारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन केदारनाथ सिंह कुंवर नारायण विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना उल्लेखनीय हैं। इनके साथ ही बालकृष्ण राव, शरद देवड़ा, देवराज राजेन्द्र किशोर जगदीश गुप्त इंदुजन कलाश वाजपेयी, अशोक वाजपेयी लक्ष्मीकान्त वर्मा, श्रीकांत वर्मा, अजित कुमार आदि कवि भी विशेषत नयी कविता से ही सम्बन्धित रहे हैं।

(6) *अधुनातन या पसठोत्तरी कविता*—अधुनातन या पैंसठोत्तरी कविता स सम्बन्धित कवियो को विषय वस्तु की दृष्टि से स्थूलत दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम वर्ग के अंतर्गत उन काव्यांदोलनो को परिगणित किया जा सकता है जो अपनी पृथक पहचान के लिए पृथक पृथक नाम धारण करते हुए भी मूलत सामाजिक सांस्कृतिक जीवन स राष्ट्रीय सांस्कृतिक तथा प्रगतिशील या उग्र मानवतावादी परम्परा के कवियों की तरह जुड़े हुए हैं जसे प्रतिश्रुत कविता प्रतिबद्ध कविता, युयुत्सावादी कविता समकालीन कविता साम्प्रतिक कविता साठोत्तरी कविता प्रगतिशील कविता मेहनतकश जनता की कविता आदि। दूसरा वर्ग अति व्यक्तिवादी कुंठापरक काव्यांदोलनों का है जो यद्यपि परम्परा की अस्वीकृति का दावा करता है किन्तु तो भी उस विषय-वस्तु की दृष्टि स रोमानी काव्य-परम्परा और नयी कविता का किंचित् परिवर्तित और विकृत रूप कहा जा सकता है। इस वर्ग म अकविता, ताजी कविता भूखी पीढ़ी की या बीट कविता, एब्सर्ड कविता, अस्वीकृत कविता, ठप्प कविता, श्मशानी पीढ़ी की

कविता आदि काव्यांदोलनों को रखा जा सकता है। इस द्वितीय वर्ग के कवि सामाजिक रूढ़ि रीति और मर्यादाओं को मिटाकर सामान्यत आदिम युगीन स्थिति की ओर लौटने के अभिलाषी हैं और इस वर्ग की कवि टोलियों के नामकरण से ही आभासित होने लगता है कि वे बुभुक्षित, क्रुद्ध एब्सडता प्रिय श्मशान साधकों के दल होने चाहिए। इन कवियों का क्रोध सामाजिक परम्पराओं की ओर उन्मुख है जबकि भूख अबाधित कामतुष्टि की ओर। सचमुच ही कतिपय कवियों ने ऐसे उद्गार व्यक्त किये हैं जो जीवन जगत से विच्छिन्न श्मशान साधक अघोरियों की उक्तियाँ प्रतीत होती हैं। *सामाजिक सम्बन्धों से मुक्ति की यह दशा है कि जगदीश चतुर्वेदी को उनके अपने ही शब्दों में,* 'माँ बहिन और पत्नी प्रिया में अब कोई अन्तर नहीं दिखता है मुझे/कुलटाएँ देवियाँ नजर आती हैं।'"[1] कवि को पर-पुरुष से सभोग को नकारने वाली भारतीय सतवतियों के प्रति भी तीव्र घृणा और आक्रोश रहा है 'तुमने इसे/शील भग के आसपास का अतिक्रमण समझा है/पर धर्म/मेरे लिए कोई समस्या नहीं और/शील सयम मूखता का पर्याय है।' पातिव्रत्य का आदर्श निभाने वाली स्त्रियाँ कवि की दृष्टि में मिमियाती बकरियाँ' हैं और कवि के ही शब्दों में मुझे पातिव्रत्य धर्म में रुचि लेने वाली बकरियों का साथ पसंद नहीं है।[3] पति पत्नी ही नहीं माता पिता के सम्बन्धों के विषय में भी इन कवियों ने पर्याप्त बिखराव प्रस्तुत किया है जिसको 'पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित चेतना' शीर्षक अध्याय में देखा जा सकता है। बानगी के तौर पर एक उदाहरण अवलोकनीय है जिसमें कवि के माता पिता ईश्वर से उसकी मृत्यु होने की दुआ माँगते रहते हैं और पुत्र के भी कारनामे यह हैं कि उसी के शब्दों में "मैं हर रोज चुल्लू भर शराब का तर्पण कर/पिंडदान करता हूँ उबले हुए अंडों का। [4] *इस द्वितीय वर्ग के कवियों के दीक्षा गुरु* एलेन गिंसबर्ग स्वीकार किये जाते हैं और इन कवियों का यह परम सौभाग्य ही था कि गिंसबर्ग कुछ दिन भारत में भी निवास करके शिष्यों को अपनी औघड़ जीवन पद्धति की प्रत्यक्ष दीक्षा भी प्रदान कर गये हैं। प्रश्न है कि सभी प्रकार की पारिवारिक सामाजिक मर्यादाओं के विद्रोही इन कवियों की सांस्कृतिक चेतना, भारतीय समाज के किस वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करती है? इस दिशा में, यही कहा जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा व्यक्ति वैचित्र्यवाद के सदर्भ में जिन नकली हृदयों के कारखानों के खुलने की बात कही गई थी उन कारखानों का इस वर्ग के कवियों ने पुनरुद्धार कर लिया है। अभिप्राय यह है कि हमारी दृष्टि में अभी ऐसे लोग उँगलियों पर ही गिने जा सकते हैं जो इन

---

1 3 इतिहास हन्ता जगदीश चतुर्वेदी पृ० 51, 58 58

1 बन्द कमरों की संस्कृति, केवल गोस्वामी, पृ० 37

कवियो के रग-ढगो मे आस्था रखते हो, तो भी उनकी धारणाएँ पारिवारिक जीवन म घुन लगने की ओर ही सकेत करती ही हैं।

वैसठोत्तरी या अधुनातन कविता के दस-बारह वर्षों की अल्पावधि मे ही अनेक काव्यगुट खडे होने का मूलाधार दो तथ्य रहे हैं। पहला कारण तो पत्रिका और पुस्तक प्रकाशन की सहज सुविधाओ की उपलब्धि है, जिसस यदा-कदा तो मात्र अकेले कवि सपादक ने ही किसी नये नाम की पत्रिका का दो एक अक अथवा अपने साथियो की कविताओ के सकलन को प्रकाशित करते हुए नय काव्यादोलन का मसीहा बनने की चेष्टा की है। ओमानद सारस्वत द्वारा सचालित 'अगली कविता' धीरेन्द्र कुमार जैन के 'सनातन सूर्योदयी कविता' और डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के 'सहज कविता' नामक काव्यादोलन एसे ही एक व्यक्तीय प्रयास रहे हैं जो हिन्दी जगत म उल्का की तरह झलक दिखाकर लुप्त हो चुके हैं। दूसरा तथा प्रमुख कारण नयी कविता के गढ को तोडकर उसक खडहरो पर अपना झडा फहरा देने की प्रवत्ति रही है और स्वय को नयी कविता से सम्बन्धित कवियो स भिन्न प्रदर्शित करने के मोह ने सन साठ बासठ के पश्चात् से ही कवियो को कथ्य वस्तु के क्षेत्र म ऐसी ऊल जलूल हरकतें दिखाने को प्रेरित किया है जिसका सम्ब ध बदनाम होंगे तो क्या नाम न होगा' की मनोवत्ति से माना जा सकता है। परम्परा भजन की अगुआई अकविता नामक काव्यादोलन चलाकर की गयी जो उसी जसी विचारधारा वाले भूखी पीढी या बीटनिक कविता, एब्सड कविता, श्मशानी कविता अस्वीकृत कविता, दृष्ट कविता आदि काव्यादोलनो की अपेक्षा इस दष्टि से अधिक सगठित और सक्रिय कहा जा सकता है कि उसके विघटन, शरीर (पैशन) मत्यु नगर और व्यक्ति शीर्षकों से पाच अक या सकलन प्रकाशित किय जाने के साथ साथ उसके समथन म आलोचनात्मक लेख और कृतियाँ भी अधिक मात्रा मे प्रकाशित की गयी हैं। अकविता के समथक एव उससे सम्बद्ध कवि यद्यपि इस तथ्य स इनकार करते हैं कि अकविता नयी कविता के विरोध या प्रतिक्रिया म पनपी है या नयी कविता की उपलब्धियो को नकारती है, क्योंकि उनका तक है कि नयी कविता और कुछ न होकर मात्र नव छायावाद है' और

1 दे० नया काव्य नये मूल्य डा० ललित शुक्ल पृ० 286 87

2 (क) इन सबके साथ सूक्ष्म रागात्मिकाएँ थीं जिसके सूत्र छायावाद स टूटे नही थ बल्कि वे नयी कविता की सीधी-सादी भाषा म ज्यादा स्पष्ट होकर सामने आय थे। '— अकविता और कला सदभ ,डा० श्याम परमार पृ० 13

(ख) लगता यो है कि नयी कविता एक ऐसी औरत है जिसे छायावादी अग्रजो से छीनकर सप्तको के अधिकतर अनुजो ने भोगा पर जब उसके अग शिथिल होने लगे तो वह एसे भतीजो के हाथो म फँस गयी कि उसकी दुगति पर स्वय अज्ञेय को वह दद के साथ नये कवि स शिकायत करनी पडी। वही, पृ० 19

जब उसकी कोई उपलब्धि है ही नहीं तो फिर उसके विरोध का प्रश्न ही नहीं उठता "अतएव अकविता विद्रोह नहीं बल्कि सही कविता की दिशा है। दिशाओं म और दिशाएँ तलाश करने की कोशिश है। विद्रोह तो उससे किया जा सकता है जिसकी कुछ उपलब्धि हो। नयी कविता दुर्भाग्य से 'सवेदनात्मक ज्ञान और 'ज्ञानात्मक सवेदना' के बीच झूलती रही और यह फसला नहीं कर पायी कि उसकी सही दिशा क्या है।"[1] अकविता वस्तुत क्या है?—यह तथ्य तो लम्बे विवेचन की अपेक्षा रखता है, हाँ उसके प्रबल पक्षधर डॉ० श्याम परमार के अनुसार उससे सम्बधित कुछ सकेत सूत्र इस प्रकार हैं—"अकविता अतर्विरोधो की अन्वेषक कविता है"[2] "अकविता की नियति अकेलेपन की नियति नहीं बल्कि विकृत सम्बधो की नियति है"[3], 'अकविता वस्तुत कविता के ऊँबे हुए लोगो की अभिवद्धि है'[4], "इसका आशय न अच्छी कविता होने क बोध से है न बुरी कविता के प्रवतन स'[5], 'अकविता केवल पिछली कविता की सौंदयपरक औपचारिक अभिव्यजना और शब्दो की रूढ मर्यादाओ के प्रति नकारात्मक अहसास है[6] ध्यातव्य है कि अकवितावादियो की यह भी इच्छा नहीं है कि उनकी कविताओं को समझा ही जाय' क्योंकि अथवत्ता का सवाल ही नहीं उठता[7] या अभिव्यक्ति के लिए जो सुखद हो—अथवत्ता और अर्थेतर कसी भी स्थिति म वही अकविता के क्षत्र की वस्तु है।'[8] इन सकेत सूत्रो से स्पष्ट हो जाता है कि अकविता और उसके हमसफर काव्य दलो की वण्य-वस्तु का सम्बध मूलत अतर्विरोधो विकृत सम्बधो नकारात्मकता और निरथकता की अभिव्यक्ति से है। इन कवियो की वण्य वस्तु का कुछ कुछ आभास डॉ० श्याम परमार द्वारा बीटनिक और भूखी पीढ़ी की कविता को अकविता से अलगाने के सदभ म व्यक्त किये इन शब्दो से हो जाता है बीटनिको के औघड धध और क्षुधित पीढ़ी की गलीज क्षुधा आत्म हत्या की जीवित चेष्टा है—सभोग वीयपात पसीना और पेशाब के भीतर खुलती प्रयत्नज कविता बेहूदगियो की रोमाटन अदा से अधिक कुछ नहीं।'[9] जहाँ तक अकविता के निजी वण्य विषय का सम्बध है वह विचार कविता नामक एक नय काव्यादोलनकारियो के प्रवक्ता बलदेव वशी के अनुसार रुग्णता की दृष्टि से बीटनिक और भूखी पीढ़ी के कवियो से भी बाजी मार ले जाता है 'हिन्दी के पाठक जानते हैं कि अकविता भी योनि मासिक धम के चीथडे दर्शित झाडियो अप्रकृत भोंडी यौन आकाक्षाओ अतक्य सयोजनो और प्रयत्न चेष्टाओ की बेहूदगियो से आगे नहीं बढ पायी बल्कि उसके पास आत्महत्या के लिए भूखी पीढ़ी की गलीज क्षुधा (दूसरो की दी हुई) की बजाय अपने मस्तिष्क म एकत्र यौन रोगों

---

1 9 दे० अकविता और कला सदभ पृ० क्रमश 25 1 24 29 25 21, 10, 6, 6

के कीटाणु थे जिनके कारण वह शीघ्र ही छलनी हो गयी।[1]

वर्ण्य-वस्तु और उसकी प्रस्तुति की दृष्टि से जनवादी रुझान के काव्य दल मे प्रतिबद्ध प्रगतिशील युयुत्सावादी और प्रतिश्रुत आदि अभिधानो म बँटकर कविता लिखने वाले कवि शामिल हैं। साठोत्तरी कविता, साम्प्रतिक कविता, समकालीन कविता जसे नामो से जुझारूपन या जनवादी प्रतिबद्धता की गध तो नहीं निकलती हाँ ये गुट भी मूलत इसी प्रकार की विचारधारा के समर्थक हैं। इन काव्यादोलनो का भी मुख्य मुद्दा तो अकविता की भांति ही नयी कविता के वचस्व को तोडना रहा है "नयी कविता के प्रति बगावत इस व्यापक परिवतन का साहित्यिक सस्करण था। विद्रोह की अनेक धाराएँ थी लेकिन अनेक होने के बावजूद बदलाव के प्रश्न पर ये सब एक थी। इस एकता का उदाहरण अकविता आदोलन के सदभ म देखा जा सकता है जिसका प्रारभिक मुद्दा 'नयी कविता (प्रमित)' आभिजात्य-वादी ढाँचो को तोडना था। इस बात पर व्यक्तिवादी एव प्रगतिवादी कवियो मे मौन मुखर सहमति थी। नयी कविता के विरोध मे वे एक थे लेकिन एकता के सवाल पर अनक थे।[2] जहाँ तक नवीन सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यजना का प्रश्न है प्रतिबद्ध तथा प्रतिश्रुत नामकरणो से ही स्पष्ट है कि इन कवियों की कविताओ म कविता कम तथा दल विशेष की विचारधारा पर अधिक बल होना चाहिए। स्थिति भी कुछ ऐसी ही प्रतीत होती है जिससे इन कविताओ के लिए विचार कविता' नामक एक नय काव्यादोलन के खमे से 'दलवादी मतवादी कविता की उपहासात्मक सज्ञा प्रयोग की गयी है।

नित नये काव्यादोलनों की आधी सम्प्रति उतार पर है और यदा-कदा ही किसी नय काव्यादोलन का नाम सुनाई देता है। 'विचार कविता' नामक काव्यादोलन का आरभ भी सन् 1973 म विचार कविता' की भूमिका का प्रकाशन करके किया गया था। सन 1978 म विचार कविता के समर्थकों द्वारा समकालीन कविता विचार कविता' शीषक द्वितीय सकलन प्रकाशित करते हुए, अन्य काव्यादोलनो के सन्दभ म कहा गया है कि समकालीन हिन्दी कविता के परिदृश्य म कुछ समय पहले और यदा कदा अब भी कई छुटपुट प्रयासो म दलवादी मतवादी प्रतिबद्ध कविता एव कभी ऊलजलूल जहनियत की कविता (अकविता) तथा रोमानी भावना विह्वल नयी कविता सामन आती रहती है, ता भी एक प्रमुख वहत्तर काव्यधारा पूरी काव्य भूमि पर छा चुकी है।' इस वहत्तर काव्यधारा का सम्बध विचार कविता स बताते हुए उसको इन शब्दो म परि भाषित किया गया है इस काव्यधारा की कविताओ का सकेन्द्रक विचार है।

---

1 समकालीन कविता विचार कविता' स० बलदेव वशी, पृ० 9
2 साम्प्रतिक कविता', सपा० श्यामनारायण, भूमिका

यही विचार बिंदु इसे अन्य प्रकार की कविताओं से पृथक करता है।"[1] वास्तव में यह कोई नया काव्य गुट नहीं है अपितु मुक्तिबोध धूमिल राजीव सक्सेना आदि प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित ऐसे कवियों को विचारवादी कहा गया है जिनकी कतिपय कविताओं में विचारातिशयता है। वस तो यह नामकरण ही कुछ अटपटा सा है, हाँ वस्तुस्थिति ऐसी ही है कि पसठोत्तरी काल की अधिकांश कविताओं को रसवादी काव्य मानदण्डों की दृष्टि से लघु विचार खड' कहना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। पसठोत्तरी काव्य में रसात्मकता का स्थान विचारात्मकता और वचित्र्य ग्रहण करते गये हैं। कहा जा सकता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भारतेन्दु काल में पद्यात्मक निबंध लिखने की जिस परम्परा का प्रचलन प्रदर्शित किया है[2] छायावादोत्तर काव्य में सामान्यत और पसठोत्तरी काव्य में विशेषत उसी परम्परा की लघु वक्तव्यपरक कविताओं के रूप में पुनप्रतिष्ठा हुई है। निबन्ध लिखने की जहमत कौन उठाये जबकि छोटी बड़ी गद्य नुमा पंक्तियों में अपने मन मस्तिष्क के भाव विचारों को अधुनातन कविता के नाम पर खपाया जा सकता है। विचार कविता के स्वरूप के सम्बन्ध में डॉ० रमेश कुतल मेघ ने लिखा है कि उसमें प्रतीक और विचारों को औजार और हथियारों दोनों ही रूपों में प्रयुक्त किया जाता है।[3] विचारों को हथियारों के रूप में प्रयुक्त करने पर तो किसे आपत्ति हो सकती है हाँ उन्हें औजारों के भी रूप में प्रयुक्त किये जाने का सीधा सा अभिप्राय यह है कि विचार कवितावादी पाठक को विचारों का ही ओढ़ना बिछौना देकर उसे सारी रात उधड़ बुन में निमग्न रखने के पक्षधर हैं, उन्हें उसके मानसिक परितोष के प्रति रत्तीमात्र भी लगाव या हमदर्दी नहीं है। यह तथ्य मरुस्थल में नखलिस्तान ही कहा जायेगा कि विचार कविता के समर्थकों में से डा० रामदरश मिश्र जैसे कतिपय कवि विचारकों की यह धारणा भी है कि मात्र अनुभव से बुनी हुई कविता ही कविता है किन्तु अनुभव से कटे हुए बड़े से बड़े विचार से बनी हुई कविता कविता कही ही नहीं जा सकती।"[4] किन्तु जहाँ तक पैसठोत्तरी या अधुनातन कविताओं का सम्बन्ध है, उनमें से अधिकांश ऐसी ही हैं, जो अनुभव के स्थान पर विचारों की बान से ही बुनी गयी हैं।

---

1 समकालीन कविता विचार कविता स० बलदेव वंशी पृ० 90

2 आचार्य शुक्ल ने सं० 1925 से 1950 के मध्य की नवीन काव्यधारा के सम्बन्ध में लिखा है 'पर नवीन धारा के आरम्भ में छोटे छोटे पद्यात्मक निबन्धों की परम्परा भी चली जो प्रथम उत्थान काल के भीतर तो बहुत कुछ भाव प्रधान रही पर आगे चलकर शुष्क और इतिवृत्तात्मक (मटर आव फक्ट) होने लगी। हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 589

3 4 समकालीन कविता विचार कविता स० बलदेव वंशी पृ० 25, 43

अधुनातन अथवा पैंसठोत्तरी कविता के चर्चित कवियों में से अकविता और उससे सम्बद्ध कवि गुटों के कवियों में राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी, श्याम परमार गंगाप्रसाद विमल मुद्राराक्षस, सोमित्र मोहन, शांता सिनहा बजरंग विश्नोई मोना गुलाटी मणिका मोहिनी सतीश जमाली और श्रीराम शुक्ल के के नाम उल्लेखनीय हैं जबकि प्रगतिशील प्रतिबद्ध वर्ग के कवियों में राजीव सक्सेना मृत्युंजय उपाध्याय, डॉ० रणजीत धूमिल जुगमिंदर तायल, लीलाधर जगूड़ी शलभ श्री रामसिंह हरीश भदानी, अजित पुष्कल, सव्यसाची डॉ० माहेश्वर रमेश गोड वेणुगोपाल डॉ० रामदरश मिश्र, रामदेव आचार्य, श्यामसुंदर हरि ठाकुर कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह आदि कवि परिगणित किये जा सकते हैं। इन कवियों के अतिरिक्त सैंकड़ों ऐसे कवि भी हैं जो इन कवि गुटों से सम्बद्ध होते हुए भी अभी तक अप्रसिद्ध ही हैं। बहुत से ऐसे कवि भी काव्य क्षितिज पर उभरने आ रहे हैं जिन्होंने या तो किसी काव्य खमे के बैनर के नीचे काव्य प्रणयन उपयुक्त ही नहीं समझा है अथवा जिनको खमबाजों ने अपने दल में स्वीकार ही नहीं किया है। स्थिति जो कुछ रही हो, इस प्रकार के वाद अथवा गुट मुक्त कवियों की रचनाओं में हमें सांस्कृतिक चेतना की दृष्टि से अधिक उपयोगी एवं अनाविल झाँकी प्रस्तुत करने वाले तथ्य उपलब्ध हुए हैं, क्योंकि उनके उद्‌गार किसी दल या वाद विशेष के रंगीन चश्मे द्वारा समाज को देखने के दोष से मुक्त रहे हैं।

नवगीत नामक काव्यान्दोलन भी बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, नीरज आदि गीतकारों की बीच में शिथिल पड़ी परम्परा का पुनरुत्थान कहा जा सकता है। इन गीत और नवगीतकारों में श्री शम्भुनाथ सिंह रवीन्द्र भ्रमर शेरजंग गर्ग, दिनकर सोनवलकर, ओम प्रभाकर माहेश्वर तिवारी, नरेश सक्सेना नईम, रमेश रंजक, विनोद तरुण महेन्द्र शंकर प्रसाद निष्काम आदि अनेक गीतकार काव्य रचना कर रहे हैं और उनके एकाधिक काव्य संकलन भी प्रकाशित हो चुके हैं। निष्कपत कहा जा सकता है कि हमने सन 1900 से लेकर सन 1975 तक की कालावधि में रचित *प्रबन्धात्मक, मुक्तक सामासिक (मिश्रकीय)* और गीतपरक सभी प्रकार की उपलब्ध हुई काव्य कृतियों से ऐसी आधार सामग्री का सचयन किया है, जो संस्कृति के परम्परागत आदर्शों तथा मानमूल्यों के परिप्रेक्ष्य में नवीन चेतना का संवहन करती है।

(ख) नवीन सांस्कृतिक चेतना अभिप्राय और स्वरूप

– नवीन सांस्कृतिक चेतना का अभिप्राय 'नवीन संस्कृति सम्बन्धी चेतना' के स्थान पर 'संस्कृति सम्बन्धी नवीन चेतना' ही ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति पर उसकी परम्परागत सांस्कृतिक मान्यताओं या आदर्शों

की इतनी गहरी छाप रहती है कि किसी काल खड की सस्कृति के सदभ मे 'जो कभी पहले देखा, सुना या किया न गया हो, नया, अपूव, मौलिक'[1] जस अर्थों के बोधक 'नवीन' विशेषण का साथक प्रयोग किया ही नही जा सकता। ऐसी स्थिति तो नही है कि परम्परागत सास्कृतिक आदर्शों या मानमूल्यो म परिवतन होते ही नही हैं, किन्तु उसके सदभ म यह उक्ति ही चरिताथ होती है घीमी गति है, विकास कितना अन्श्य हो चलता है/इस महावक्ष मे एक पत्र सदिया के बाद निकलता है।"[2] अर्थात सस्कृति रूपी वक्ष मे कही शताब्दियो के पश्चात भी नगण्य परिवतन हो पाते हैं। इसके विपरीत सस्कृति के विभिन्न तत्त्वो या पक्षा के सम्ब ध मे उनसे सम्बधित समाज के कतिपय सदस्यों की चेतना अर्थात उ हें उचित अनुचित समझने की विवेक बुद्धि या दष्टिकोण मे शीघ्र ही परिवतन दष्टिगोचर होने लगता है। चेतना शब्द का आरम्भ म प्राय बुद्धयथक प्रयोग हुआ करता था और अमरकोष म उसके चित, मनीषा धी प्रज्ञा, मति आदि जो पर्याय दिये गये हैं[3] उनम यद्यपि सदसद् विवेक का भाव अतभुक्त है तथापि ये शब्द चेतना के उस विकसित अथ का प्रतिनिधित्व नही कर पाते जिसके अनुसार उसे उचित अनुचित क निणय की विवेक बुद्धि[4] तथा ऐसी शक्ति स्वीकार किया जाता है जो "व्यक्ति को स्वय को और अपने आस पास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातो का मूल्याकन करने की क्षमता प्रदान करती है।[5] चेतना को दाशनिक क्षत्र म शकराचाय द्वारा आत्म चैतन्य का पर्याय घोषित किया गया था,[6] जो साधारणत तो इस शब्द के अथ का सम्बध जीवात्मा क इस बोध से जोडता है कि वह स्वय ही ईश्वर है और ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्याजीवोब्रह्मैवनापर' की उदघोषणा

---

1 'बहत हिन्दी कोश' पृ० 693

2 चक्रवाल दिनकर', प० 299

3 'बुद्धिमनीषा धिषणा धी प्रज्ञा शेमुषी मति । प्रेक्षोपलब्धिश्चितसवित्प्रतिपज्ज्ञप्ति चतना।"—अमरकोष 1/5/1

4 'It was in the beginning of modern period that conscience in contrast to consciousness came to stand for a specilization of mental formation distinguishing between right and wrong' — An Ency of Religion p 197

5 'चेतना स्वय को और अपने आसपास के वातावरण को समझने तथा उसकी बातों का मूल्याकन करने की शक्ति का नाम है।'

— हिन्दी विश्व कोश' खड 4 प० 282

6 "तस्यामभिव्यक्तेन्द्रियवत्ति तप्त इव लोहपिण्डऽग्निरात्मचतन्यभास रसविद्धा चेतना। —उद्०, 'शब्दाथकल्पद्रुम 2/459

के अनुकूल यह दृश्य जगत् मिथ्या है, किन्तु हम तो इस आत्म-बोध के मूल मे भी उचित-अनुचित का विवेक क्रियाशील प्रतीत होता है। कारण यह है कि जब तक जीव को इस उचित तथ्य के बोध के साथ कि अहं ब्रह्मास्मि' इस असत्य या अनुचित तथ्य का भी बोध नहीं होता कि यह जगत मिथ्या है, तब तक वह आत्म-चैतन्य की दशा को प्राप्त कर ही नहीं सकता। भागवत पुराण की टीका म श्रीधर', विषय विकार विषयक बुद्धि को चेतना' बताकर' चेतना के इस उचित अनुचित निर्णय सम्बन्धी अर्थ की दिशा म एक कदम और आगे बढ गये हैं।

लॉक की चेतना सम्बन्धी बहुस्वीकृत यह धारणा कि यह मनुष्य द्वारा अपने क्रियाशील अन्त करण की समझ या सबोध है,[2] तथा थॉमस रीड द्वारा भी उसे आत्म निरीक्षण (इट्रॉस्पेक्शन) या विचारमग्नता (कटेंपलेशन) बताना[3], चेतना के उचित अनुचित के निर्णय या मूल्याकन की क्षमता स बहुत भिन्न अर्थ नही हैं क्योंकि मनुष्य का चिन्तनशील अत करण चाहे व्यक्ति के निजी आचरण के सम्बन्ध म विचार मग्न हो अथवा अपने बाह्य-परिवेश के मूल्याकन म, उसके विचारो या चेतना प्रवाह का मूल-केन्द्र यह तथ्य ही रहता है कि क्या करता या होना उचित था, है, अथवा रहेगा। इस विवेचन विश्लेषण के फलस्वरूप ही व्यक्ति किन्ही निष्कर्षों तक पहुचकर, विचारित तथ्य के प्रति अपनी दृष्टि या दृष्टिकोण निश्चित करता है, जो चेतना की ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक प्रक्रिया की सहिति होती है अर्थात मनोविज्ञान की दृष्टि से पहले हम किसी वस्तु को जानते या उसके स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करते हैं। इस ज्ञान या बोध के फलस्वरूप हमारे हृदय म उसके प्रति प्रिय या अप्रिय का भाव उत्पन्न होता है और तदनुरूप ही हम स्वय को उस वस्तु के निकट ले जाना अथवा उससे दूर हटना चाहते हैं[4] —उसके प्रति आसक्त या विरक्त होते हैं उसके प्रति प्रशसा या घृणा व्यक्त करते हैं। यह आसक्ति या विरक्ति, घृणा या प्रेम, आक्रोश या मोह ही काव्य-जगत् के सदर्भ मे, कवियो के वर्णित वस्तु के प्रति दृष्टिकोण का परिचायक होता है। अत अपने शोध विषय के सदर्भ म चेतना शब्द का हमारी दृष्टि म यह अभिप्राय रहा है कि कोई कवि विशेष जिस किसी परिगत सास्कृतिक तत्त्व का वर्णन कर रहा है उसके सम्बन्ध म उसकी मूल्याकनपरक दृष्टि कैसी रही है, अर्थात् वह उसका प्रशसक है या निंदक वह उसमे सुधार परिष्कार का समर्थक है अथवा विरोधी।

---

1 "एष विभु परमानदोऽपि शरीरे चेतना विषयविकारां बुद्धि प्रतिपद्य तद भिव्यज्यमानदरूप सत्क्रिया फलत्वेन प्रतीयते।
—'भागवत पुराण' श्रीधरीय टीकायुते, चतुर्थ स्कध पृ० 50

2 3 दे० 'द एनसाइक्लोपीडिया आफ फिलॉसफी, भाग 2 पृ० 191

4 दे० हिंदी विश्व कोश' खड 4 पृ० 282 83

सांस्कृतिक परिवर्तनों को सामाजिक स्वीकृति शीघ्र ही नहीं मिल पाती और आरम्भ में समाज का एक बहद् वर्ग परंपरागत आस्था विश्वासों, आचार विचारों, रूढ़ि रीतियों में परिवर्तन का विरोध करता है जिसके विचारों की अभिव्यंजना परम्परावादी कवियों के काव्य में हुआ करती है। सामाजिक सांस्कृतिक सुधार परिष्कारों के क्रांतिकारी समर्थकों या सुधारकों की भाँति काव्य जगत में भी इनके समानधर्मा होते हैं, जिनकी काव्य कृतियों द्वारा सुधार-परिष्कार की तीव्र चेतना उद्‍बुद्ध हुआ करती है। एक ही तथ्य का विभिन्न कवियों द्वारा समर्थन और विरोध मिलने की दशा में कहा जा सकता है कि वह तथ्य विशेष संक्रांतिकालीन स्थिति से गुजर रहा है। अपने अध्ययन क्रम में हमने परिणत सांस्कृतिक मनोदृष्टि के व्यंजक काव्योद्‌गारों को ही वरीयता प्रदान की है, जबकि विविध सांस्कृतिक तथ्यों विषयक संक्रांतिमयी चेतना का भी आवश्यकतानुसार निर्देश किया है।

किसी राष्ट्र की समग्र संस्कृति में तो पचास सौ वर्षों के अंतर्गत अपूर्व या मौलिक परिवर्तन नहीं हो पाते, हाँ उसके कतिपय तथ्यों के प्रति समाज के न्यूनाधिक सदस्यों की धारणाओं या दृष्टिकोण में नवीन शब्द के अर्थबोधक अपूर्व अथवा मौलिक जैसे परिवर्तन अवश्य दृष्टिगत होने लगते हैं। मौलिक जैसे, का अभिप्राय यह है कि ये परिवर्तन निकट अतीत के परिप्रेक्ष्य में नूतन प्रतीत होने पर भी सर्वथा नवीन न होकर किसी अतीत या पूर्वकालीन परम्परा का पुनरावर्तन भी हो सकते हैं। जैसाकि 'संस्कृति' के स्वरूप का विवेचन करते हुए आगे स्पष्ट किया गया है सांस्कृतिक विकास की प्रक्रिया अत्यधिक जटिल होती है। उसके विकास क्रम में परीक्षण निरीक्षण और 'त्रुटि मार्जन' के सिद्धान्त का आश्रय लेते हुए अनेक ऐसे तथ्यों को पुन: सामाजिक स्वीकृति मिल जाती है जिन्हें विगत काल में अनुपयोगी समझकर सांस्कृतिक क्षेत्र से तिरस्कृत कर दिया गया था। उदाहरणार्थ कन्याओं की वैवाहिक आयु के सम्बन्ध में मध्य युगीन अष्टवर्षाभवेद् गौरी के दृष्टिकोण को त्यागकर सम्प्रति अठारह वर्ष से कम आयु की किशोरियों के विवाह को वैधानिक स्वीकृति न प्रदान करने का दृष्टिकोण, मध्यकाल के परिपार्श्व में तो अवश्य नया है किन्तु उसको प्राचीनयुगीन ब्रह्मचर्याश्रम के परिप्रेक्ष्य में सर्वथा नवीन, अपूर्व या मौलिक नहीं कहा जा सकता। निष्कर्ष यह है कि किसी भी राष्ट्र की समग्र संस्कृति में तो ज्वलंत परिवर्तन शताब्दियों में भी नहीं अपितु सहस्राब्दियों के पश्चात होते हैं जबकि उसके कतिपय तत्त्वों के सम्बन्ध में उस संस्कृति विशेष से सम्बन्धित समाज के सदस्यों की चेतना अर्थात दृष्टिकोण या धारणाएं विविध कारणों के फलस्वरूप यदा कदा तीव्र गति से बदलने लगती हैं। इस चेतना में परिवर्तन अर्थात कतिपय सांस्कृतिक तत्त्वों के प्रति नूतन दृष्टिकोण का सूत्रपात ही शनैः शनैः उस संस्कृति के मान मूल्यों या आदर्शों में भी ज्वलंत परिवर्तनों का मूलाधार बन जाता है।

संस्कृति—विभिन्न काल खंडों में विविध सांस्कृतिक तथ्यों का विलुप्तीकरण और पुनरावर्तन होते रहने के अनुरूप, स्वयं 'संस्कृति' शब्द की प्रयोग-परम्परा का निजी इतिहास भी, इसी प्रक्रिया का एक मनोरंजक उदाहरण है। प्रयोग की दृष्टि से 'संस्कृति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग यजुर्वेद में हुआ है[1] और वह ऐतरेय आरण्यक[2], शतपथ ब्राह्मण[3], ऐतरेय ब्राह्मण[4] महाभारत और भागवत पुराण[5] आदि प्राचीनकालीन कृतियों में भी प्रयुक्त हुआ है, तथापि न जाने किन अज्ञात कारणों से परवर्ती काल में यह एक ऐसा अप्रयुक्त विलुप्त सा शब्द हो गया कि आधुनिक काल के कुछ विद्वानों को तो यह भ्रांति हो गयी थी कि यह 'अंग्रेजी' के 'कल्चर' शब्द के पर्याय रूप में गढ़ा गया नवीन शब्द है।[6] इस भ्रांति को बढ़ाने में इस आश्चर्यजनक तथ्य का भी कम हाथ नहीं रहा है कि संस्कृत भाषा के किसी भी प्रसिद्ध शब्द-कोष में 'संस्कृति' शब्द उपलब्ध नहीं होता, जबकि उनमें उसके सगोत्री, संस्कृत, संस्क्रिया, संस्कार और संस्कृत शब्द उपलब्ध हैं।[7] कहना न होगा कि इस विलुप्तीकरण या अप्रयोग की स्थिति से उबरकर सम्प्रति 'संस्कृति' शब्द हिंदी साहित्य ही नहीं अपितु समग्र हिंदी वाङ्मय का एक बहु प्रचलित शब्द बन गया है और स्वभावतया ही उसकी अर्थच्छवियों में ऐसे नूतन आयाम जुड़ गये और जुड़ते चले जा रहे हैं, कि 'संस्कृति' और उसके अँग्रेजी पर्याय 'कल्चर' शब्दों को उनके अभिप्राय और स्वरूप सम्बन्धी अवधारणाओं की दृष्टि से विश्व की कदाचित् सर्वाधिक विवादास्पद भाववाचक संज्ञाएँ या स्थितियाँ कहना, अनुपयुक्त न होगा। इस संदर्भ में इस तथ्य का निर्देश भी अप्रासंगिक न रहेगा कि प्रचलन की दृष्टि से तो 'कल्चर' शब्द का प्रयोग संस्कृति शब्द के प्रयोग की अपेक्षा अत्यधिक परवर्तीकाल (पन्द्रहवीं शताब्दी) में आरम्भ हुआ है, किन्तु

---

1 'यजुर्वेद', 7/14

2 'ऐतरेय आरण्यक', 1/3/7

3 'शतपथ ब्राह्मण', 4/2/1/37, 7/4/1/45, 8/3/4/11

4 'ऐतरेय ब्राह्मण', 6/5/1

5 दे० 'ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी', सर मोनियर विलियम्स पृ० 1121

6 'आप्टे के कोश में संस्कृति शब्द न मिलने के कारण सम्भवतः आचार्य बलदेव प्रसाद मिश्र की धारणा है कि 'संस्कृति' 'कल्चर' का अर्थ द्योतन करने के लिए आधुनिक काल में गढ़ लिया गया शब्द है।' 'मध्ययुगीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति', डॉ० मदनगोपाल गुप्त, पृ० 5

7 दे० 'अमरकोष' (3/1/110), 'शब्दकल्पद्रुम' (पृ० 451), 'वाचस्पत्यम्' (6/5188), 'संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ' (पृ० 1148), 'हलायुधकोश' (पृ० 680)

आधुनिक काल म उसका सम्ब ध समाज शास्त्र के विविध विषयो से जोडते हुए कल्चर या सस्कृति सम्ब धी कृतियो का लेखन प्रकाशन भारत की अपेक्षा पाश्चात्य देशो म ही पहले आरभ हुआ है। बेकन की सन् 1605 म प्रकाशित एडवासमट आव लर्निंग शीर्षक कृति म कल्चर का तात्त्विक विवेचन करने का प्रयास किया गया था,[1] जबकि दो ढाई सौ वर्षो के अतराल मे पाश्चात्य जगत् म कल्चर स सम्बधित चितन मनन इतना विकसित और प्रौढ हो चुका था कि उसके परिपाश्व मे मथ्यू आनल्ड की सन् 1869 मे प्रकाशित कल्चर एण्ड एनार्की शीर्षक कृति म कल्चर की आदशतम परिभाषा उपलब्ध है जबकि ई० बी० टायलर की सन 1871 म प्रकाशित प्रिमिटिव कल्चर शीर्षक कृति म कल्चर' शब्द को जिस 'यथासाध्य निश्चित वनानिक शब्दावली म परिभाषित किया गया था [2] टायलर की वह परिभाषा ही आशिक हेर फर के साथ परवर्ती विद्वानो की परिभाषाओ की रीढ की हड्डी रही है। अभिप्राय यह है कि सस्कृति शब्द 'कल्चर के पर्याय रूप म गढा गया नवीन शब्द ता नही है हा उसके पुन प्रचलन की दिशा म निश्चय ही पाश्चात्य लेखको की कल्चर सम्ब धी कृतियो का पर्याप्त हाथ रहा है। हिन्दी और बगला भाषी लेखको ने इन कृतियो स प्ररित होकर जब स्वभाषाओ म 'कल्चर से सम्बधित विषयो पर लिखना आरभ किया तो उसके उपयुक्त पर्याय की खोज म कुछ मतवभि य भी रहने के निर्देश मिलते हैं। हिरे द्रनाथ दत्त ने बगला लेखको को यह परामर्श दिया था कि उन्हे हिन्दी लखको की उस प्रवत्ति का अनुकरण नही करना चाहिए जिसके अतगत वे 'कल्चर' के पर्याय रूप म 'सस्कृति शब्द के प्रचलन को रूढ करने का प्रयास कर रहे हैं। उनका विचार था कि सस्कृति और सस्कार शब्दो का प्रयोग सुधार या परिष्कार के अभिप्राय म करना चहिए, जबकि कल्चर का उपयुक्त पर्याय वदिक सस्कृति का कृष्टि शब्द है।[3] डा० मुशीराम शर्मा ने भी इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हुए लिखा था आजकल हि दी म सस्कृति शब्द अगरेजी के कल्चर शब्द का पर्यायवाची बन गया है। कल्चर का विशुद्ध पर्यायवाची वदिक शब्द कृष्टि है।" श्री दत्त और डा० शर्मा की तदभगत धारणा के मूल म कदाचित यह

1 To Bacon the world is indebted for the term as well as for the philosophy of culture Ency of Religion & Ethics, Vol iv p 358

2 The first use of culture in English as precise scientific term is generally credited to E B Tylor in his Primitive culture (London 1871)

— Ency of philosophy Vol II p 274

3 Now as you may be aware our Hindiphil friends are bringing into vogue the word Sanskriti as a substitute to

तथ्य क्रियाशील रहा था कि 'कल्चर' मूलतः कृषि अथक शब्द था, अतः उसका विशुद्ध पर्यायवाची शब्द भी वदिक सस्कृति का कृष्यथक कृष्टि श द होना चाहिए। हाँ जैसा कि आगे के विवेचन स स्पष्ट होगा, सस्कृति और कल्चर शब्द ही परस्पर उपयुक्त पर्याय हैं। इन दोनो ही शब्दो के आरभिक प्रयोगो मे उनका 'धार्मिक कमकाण्ड' के एक जस या समान अथ म प्रयोग किय जाने का तथ्य भी उनके पर्यायत्व का सम्पोषक है।

सस्कृति व्युत्पत्यथ एव भि नाथक प्रयोग-परम्परा

व्युत्पत्ति की दृष्टि से सस्कृति शब्द सस्कृत भाषा की करणाथक 'कृ धातु से 'सम्' उपसग और 'क्तिन् प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। पाणिनि के 'सम्परिभ्या करोतौ भूषणे—समवाये च'[1] सूत्र के अनुसार 'कृ धातु के पूव 'सम्' अथवा परि' उपसग होने की दशा म उनके मध्य भूषण अथवा समवाय-अथक 'सुट का आगम हो जाता है, अतः सस्कृति शब्द की निष्पत्ति सम (स) + सुट (स) + कृ + क्तिन् (ति)' के योग स हुई है। 'सम्' उपसगपूवक कृ' धातु से ही क्त प्रत्यय के योग से सस्कृत तथा घञ्' प्रत्यय के योग स सस्कार शब्द व्युत्पन्न होते हैं।[2] अपनी प्राय समान व्युत्पत्ति के अनुरूप ही सस्कृति और सस्कार शब्दो की अथच्छाया मे भी पर्याप्त साम्य है। ये तीनो शब्द इस रूप म भी परस्पर घनिष्ठ सम्ब घ रखते हैं कि सस्कारवान प्राणी ही सुसस्कृत कहलाते हैं जबकि सुसस्कृत प्राणियो की आचरणसहिता का ही सास्कृतिक मूल्यो के निर्माण और उनस सम्ब धित अवधारणाओ के निर्धारण म प्रमुख हाथ रहता है। सस्कृति' शब्द की निष्पत्ति म सहायक सुट के आगम विधान के सम्ब घ मे यह तथ्य उल्लेख नीय है कि यह विधान अपेक्षाकृत परवर्ती काल की देन है क्योंकि वदिक सहिताओं म सस्कृति' शब्द के स्थान पर प्राय सकृति तथा सङ्कृति शब्द रूपो का प्रयोग किए जाने का निर्देश मिलता है।[3] सस्कृति' शब्द के व्युत्पत्ति लभ्य

'culture' and some of us immitating that in Bengal I venture to think that that expression is not a happy one and it and its cognate Sanskara' had better be reserved to connote what is called reformation'—the old word Krishti being used as the appropriate synonym for culture '
— Indian culture p 3

1 'अष्टाध्यायी' 6/1/37 38

2 'सस्कृत शब्दाथ कौस्तुभ , पृ० 1148

3 वदिक पदानुक्रम कोष', सहिता भाग, 1/1/5, पृ० 3209 पर सहिताओं म सङ्गणोतु समकृण्वन्, समस्करिष्यति, समकारी, सकृति, सङ्कृति और

अर्थ की दृष्टि से भी हम सुट' के आगम का विधान पर्याप्त महत्त्वपूर्ण प्रतीत होता है। पाणिनि के इस सूत्र का स्पष्टीकरण करते हुए भट्टोजी दीक्षित ने लिखा है, "सम्परिपूर्वस्य करोतेः स्युट्स्याद् भूषणे सघाते चार्थे। सस्करोति। अलक रोतीत्यथ । सस्कुर्व ति सघीभवतीत्यथ' जिसका अभिप्राय यह है कि 'सुट' के आगम के फलस्वरूप संस्कृति श द के अथ म संस्कार या अलकार तथा सघीभाव या सामुदायिकता के अर्थों का अभिनिवश हो जाता है। कहना न होगा कि यह 'सघीभाव' संस्कृति की अवधारणा या अभिप्राय की दृष्टि मे अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि संस्कृति का सम्ब ध किसी व्यक्ति विशेष के आचरण स न होकर मूलत किसी समुदाय या सघ विशेष की आचरण सहिता स ही होता है। जैसा कि आगे दिखाया गया है 'कल्चर' शब्द के व्युत्पत्ति लभ्य अथ म इस प्रकार की अथच्छाया का अभाव है। अत कहा जा सकता है कि जहाँ संस्कृति शब्द अपनी प्रयोग परम्परा की दृष्टि से कल्चर शब्द की अपेक्षा बहुत अधिक प्राचीन काल स प्रयुक्त होता रहा है वहाँ उसका व्युत्पत्ति लभ्य अथ भी कल्चर शब्द के व्युत्पत्ति लभ्य अथ की अपेक्षा इन शब्दों के आधुनिक कालीन विकसित अर्थों के कहीं अधिक निकट और उनस सश्लिष्ट है।

जसा कि निर्देश किया जा चुका है संस्कृत भाषा के शब्द कोशों म संस्कृति श द अनुपलब्ध है अत उसके व्युत्पत्ति लभ्य अर्थों के निर्धारण म उसके सगोत्रीय संस्कार और संस्कृत शब्दों क अर्थों पर दृष्टिपात करना उपयोगी रहेगा। आप्टे कृत संस्कृत हि दी कोश मे संस्कार शब्द के सोलह अथ दिये गये हैं (1) पूर्ण करना संस्कृत करना पालिश करना (मणि) प्रयुक्त संस्कार (2) सत्क्रिया, पूर्णता व्याकरण की दृष्टि स शब्दो की विशुद्धता, (3) शिक्षा अनुशीलन (मानसिक) प्रशिक्षण, (4) तयार करना आसज्जा (5) खाना बनाना (6) शृगार, सजावट अलकार (7) अभिमत्रण अत शुद्धि पवित्रीकरण (8) छाप रूप साँचा कायवाही (9) विचार, भाव प्रत्यय (10) मन शक्ति धारिता (11) काय का प्रभाव (12) पूवज म की वासनाएं (13) प्रत्यास्मरणशक्ति सस्करण (14) शुद्धि सस्कार (15) धार्मिक कृत्य या अनुष्ठान (16) मांजकर,

---

साकृत्य शब्दों का प्रयोग निर्दिष्ट करते हुए सुट के आगम स निष्पन्न किसी भी श द का प्रयोग नहीं दिखाया गया है। हाँ जसा कि प्रसगानुकूल आगे दिखाया गया है ऋग्वेद मे संस्कृत तथा यजुर्वेद म संस्कृति श दो के प्रयोग उपलब्ध हैं अत कहा नहीं जा सकता कि इस तथ्य भेद का मूल कारण सहिताओं का पाठ भेद है अथवा वदिक पदानुक्रम कोष के शोधक सपादको की असावधानी।

चमकाने के काम आने वाला पत्थर।[1] इसी प्रकार 'संस्कृत' शब्द का इन आठ प्रकार के अर्थों में प्रयोग निर्दिष्ट किया गया है—(1) पूरा किया गया, परिष्कृत, मांजकर चमकाया गया (2) कृत्रिम रूप में बनाया गया, (3) संवारा गया (4) अभिमन्त्रित पुनीत किया गया (5) सांसारिक जीवन में दीक्षित, (6) अलंकृत किया गया, (7) स्वच्छ किया गया (8) श्रेष्ठ सर्वोत्तम।[2] संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ में संस्कार शब्द के बदन की सफाई तथा मनोवृत्ति या स्वभाव का शोधन दो विविक्त नये अर्थ भी दिये गये हैं।[3] इन अर्थों में से 'संस्कृति' के अभिप्राय अथवा संस्कृति सम्बन्धी अवधारणा के निर्माण में मुख्यतः मनोवृत्ति या स्वभाव के शोधन या संस्कार करने, पवित्रीकरण, सत्क्रिया, पूर्वजन्म की वासनाओं, धार्मिक अनुष्ठान, मांजकर चमकाने, कृत्रिम रूप में बनाने, सांसारिक जीवन में दीक्षित करने तथा शृंगार या सजावट सम्बन्धी अर्थों का अधिक हाथ माना जा सकता है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति में 'सुट्' के आगम विधान के कारण सपी भाव का अभिनिवेश होने के तथ्य का निर्देश किया जा चुका है। ऐसी दशा में हमारे विचार से 'संस्कृति' शब्द के व्युत्पत्ति सम्भव अर्थ में उसके स्वरूप अथवा अवधारणा से सम्बन्धित निम्नांकित संकेत सूत्र सन्निहित हैं—

(क) संस्कृति के उद्भव की आधारस्थली संघ अथवा सामुदायिक जीवन है। दूसरे शब्दों में वह किसी संघ या समाज विशेष के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में प्रतिफलित होती है।

(ख) किसी संघ, समुदाय या समाज विशेष के सदस्यों को सामाजिक जीवन के अनुकूल दीक्षित करने के लिए सांस्कृतिक प्रक्रिया में उनके बाह्य परिवेश के साथ ही उनकी मनोवृत्तियों के परिशोधन की क्रिया प्रवहमान रहती है।

(ग) संस्कृति का धार्मिक कृत्यों या अनुष्ठानों से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

(घ) संस्कृति के निर्माण में नाना प्रकार के संस्कारों या परम्परागत प्रथाओं अर्थात् पूर्वजों की जीवन और जगत सम्बन्धी परम्परागत धारणाओं का योग रहता है।

(ङ) स्वतः संस्कृति में भी परिष्कार अथवा सुधार की क्रिया सचरणशील रहती है अर्थात् उसमें युगानुकूल सुधार परिष्कार होते रहते हैं, क्योंकि उसकी अंतर्वर्तिनी शक्ति ही सुधार परिष्कारमयी है।

संस्कृति शब्द की भिन्नार्थक प्रयोग-परम्परा पर दृष्टिपात करें तो उसका अद्यावधि ज्ञात प्रथम प्रयोग यजुर्वेद में हुआ है।[4] जैसा कि निर्दिष्ट किया जा चुका

---

1 2 दे० 'सं० हिं० को०', पृ० 1051

3 दे० 'सं० श० कौ० पृ० 1148

4 "सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा प्रथमो वरुणो मित्रो अग्निः।" 'यजु०' 7।14

है शतपथ ब्राह्मण और ऐतरेय आरण्यक मे तो 'सस्कृति' शब्द का प्रयोग उपलब्ध है किन्तु उपनिषदो मे सस्करोति सस्क्रियते सस्कार सस्कृत और सस्कृतानम जसे शब्द रूपो का प्रयोग मिलते हुए भी उनम सस्कृति शब्द का प्रयोग अनुपलब्ध है।[1] एक शोध ग्रथ मे किया गया यह निर्देश मिथ्या है, कि छादोग्य उपनिषद मे सस्कृति शब्द ही नही मिलता अपितु उसको परिभाषित भी किया गया है।[2] वेदागो मे से मानव श्रौतसूत्र[3] तथा शुक्ल यजु प्रातिशाख्य[4] म सस्कृति शब्द का प्रयोग उपलब्ध है, किन्तु वाल्मीकि रामायण मे 'सस्कार विधिपूर्वकम्', 'सस्कारा सस्कृतशुभम' सस्कारिष्यन्ति' आदि शब्दो का प्रयोग मिलते हुए भी सस्कृति शब्द का प्रयोग नही हुआ है।[5] महाभारत और भागवत पुराण म[6] सस्कृति शब्द का प्रयोग हुआ है जबकि हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल से पूववर्ती कदाचित तीनो ही कालो की काव्यकृतियो मे इस शब्द का प्रयोग नही हुआ है। हमारे इस अनुमान का मूलाधार यह तथ्य है कि हिदी शब्द सागर के सुधी सम्पादको की आम प्रवत्ति विभिन्न शब्दो के सम्यक् अर्थोदघाटन हेतु तत्सम्ब धी कोई उद्धरण भी देने की रही है किन्तु जहा तक 'सस्कृति शब्द का सम्ब ध है हिदी शब्द सागर म सस्कृति शब्द के अथ तो दिये गये हैं किन्तु तदथ कोई उद्धरण नही दिया गया है।[7]

यह तथ्य विवादास्पद ही है कि आरभ म सस्कृति शब्द का प्रयोग किस अथवा किन अर्थों म किया जाता था क्योकि वदिक शब्दावली के विद्वानो ने प्राय भिन्न अथ ग्रहण किये हैं और सस्कृति शब्द भी इस तथ्य का अपवाद नही है। उदाहरणाथ यजुर्वेद (7/14) की जिस ऋचा मे सस्कृति शब्द का सवप्रथम प्रयोग हुआ है वह इस प्रकार है—

> 'अच्छिन्नस्य ते देव सोम सुवीर्यस्य रायस्पोषस्य ददितार स्याम
> सा प्रथमा सस्कृतिर्विश्ववारा स प्रथमो वरुणो मित्रो अग्नि।"

---

1 देखिये 'वैदिक पदानुक्रम कोष उपनिषद भाग 3/2/10 पृ० 858
2 देखिये रीतिकालीन काव्य की सास्कृतिक पष्ठभूमि (डा० वेंकटरमण राव), पृ० 10 पर शोधक ने डॉ० मगलदेव शास्त्री की 'प्रबन्ध प्रकाश भाग 2 पृ० 8 पर दी गयी 'सस्कृति' सम्ब धी निजी परिभाषा को भ्रम वश उसकी छादोग्य उपनिषद 8/4/1 म दी गयी परिभाषा समझ लिया है।
3 4 देखिये, वदिक पदानुक्रम कोष, वेदाग भाग, 4/4/14 पृ० 2481 82
5 देखिये पद इण्डक्स ऑव वाल्मीकि रामायण, भाग 2 पृ० 1249 50
6 दे० 'सस्कृत इगलिश डिक्शनरी, सर मोनियर विलियम्स, पृ० 1121
7 देखिये, हिन्दी शब्दसागर, 10/4957

—इस ऋचा की श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य श्री जयदेव शर्मा विद्यालंकार तथा श्री गंगाप्रसाद उपाध्याय द्वारा भिन्न भिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गयी हैं जबकि चौदहवीं शती में रचित सायण भाष्य और बाद में स्वामी दयानन्द सरस्वती के भाष्य मे भी इस पूरी ऋचा का ही नहीं अपितु उसमें प्रयुक्त 'संस्कृति' शब्द का भी भिन्न अभिप्राय ग्रहण किया गया है। भट्टाचार्य की व्याख्या से 'संस्कृति' शब्द का अभिप्राय 'सोम का संस्कार' अर्थात उसके अभिषवण की प्रक्रिया अथवा 'सोम' द्वारा इन्द्र की पूजा किया जाना सिद्ध होता है, 'संस्कृति सोमसंस्कारः यस्य इन्द्रस्य क्रियते इन्द्राय क्रियते इत्यर्थ ।[1] जयदेव शर्मा ने इस ऋचा के राजशक्ति, गुरु और शिष्य तथा ईश्वरीय शक्ति-परक तीन अर्थ देते हुए संस्कृति का अभिप्राय सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्ट रचना स्वीकार किया है।[2] तीसरे व्याख्याकार उपाध्याय की व्याख्या से ध्वनित होता है कि वे वरुण, मित्र और अग्नि रूपी सोम या इन्द्र को संस्कृति मानते हैं 'सबके ग्रहण करने योग्य वह पहली संस्कृति है। वह पहला वरुण मित्र और अग्नि है। वह पहला चेतनावा बृहस्पति है। उस इन्द्र के लिए निचोड़े हुए सोम की आहुति दो।'[3]

श्री सायणाचार्य का चौदहवीं शताब्दी में रचित भाष्य इस अर्थोद्घाटन की दिशा में उपलब्ध कदाचित सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ है जिससे स्पष्ट होता है कि यज्ञारंभ के पूर्व सोम वल्लरी के विक्रेता से मन्त्रोच्चारपूर्वक सोम लता का क्रय तथा उसके अभिषवण अर्थात उसको कूट-पीस छानकर आहुति देने की प्रक्रिया अथवा धार्मिक कर्मकाण्ड संस्कृति कहलाता था।[4] हाँ दयानन्द भाष्य मे इसके सर्वथा विपरीत सोम का अर्थ 'उत्तम गुण युक्त शिष्य' तथा संस्कृति का अर्थ विद्यासुशिक्षाजनिता नीतिः ग्रहण किया गया है।[5] स्पष्ट है कि सायण गंगाप्रसाद उपाध्याय और जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य की व्याख्याओं में यजुर्वेद की इस ऋचा मे प्रयुक्त संस्कृति शब्द का सम्बन्ध सोम संस्कार की प्रक्रिया अथवा उस अवसर पर किये जाने वाले आचार से जोड़ा गया है जबकि दयानन्द सरस्वती

---

1 'शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि संहिता', तृ० सं०, पृ० 259 60

2 देखिए—'यजुर्वेद संहिता', प्र० भाग, पृ० 233

3 शतपथ ब्राह्मण' 4/2/1/27, प्र० भाग प० 572

4 ' इत्यादिनामन्त्रेण सोमस्य क्रयरूपा या संस्कृतिः क्रियते 'सा प्रथमा' अभिषवसंस्काराणां तदन्तर्भावित्वात्। स एव प्रथमः संस्कृतः सोमः वरुणादयो देवाः सर्वदेवात्मा सोमः स्तूयते। हे अध्वर्यु तस्याइन्द्राय सुतम्' अभिषुतम् इदं सोमम् स्वाहाकरणेन आजुहोत होममाहारयत।'
—'श्रीमदवाज० माध्यन्दिन शतपथ ब्राह्मणम्' 4/2/1/27 द्वि०सं०पृ०981

5 देखिये— दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर,' पृ० 494

और जयदेव शर्मा विद्यालंकार की दृष्टि में वह क्रमश 'विद्या और सुशिक्षा से उत्पन्न नीति (नैतिकता) तथा 'सबसे उत्कृष्ट रचना' का अर्थ बोधक रहा है। इन अभिमतो में से कौन सा अभिप्राय वस्तु स्थिति अर्थात संस्कृति शब्द के मूल अभिप्राय के अधिक निकट है इस तथ्य के निर्धारण के लिए शतपथ ब्राह्मण' की सहायता ली जा सकती है, क्योंकि उसमें यजुर्वेद की सदभगत ऋचा की व्याख्या में प्रयुक्त संस्कृति शब्द के अतिरिक्त दो अन्य प्रकरणों में भी संस्कृति शब्द का प्रयोग हुआ है।

शतपथ ब्राह्मण के इन दो प्रकरणों में संस्कृति शब्द का प्रयोग स्थलत ईंट आदि वस्तुओं के माध्यम से यज्ञ वेदी के निर्माण की प्रक्रिया के अर्थ में किया गया है। प्रथम उद्धरण में उसका प्रयोग इस सदर्भ में हुआ कि यज्ञ वेदी के निर्माण काल में यज्ञ-पुरुष के बाहु बनाने चाहिए अथवा नहीं।[1] सायण भाष्य के अनुसार इस उद्धरण में एक ओर तो इस क्रिया का यह कहकर विरोध किया गया है कि उस यज्ञ पुरुष या स्वर्ण पुरुष की भुजाएँ नहीं बनानी चाहिए क्योंकि स्रुच ही उसकी भुजाएँ होती हैं जबकि दूसरी ओर उनके निर्माण का यह तर्क देकर विधान भी किया गया है कि चूंकि बाहुओं के निर्माण से यज्ञ पुरुष की संस्कृति में वृद्धि होती है अर्थात उसका गुणोत्कर्ष होता है अत उनका निर्माण किया ही जाना चाहिए। यह यज्ञ पुरुष जिसे हिरण्मय और प्रजापति भी कहा गया है वस्तुत यज्ञवेदी में ईंटों की चिनाई से निर्मित यज्ञ पुरुष का ही बोधक है जिसका स्पष्टीकरण सदभगत प्रकरण की पृष्ठभूमि के रूप में उपलब्ध पद्रहवें से लेकर चवालीसवें मन्त्रों से हो जाता है। इन मन्त्रों में से पच्चीसवें मन्त्र में सर्प पूजा का वर्णन है जबकि छत्तीसवें मन्त्र में अथ स्रुगिष्टकाद्वयोपधानम अर्थात स्रुचों की प्रतिरूप दो ईंटों की चिनाई का वर्णन करते हुए यह मत व्यक्त किया गया है कि बाहुओं के निर्माण से यज्ञ पुरुष की शोभा का उसी प्रकार गुणोत्कर्ष होता है जैसे उस यज्ञ पुरुष का पशु आदि के सिरों को यज्ञ वेदी में चिनने से गुणोत्कर्ष हुआ करता है।[3] प्रस्तुत सदर्भ में इस तथ्य का उल्लेख अप्रासंगिक न होगा कि आरंभ में यज्ञवेदियों में पशु

---

1 तदाहु। नैतस्य पुरुषस्य बाहू कुर्यादितो या स्तोमा यानि पृष्ठानि यानिच्छन्दास्येतयोरेव सा संस्कृतिरेतयोर्वृद्धिस्तमाद् कुर्यादेवतस्य पुरुषस्य बाहू। —'शतपथ ब्राह्मण 7/4/1/45

2 'स संस्कृति गुणोत्कर्ष हेतु संस्कार एतयोर्व द्धि अभिवृद्धिहेतु।
'श्रीमद० माध्य० शत० ब्राह्मणम त० ख०, पृ० 1810 पर सायण की टीका

3 'एत च स्तोमादय स्वस्वलिंगम नष्टिकारूपेणापधया। या यतानि पशुशीर्षाणि तानि सर्वाण्यध्वगु उपधास्यन् भवति एतयोदेव पक्षसस्तुतयो वद्दिवो।'—'श्रीमद० माध्य० शत० ब्राह्मणम त० ख०, पृ० 1810

आदि जीवधारियो के वास्तविक सिर चिने जाने की प्रथा का प्रचलन था, जो कालान्तर म उनके सिरो की सोने या मिट्टी की बनी आकृतिया मात्र चिन लेने की प्रथा म परिणत हो गयी थी।[1] प्रस्तुत उद्धरण की सायण कृत व्याख्या से स्पष्ट होता है कि सस्कृति का यन वेदी के निर्माण काय से सम्ब ध होते हुए भी उसको शोभा अथवा गुणोत्कपमयी क्रिया स्वीकार किया जाता था। शतपथ ब्राह्मण के दूसरे उद्धरण मे 'सस्कृति श द का प्रयोग निर्भांत रूप मे यज्ञवदी की चिनाई करते हुए प्रजापति या यज्ञ-पुरुष के विविध अगो मे निश्चित सख्या म इटें प्रयुक्त किये जाने के कारणो का निर्देश करते हुए हुआ है, 'अथात सस्कृतिरेव। या अमूरेकान्शेष्टका उपदधाति। यासौ प्रथमानुवाक। तदन्तरिक्षम। स आत्मा। तदयता एकादश भवति। अथ या उत्तरा षष्टि स वायु। स प्रजापति। साऽग्नि। स यजमान'[2]—अर्थात '(प्रजापति अग्नि) की सस्कृति के विषय म यह बात है कि यह जो ग्यारह इटें रखी गयी यह जो पहला अनुवाक हुआ, यह है अतरिक्ष अथात् उसका शरीर। ये ग्यारह इसलिए होती हैं कि त्रिष्टुप ग्यारह अग वाला है और अतरिक्ष त्रिष्टुप है। जो पिछली साठ इटें हैं, वे वायु हैं प्रजापति हैं अग्नि हैं या यजमान हैं।'[3]

शतपथ ब्राह्मण मे यजुर्वेद के पीछे उदधत मत्र की व्याख्या तथा अन्य दो प्रकरणो म सस्कृति शब्द का जिन अर्थों म प्रयोग हुआ है वे या तो सोम के क्रय अभिषवण और आहुति देने के धार्मिक आचारा स सम्ब धित हैं अथवा यज्ञवेदी के निर्माण सम्ब धी कम काण्ड से। सस्कृति शब्द के इन तीन अभिप्रायो म से एक म तो उसको स्पष्टत ही गुणोत्कष का हेतु बताया गया है जबकि सोम लता की काट छाट कूट पीट तथा उसको छानकर दूध और मधु मिश्रित करने की क्रिया (अभिषवण) स भी यह परिष्कार या गुणोत्कष का भाव ध्वनित होता है। तीसरे प्रकरण म भी सस्कृति' का सम्बन्ध यज्ञवेदी के निर्माण काल म उसके विभिन्न भागो मे एक निश्चित सख्या मे इटो के प्रयोग के विधान की औचित्य सिद्धि क सदभ म हुआ है। ऐसी दशा म हमारी धारणा है कि शतपथ ब्राह्मण काल मे सस्कृति श द का प्रयोग यज्ञवेदी के निर्माण या सोम के अभिषवण से सम्बन्धित आचारो क अभिप्राय म किया जाता था और इन कृत्यो म गुणोत्कष या परिष्कार

---

1 डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री ने कात्यायन श्रौतसूत्र और अष्टाध्यायी के साक्ष्य पर लिखा है "यज्ञ की नीव म एतदथ बलि दिय गये पशुओ के सिर भी चुने जात थे। यजमान चाहता तो सोने या मिट्टी के बने सिर काम मे ला सकता था।"—'पतजलिकालीन भारत', पृ० 527

2 शतपथ ब्राह्मणम, 8/3/4/11

3 शतपथ ब्राह्मणम' भाष्यकार गगाप्रसाद उपाध्याय, द्वि० स०, पृ० 1157

भाव का अभिनिवेश करने वाली आचार क्रिया ही संस्कृति कही जाती थी। इस तथ्य की पुष्टि के प्रमाण रूप मे यह तथ्य भी अवधारणीय है कि ऋग्वेद म प्रयुक्त 'संस्कृत' श-द को भी वेंकट माधव कृत भाष्य म सोम के परिष्कार स सम्बधित अथ म ही ग्रहण किया गया है,[1] अर्थात संस्कृत और संस्कृति दोनो ही शब्द आरभ मे सोम के परिष्कार की क्रिया से घनिष्ठ रूप म सम्बद्ध थे जबकि यन वेदी की चिनाई से सम्बधित धार्मिक विधान को भी संस्कृति कहा जाता था। ऐसी स्थिति म स्वामी दयान-द द्वारा संस्कृति शब्द का अभिप्राय विद्या और सुशिक्षा से जनित नीति तथा जयदेव शर्मा विद्यालकार द्वारा सबसे उत्कृष्ट रचना' ग्रहण करन क सम्ब-ध मे यही कहा जा सकता है कि इन विद्वानो की संस्कृति विषयक धारणाए वस्तुस्थिति की परिचायक होने के स्थान पर उनकी निजी अभिरुचियों क अनुकूल हैं।

'संस्कृति श-द के भि-नार्थक प्रयोगो की दृष्टि से प्राचीन काल की अ-य कृतियो म से ऐतरेय ब्राह्मण म इस शब्द का सम्ब-ध यजमान के आत्म संस्कार या परिष्कार से जोडते हुए आत्मसंस्कृतिर्वाव शिल्पानि—एतैयजमान आत्मान संस्कुरुते[2] का भाव व्यक्त किया गया है। इस प्रकरण की -याख्या करते हुए एक विद्वान ने लिखा है ' हाथी की सुनहरी झल और घोडो के रथ यह सब शिल्प हैं। शिल्पों से आत्मा का संस्कार होता है और आत्मा छ -दोमयी हो जाती है। होमक इनसे यजमान की आत्मा का संस्कार कर देता है।'[3] इसके विपरीत सर मोनियर विलियम्स द्वारा सपादित संस्कृत-अग्रजी कोष म(पृ० 1121) एतरेय ब्राह्मण म प्रयुक्त संस्कृति शब्द का अथ ढांचा बनाना दिया गया है। हमारी धारणा यह है कि प्रस्तुत सदभ म संस्कृति शब्द इस भाव का बोधक है कि शिल्पो की प्रक्रिया भी आत्म निर्माण की प्रक्रिया क तुल्य है और उनके अतगत आधार सामग्री का तो निर्माण की जाने वाली वस्तु के रूप म परिष्कार किया ही जाता है स्वय निर्माता का भी आत्म-परिष्कार होता रहता है। श्री मोतीलाल शास्त्री ने संस्कृति श-द के विभि-नार्थक प्रयोगो पर विचार करते हुए अपनी सत्तानिरपेक्ष संस्कृति श-द शीर्षक कृति म दिखाया है कि ताडय महा ब्राह्मण मे (खेद है कि ताडयमहाब्राह्मण

---

1 ऋग्वेद के न संस्कृत प्रमिमीतो गमिष्ठा ति नूनमश्विनोपस्तुतेह (5/76/2) मत्र का भाष्य करते हुए वेंकट माधव ने लिखा है, न संस्कृतम् सोमम् प्रहिसत ग-तारो अ तिके इदानीम अश्विनो मया उपस्तुतो अत्र दे० ऋग्वेद विद ब्मे-ट्रीज आव स्क-दस्वामिन उदगीथ, वेंकट माधव और मुदगल भा० 5 पृ० 1973

2 'ऐतरय ब्राह्मण , 6/5/1

3 ऋग्वेदीय एतरेय ब्राह्मण , अनु० गगाप्रसाद उपा०, पृ० 394

की दो तीन बार पढ़ने पर भी हम यह प्रयोग उपलब्ध नही हुआ है) सस्कृति शब्द लददेवा देवस्यान तिष्ठन्त सस्कृतिना समस्कुवन। तत्सकृते सस्कृतित्व' के रूप मे प्रयुक्त हुआ है। उन्होंने वैदिक साहित्य म इस शब्द के प्रयोग सम्बन्धी जा अवतरण प्रस्तुत किये हैं उनके अनुसार 'सस्कृति से वदिक देवताओ के रूप मे दवी कृतित्व के अथ का बोध होता है।"[1] सर मोनियर विलियम ने सस्कृति के विभिन्न कालो म हुए भिन्नाथक प्रयोग इस प्रकार निर्दिष्ट किये हैं वदिक सस्कृत म—तयार करना या बनाना, तयारी या निर्मित पदार्थ तथा परिपूर्णता या निर्दोषता के अर्थों मे, ऐतरेय ब्राह्मण म—ढाँचा बनाने के अथ म महाभारत मे श्रीकृष्ण के विशेषण या नाम के अथ म, भागवत पुराण मे—पवित्रीकरण और पूजा करने के अर्थों म तथा सस्कृत की पाडुलिपियो म दृढ निश्चय और प्रयत्न करने के अर्थों मे।[2] 'डा० भगवत शरण उपाध्याय ने सस्कृति' शब्द का सम्बन्ध धातु शोधन से जोडते हुए कहा है, 'सस्कृति शब्द का व्युत्पत्यथ सस्कार है जिसम तात्पय है कच्ची धातु को शुद्ध करना उससे लगी खान की मैल हटाकर उसे धो पोछकर काट छाँटकर रगड़कर पालिश कर चमका देना।'[3] सस्कृति शब्द के अथ विकास से सम्बन्धित उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आधुनिक काल स पूववर्ती साहित्य म उसका प्रयोग प्राय यज्ञ वेदी की निर्माण प्रक्रिया, सोम के अभिषवण, पवित्रीकरण शिल्प क्रिया तथा धातु शोधन के अभिप्रायों मे हुआ है। इन क्रियाओं क मूल म सम्बन्धित वस्तु के गुणोत्कर्ष या परिष्कार सस्कार का भाव अवश्य विद्यमान रहता था, किन्तु मूलत उन सोलह सस्कारो से उसका आनुषगिक सम्बध ही था जिन्हें कतिपय लोग भारतीय सस्कृति का मूलाधार ही नहीं, अपितु पर्याय समझन के भ्रम म ग्रस्त हो जाते रहे हैं।[4]

---

1 उद० 'मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय सस्कृति', डॉ० मदन गोपाल पृ० 6

2 'ए सस्कृत इगलिश डिक्शनरी, 1970 स० पृ० 1121

3 सास्कृतिक भारत पृ० 8

4 डा० सम्पूर्णानन्द ने इस सदभ म चिन्ता व्यक्त करते हुए लिखा था, "कुछ वष हुए काशी म सस्कृति सम्मेलन हुआ था। उसम सम्मिलित होने वाले पडितो के लिए वर्णाश्रम ही भारतीय (हिन्दू या आय) सस्कृति का प्रतीक है सस्कृति के यदि कोई और भी अग या भद होत हैं तो उस सम्मेलन म किसी ने उनका नाम तक नही लिया।" मालवीयजी के सपनो का भारत' भारतीय सस्कृति शीर्षक लख', पृ० 218

हिन्दी शब्द-कोशो तथा आधुनिक काव्य में सस्कृति शब्द के भिन्नार्थक प्रयोग

हिन्दी के विभिन्न शब्द कोशो मे दिये गये सस्कृति शब्द के कई अथ तो समान ही हैं, हां उनम दो एक भिन्न अथ भी दिये गय हैं। हिन्दी शब्द सागर म इस शब्द के यह अथ निर्दिष्ट, किये गय हैं—(1) शुद्धि सफाई (2) सस्कार, सुधार, परिष्कार, (3) सजावट आराइश (4) रहन सहन आदि की रूढि भीतर बाहर स सस्कार की गयी सभ्यता शाइस्तगी (5) पूण करना पूरा करने की चेष्टा (6) निश्चय उद्योग तथा अग्रजी के कल्चर के अनुवाद के रूप म प्रयुक्त शब्द।[1] रामचद्र वर्मा द्वारा सपादित सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर म उसके 'मानसिक विकास' तथा 24 वर्णों के वृत्त की सज्ञा दो नवीन अथ भी दिये गये हैं।[2] बृहत हिन्दी कोश म उसका एक नवीन अथ पवित्रीकरण' दिया गया है जबकि उसम दिया गया एक अन्य अथ आचरण गत परम्परा[3], वस्तुत हिन्दी शब्द सागर क 'रहन-सहन की रूढि का पर्याय ही है।

हिन्दी काव्य म सस्कृति शब्द का सवप्रथम प्रयोग किस कवि ने और किस अथ म किया है यह तथ्य तो शोध का विषय है हां आधुनिक काल के कवियो ने इस शब्द का प्रयोग विभिन्न अथच्छवियो म तथा प्रचुर मात्रा म किया है। इन विभिन्नार्थक प्रयोगो म सस्कृति शब्द का प्रयोग एक ओर तो विश्व सस्कृति जसी व्यापक अवधारणा के सदभ म किया गया है[4] जबकि दूसरी ओर उसका जन सस्कृति[5] टेरेलिनी सस्कृति[6] सफेद सस्कृति[7], वणिक सस्कृति[8] बृहनला

---

1 'हिन्दी शब्द सागर 10/4896
2 सक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर पृ० 954
3 'बृहत हिन्दी कोश पृ० 1413
4 (क) लोकसभ्यताकी सस्कृति की मानवता की/उच्च पुकारें लगा'
— शिल्पी पत पृ० 54
(ख) ' मानव सस्कृति यान डूबने को अब निस्तल । 'सौवण पत पृ०23
(ग) आज बृहत सास्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित ।
— 'ग्राम्या, पत पृ० 89
5 'जन सस्कृति का नव विराट/प्रासाद उठेगा भू पर।"
— युगवाणी', पत पृ० 44
6 उसकी टेरेलिनी सस्कृति की गध/उसके बिखरे व्यक्तित्व को ? '
— पथ के पुनीत पाँव मुकुल पृ० 90
7 ' सफेद सस्कृति की धाराए बह जाती हैं कतराकर/गुडे लडते रहते हैं।
— पक गयी है धूप रामदरश मिश्र पृ० 82
8 दे० 'भीतरी नदी की यात्रा , वणिक सस्कृति का मत्यु गीत शीषक कविता, गि० कु० माथुर पृ० 50

सस्कृति"[1], 'बाजारू सस्कृति' जसे लाक्षणिक अर्थों म प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार विभिन एतिहासिक पौराणिक घटनाओ को भी सास्कृतिक परिवतनों का प्रतीक बताया गया है। पत ने राम-द्वारा सीता स्वयवर के अवसर पर धनुप भग करने की घटना के सम्ब ध म यह भाव व्यक्त किया है कि वह उत्तरी और दक्षिणी भारत के सम्मिलन रुद्र और विष्णु के शिव रूप म समवित होने तथा अहल्या रूपी कृषि के अयोग्य भूमि के उवर होने की प्रतीक घटना थी।[3] पत ने राम को कृषि सस्कृति का प्रतीक अयत्र भी बताया है।[4] केदारनाथ मिश्र प्रभात ने कैकेयी द्वारा दशरथ से राम के वन गमन का वरदान माँगने क मूल म ईर्ष्या भाव का हाथ नही दिखाया अपितु उसको सभ्यता सस्कृति का अतिम आह्वान [5] बताया है। उ होन अ यत्र भी एसी ही चेतना व्यक्त करते हुए ककेयी से कहलाया है, वन की ओर राम का जाना, मानवता की जय है/आय सभ्यता की चिरमानव स्वतत्रता का जय है।'[6] इसके अतिरिक्त भारत की दूसरे देशो पर विजय या प्रभाव को भी भारतीय सस्कृति की विजय'[7] तथा भारत पर हुए आक्रमण को भारतीय सस्कृति पर हुआ आक्रमण समझन की चेतना व्यक्त की गयी है। महेन्द्र भटनागर ने हूणो के आक्रमणो से सत्रस्त होकर भारतीय जनता खो रही थी/आत्म गौरव, शक्ति अपनी सभ्यता, सम्मान अपना के साथ ही धर्म सस्कृति का पतन/ हो रहा था तीव्र गति स,[8] की धारणा व्यक्त की है। [illegible] मिश्र न सन् 1857 के सग्राम के अतगत अपनी सभ्यता, सस्कृति सब [illegible] है [9], की भावना व्यक्त की है तो मुकुल ने सन् 1862 के चीनी आक्र[illegible]

---

1 मेरी कला, मेरी चेतना, मरी सस्कृति बह नला बनने के [illegible]" स्थितियाँ अनुभव तथा अ य कवि०', डा० रामप्रसाद मिश्र, पृ० [illegible]

2 'यह बाजार नही/एक सस्कृति है। होटल रेस्टारेंट [illegible]/ बिजली की बत्ती की/बनावट और विज्ञापन की।'

सपना और [illegible]' [illegible], पृ० 72

3 'धनुप भग की विगत सास्कृतिक घटना/[illegible] दक्षिण/रुद्र विष्णु का शिव म हुआ सम वय/[illegible]।

[illegible], [illegible], पृ० 15

4 'श्री राम रहे सामत काल के ध्रुव प्रकाश/[illegible] के विकास। ग्राम्या, पत पृ० 59

5 6 ककेयी, के० ना० मिश्र प्रभात पृ० 59, 115

7 भारत भू का सास्कृतिक वत्स [illegible]"

[illegible]

8 'चयनिका' पृ० 178

9 झाँसी की रानी, पृ० 99

म, 'माँ ! मेरी सस्कृति का छोर जल रहा/रक्ताजलि से आग बुझाकर ही दम लूँगा'', के रूप म *भारत पर हुए आक्रमण को भारतीय सस्कृति पर हुआ आक्रमण* समझने की चेतना व्यक्त की है। एक अन्य कवि आनन्द नारायण शर्मा ने भी चीनी आक्रमण को 'भारत पर आक्रमण न केवल पावन सस्कृति पर हमला है', की चेतना व्यक्त की है।[2]

शब्द कोशो मे सस्कृति का एक अथ 'सभ्यता' भी दिये जाने के अनुरूप आधुनिक काल मे कवियों ने भी सभ्यता और सस्कृति का या तो युगपत रूप म प्रयोग किया है अथवा उनका पर्याय अथ मे प्रयोग किया है। सभ्यता के विकास क्रम मे पशुपालन युग के पश्चात कृषि सभ्यता का विकास होने क सदभ मे पत ने 'कृषि सभ्यता' का नही अपितु राम को 'पशु जीवी युग म नव कृषि सस्कृति के विकास [3] करने का श्रेय प्रदान किया है। उन्होंने अन्यत्र भी सभ्यता और सस्कृति शब्दो का एक ही सदभ मे प्रयोग करते हुए जीण विश्वास जीण सस्कार, रूढ़ियों रीतियो और आचारो के जड सास्कृतिक बधनो को छिन्न भिन्न करते हुए जाति, वण श्रेणी वग से विमुक्त जन नूतन/विश्व सभ्यता का शिलान्यास करें भव शोभन' [4] का भाव व्यक्त किया है, जिससे इस तथ्य का उदघाटन होता है कि पत की दृष्टि मे सभ्यता और सस्कृति पर्याय से होते हुए भी वे सस्कृति म विगत काल की रूढि रीतियो जीण विश्वासों आचारो की प्रमुखता स्वीकार करत हैं जबकि सभ्यता को *अपेक्षाकृत समकालीन सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित मानत हैं।* महेन्द्र भटनागर और केदारनाथ मिश्र प्रभात के ऊपर उदधृत उद्धरणों म भी सभ्यता और सस्कृति का युगपत रूप में प्रयोग किया गया है। कवि उदगारो म अभिव्यजित हुए *सस्कृति (या सभ्यता) सम्बन्धी अन्य उल्लेख्य तथ्य इस प्रकार हैं कि* दिनकर न सस्कृति रूपी महावृक्ष के सम्बन्ध म यह भाव व्यक्त किया है कि उसके विकास की गति बडी धीमी और अदृश्य होती है तथा वही सहस्राब्दियों के पश्चात ही उसमे दा एक नवीन पत्र निकल पाता है।[5] सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षत्रो म अनेक सास्कृतिक स्तर भेद विद्यमान रहने के तथ्य की व्यजना करत हुए श्यामसिंह शशि न कहा है कि भारत के अधिकाश घरों म अब भी पन्द्रहवीं शती चल रही है जबकि दफ्तरो म बीसवीं स्कूल कॉलेज और विश्वविद्यालयों म पच्चीसवीं टी हाउस काफीघरो, होटलो और क्लबो म पचासवी सदी की सभ्यता-सस्कृति

---

1 पथ के पुनीत पाँव पृ० 62
2 'शखनाद सक० पृ० 42
3 4 'ग्राम्या पृ० 59
5 ' धीमी गति है ? विकास/कितना अदृश्य हो चलता है/इस महावृक्ष मे एक पत्र/सदियों के बाद निकलता है।'' चक्रवाल' पृ० 299

के दर्शन किये जा सकते हैं। उन्होंने यह धारणा भी व्यक्त की है कि सम्प्रति हमारी संस्कृति महापुरुषों की जयन्तियों अथवा राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर होने वाले आदिवासियों के नृत्य में सकेन्द्रित हो गयी है।[1] अतत सभ्यता और संस्कृति के अंतर को क्रमश प्रेयसी और पत्नी के रूपक द्वारा उभारने से सम्बन्धित शान्ता सिनहा के दो भिन्न कविताओं में व्यक्त हुए मन्तव्य का उल्लेख किया जा सकता है जिनके अनुसार, 'पत्नी संस्कृति/सब रास्ते कर बन्द/लगा देती है तख्ती लाल/रोड अण्डर रिपेयर है',[2] इस तथ्य का नैसर्गिक परिणाम यह निकलता है कि नूतनता का प्रेमी मनचला पति रूपी समाज—'एक सुन्दर सवेरे/छोड़ संस्कृति के घर द्वार/और परम्परा पत्नी को/नयी प्रेमिका की तलाश में/जो समाज देश से बाधती नहीं'[3], निकल पड़ता है। इन उद्गारों में प्रयुक्त 'पत्नी संस्कृति' की रूढ़िवादिता तथा परम्परागत मूल्यों के प्रति सुदृढ़ या कहिये हठवादिनी बनी रहने के तथ्यों की प्रतीक है, जिससे रूढ़िवादी दृष्टिकोण से ऊबकर, कुछ लोग पराई या विदेशी सभ्यता रूपी प्रेयसी को अपना लेते हैं जो उनकी मनोवांछाओं की परिपूर्ति में पत्नी की तरह दकियानूस नहीं होती। ऐसे लोगों को अपनी स्वच्छन्दताओं की परितुष्टि के हेतु यह नकाब या मुखौटा सहज ही उपलब्ध हो जाता है कि वे किसी ऐसी सभ्यता संस्कृति के अनुयायी हैं जो उनकी निजी संस्कृति की अपेक्षा आधुनिक तथा उदार है। आधुनिक काव्य में इस मनोवृत्ति से ग्रस्त लोगों की यद्यपि हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त आदि परम्परावादी कवियों ने तीव्र भर्त्सना की है, तथापि प्रेयसियों का होना तो समसामयिक सांस्कृतिक जीवन में 'सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक' (स्टेटस सिम्बल) बनता जा रहा है और इस दिशा में पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव तो है ही इस प्रवृत्ति को बढ़ाने की दिशा में कदाचित सर्वाधिक योगदान सह शिक्षा प्रणाली का है।

कल्चर व्युत्पत्त्यर्थ और अर्थ विकास

'कल्चर' शब्द का उद्भव लैटिन के कृषि-अर्थक कुलतुरा (cultura) शब्द से स्वीकार किया जाता है किन्तु इसके साथ ही उसका सम्बन्ध फ्रेंच भाषा के कुलटस (cultus) तथा लैटिन के कल्ट (cult) शब्दों से स्वीकार करते हुए, आक्सफोर्ड डिक्शनरी में, उसका सन् 1483 में पूजा और विशेषत पूजा सम्बन्धी कर्मकाण्ड के अर्थ में भी प्रयोग दिखाया गया है[4] जबकि वेबस्टर कृत इंटरनेशनल डिक्शनरी में पूजा सम्बन्धी अर्थ अनुपलब्ध है। आक्सफोर्ड शब्द कोश में 'कल्चर'

---

1 दे० 'शिला नगर में', पृ० 94

2 3 समानान्तर सुर्ये पृ० 7 14

4 दे० 'शार्टर आक्सफोर्ड इंगलिश डिक्शनरी', पृ० 436

श॰ का पूजाथक प्रयोग सन 1679 1683 और 1711 म भी निर्दिष्ट किया गया है, तथा मध्ययुगीन अग्रेजी भाषा मे उसका प्राय कषि सम्ब धी अथ मे ही प्रयोग दिखाते हुए, उसका सन 1510 मे शिक्षा और प्रशिक्षण द्वारा सुधार और परिष्कार के आलकारिक या लाक्षणिक अथ मे, सन् 1626 म 'माइक्रोस्कोपिक ऑर्गेनिज्म का कत्रिम रूप मे विकास करने के अथ म, सन 1805 म सामा॰य *(साम्पत्तिक नही) रूप मे ही मस्तिष्क अभिरुचियो और ॰यवहारो के प्रशिक्षण और* परिष्कार तथा इस प्रकार के प्रशिक्षण-परिष्करण से उत्प॰न स्थिति, तथा सभ्यता के मानसिक पक्ष के अथ मे प्रयोग किये जाने का निर्देश किया गया है। इसके साथ ही सन् *1884* म इस श॰द का प्रयोग जीवाणुओ को घोल विशेष (मीडिया) म सुरक्षित रखने और सवधित करने तथा इस प्रक्रिया की उपल॰धि के अथ मे दिखाते हुए, कहा गया है कि सन 1876 के पश्चात् कल्चर शब्द का कष्यथक प्रयोग विरल रूप म ही मिलता है।[1]

वेबस्टर द्वारा सपादित अतरराष्ट्रीय श॰द कोश म कल्चर श॰द की उन अथ छवियों का भी समाहार कर लिया गया है, जो विभि॰न विद्वानों की इस शब्द की अवधारणा स सम्ब॰धित परिभाषाओ म व्यजित हुई हैं कषि करने की कला या रीति जुती हुई भूमि 1(क) शिक्षा अनुशासन और सामाजिक अनुभव द्वारा विकास की क्रिया (ख) नतिक और मानसिक शक्तियो का प्रशिक्षीकरण या परिष्करण। 2(क) आपूर्ति या समरण हेतु किसी उत्पादन, फसल या भडार विशेष का अभिपेचन (रियरिंग) जस अगूर की लता या शहद की मक्खियो का पालन-पोषण। (ख) सोनेट छ द को अथवा उसकी किसी पक्ति विशेष का सुधारने का दृढ़ प्रयत्न। (ग) आवाज (ध्वनि) और सौंदय स सम्ब॰धित व्यावसायिक अथवा दक्षतापूण देख रेख और प्रशिक्षण। 3(क) मानसिक और सौंदयशास्त्रीय प्रशिक्षण द्वारा उपल॰ध अतद ष्टि और श्रष्ठ अभिरुचि, व्यवहार अभिरुचियो और विचारों की परिष्कृति। (ख) ललित कलाओ, मानवीय विद्याओ तथा विज्ञान के ध॰धों, तकनीक और व्यावसायिक पक्षों को छोड़कर उसके व्यापक सिद्धा तों का ज्ञान और उनके प्रति अभिरुचि। 4(क) मनुष्य के ज्ञान और व्यवहार की वे सम्पूण रीतियाँ जो उसके तात्त्विक विचार भाषा क्रिया और जीवनोपकरणो म प्रतिबिम्बित होती है और जि॰हें उसके द्वारा सीखने के साथ साथ भावी पीढ़ियो मे सक्रमित करने की भी क्षमता रहती है। (ख) किसी जाति धम या सम्प्रदाय के लोगो के परम्परागत विश्वासो सामाजिक सघटना और भौतिक लक्षणो से निर्मित जटिल और विशिष्ट सामाजिक स्थिति (अनेक सस्कृतियो से युक्त राष्ट्र) वह जटिल सामाजिक स्थिति जिसम परम्परागत ज्ञान विश्वास, नतिकता, ॰याय,

---

1 दे० 'शाटर ऑक्सफोड इगलिश डिक्शनरी', पृ० 436

रिवाज, विचार, धम, अधविश्वास और कला सुरक्षित रहत हैं। (ग) किसी विशिष्ट समुदाय, व्यवसाय, लिंग, आयु विभाग या सामाजिक वग स सम्बधित उनके विशिष्ट व्यवहार अथवा मानवीकृत आचरण पद्धति की जटिल स्थिति (जसे, युवा सस्कति मध्यम वर्गीय सस्कति) (घ) एक जसी वस्तुओ के समूह की आवत्ति, जैस एक ही तरह के जीवनोपकरणो, भवनो और शव सस्कार की आवत्ति मिलना 5(क) जानदार पदार्थो जसे जीवाणुओ या टिश्यूज को द्रव विशेषो म सुरक्षित रखना या सर्वधित करना। (ख) नश्तर के रूप म लगाया गया "पूट्रिएण्ट चाहे उसम जीवितांश हो या नहीं। 6 नक्श म प्रदर्शित नहर, मकान और सडको के विवरण से सम्बधित तालिका।"[1] सस्कृति और कल्चर शब्दो के अथ विकास सम्बधी उपयुक्त विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि इन दोनो शब्दो का कतिपय भिन्न भिन्न अर्थों म भी प्रयोग हुआ है, तथापि दोनो ही शब्दो का परिष्कार, सुधार, सस्कार या धार्मिक कमकाड आदि एक जैस अर्थों म प्रयाग करने की भी परम्परा रही है। इस सदभ मे यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सस्कति शब्द के आरभिक प्रयोगो म उसम सुधरी या परिष्कत स्थिति का बोध होने के स्थान पर प्राय सुधार या गुणोत्कष की प्रक्रिया का ही बोध होता है और जहाँ तक कल्चर शब्द के आरभिक कालीन या लाक्षणिक प्रयोगो का सम्बध है, जिनम उसका प्रयोग कृषि कला से भिन्न सामाजिक बौद्धिक और कलात्मक सदर्भों म किया गया है कल्चर शब्द के ये प्रयोग भी सुधरी या परिष्कृत दशा के स्थान पर सुधार या परिष्कार की प्रक्रिया का अवबोध करात हैं।[2] इन आलकारिक प्रयोगो के मूल म यह तथ्य क्रियाशील रहा है कि जस कृषि कम के अतगत सिचाई, जुताई बुवाई, निराई गुडाई के सुधारमूलक कृत्यो का अतर्भाव रहता है, उसी प्रकार मानव मस्तिष्क के भी सुधार परिष्कारो की प्रक्रिया सचरणशील रहती है।

सस्कृति परिभाषा और स्वरूप

भारतीय और पाश्चात्य विद्वानो ने सस्कति या कल्चर को अनेकानेक प्रकार

---

1 वेब्स्टस थड यू इटरनेशनल डिक्शनरी', द्वि० ख०, पृ० 552

2 'The word culture in its social, intellectual and artistic senses is a metaphorical term *derived from the act of* cultivating the soul (Latin culture) the cultivation of mind was seen as a process comparable to the cultivation of the soil hence the only early meanings of culture in the metaphorical sense centered on a process the culture of the mind rather than on an achieved state'
—'The Ency of Philosophy, Vol II, p 273

स परिभाषित करते हुए उसके स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उसकी किसी सवमान्य एव सवथा पूण परिभाषा का निर्माण हो चुका है। विभिन्न विद्वानो न निजी रुचि भेद, सामाजिक परिवेश अथवा अध्ययन लेखन की शाखा विशेष से सम्बंधित होने के अनुरूप ही अपनी परिभाषाओं म भी सस्कृति के किसी पक्ष विशेष पर अधिक बल दिया है, जबकि उसके कतिपय पक्ष सवथा उपेक्षित छोड दिये हैं। सभ्यता और सस्कृति के पारस्परिक साम्य वषम्य और उन्हें एक दूसरी की अपेक्षा स्थूल या सूक्ष्म समझने की सवथा विरोधी धारणाओ ने भी सस्कृति को परिभाषित करने की उलझन म वद्धि की है। स्थिति यह है कि सस्कृति के स्वरूप के सम्बंध म इतनी अधिक और प्राय भिन्न धारणाएँ व्यक्त की गयी हैं कि उनका समाहार करते हुए सस्कृति को व्याख्यायित तो किया जा सकता है, किन्तु उसकी सक्षिप्त, सवमान्य एव सुबोध परिभाषा देना टेढ़ी खीर ही है।

भारतीय विद्वानो म से डा० सवपल्ली राधाकृष्णन न 'विवेक बुद्धि द्वारा जीवन को भली प्रकार जान लेने' को सस्कृति मानते हुए कहा है सस्कृति मस्तिष्क की कोई स्थिति विशेष अथवा रूढि-सहिता नही है, प्रत्युत एक व्यापक जीवन सिद्धात है, एक एसा दष्टिकोण जिसे मान लेने पर मनुष्य सम्बन्धी कोई वस्तु विजातीय, साधारण अथवा अपवित्र नही रह जाती।[1] डा० मगलदेव शास्त्री ने 'किसी भी देश अथवा समाज क विभिन्न जीवन व्यापारो अथवा सामाजिक सम्बन्धो म मानवीयता की दष्टि स प्रेरणास्पद आदर्शों की समष्टि को सस्कृति स्वीकार किया है[2] तो डा० सम्पूर्णानन्द क शब्दो म सस्कृति उस दष्टिकोण को कहते हैं जिससे कोई समुदाय विशेष जीवन को समस्याओ पर दृष्टि निक्षेप करता है।[3] के० एम० मुशी न "सस्कृति जीवन के प्रति हमारा दष्टिकोण है की धारणा व्यक्त करते हुए कहा है, हमारे रहन सहन के पीछ जो हमारी मानसिक अवस्था है, जो मानसिक प्रवत्ति है, जिसका उद्दश्य हमारे अपने जीवन को, परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र करना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है यही सस्कृति है।[4] डा० भगवानदास ने सस्कृति का सम्बन्ध मानसिक उत्कष से दिखाते हुए यह विचार व्यक्त किया है मानसिक क्षेत्र म उन्नति की सूचक प्रत्यक सम्यक कृति सस्कृति बनती है। इसमे प्रधान रूप से धम, दशन, सभी ज्ञान

---

1 स्वतत्रता और सस्कृति, अनु० वि० ना० त्रिपाठी, प० 53
2 'भारतीय सस्कृति का विकास (वदिक धारा) प० 4
3 मालवीयजी क सपनो का भारत, भारतीय सस्कृति शीषक लेख पृ०218
4 उदधत प्राचीन भारतीय कला एव सस्कृति, राजकिशोर सिंह उषा यादव, पृ० 192

विज्ञानो और कलाओ, सामाजिक तथा राजनीतिक सस्कारो और प्रथाओ का समावेश रहता है।"[1]

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने सस्कृति को जीवन जीने की रीति अथवा जीवन के नानाविध रूपो का समुदाय मानते हुए कहा है "सस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वांगपूर्ण प्रकार है। हमारे जीवन का ढग हमारी सस्कृति है। सस्कृति हवा म नही रहती, उसका मूर्तिमान रूप होता है। जीवन के नानाविध रूपो का समुदाय ही सस्कृति है।"[2] अयत्र उन्होंने सस्कृति को किसी राष्ट्र के विचार और कर्म के क्षेत्रो का सृजन मानते हुए मानवीय जीवन की प्रेरक शक्ति तथा विश्व के प्रति अनन्त मत्री की भावना बताया है।[3] राहुल साकृत्यायन ने सस्कृति का स्पष्टीकरण अनुवर्ती पीढियो पर पडने वाले नाना प्रकारीय प्रभावो या सस्कारो के रूप म किया है, एक पीढ़ी आती है, वह अपने आचार-विचार, रुचि अरुचि, कला सगीत, भोजन छादन या किसी और दूसरी आध्यात्मिक धारणा के बारे म कुछ स्नेह की मात्रा अगली पीढ़ी के लिए छोड जाती है। एक पीढ़ी के बाद दूसरी, दूसरी के बाद तीसरी और आगे बहुत सी पीढियाँ आती जाती हैं। यही प्रभाव (सस्कार) सस्कृति है।'[4] डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने एक ओर तो सस्कृति को मनुष्य की विविध साधनाओ की सर्वोत्तम परिणति,[5] बताया है, तो अयत्र वे उसको सभ्यता के मुख्य अगो की सहिति स्वीकार करते हैं, 'आर्थिक व्यवस्था, राजनतिक सघटन, नतिक परम्परा और सौन्दय बोध को तीव्र तर करने की योजना य सभ्यता के चार स्तभ हैं। इन सबके सम्मिलित प्रभाव स सस्कृति बनती है।'[6] डॉ० वी० राघवन के शब्दो म सस्कृति प्रथमत एक आन्त रिक दशा है। यह बौद्धिक तथा आन्तरिक होती है तथा शरीरात्मा और चित्त-वृत्तियो पर आधारित रहती है। कुछ विचारको के अभिमतानुसार इसमे विचार और अनुभव रीतियाँ सम्मिलित रहती हैं अर्थात् आतरिक क्रियाओ क विशिष्ट लक्षण समाविष्ट रहते हैं। सुसस्कृत अथवा सस्कृतिवान व्यक्ति का मुख्य लक्षण यह है कि उसके विचारो, कथनो और कृत्यो म सगति या समीकरण होता है।"[7] श्री शिवदत्त शर्मा ने सस्कृति का लक्ष्य किसी राष्ट्र की सर्वांगीण समुन्नति बताया है 'किसी राष्ट्र की शारीरिक मानसिक व आत्मिक शक्तियो का विकास सस्कृति

---

1 उद्धृत, 'प्राचीन भारतीय कला एव सस्कृति' राजकिशोर सिंह, उषा यादव, पृ० 192

2 3 'कला और सस्कृति', पृ० 1 तथा भूमिका पृ० 3

4 'बौद्ध सस्कृति' पृ० 3

5 6 'अशोक के फूल' पृ० क्रम० 64, 81

7 'द कासेप्टस ऑव कल्चर', पृ० 16

का मुख्य उद्देश्य है।'[1] दिनकर ने—"संस्कृति ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते '—का भाव व्यक्त करते हुए आगे कहा है, अंग्रेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममें व्याप्त है।"[2] अन्यत्र उन्होंने संस्कृति का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है, 'असल में, संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।'[3] करपात्रीजी ने संस्कृति का सम्बन्ध मानव जीवन की लौकिक पारलौकिक, धार्मिक, आध्यात्मिक, आर्थिक और राजनैतिक उन्नति के सर्वांगीण भूषणभूत सम्यक् चेष्टाओं से जोड़ा है।[4] इसी प्रकार डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार के अनुसार 'मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को संस्कृति कहते हैं'[5] तो हरिदत्त वेदालंकार के शब्दों में 'संस्कृति का शब्दार्थ है उत्तम या सुधरी हुई स्थिति। मनुष्य स्वभावतः प्रगतिशील प्राणी है। वह बुद्धि के प्रयोग से अपने चारों ओर की प्राकृतिक परिस्थितियों को निरन्तर सुधारता और उन्नत करता रहता है। ऐसी प्रत्येक जीवन पद्धति, रीति नीति, रहन सहन, आचार विचार, नवीन अनुसंधान और आविष्कार जिनसे मनुष्य पशुओं और जंगलियों के दर्जे से ऊंचा उठता है तथा सभ्य बनता है सभ्यता और संस्कृति का अंग है।[6] सुमित्रानंदन पंत ने संस्कृति के अंतर्गत जीवन के सूक्ष्म स्थूल धरातलों के सत्यों का समावेश मानते हुए उसमें ऊर्ध्व चेतना शिखर का प्रकाश और समदिक् जीवन की मानसिक उपत्यकाओं की छाया का गुम्फन होने का मत व्यक्त किया है। उनके शब्दों में उसके भीतर अध्यात्म, धर्म नीति से लेकर सामाजिक रूढ़ि रीति तथा व्यवहारों का सौन्दर्य भी एक अंतर सामंजस्य ग्रहण कर लेता है।[7] डॉ० भगवत शरण उपाध्याय के मतानुसार संस्कारजन्य स्वभाव ही संस्कृति है, संस्कृति संस्कार जन्य स्वभाव का नाम है। यह मानव जीवन की समस्त आकांक्षा साधना, आचार विचार एवं उपलब्धियों का सर्वोत्तम रूप है। यह समूचे मानव-जीवन की वह क्रिया है जो उसे समस्त बुराइयों से दूर कर शुद्धि की ओर ले जाती है।"[8] डा० केसरी नारायण शुक्ल के शब्दों में संस्कृति

---

1 भारतीय संस्कृति, पृ० 17
2-3 संस्कृति के चार अध्याय, पृ० क्रम० 651, 653
4 कल्याण हिन्दू संस्कृति अंक, पृ० 35
5 'भारतीय संस्कृति का प्रवाह पृ० 1
6 भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ० 12
7 'उत्तरा, पृ० 15
8 'सांस्कृतिक भारत', पृ० 8

से अभिप्राय है ''व्यक्ति' जाति अथवा राष्ट्र आदि के जीवन व्यापार की वे बातें जिनसे उसके आचार विचार, कला कौशल बौद्धिक विकास, सभ्यता आदि का परिचय मिल सके।''[1] डा० देवराज ने संस्कृति का दार्शनिक विवेचन शीर्षक कृति म संस्कृति की लगभग एक दजन परिभाषाएँ देकर प्रकारान्तर से 'संस्कृति की अपरिभाषेयता का ही उदघाटन किया है हा उनकी कुछ परिभाषाए इस प्रकार हैं—(क) ' संस्कृति का अर्थ है सृजनात्मक अनुचिन्तन उसका निर्माण उन क्रियाओं द्वारा होता है जिनके द्वारा मनुष्य यथार्थ की सार्थक किन्तु निरुपयोगी छवियों को सम्बद्ध चेतना प्राप्त करता है।' (ख) ''सामान्य रूप मे हम कह सकते हैं कि संस्कृति मानव जाति के सर्वग्राह्य आत्मिक जीवन रूपों की सृष्टि और उनका उपभोग है।'[2] (ग) किसी व्यक्ति की संस्कृति वह मूल्य चेतना है जिसका निर्माण उसके सम्पूर्ण शोध के आलोक म होता है। सांस्कृतिक चेतना जितनी मूल्य चेतना है उतनी ही तथ्य चेतना भी है।''[4] (घ) ' संस्कृति उस बोध को कहते हैं जिसका सार्वभौम उपभोग या स्वीकार हो सकता है और जिसकी विषय वस्तु सत्ता के वे पहलू है जो निर्वैयक्तिक रूप मे अर्थवान है।''[5] (ङ) संस्कृति उस क्रिया समूह का नाम है जिसके द्वारा विभिन्न व्यक्ति मानव जाति के सृजनात्मक जीवन मे भाग लेते हैं।[6]

कल्चर परिभाषा और स्वरूप

पाश्चात्य जगत म सभ्यता संस्कृति और सामाजिक राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध म अत्यधिक मात्रा में लेखन हुआ है अत भारतीय विद्वानों की संस्कृति सम्बन्धी प्राय एक जसी धारणाओं के विपरीत, पाश्चात्य विचारकों की संस्कृति (कल्चर) सम्बन्धी धारणाओं म भी परस्पर पर्याप्त वषम्य है। विलियम रमण्ड्स ने इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कि यूरोपीय लखकों की संस्कृति विषयक धारणाएँ प्रारम्भ से ही विवादास्पद और भ्रमपूर्ण रही हैं, इन धारणाओं को चार वर्गों में विभक्त किया है। प्रथम वग के विचारक विश्व मानवता क परिपूर्ण विकास का स्वप्न सँजोते हुए मानव के अस्तित्व के परिष्कार तथा सुधरी हुई आदतों के फलस्वरूप उपलब्ध हुई स्थिति को संस्कृति' स्वीकार करने के पक्षधर रह हैं जबकि द्वितीय वग के विचारकों की दृष्टि समग्र मानवता के स्थान पर किसी समाज विशेष पर केन्द्रित रही है और वे संस्कृति को 'किसी समाज विशेष के सदस्यों की बौद्धिक एव चारित्रिक दृष्टि से विकसित स्थिति' स्वीकार करते हैं। विचारकों के तृतीय वर्ग न किसी समाज के सदस्यों की बौद्धिक और कला

---

1 'सूर ब्रजभाषा कोश', 2/1640

2 6 दे० संस्कृति का दार्शनिक विवेचन, पृ०क्रम०29 29, 175 167, 207

त्मक उपलब्धियो को उसकी सस्कृति माना है तो चतुर्थ वर्ग के विचारक किसी समाज के रहन सहन की उस सम्पूर्ण रीति' को सस्कृति स्वीकार करने के पक्ष मे रहे हैं जिसमे उस समाज की भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी प्रकार की उपलब्धियाँ तथा मूल्य जुड़े रहते हैं।[1]

मैथ्यू आर्नल्ड की सस्कृति विषयक अवधारणाओ मे मानव के उत्कृष्टतम विकास और विश्व सस्कृति के निर्माण पर पर्याप्त बल दिया गया है। उन्होने एक ओर तो यह विचार व्यक्त किया है "जीवन को परिपूर्णतम बनाने के लक्ष्य से अनुप्रेरित होकर इससे घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित तथ्यो के विषय मे जो कुछ भी श्रेष्ठतम कहा अथवा विचारा गया है, उत्कंठापूर्वक उसका ज्ञान प्राप्त करना, और उस ज्ञानालोक का अपनी उन परम्परागत आदतो और धारणाओ पर, जिनका हम दृढ़तापूर्वक किन्तु मशीनवत अनुसरण करते हैं—निबंध या अबाध प्रवाह छोड़ना अर्थात इस ज्ञानालोक म उनका परिष्कार करना ही सस्कृति है। सस्कृति को पूर्णत्व की सकल्पना (स्टडी) बताते हुए उन्होने अन्यत्र कहा है कि वह या तो हम वास्तविक मानवीय पूर्णता या अखंडता के सम्बन्ध म विचार करने की ओर प्रेरित करती है अथवा मानवता के सभी अगो का सामरस्यपूर्ण विकास करते हुए निर्दोष या अखंड मानवता की ओर प्रेरित करती है, अथवा सामाजिक जीवन के सभी पक्षो को विकसित करते हुए उसको सामान्य पूर्णत्व की ओर अग्रसर करती है।[3] जेम्स हेस्टिग्ज ने भी आध्यात्मिक नतिक मूल्यो के विकास पर बल देते हुए बहुत कुछ इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की है सस्कृति सम्बन्धी अवधारणा (नाधार) को इतना व्यापक स्वीकार किया जाना चाहिए कि उसके अन्तर्गत मानव जाति के आध्यात्मिक जीवन सम्बन्धी समस्त पक्षो का अतर्भाव हो सके जिसम मानव जाति की बौद्धिक धार्मिक और नतिक जीवन सम्बन्धी अभिव्यक्तियाँ समाविष्ट हो। सस्कृति की सुस्पष्ट अभिव्यंजना मानव जाति द्वारा अपने आतरिक गुणो के प्रकाशन तथा स्वतन्त्र अस्तित्व के परिचायक प्रयत्नो म हुआ करती है।[4] पी० सोरोकिन ने भी सस्कृति का सम्बन्ध जीवन मूल्यो और आदर्शों से जोड़ते हुए कहा है कि विश्व के परा सगठन से सम्बन्धित सास्कृतिक पक्ष के अन्तर्गत नाना प्रकारीय अभिप्रायो मूल्यो और आदर्शों के पारस्परिक सम्बन्धों और अत

---

1 the concept of culture was from the beginning controvercial and often confused' Ency of Philosophy' Vol II p 273

2 3 See Culture and Anarchy P V p 11

4 See 'Ency of Religion and Ethics', Vol IV p 358

क्रियाओं के समाकालित एवं असमंजित खंडों का मिश्रण रहता है।[1] इस प्रकार की आदर्शवादी नैतिकता प्रधान धारणाओं का मार्क्सवादी विचारकों की ओर से तीव्र विरोध करते हुए कहा गया है कि संस्कृति के अंतर्गत निश्चय ही जीवन का भौतिक संगठन भी जुड़ा रहता है, अतः उसको मात्र अभिप्रायों और आदर्शों या मूल्यों के क्षेत्र तक ही परिसीमित नहीं किया जा सकता। संस्कृति का सम्बंध कल्पित अभिप्रायों और मूल्यों से जोड़ने की प्रवृत्ति की प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिष्ठित मार्क्सवादी लेखकों द्वारा संस्कृति के स्थान पर समाज शब्द का प्रयोग करने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है।[2] जिसका वे प्राय उसी अर्थ में प्रयोग करते हैं जिस अर्थ में संस्कृति शब्द का प्रयोग किसी समाज की भौतिक और बौद्धिक उपलब्धियों और उनसे सम्बंधित मूल्यों के अर्थ में किया जाता है। इस संदर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि मूलतः मानविकी शास्त्रों के अध्ययन अध्यापन से सम्बंधित होते हुए भी अमरिका में नर विज्ञान के डीन क्लाइबर तथा समाजशास्त्र के डीन टालकट पारसंज, के विभागों द्वारा क्रमश 'सांस्कृतिक पद्धतियों' तथा 'सामाजिक ढाचो' के सिद्धांतों में आस्था रखने के कारण दोनों विभागों में परस्पर लम्बी छीटाकशी होती रही है और (सन 1958 से पूर्व) ये दोनों विभाग 'संस्कृति' और 'समाज' जैसे लगभग पूर्ण समानार्थी, शब्दों के सम्बंध में एक दूसरे के दृष्टिकोण को स्वीकृति नहीं दे सके थे।[4] कहना न होगा कि यह मत वभिन्य संस्कृति और समाज' शब्दों के अभिप्राय को संकुचित अर्थों में ग्रहण करने का ही प्रतिफलन रहा है अन्यथा मूल तत्वों की दृष्टि से तो किसी समाज के सांस्कृतिक अध्ययन में भी प्राय उन्हीं तथ्यों का विवेचन विश्लेषण करना अपेक्षित रहता है, जो उस समाज का सामाजिक अध्ययन' प्रस्तुत करते हुए अपेक्षित रहता है। हमारे शोध ग्रंथ में भी आवश्यकतानुसार यत्र तत्र 'सामाजिक सांस्कृतिक' शब्द युग्म का प्रयोग

---

1 The cultural aspect of the supersonic universe consists of meanings values norms, their interaction and relationships their integrated and unitegrated groups Quoted in A Dict of the Soc sciences', p 166

2 ' Culture inevitably includes the material organization of life and can not be continued to the area of meanings and values " Ency of Philosophy' Vol II, p 274

3 ' although word society a relatively modern term with a general meaning then becomes virtually indentical with culture and in the more videly used term within the authentic Marxist tradition " Ibid p 274

4 see International Ency of Social sociences', Vol III, p 528

किया गया है जो चिट्ठी पत्री जैसा समानायक ही है।

'सस्कृति' शब्द को उसके मात्र आदर्शों मूल्यो अभिप्रायो सम्ब धी सीमित अर्थ के क्षेत्र स निकालकर व्यापक सामाजिक जीवन का समानार्थी बनाने की दिशा म नर विज्ञानियो या नृ शास्त्रियो की प्रमुख भूमिका रही है। सुप्रसिद्ध नर विज्ञानी ई० बी० टायलर का इस दिशा म ऐतिहासिक महत्व रहा है क्योकि जहाँ एक ओर मथ्यू आनल्ड की सन 1869 म प्रकाशित कल्चर एण्ड एनार्की शीर्षक कृति म सस्कृति को मानवता के परिपूर्णतम विकास और 'उत्कृष्टतम स्थिति' का पर्याय सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है वहीं टायलर की सन 1871 म प्रकाशित प्रिमिटिव कल्चर शीर्षक कृति म सस्कृति और सभ्यता का अभिन्न स्वीकार करते हुए सस्कृति की अपेक्षाकृत पर्याप्त व्यापक परिभाषा प्रस्तुत की गयी है, 'अपन प्रजाति विज्ञान सम्ब धी अर्थ म सभ्यता या सस्कृति सामाजिक जीवन के अनेक सश्लिष्ट तत्त्वों की वह सहिति है जिसमे किसी समाज के सदस्यो के ज्ञान विश्वास कला आचार कानून और रिवाजों के साथ साथ उनकी वे क्षमताए और आदतें भी सम्मिश्रित रहती हैं जिन्ह वे उस समाज का सदस्य होने के फलस्वरूप अर्जित करत हैं।'[1] मथ्यू आनल्ड ने सर्वोत्कृष्ट के अध्ययन मनन स प्राप्त ज्ञानालोक द्वारा परम्परागत आदतो को बदलने या परिष्कृत करने के तथ्य को सस्कृति का मूलाधार सिद्ध करन का प्रयास किया था जबकि एफ० बाज की परिभाषा म सस्कृति का मूलाधार परम्परागत आदतें ही स्वीकार की गयी हैं सस्कृति म किसी समुदाय के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष व्यवहार की समस्त प्रकारीय आदतो का सम्मिश्रण रहता है। उसम व्यक्ति पर सम्ब धित समुदाय की आदतो के पड प्रभावो की प्रतिक्रियाए तथा इन आदतो द्वारा नियन्त्रित मानव आचरणो के परिणाम या उपलब्धिया सम्मिलित रहती हैं[2] आनल्ड और बोज के दृष्टि भद के विषय म कहा जा सकता है कि आनल्ड सस्कृति कसी होनी चाहिए? तथ्य के उदगाता हैं जबकि बोज ने सस्कृति कैसी होती है के तथ्य का स्पष्टीकरण किया

---

1 'Culture or civilization taken in its enthonographic sense is that complex whole which includes knowledge belief art morals law customs and any other capabilities and habits acquired by man as a member of society' 'Primtive Culture \ VII p 7

2 'Culture embraces all the manifestations of social habits of community the reactions of the individuals as affected by the habits of the group in which he lives, and the products of human activities as determind by these habits Quoted in A dictionary of social sciences p 166

है। एफ० आर० कोवेल की परिभाषा म इन दोना ही दृष्टियो का समन्वय विद्य मान है, 'संस्कृति मौखिक रूप म परम्पराओ तथा वस्तु रूप म पुस्तक आदि भावाभिव्यक्ति के माध्यमो द्वारा सक्रमित होने वाली वह स्थिति है, जो जीवन की अपक्वता और आदर्शों म गुणात्मक वृद्धि करती है क्योंकि उससे सत्य, सौन्दर्य और नतिकता सम्बन्धी मूल्यो या गुणों की सरचना, उनकी गतिशील अनुभूति प्रशसापरक दृष्टि का विकास तथा उनकी सप्राप्ति सभाव्य बनती है।"[1] आर० लिंटन न संस्कृति को व्यापक अथ म तो मानव जाति द्वारा वशानुक्रम स उपलब्ध हुई सम्पूर्ण सामाजिक विरासत का पर्याय स्वीकार किया है जबकि उसके सीमित अर्थ म परिष्कृत सामाजिक व्यवहारो की विरासत मात्र' को ही संस्कृति मानने की धारणा व्यक्त की है। सी० एम० जोड ने संस्कृति को 'नाना समस्याओं के बुद्धिमत्तापूर्ण समाधान की परम्परागत रीतियों का समवाय' स्वीकार किया है।[3] मलिनाउस्की की व्यापक परिभाषा म उचित ही इस तथ्य को रेखांकित किया गया है कि संस्कृति उस सामाजिक विरासत को कहते हैं जिसके अभाव म किसी सामाजिक सगठन की कल्पना ही नही की जा सकती। संस्कृति के अतगत परम्परा प्राप्त कला-कौशल जीवनोपकरण यान्त्रिक प्रक्रियाएँ, विचार (दृष्टि) आदर्श और मूल्य समाविष्ट रहते हैं।[4] मकाइवर और पेज के अनुसार 'सामाजिक जीवन के दैनन्दिन अन्तसम्बन्धों म अभिव्यजित होने वाला हमारा वह स्वभाव (व्यवहार की रीति) और विचार धारा ही संस्कृति है जिसको हम कला साहित्य, धर्म, मनो विनोद और आनन्दानुभूति के सदर्भों म व्यक्त करते हैं। टी० एस० इलियट ने यह भाव व्यक्त किया है कि संस्कृति किसी स्थान विशेष के जन समूह की वह जीवन प्रणाली होती है, जो उसकी कलाओं सामाजिक सरचना, आदतो और रीति रिवाजो तथा धार्मिक आचरण म अभिव्यजित हुआ करती है।[5] हाँ, जसे किसी

---

1 Culture in private and public life', p 105
2 The study of man , R Linton, p 78
3 "Culture consists of traditional ways of solving problems × × × in brief culture consists of learned problem, solutions ' Quoted in 'A dict of Soc Sciences', p 166
4 Culture comprises inherited artifacts, goods technical processes ideas habits and values Social organization can not be really understood except as a part of culture" Quoted in Ency of Social Sciences' Vol III & IV p 621
5 Culture is the expression of nature in our modes of living and of thinking in our every day intercourse in art in literature in religion, in recreation and enjoyment 'Society', p 449

व्यक्ति को विभिन्न शरीरांगों का वर्गीकृत जोड नहीं कहा सकता, उसी प्रकार संस्कृति भी, कलाओं रीति रिवाजो और धार्मिक विश्वास आदि की सहिति मात्र नहीं होती।[1] जिमरमन ने संस्कृति के अंतर्गत प्राकृतिक शक्तियों का प्रमुख योगदान दिखाते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि मानव जाति द्वारा प्रकृति की सहायता, सलाह और सहमति से उत्पन्न या आविष्कृत किये गये उन तरीकों की सहिति को संस्कृति कहते हैं जिनके फलस्वरूप मनुष्य को अपने ध्येयों की सम्प्राप्ति म सहायता मिलती है।[2]

पाश्चात्य विद्वानों की संस्कृति सम्बन्धी अवधारणाओं को लेखक द्वय ए० एल० क्रोइबर तथा क्लक्होन ने निम्नलिखित छह वर्गों म विभक्त किया है —

(1) गणनात्मक विवरणात्मक परिभाषाए—जैसे टाइलर और बोज आदि विद्वानों की परिभाषाए।

(2) ऐतिहासिक परिभाषाए—जैसे आर० लिंटन की परिभाषा।

(3) आदर्शपरक (नोर्मेटिव) परिभाषाए—जैसे आनल्ड और सोरोकिन की परिभाषाएँ।

(4) मनोवैज्ञानिक परिभाषाएँ—जैसे सी० एस० फोर्ड की परिभाषा अथवा जी० रोहीम की यह परिभाषा कि 'संस्कृति का अभिप्राय है उदात्तीकृत भावनाओं का समूह समस्त प्रतिस्थानापन्न स्थितियाँ या प्रतिक्रियात्मक सृष्टियाँ। संक्षेप मे सामाजिक जीवन की वे समस्त स्थितियाँ जिनकी संतुष्टि मनोलालसाओं के प्रकटन और उनकी विलयीकृत अभिव्यक्ति से सम्बन्धित रहती है उनकी सहिति ही संस्कृति कहलाती है।'

(5) संरचनात्मक परिभाषाएँ—जैसे क्लक्होन और केली की यह परिभाषा '*संस्कृति ऐतिहासिक रूप मे प्राप्त सामाजिक जीवन की व्यक्त और अव्यक्त* पद्धतियों का वह ढाँचा है जिसम उनके सभी सदस्य अथवा किसी समुदाय विशेष के सदस्य भाग लेते हैं।'

(6) उद्भवात्मक (जनेटिक) परिभाषाए—जैसे एल० जे० कर की यह परिभाषा की 'परम्परागत सामाजिक व्यवहारों के सक्रमण योग्य परिणामों की

---

1 "By culture I mean first of all the way of life of a particular people living together in one place so the culture is more than assemblage of its arts customs and religious beliefs Notes towards the definition of culture ■ 120

2 Culture is the sum total of all devices produced by man, with the aid advices and consent of nature to assist him *in the attainment of his objectives'*
Introduction to world resources' p 165

संहिति ही संस्कृति है।'

संस्कृति की एक सौ साठ प्रसिद्ध परिभाषाओं को उपर्युक्त छह वर्गों में समाकलित करते हुए क्रोइबर और क्लकहोन ने स्वय भी इन सभी परिभाषाओं मे अभिव्यजित विचारों का समाहार करते हुए, 'संस्कृति' सम्बन्धी अवधारणा को निम्नलिखित व्याख्यात्मक सी परिभाषा द्वारा स्पष्ट करने का प्रयास किया है—

'संस्कृति प्रकट प्रच्छन्न सामाजिक व्यवहार की वे पद्धतियाँ हैं जिन्हें व्यक्ति नाना प्रतीक चिह्नों द्वारा (पूर्वजों से) ग्रहण और (वशजो म) सक्रमित करता है। उसम समुदाय विशेष की वे विशिष्ट उपलब्धियाँ भी सम्मिश्रित रहती हैं जिनकी उसके जीवनोपयोगी उपकरणो म अभिव्यक्ति होती है। संस्कृति के केन्द्रबिन्दु ऐसे परम्परागत प्रत्यय या आदश होते हैं, जिन्ह ऐतिहासिक रूप मे परीक्षण और अनुभव की कसौटी पर खरे उतरने की दशा मे चुना और अपनाया जाता है। इन चयनीकृत परम्परागत प्रत्ययो (विश्वासो) से भी अधिक महत्त्व उनसे जुडे हुए मूल्यो की होती है। सास्कृतिक पद्धतियाँ अथवा रीतियाँ एक ओर तो नाना प्रकार की क्रियाओ का प्रतिफलन होती हैं जबकि दूसरी ओर वे भावी क्रियाओ की दिशा भी निर्धारित करती हैं।[1]

भारतीय और पाश्चात्य विचारको द्वारा प्रदत्त संस्कृति सम्बन्धी उपर्युक्त परिभाषाओ पर युगपत् रूप म विचार करें तो उनसे क्रमश निम्नांकित सास्कृतिक तत्त्व उभरते हैं—

भारतीय विचारक—जीवन को समझने की विवेक बुद्धि, जीवन सिद्धात या दृष्टिकोण (स० रा० कृ०) मानवता की दृष्टि से प्रेरणास्पद आदर्शों की समष्टि (म दे० शास्त्री), जीवन की समस्याओ से सम्बन्धित दृष्टिकोण (सम्पूर्णानंद) जीवन के प्रति दृष्टिकोण (के० एम० मुशी) मानसिक उन्नति की सूचक कृतियाँ (मग० दास) जीवन के नानाविधि रूपो का समवाय या जीने का ढग (वा० श०

---

1 Culture consists of patterns explicit and implicit of and for behaviour acquired and transmitted by symbols, constituting the distinctive achievements of human groups including their embodiments in artifacts, the essential core of culture consists of traditional (i e historically derived and selected) ideas and especially their attached values culture systems may, on the one hand, be considered as products of action on the other hand as conditioning elements of further action '

A Dict of the Soc Sciences, 'A L Kroeber and C Kluckhohn', p 165

अग्र०), आचार विचार रुचि अरुचि कला सगीत भोजन छादन और आध्यात्मिक धारणाओ सम्बन्धी परम्परागत प्रभाव (रा० साकृ०), मानव समाधानो की सर्वोत्तम परिणति अथवा सभ्यता के मुख्य स्तभो का समवाय (ह० प्र० द्वि०), जिन्दगी का तरीका (दिनकर), जीवन के लौकिक पारलौकिक, आर्थिक, राजनीतिक विकास की साधक सम्यक चेष्टाओ का समूह (करपात्री जी), विचार और कर्म के क्षेत्र म बुद्धिमत्तापूर्ण सृजन (स० ह्री० वि०), उत्तम या सुधरी हुई जीवन दशा (हरि० वेदा०), जीवन के सूक्ष्म स्थूल धरातलो की समष्टि (पत) सस्कारित मानव जीवन की उपलब्धियो का सर्वोत्तम रूप (भग० श० उपा०), आचार विचार कला कौशल बौद्धिक विकास और सभ्यता सम्बन्धी जीवन व्यवहार (के० ना० शुक्ल) साधक कि तु निरुपयोगी क्रियाओ की सहिति सर्वग्राह्य आत्मिक जीवन रूपो की पुष्टि और उपभोग सार्वभौमिक उपयोग के योग्य बोध (देवराज), सामाजिक जीवन के विविध क्रियाकलाप आदर्शों, सभ्यता और सस्कारो की सहिति (राजकिशोर)।

पाश्चात्य विचारक—जीवन की परिपूर्णता हेतु परपरित आचार विचारो की नये ज्ञानालोक द्वारा परिष्कृत स्थिति मानवता के सर्वांगीण विकास की प्रेरक शक्ति (मथ्यू आ०) बौद्धिक आत्मिक, आध्यात्मिक और नैतिक गुणो की समष्टि (हेस्टिंग्स), ज्ञान विश्वास कला, आचार, न्याय, रिवाज और आदतो की सहिति (टायलर), सामाजिक व्यवहार की आदतें और उन आदतो द्वारा नियत्रित क्रिया प्रतिक्रियाएँ (एफ० बोआ), जीवन की सार्थकता की गुणात्मक वृद्धि म सहायक परम्परागत विरासत (कोवेल), परम्पराप्राप्त सामाजिक विरासत (लिंटन), समस्याओ के बुद्धिमत्तापूर्ण समाधान की परम्परागत रीतियो का समवाय (फोर्ड) कला कौशल, जीवनोपकरण विचारो आदतो यात्रिक क्रियाओ और जीवन मूल्यो सम्बन्धी सामाजिक विरासत (मलिनाउस्की), कला, साहित्य धर्म और मनोविनोदादि के सदर्भ म अभिव्यजित आचार विचार (मकाइवर पेज), परीक्षा और अनुभवो पर आधारित परम्परागत अभिप्रायो मूल्यो और आदर्शों के पारस्परिक अतसम्बन्धो और प्रतिक्रियाओ की समजित असमजित स्थिति (सोरोकिन), परम्परागत व्यवहारों के सक्रमण योग्य परिणामो का समूह (एल० जे० कर), स्थान विशेष के निवासियों की जीवन प्रणाली (इलियट) उदात्तीकृत भावनाओ की सहिति अथवा लालसाओ की विरूपीकृत सतुष्टि स सम्बन्धित प्रतिक्रियात्मक सष्टियाँ (जी० रोहीम), ऐतिहासिक रूप म प्राप्त जीवन की प्रकट प्रच्छन्न पद्धतियो का साँचा (क्लकहोन और केलो) मानव क्रियाओ मे प्रतिफलित व्यक्त अव्यक्त सामाजिक व्यवहारो की सक्रमणशील पद्धतियों की वह सहिति जिसका केन्द्रबिन्दु परीक्षा और अनुभवो पर आधारित आदर्शों से जुडे जीवन मूल्य होते हैं (क्रोइबर, क्लकहोन)।

पौरस्त्य एवं पाश्चात्य विचारकों के उपर्युक्त अभिमतों पर युगपत रूप में दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि अधिकांश विचारकों ने उसे 'जीवन प्रणाली' अथवा 'जीवन सम्बन्धी' दृष्टिकोण का पर्याय स्वीकार करते हुए उसके निर्माण में परम्परा प्राप्त आचार विचार रीति रिवाज, आस्था विश्वास तथा भौतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों का हाथ दिखाया है। इन परिभाषाओं से संस्कृति के स्वरूप के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य भी उभरते हैं—

(क) संस्कृति सामाजिक जीवन को अधिकाधिक परिष्कृति और समुन्नति की ओर उन्मुख करती रहती है।

(ख) स्वीकृत सांस्कृतिक मान्यताओं के मूल में विविध प्रकारीय परीक्षणों और पूर्वानुभवों का हाथ रहता है और ये मान्यताएँ एक प्रकार से विविध सामाजिक समस्याओं के सर्वश्रेष्ठ समाधानों का सम्पुञ्ज होती हैं।

(ग) सांस्कृतिक मान्यताओं को परम्परागत आदर्शों मूल्यों के रूप में ग्रहण करके उन्हें भावी पीढ़ियों में संक्रमित करने की नैसर्गिक प्रक्रिया अनवरत प्रवहमान रहती है।

(घ) सांस्कृतिक क्षेत्र में नये ज्ञानालोक द्वारा परम्परागत मान्यताओं में आवश्यकतानुसार परिष्कार या सुधार करने की प्रक्रिया भी चलती रहती है।

(ङ) संस्कृति का सम्बन्ध नाना प्रकार के सामाजिक कार्यों और भौतिक उपलब्धियों की अपेक्षा अपितु मूलत सामाजिक कार्यों और भौतिक उपलब्धियों सम्बन्धी दृष्टिकोण, आदर्शों और मान मूल्यों के साथ रहता है।

(च) संस्कृति के अंतर्गत किसी समाज की नैतिक बौद्धिक, मानसिक, आध्यात्मिक, आर्थिक राजनीतिक और कलात्मक उपलब्धियाँ तथा नाना प्रकार के रीति रिवाज, आचार विचार और आस्था विश्वास समन्वित रहते हैं।

इन सभी तत्त्वों का समन्वय करते हुए 'संस्कृति' शब्द से ध्वनित अवधारणा को हम इन शब्दों में परिभाषित कर सकते हैं कि सामुदायिक जीवन की अधिकाधिक पूर्णता की दृष्टि से किसी समाज के सदस्यों द्वारा अनेक प्रकार के निरीक्षण परीक्षणों के फलस्वरूप विकसित-अर्जित भौतिक बौद्धिक नैतिक, मानसिक आध्यात्मिक आर्थिक, राजनीतिक और कलात्मक उपलब्धियाँ तथा उनके जीवन और जगत सम्बन्धी आस्था विश्वास आचार विचार आदर्श और मूल्यों की *समयानुकूल परिवर्तनमयी परम्परागत विरासत की संहिति ही* उस समुदाय या समाज विशेष की संस्कृति कहलाती है।

सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्ष

संस्कृति की परिभाषा से स्पष्ट है कि वह एक ऐसी व्यापक अवधारणा है जिसमें सामाजिक जीवन की नाना प्रकार की उपलब्धियाँ और उनसे सम्बन्धित

आस्था विश्वास, आचार विचार, रीति रिवाज और जीवनादर्शों का समन्वय रहता है। सस्कृति समाज सापेक्ष अवधारणा है, अत उसका अध्ययन भी किसी समाज विशेष के परिप्रेक्ष्य म किया जाता है। रूथ बैनेडिक्ट ने उचित ही कहा है कि "किसी ने मूल्याकन का कोई ऐसा यथार्थ माप नही निकाल लिया है जिससे सभी सास्कृतिक लक्ष्यो को श्रेष्ठ और हीन म विभाजित किया जा सके। प्रत्येक जाति उन मूल्यो और सवेदनाओ का सम्मान करती है, जिनकी वह आदी है और जिन लोगो म उनकी कमी है उनका तिरस्कार करती है। वह अपने जीवन आचरण को उचित महत्त्व देने की अधिकारिणी तो है, पर अन्य सस्कृतियो का अवमूल्यन भ्रम पर आधारित होता है।"[1] भारतीय समाज की सरचना की दृष्टि से प्रस्तुत सास्कृतिक अध्ययन का निम्नाकित अध्यायो म विभाजन उचित समझा गया है—

1 सामाजिक सघटन तथा सामान्य रहन सहन सम्बन्धी नवीन चेतना।

2 पारिवारिक एव नारी जीवन सम्बन्धी नवीन चेतना।

3 धार्मिक आस्था विश्वास और नैतिक आध्यात्मिक मूल्यो सम्बन्धी नवीन चेतना।

4 अर्थोपार्जन के माध्यमों तथा देश की आर्थिक दशा सुधारने सम्बन्धी नवीन चेतना।

5 देश भक्ति, स्वतन्त्रता जनतन्त्र आदि राजनैतिक तथ्यो सम्बन्धी नवीन चेतना।

6 साहित्य, कला और विज्ञान सम्बन्धी नवीन चेतना।

उपर्युक्त अध्यायो म विवेचित विभिन्न तथ्यो के सम्बन्ध म यह निवेदन अप्रासगिक न होगा कि उसका आधार प्राधान्येन व्यपदेशा भवन्ति का सूत्र रहा है। अभिप्राय यह है कि यद्यपि वे तथ्य अन्य अध्यायो मे विवेचित तथ्यो से अतसम्बन्धित होने के कारण किसी अन्य अध्याय मे भी शामिल किये जा सकते थे, तथापि हम उनका प्रस्तुत रूप मे विवेचन करना ही अधिक समीचीन प्रतीत हुआ है।

---

1 'मानव सस्कृति और समाज', अनु० रामानुजलाल श्रीवास्तव पृ० 189 90

प्रथम अध्याय

सामाजिक सघटन तथा सामान्य रहन-सहन

(क) वर्णाश्रम व्यवस्था

सामाजिक सघटन की दृष्टि से भारतीय सस्कृति की वण व्यवस्था उसकी एक ऐसी निजी विशिष्टता रही है जिसका विश्व के किसी भी देश की सस्कृति म पूण सादश्य परिलक्षित नही होता, यद्यपि कभी फारस, रोम और जापान म भी ज म और व्यवसाय पर आधारित जाति "यवस्था का प्रचलन अवश्य रहा था।[1] यूनान मे प्लेटो ने भी अपने कल्पित आदश गण राज्य मे भारतीय वण "यवस्था से पूणत सादश्य रखने वाले चार वर्गों के अस्तित्व पर बल दिया था कि तु वह यूनान की सामाजिक "यवस्था म वस्तु रूप म क्रिया वित नही हो सका। प्लेटो द्वारा आदश गणराज्य को विधान निर्माताओ योद्धाओ, व्यापारियों और चमकार आदि शिल्पिया के चार वर्गों मे विभक्त करने और प्रत्यक वग द्वारा उस वग के लिए निर्धारित कर्मों को ही करने के तथ्य पर बल दन के तर्कों को पढ़ते हुए एसा प्रतीत होता है मानो कोई भारतीय स्मतिकार ही वण "यवस्था के अगभूत चार वर्णों के कर्मों की औचित्य सिद्धि कर रहा है। प्लेटो का सर्वोच्च वग विधान निर्माताओ का है जो ब्राह्मणो का तथा द्वितीय वग योद्धाओ का है जो क्षत्रिया का पर्याय प्रतीत होता है। इसी प्रकार व्यापारी वग वश्यो का तथा चमकार आदि का वग शूद्र वण का पर्याय लगता है। प्लेटो यह भी नही चाहता था कि कोई एक वग अपने निर्धारित कत्तव्य कर्मों को छोडकर, दूसरे वग के लिए निर्धारित कर्मों म भाग लेकर राज्य के लिए हानिप्रद गडड मडड की स्थिति पैदा करे[2], जो स्पष्ट ही

1 दे० 'धर्मशास्त्र का इतिहास', 'डा० पी० वी० काणे, अनु० अजुन चौबे काश्यप भा० I, पृ० 109

2 But when a cobbler or any other man whom nature disigned to be a trader, having his heart lifted up by wealth or strength or the number of his followers attempts to forc- his way, into the class of warriors or a warrior into that of legislator or when one man is trader legislator and warrior all in one, then I think you will agree with

भारत की वण व्यवस्था मे चातुवण्य के लिए निर्धारित कत्तव्य कर्मों स सगति रखता है। कहा जा सकता है कि प्लेटो भी सामाजिक हित की दष्टि से समाज का चार वर्गों म विभाजन करने के उसी निष्कप पर पहुचे थे जिसको भारतीय आय पहले ही अपना चुके थे। हा आरभ मे कर्मों पर आधत रही यह वण व्यवस्था जब शनै शन जन्मना आधृत हो गयी और अनेकानेक जाति उपजातियो के विकास के साथ ही छुआछूत की कट्टर धारणा भी जोर पकड गयी, तो भारतीय समाज को इस व्यवस्था से बहु प्रकारीय हानिया होने लगी। आधनिक काल के आरभ तक चतुवण व्यवस्था के विरुद्ध ऐसा विरोधी वातावरण निर्मित हो चुका था कि आधुनिक काव्य प्रणेताओ मे से परम्परावादी कवियो तक ने वण व्यवस्था म आवश्यक सुधार परिष्कार कर लेने की चेतना व्यक्त की है।

(अ) परपरावादी कवियो द्वारा परिष्कृत वण-व्यवस्था का समथन

वणाश्रम व्यवस्था के चतुवर्णों का प्राय पौराणिक कथानका पर आधारित काव्य कृतियो म ही उल्लेख मिलता है और कवियो की दष्टि इस व्यवस्था की आधुनिक काल म प्रासगिकता या उसके औचित्य अनौचित्य के उदघाटन उसकी निरथकता अथवा उपयोगिता उसम समयानुकूल परिवतन करने की आवश्यकता आदि तथ्यो की ओर रही है। आधुनिक काल के परिवेश म, जबकि समतावादी जनात्मक मूल्य निरन्तर अधिकाधिक स्वीकृति प्राप्त करते जा रहे हैं वण व्यवस्था क पुनरुत्थान की चर्चा करना एक प्रकार का प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण ही प्रतीत होता है किन्तु वह इस तथ्य का भी प्रमाण है कि बीसवी शती म भी भारतीय समाज का एक अश वण व्यवस्था को सवथा मिटा देने का समथक नही है। आधुनिक काल के अपेक्षाकृत परम्परावादी कवि बलदेव प्रसाद मिश्र गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश और मथिलीशरण गुप्त ने यद्यपि वण व्यवस्था का समथन किया है तथापि उन्होने भी उसके परम्परागत स्वरूप के स्थान पर उसक परिष्कृत स्वरूप का अपनाने पर बल दिया है। इन कवियो न वण व्यवस्था पर किय गये आक्षेपो के निराकरण का भी प्रयास किया है। उदाहरण के लिए मिश्र जी ने वण व्यवस्था के उदभव को ऋग्वेद के पुरुष सूक्त की तरह दवी विधान मानने के स्थान पर तदथ महाभारत के उस श्लोक का आश्रय लिया है जिसमे कहा गया है कि आर्यों ने

---

me in saying that this inter change and this meddling of one with another is the ruin of the state It is necessary for good administration in a state that all people should do their own business and they should not be allowed to intermeddle with one another' 'Republic' Plato, p 154

सात्विक, रजस और तमस वत्तियो के आधार पर अपने समुदाय को क्रमश ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के तीन वर्गों म विभक्त कर लिया था और उसमे अनार्यों को भी मिलाकर समाज के सदस्यो को चार वर्णों म सघटित कर दिया था। चतुथ वण म किसी एक गुण की प्रधानता नही होती, अपितु तीनो ही गुणो की समन्वित स्थिति विद्यमान रहती है।[1] कवि का तक है कि चूकि इस विभाजन का मूलाधार लोक रक्षा या लोक कल्याण की भावना थी "है पालना अत श्रेष्ठ निज जातीय धम ही।"[2]

चारो वर्णों के पारस्परिक सौमनस्य की दृष्टि से मिश्रजी का तक है कि समाज रूपी शरीर के इन चारो अगो के धम अर्थात कत्तव्य पृथक पृथक होते हुए भी समाज की रक्षा की दृष्टि स इन सभी वर्णो की उपयोगिता है। समाज के सदस्यो का जन्म अथवा कम किसी भी आधार पर विभाजन क्यो न किया जाये जहाँ कहीं पर भी विषमता होगी, वहा वग विभद हो जाना अर्थात् कर्मो अथवा धन के आधार पर उच्च, माध्यम या निम्न वर्गों का बन जाना सवथा स्वाभाविक है। इसी दृष्टि से वे वण-व्यवस्था को अहितकर न मानत हुए कहते हैं— 'वण धम रहा हेतु सामाजिक विकास का/धम आश्रम का शस्त्र वैयक्तिक विकास म।'[3] राम राज्य की इस घटना क प्रति सम्प्रति निंदापरक चेतना विकसित हुई है कि उन्होने तपोरत शम्बूक (शूद्र) की हत्या का अमानवीय आचरण किया था। मिश्र जी न इस घटना का परिणत युग बोध के अनुरूप यह पुनराख्यान किया है कि राम ने वास्तव मे ही शम्बूक की हत्या नही की थी अपितु वर्णाश्रम व्यवस्था की दृष्टि स शम्बूक के अनुचित भावो अर्थात तप करके स्वग पाने की इच्छा का निग्रह मात्र किया था, जो सामाजिक योग क्षेम की दृष्टि से आवश्यक था—'उसके भावो के निग्रह को, कवि न दी हत्या की सज्ञा/यह निग्रह ही जिला सका था, नवल स्वस्थ चिंतन की प्रज्ञा।'[4] हमारी वर्णाश्रम व्यवस्था मे नैतिक आध्यात्मिक तथा निवत्तिपरक मूल्यो पर बल देने के तथ्य को आधुनिककालीन परिस्थितियो की दृष्टि से अहितकर मानते हुए, गिरीश चन्द्र शुक्ल गिरीश' ने उसम असुर सस्कृति के भौतिकतावादी मूल्यों का भी समन्वय कर लेने की चेतना व्यक्त करते हुए लिखा है, 'दानव का सहयोग अगर वर्णाश्रम पाता/तो उसका वर वण और भी दीप्त दिखाता।'[5] स्पष्ट हो कवि का सकेत इस तथ्य की ओर है कि हमारी

---

1 "सत्त्वाधिको ब्राह्मण स्यात् क्षत्रियस्तु रजोधिक
तमोधिको भवेत वश्य गुण साम्यात्तु शूद्रता।" उद० 'हमारी पर०', स० वियोगी हरि, पृ० 339

2 4 'राम राज्य', पृ० 121, 123, 137

5 'तारक वध, पृ० 552

वर्णाश्रम व्यवस्था की निवत्तिपरक आध्यात्मिक मा यताए हिंस क्रूर तथा भौतिकतावादी मूल्यो मे विश्वास करने वाली जातियो स हुई टक्करो म विफल ही सिद्ध हुई हैं।

(आ) जाति पाँतिगत भेदभाव मिटाने विषयक चेतना

परम्परावादी कवियो द्वारा वण और जातिगत भेद भावों म आंशिक परिष्कार सुधार कर लेने अथवा उनकी औचित्य सिद्धि किये जान पर भी अधिकाश कवियों द्वारा जातिगत भेद भावो को सवथा ही मिटा डालने की चेतना व्यक्त की गयी है। नाथूराम शर्मा शकर ने जाति पाँति गत भेद भावो को मिटा दने की अभिलाषा व्यक्त की है[1] तो पत ने भारतमाता का कलक यह जाति-पाँतियों म जन खंडित'[2] का भाव व्यक्त करते हुए भारतीय समाज रूपी वक्ष के 'झरें जाति कुल वण पण घन'[3] की चेतना व्यक्त की है। उन्होने लोकायतन म भी 'जाति वण के टूटें ब धन'[4] की आवश्यकता पर बल देते हुए वर्णाश्रमी पुरातन सस्कृति की इन शब्दो मे भत्सना की है, 'कौन रहे इस क्रूर सभ्यता के सत्यापव/यह जन नरक कलक मनुजता का भू पातक।[5] दिनकर ने जाति जाति रटते जिनकी पूँजी केवल पाखड[6] अथवा जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर[7] के रूप म जाति गत ऊँच नीच की धारणा पर करारी चोट की है। उनके द्वारा कण के मुख से व्यक्त कराये इन उद्‌गारो मे महाभारत कालीन समाज की नही अपितु आधुनिक युग चि तन की धड़कन ही स्पदित हो रही है कि—' धस जाए वह देश अतल मे गुण की जहाँ नही पहचान/जाति गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान।'[8]

कवि का निजी परामश भी यह रहा है ऊँच-नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है।'[9] अ य कवियो म जग नाथ प्रसाद मिलि द ने तो यह चेतावनी दी है, कि ऐसे लोग उच्च जो कहला रहे हैं ज म के सयोग से' यदि वे युग की हुकार सुनकर, 'दलित आहत मनुजता' की समता का जयनाद नही करेंगे तो ऐसे दभी कीडो का 'धूल मे मिलना सुनिश्चित' है।[3] शिवमगल सिंह सुमन ने मानवता के

1 'अनुराग रत्न , पृ० 105
2 लोकायतन , पृ० 97
3 'युगपथ , प० 10
4 5 'स्वण किरण पृ० 112, 111
6 7 'रश्मिरथी प० 4 5
8 9 'वही' पृ० 7, 1
10 नई किरण', पृ० 24

नये फाम की स्थापना की दृष्टि से 'जाति वग की छोटी मोटी दीवारो को तोडो'[1] का आह्वान किया है तो मुख्तार सिंह दीक्षित के उद्गार हैं 'जाति पाँति के बधन तोडो, छुआछूत का भूत भगा दो।'[2]

(इ) 'जाति' तथा 'हिन्दी' शब्दो का राष्ट्र बोधक अर्थों मे प्रयोग

आधुनिक काव्य म जाति शब्द का समस्त भारतवासियो की हिन्दी या भारतीय जाति होने तथा विभिन्न धर्मावलम्बियो की उनके धर्मानुसार हिन्दू मुसलमान या ईसाई आदि जातियाँ होन के अर्थों मे भी प्रयोग किया गया है। हिन्दुओ की सभी जातियो को मिलाकर उनके लिए 'आय जाति' की सज्ञा का प्रयोग भी इसी परम्परा की कडी कहा जा सकता है। 'प्रेमघन ने जाति शब्द का धम अथक प्रयोग करते हुए हिन्दू मुसलमान, जैन, पारसी और ईसाइयो को भारत की प्राण जातियाँ बताया है।[3] उन्होन दादा भाई नौरोजी—जो पारसी थे—के सन् 1892 म ब्रिटिश पार्लियामट के सदस्य चुने जाने के तथ्य को सम्पूण भारत की जातीय सभा की विजय घोषित करके सम्पूण भारत म एक ही 'भारतीय' या 'हिन्दी' जाति के निवास करने की भावना व्यक्त की है।[4] हरिऔध न दशाद्धार के सदभ मे 'जो जिएँ तो जाति को निहार जिएँ, जो मरें तो जाति को निहार मरें'[5] अथवा 'जाति को भेजकर रसातल म, कान मे तेल डालकर सोये रहें'[6] के रूप मे, ना० शमा शकर न राष्ट्रीय आदोलन के सदभ मे 'जनता में जातीय जोश के उठने लगे उफान'[7] का भाव व्यक्त करके, दिनकर न चीनी आक्रमण का 'जातीय मम पर क्रूर प्रहार हुआ है/माँके किरीट पर ही यह वार हुआ है'[8] के रूप मे तथा मैथिलीशरण गुप्त ने सिख गुरुओ के सम्बन्ध म 'गुरुकुल वार चला अपन को जाति धम के ऊपर आज'[9] जैसे उद्गार व्यक्त करके जाति शब्द का व्यापक अथ म ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी ने

1 'विध्य हिमालय' पृ० 48
2 'जय भारत', पृ० 137
3 "हिन्दू मुसलमान जैन पारसी इसाई सब जात/सुखी होय हिय भरे प्रेमघन, सकल भारती प्रान।" 'प्रेमघन सवस्व', प्र० भा०, पृ० 632
4 'विजय तुम्हारी अहै विजय जातीय सभा की/सिगरे भारत की तासो गौरव अति भावी।' 'वही', 'वही', पृ० 245
5 6 'चुभते चौपदे' पृ० 46, 59
7 'शकर सवस्व', पृ० 234
8 'परशुराम की प्रतीक्षा', पृ० 8
9 'गुरुकुल', पृ० 205

वर्णाश्रम व्यवस्था की निवृत्तिपरक आध्यात्मिक मान्यताएं हिंस्र क्रूर तथा भौतिकतावादी मूल्यों में विश्वास करने वाली जातियों से हुई टक्करों में विफल ही सिद्ध हुई हैं।

(आ) जाति पाँतिगत भेदभाव मिटाने विषयक चेतना

परम्परावादी कवियों द्वारा वर्ण और जातिगत भेद भावों में आंशिक परिष्कार सुधार कर लेने अथवा उनकी औचित्य सिद्धि किये जाने पर भी अधिकांश कवियों द्वारा जातिगत भेद भावों को सर्वथा ही मिटा डालने की चेतना व्यक्त की गयी है। नाथूराम शर्मा शंकर ने जाति पाँति गत भेद भावों को मिटा देने की अभिलाषा व्यक्त की है 'तो पतन भारतमाता का कलंक यह जाति पाँतियों में जन खंडित'[1] का भाव व्यक्त करते हुए भारतीय समाज रूपी वक्ष के झरें जाति कुल वर्ण पर्ण घन'[2] की चेतना व्यक्त की है। उन्होंने लोकायतन में भी जाति वर्ण के टूटें बन्धन'[3] की आवश्यकता पर बल देते हुए वर्णाश्रमी पुरातन संस्कृति की इन शब्दों में भर्त्सना की है 'कौन रह इस क्रूर सभ्यता के संस्थापक/यह जन नरक कलंक मनुजता का भू पातक।[5] दिनकर ने जाति जाति रटते जिनकी पूंजी केवल पाखंड[6] अथवा जाति जाति का शोर मचाते केवल कायर क्रूर'[7] के रूप में जाति गत ऊँच नीच की धारणा पर करारी चोट की है। उनके द्वारा कर्ण के मुख से व्यक्त कराये इन उद्गारों में महाभारत कालीन समाज की नहीं अपितु आधुनिक युग चिंतन की धड़कन ही स्पन्दित हो रही है कि— धँस जाए वह देश अतल में गुण की जहाँ नहीं पहचान/जाति-गोत्र के बल से ही आदर पाते हैं जहाँ सुजान।'[8]

कवि का निजी परामर्श भी यह रहा है ऊँच-नीच का भेद न माने वही श्रेष्ठ ज्ञानी है।[9] अन्य कवियों में जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने तो यह चेतावनी दी है, कि ऐसे लोग 'उच्च जो कहला रहे हैं जन्म के संयोग से यदि वे युग की हुकार सुनकर, दलित आहत मनुजता की समता का जयनाद नहीं करेंगे तो ऐसे दभी कीड़ों का 'धूल में मिलना सुनिश्चित' है।[10] शिवमंगल सिंह सुमन ने मानवता के

1 अनुराग रत्न' पृ० 105
2 लोकायतन', पृ० 97
3 युगपथ पृ० 10
4 5 स्वर्ण किरण पृ० 112 111
6 7 रश्मिरथी पृ० 4 5
8 9 वही' पृ० 7, 1
10 नई किरण', पृ० 24

नये फाम की स्थापना की दृष्टि स 'जाति-वग की छोटी मोटी दीवारो को तोडो'' का आह्वान किया है तो मुख्तार सिंह दीक्षित के उद्गार हैं 'जाति पाँति के बधन तोडो, छुआछूत का भूत मगा दो।'[2]

(इ) 'जाति' तथा 'हिन्दी' शब्दो का राष्ट्र-बोधक अर्थों में प्रयोग

आधुनिक काव्य मे जाति शब्द का समस्त भारतवासियो की हिन्दी या भारतीय जाति होने तथा विभिन्न धर्मावलम्बियो की उनके धर्मानुसार हिन्दू, मुसलमान या ईसाई आदि जातियाँ होने के अर्थों म भी प्रयोग किया गया है। हिन्दुओ की सभी जातियों को मिलाकर उनके लिए 'आम जाति' की सज्ञा का प्रयोग भी इसी परम्परा की कडी कहा जा सकता है। 'प्रेमघन' ने जाति शब्द का धम व्यक प्रयोग करते हुए हिन्दू मुसलमान, जैन पारसी और ईसाइयों को भारत की प्रात जातियाँ बताया है।[3] उन्होंने दादा भाई नौरोजी—जो पारसी थे—के सन 1892 म ब्रिटिश पार्लियामेंट के सदस्य चुने जाने के तथ्य को सम्पूण भारत की जातीय-सभा की विजय घोषित करके सम्पूण भारत म एक ही 'भारतीय या 'हिन्दी' जाति के निवास करने की भावना व्यक्त की है।[4] हरिऔध ने देशोद्धार के सदभ मे 'जो जिएँ तो जाति को निहार जिएँ, जो मरें तो जाति को निहार मरें'[5] अथवा 'जाति को भेजकर रसातल मे कान मे तेल डालकर सोय रहें'[6] के रूप मे, ना० शमा शकर ने राष्ट्रीय आदोलन के सदभ मे जनता मे जातीय जोश के उठन सग उफान[7] का भाव व्यक्त करके, दिनकर ने चीनी आक्रमण को जातीय गव पर क्रूर प्रहार हुआ है/माँ के किरीट पर ही यह वार हुआ है'[8] के रूप मे तथा मथिलीशरण गुप्त ने सिख गुरुओ के सम्बन्ध मे 'गुरुकुल वार चला अपन को जाति धर्म के ऊपर आज[9] जैसे उद्गार व्यक्त करके जाति शब्द का व्यापक अथ मे ही प्रयोग किया है। इसी प्रकार माखनलाल चतुर्वेदी ने

---

1 'विंध्य हिमालय', पृ० 48
2 'जय भारत, पृ० 137
3 ''हिंदू मुसलमान जैन पारसी इसाई सब जात/सुखी होय हिय भरे प्रेमघन, सकल भारती प्रात।'' 'प्रेमघन सवस्व' प्र० भा०, पृ० 632
4 'विजय तुम्हारी यहै विजय जातीय सभा की/सिगरे भारत की तासो गौरव अति थाकी।'' 'वही', 'वही', पृ० 245
5 6 'चुभते चौपदे पृ० 46, 59
7 'शकर सवस्व', पृ० 234
8 'परशुराम की प्रतीक्षा', पृ० 8
9 'गुरुकुल', पृ० 205

जातीयता शब्द का प्रयोग प्रांतीयता के विरोधी अर्थात राष्ट्रीय अर्थ मे किया है।[1] हरिऔध ने ईसाइयों से भिन्न सभी भारतवासियों के लिए हिन्दी शब्द का प्रयोग करते हुए लिखा था—"शेर जसे क्यो न ईसाई बनें/हिन्दुओ से मेमने क्या हैं कहीं ?"[2] नरेन्द्र शर्मा ने भी पहले भी तो यवनों के सग था हुआ हिन्दियों का सगम[3] मे हिन्दी शब्द का प्रयोग समग्र भारतीयों के अर्थ मे ही किया है। इसी प्रकार चीन के आक्रमण के सदर्भ मे श्रीकृष्ण सरल ने भारत की ओर से लड़ने वाले सभी सनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा है "दिखा दो विश्व को फिर तुम, कि हिन्दी वीर होते हैं।'[4] सागर निजामी के इन उदगारों मे भी हिन्दी शब्द का ऐसे ही व्यापक अर्थ मे प्रयोग किया गया है, 'हिन्द का मालिक हर हिन्दी हो, सिफ यहाँ एक कौम बसती हो।"

(ई) हिन्दू जातीयता का समर्थन किन्तु सकीर्ण जातिवाद का विरोध

हरिऔध ने हिन्दू जातीयता के उत्कर्ष उत्थान की कामना से प्रेरित होकर उपालम्भपूर्वक कहा है कि हमें तो ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू जाति कुम्भकर्णी निद्रा मे निमग्न है, इसीलिए वह जगाने के प्रयत्न करने पर भी नहीं जग पाती। उन्होंने खेदपूर्वक लिखा है कि जिस जाति की 'न आँखें खान पाइ खोले' उसकी नियति इसके अतिरिक्त और क्या हो सकती है कि 'रोना हो तो वह जाति भले ही फूट फूटकर रो ले।'[5] इस तथ्य का उल्लेख करते हुए कि हिन्दू जाति जगाने पर भी नहीं जगी है तथा देश प्रेम की रगत मे वह अब तक क्यों नहीं रगी है[6], उन्होंने उसका यह सम्भावित कारण बताया है कि हिन्दू जाति सर्वथा निर्जीव है और उसकी धमनियों मे रक्त ही नहीं प्रवाहित होता। जब हिन्दू जाति निर्जीव है तो फिर वह स्व धर्म और स्व जाति रक्षण के लिए सघर्ष कर ही कैसे सकती है ?—

"हरिऔध हिन्दू भला कसे करवाल गहैं,
लोहू है न गात मे विलोकि सीज चीर के।"[7]

पाश्चात्य सभ्यता तथा मिशनरियों के प्रचार के फलस्वरूप कुछ समय तक हिन्दू धर्म एव हिन्दू जाति की समस्त वस्तुओं को घृणास्पद एव निन्दनीय बताने का फैशन सा चल पड़ा था, और हमारा अपना शिक्षित वर्ग भी विदेशियों से पीछे नहीं था। विशेषत बगाल मे तो इस प्रवृत्ति का तूफान ही उठ खड़ा हुआ था, और

---

1 राष्ट्रवीणा, प्र० भा०, पृ० 22
2 'चुभते चौपदे' पृ० 137
3 'रक्त चदन' पृ० 18
4 'राष्ट्रभारती' पृ० 38
5 7 'मर्म स्पर्श', पृ० 137, 147, 159

देश के अन्य भागो में भी स्व-जाति निदकों का अभाव नहीं रहा होगा। हरिऔध ने इन निन्दकों को पेट पूजक चापलूसा का वग बताते हुए उनकी जिह्वा ही काट लने की सिफारिश की है—

"पेट की चापलूसियों म पड गालियाँ जो कि जाति को देवें।
चाहिए तो बिना रुके हिचके जीभ उनकी निकाल लेवें।"[1]

उनका तक है कि दूसरों के इशारों पर नाचते हुए अपनी जाति पर निरन्तर आघात करने वाले लोगों की कब तक उपेक्षा की जा सकती है अत उचित यही है 'पड गयी जाति गाड में जिससे, काढ़ उस जीभ को क्यो न लेत' [1] हिन्दू जाति और उसकी जातीय भाषा के उद्धार के लिए व्याकुल हरिऔध अपने काल म पनपी उस क्षुद्र जातीय भावना क भी घोर विरोधी रह हैं जिसके फलस्वरूप हिन्दुत्व की विभिन्न जाति उपजातियों ने, एक दूसरी पर आक्षप प्रत्याक्षप करते हुए अपनी निजी सस्थाए समाज और विद्यालय स्थापित कर लिए थे—

'बहुत जातियो की बहुत सी सभाएँ/बनी हिन्दुओ के लिए हैं बलाएँ
विपत सकडों पथ मत क्यो न ढायें। अगर एकता रग म रँग न पायें।'

उनका मत है कि ऐसी सभा जो सभी जातियों को है मिलाती बडे काम की वस्तु कही जा सकती है किन्तु ऐसी सभा जा जातीय एकता का गला घोटती हो उस पर फूट सभा ही कहा जा सकता है। इस प्रकार की विभिन्न जातियो की पथक् पथक सभाओ ने समग्र हिन्दू जाति का गला घोटकर सामूहिक हितो का दिवाला निकाल दिया है।[2]

उन्होंने खेदपूवक कहा है कि हिन्दुओ की इस पारस्परिक कलह के कारण ही करोडो लोग मुसलमान हो गय हैं लाखो लोगो ने बहककर हिन्दू धम से नाता तोडकर ईसाई धम अपना लिया है जबकि बहुत से लोग उससे विमुख होकर स्वय को 'अहिन्दू' मानते हैं।[4] उन्होंने आगे कहा है कि जातीय सभाओ द्वारा देश के सवनाश का बीज वपन किया जा रहा है उनके कारण सघ शक्ति का ह्रास होकर पाथक्य की भावना का प्रश्रय मिल रहा है।[5] प्रतीत होता है कि गौड पालीवाल, माहेश्वरी बारहसेनी, कायस्थ, जाट, अहीर आदि नामो वाली शिक्षण सस्थाएँ इसी दौर की उपज हैं जिनको हिन्दू जाति म पारस्परिक भेदभाव के बीजवपन का स्रोत कहकर कवि न उनका अस्तित्व मिटा देने का भाव व्यक्त किया है—

जाति जाति की सभा जातिया के विद्यालय/अति निन्दित हैं सघ शक्ति जो करें

---

1 चुभते चौपदे, पृ० 84, 85
2 पद्य प्रसून, पृ० 171
3 5 'वही', पृ० 173, 174 28

न सचय/उन विद्यालय और सभाओ से क्या होगा/डूब जाय जिससे हिन्दू गौरव का डोगा/जो करम न आयी जाति क वह कसी हितकारिता/वह सस्था सस्था ही नहीं जहाँ न हो हितकारिता।"[1] उन्होंने इस तथ्य का भी बड खदपूवक उल्लेख किया है कि हिन्दुओ के हृदय स हिन्दुओ का हित सोचन-करने की भावना तिरोहित हो गयी है और वे अहिन्दुओं क मुखापेक्षी बने रहत हैं। हिन्दू जाति चोट पर चोटें खाकर सवथा निर्जीव हो चुकी है और अब भी जाग्रत होन का नाम ही नहीं लेती।[3] म० श० गुप्त ने भी हे भाइयो! सोय बहुत अब तो उठो जागो अहा"[4] के उद्बोधन द्वारा हिन्दुओं को जागरण का सदेश दिया है।

(ऊ) छुआछूत विरोधी चेतना

आधुनिक काव्य के प्रणताओ म स छुआछूत विरोधी चेतना जाग्रत करने का श्रीगणेश भारतेन्दु हरिश्चन्द्र न ही कर दिया था, बहुत फलाये हमने धम बढाया छुआछूत का कम।[5] कदाचित् उनकी इस वण व्यवस्था विरोधी भावना के कारण ही कट्टर सनातन धर्मियों द्वारा उन्हें किरस्तान की पदवी से विभूषित किया जाने लगा था। हरिऔध न हिन्दू समाज को यह चेतावनी दी है कि बाह्य रूप म जात पाँत के पचडो तथा आतरिक रूप म छुआछूत की भावना मे फसकर हमारा बुरी तरह पतन हो रहा है फिर भी हम इन पचडो को गले से न जाने क्यो चिपटाये हुए हैं?[6] इसी प्रकार का प्रभाव व्यक्त करते हुए उन्होने अन्यत्र लिखा है—"जिस अछूत को छूतछात मे पड नहि छूते/उसके भय हो गय रहने हम न अछूते।[7] अपनी एक अन्य कृति मे भी उन्होन अछूतो को छीजी जाती जाति के ये सच्चे बलबूते' बताते हुए इस तथ्य पर बल दिया है कि छूते क्यो नहीं हो ये अछूत तो अछूते हैं।[8] रामेश्वर करुण ने यह अभिलाषा व्यक्त की है कि न जाने इस शुभ धारणा का भारतीय समाज म कब तक प्रसार हो पायेगा कि— श्रमकारी भगी भलो श्रमबिनु विप्र अछूत।[9] नाथूराम शर्मा शकर ने आय समाज द्वारा सचालित शुद्धि आन्दोलन के माध्यम स समस्त अछूतो की शुद्धि कर लेने का सकल्प

---

1 3 मम स्पश पृ० 29, 31, 34
4 'भारत भारती पृ० 156
5 'भारतेन्दु ग्रथावली, प्र० भाग पृ० 474
6 'चुभते चौपदे पृ० 115
7 पद्य प्रसून पृ० 42
8 मम स्पश' पृ० 164
9 करुण सतसई, पृ० 14

व्यक्त किया है—"छूत अछूत न बढने देंगे, सबको कर लेंगे अब शुद्ध।"[1] मथिलीशरण गुप्त ने हिन्दुओं को सकीर्णता त्यागकर अपने उन सुपुत्रों को अछूत न समझने का परामश दिया है जो उनको पवित्र रहने मे सहायक बनते हैं।[2] गुप्तजी का सर्वाधिक प्रभावशाली तर्क यह है कि जब तक अछूत हिन्दू धम म रहते हैं, तब तक तो हम उन्हें अस्पश्य समझते हैं किन्तु कैसी विडम्बना है कि उनके मुसलमान या क्रिस्तान बन जाने पर हम उन्हें स्पश्य समझने लगते हैं—

'बने विधर्मी वे अनजान, मुसलमान किंवा क्रिस्तान
तो हो जाते हैं सुस्पश्य! हाय दव क्या दारुण दृश्य।"[3]

इस तथ्य को रामचन्द्र शुक्ल ने भी 'अछूत की आह' शीर्षक कविता म उभारा है कि हे भगवन! यह तेरा कसा न्याय है कि जब तक हम हिन्दू धम में रहते हैं, हमे अछूत समझा जाता है जबकि ईसाई या मुसलमान बन जाने पर हम स्पश्य समझा जाने लगता है।

सियारामशरण गुप्त और नीरज ने काव्य कथाओ के माध्यम से अस्पश्यता विरोधी इस चेतना को उभारा है कि जब मन्दिरों म श्वानों तक का प्रवेश निषिद्ध नहीं है या उनके मन्दिर प्रवेश स देव मूर्तियाँ अपवित्र नही होती, तो फिर अछूतों के ही मन्दिर प्रवेश से वे कैसे अपवित्र हो सकती हैं? गुप्तजी ने तो हिन्दू धम पर प्रहार कराते हुए एक अछूत को यह परामश भी दिलवा दिया है कि यदि तुझे मन्दिर म नही आने दिया गया था तो तू किसी मस्जिद अथवा गिरजाघर म क्यो नहीं चला गया था?[4] नीरज द्वारा चित्रित शूद्रा पुजारी द्वारा ठुकराये और दुत्कारे जाने पर सहज भाव से पूछ उठती है कि पूज्यवर! आपके मन्दिर मे जब कुत्ते बैठे हुए हैं तो क्या मैं उन कुत्तो से भी गयी बीती हू कि मेरे प्रवेश मात्र से आपका मन्दिर भ्रष्ट हो जायगा?[5] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने स्वय पिछड़े वर्गों क भी अनकानेक उपवर्गों मे विभक्त होकर पारस्परिक भद भावो म लिप्त रहने की मनोवत्ति पर विषाद व्यक्त करते हुए[6] उस नवीन चेतना को मुखरित किया है जो भारत के पतन और गुलामी का एक प्रमुख कारण उसका जाति पाँति और छुआछूत की विघटनकारी प्रवत्तियो से ओत प्रोत होना स्वीकार करती है—
जाति पाँति के छुआछूत के ऊँच नीच के कठिन रोग से/मुक्ति लाभ करने के

---

1 शकर सवस्व' पृ० 116
2 3 'हिन्दू', प० 105 108
4 'कदी कहते अरे मूख क्यों/ममता थी मन्दिर पर ही/पास वही मस्जिद भी तो थी/दूर न था गिरजाघर भी।' 'आर्द्रा', पृ० 50 51
5 असावरी' पृ० 50
6 'स्वतन्त्रता की बलिवेदी, पृ० 13

पहले भारत बना गुलाम तिरस्कृत/शोषित पीड़ित अन्य देश का आश्रित स्वाभिमान से वंचित/जो कुछ सर्वोत्तम था इसकी जीवन निधि में वह सब अपहृत ।[1]

पंत ने भी जहाँ मनुज अस्पृश्य चरण रज/राष्ट्र रहे वह कस जीवित, की भावना व्यक्त करके छुआछूत का विरोध किया है। गोपाल शरण सिंह ने हिन्दू समाज को यह चेतावनी देते हुए कि— अपने सगे भी हैं अछूत कहलाने लगे/आई है विनाश घड़ी जाति के जहाज की[2], अछूतों की ओर से छुआछूत विरोधी यह तर्क भी प्रस्तुत कराये हैं कि जब आप पत्थर धूल और जूतों को छूकर अपवित्र नहीं होते तो हम निष्पापों को छूकर ही कैसे अपवित्र हो जायेंगे ?[3 4] दिनकर ने हरिजनों के उद्धार हेतु गौतम बुद्ध का आह्वान किया है 'आओ बोधिसत्व भारत के हरिजन तुम्हें बुलाते हैं'[5], तो रामकुमार वर्मा ने छुआछूत का यह तर्क देकर विरोध किया है कि छुआछूत के समर्थक पंडितों को तिलक छापे लगाने के स्थान पर झाड़ *सम्हालनी पड़ेगी यदि ये अछूत घोषित किये गये प्राणी सफाई करना छोड़ देंगे।*[6] बालकवि बैरागी[7] मुख्त्यार सिंह दीक्षित[8] और जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द[9] ने भी छुआछूत की धारणा का तीव्र विरोध किया है। कात्यायन और आपस्तंब आदि श्रौतसूत्रों में निर्दिष्ट इस विधान की ओर इंगित करते हुए कि शूद्र चलता फिरता श्मशान है उसके निकट समीप (वेदों का) अध्ययन न करे कि उस सुनायी दे। यदि वह जान बूझकर श्रुति सुने तो लाह या सीसा गलाकर उसके कान में डाल देना चाहिए[10] प्रभाकर माचवे ने विकृतिपूर्वक कहा है कि हिन्दू संस्कृति की यह विडम्बना तो देखिये कि हरिजन को मंदिर प्रवेश निषिद्ध करने वाले ब्राह्मण आकृति मात्र से ही ब्राह्मण हैं अन्यथा उनकी 'आत्मा पापों में डूबी रहती है। स्वयं पापी होते हुए भी ऐसे विप्रों का अभाव नहीं है जो अब भी शूद्र वेद सुन लें तो डालेंगे कानों में पिघला सीसा'[11] की ताता रटते रहते हैं। इसी प्रकार

1 'स्वतन्त्रता की बलिवेदी', पृ० 20
2 सुमित्रा पृ० 43
3 4 *माधवी पृ० 75*
5 रेणुका पृ० 18
6 आज के लोक० हिन्दी कवि राम० वर्मा पृ० 53
7 दो टूक पृ० 49
8 जय भारत पृ० 137
9 नई किरण, पृ० 24
10 संस्कृति के चार अध्याय, दिनकर पृ० 122
11 *स्वप्न भंग', पृ० 45*

न शूद्रो स विद्रपात्मक शली मे कहलाया है कि हे विप्रदेव ! आप हम मत छूना क्योकि उसके कारण आपको गगा स्नान करना पडेगा, और आपक स्वग म प्रवेश का माग अवरुद्ध हो जायगा। हमे तो यमदूत पकडकर नरक ले ही जायेंगे फिर हम आपका धम क्या भ्रष्ट करें! भारतमाता के हम कुपूतो से तो आपके कुत्ते भी अच्छे हैं जिन्हे आप प्रेम पूवक पुचकारते हैं।[1] अस्पृश्यता की भावना को मिटाने सम्बधी कवि उदगारो से स्पष्ट है कि द्विवेदी युग से ही तदथ प्रबल चेतना जाग्रत हो चुकी थी। कवियो ने गाधीजी द्वारा सचालित हरिजनोद्धार-आदोलन[2] तथा आग्ल शासन द्वारा हरिजनो को पृथक निर्वाचन का अधिकार देने के निणय के विरोध म आमरण अनशन रखकर हिन्दू समाज को टूटने स बचा लेन का भी बडा प्रशसापरक वणन किया है। इन कवियो मे पत, गोपाल शरण सिंह[3], भवानी प्रसाद मिश्र[4] और ब्रह्मस्वरूप दीक्षित ललाम[5] विशेष उल्लेखनीय हैं। प्रस्तुत सदभ म यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि सन 1935 की विश्ववाणी नामक साप्ताहिक पत्रिका के अक्तूबर स लेकर दिसम्बर तक के विभिन्न अकों म प्राय आठ करोड अछूतो के मुसलमान होने की इच्छा हरिजन युवको द्वारा हिन्दू धम शास्त्रो की होली जलाने, सपादकीया मे धम ध्वजी कट्टर हिन्दुओ को लताडने के जो समाचार छपे हैं उनसे तत्कालीन सामाजिक सास्कृतिक स्थिति की बडी ही भयावह स्थिति उभरती है।[6] उस भयावह स्थिति स उबरने की दिशा म निश्चय ही अछूतोद्धार सम्बधी कायक्रमों और शिक्षित वग में छुआछूत विरोधी चेतना के अनुदिन जोर पकडते जाने का हाथ रहा है।

(ख) खान पान के आचार विचारों सम्बन्धी नवीन चेतना

आधुनिक काव्य म खान पान स सम्बन्धित जो उदगार व्यक्त हुए हैं, उनमे

---

1 'रजनी म प्रभात का अकुर' पृ० 42

2 विजय हुई भारत आत्मा की/खडित नही हुआ जन भू मन।'
लावायतन, पृ० 97

3 'हात ये हिन्दू समाज से पथक सदा को हरिजन/उसे रोकने को बापू ने किया आमरण अनशन। जगदालोक, पृ० 210

4 हम परच ढी चुडल छत की भले न उतरी/लेकिन अब तो हम होश मे आना होगा/और नही तो मिटना और मर जाना होगा। 'गाधी पचशती' पृ० 14

5 पूना का पक्ट बना हरिजन भारत क सुदर अग रहे/अपने प्राणो के बल बापू अपन बटा के सग रहे। जय मानव, पृ० 94

6 दे० विश्ववाणी, सपा० डॉ० हेमचन्द्र इलाचद्र जोशी, 25 अक्तूबर से 20 दिस० तक के अक

एक ओर तो इस तथ्य पर क्षोभ व्यक्त किया गया है कि जीवन के अन्य अंगों की तरह हमारे खान-पान पर भी पाश्चात्य प्रभाव बढ़ता जा रहा है और परम्परागत आचार विचार का निर्वाह नहीं किया जाता—

' घता इंडिया की धर्जा को क्हो, सजे लडनो फैशना से रहो।
बराडो पियो मीट खाया करो टके होटला क चुकाया करो। '[1]

होटलो को एक प्रकार स भटियारिनो की सरायो का नवीन संस्करण कहा जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि यात्रादि के अवसर पर लोग पहले भी आवश्यकतावश घर से बाहर सराय आदि म पस देकर भोजन करते थे किन्तु विशेषत बीसवीं शताब्दी मे जो होटली संस्कृति' विकसित हुई है उसम आवश्यकता के वशीभूत होकर नहीं अपितु फशन के रूप मे बीबी बच्चो को लेकर माह म दो चार बार ऊचे होटलो मे भोजन करने की प्रवत्ति बढ़ी है। नाथूराम शमा शकर का इगित इस ओर ही है। कहा जा सकता है कि इस 'होटली संस्कृति' न भारतीय खान पान सम्ब धी पारपरिक आचार विचार की चूलें हिला दी हैं, क्योंकि इसस उन लोगों के अतिरिक्त जिन्हें हरिऔध' और शकर ने कई बार जीभ के चटोरेपन' के कारण धम परिवतन कर लेने वाले कहकर कोसा है, उन लोगों को भी होटलों मे जाकर मदिरा पान और मास भक्षण कर आने की सुविधा मिल गयी जिनके घरो के चौको म प्याज तक का आना वर्जित था।

पाश्चात्य सभ्यता मे रँगे हिन्दुओ द्वारा अपने आकाओ की नकल करते हुए गो मास भक्षण भी आरभ कर देने की कुछ कवियो ने तीव्र भत्सना की है। शकर ने गौओ पर खोओ की तलवार' चलती रहने के कारण दूध और घी के मूल्य बढ जाने पर चिन्ता व्यक्त की है। अज्ञेय ने दिखाया है कि उनके बाबूजी न विदेश यात्रा के समय उन्हें यह परामश दिया था जो करना सो करना/गो मास मत खाना अत वे बापू की आज्ञा मानकर गो मास भक्षण के अतिरिक्त करते रहे और सब करना के आचरण म प्रवृत्त रहे थे।[3]

खान पान सम्ब धी आचारो की दृष्टि से गुप्त जी ने ऐसे मास भोजी ब्राह्मणों को आडे हाथो लिया है जिनके चौके म तो बनता वहाँ मतक पशु-पाक' किन्तु जो चाक आदि की लकीरें खींचकर किसी को अपने चौके म नहीं आने देते। उनकी व्यग्योक्ति है कि ऐसे अधम कम करते हुए भी लीप पोतकर तथा खड़िया आदि की लकीरें डालकर चौका तयार करने वालो को द्विजश्रेष्ठ के स्थान पर 'पोगा' कहना चाहिए।[4] इसी प्रकार उन्होंने इस तथ्य को भी बड़ा असंगतिपूर्ण बताया है

1 2 'शकर सवस्व', पृ० 248 248
3 'पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ' पृ० 40
4 'हिन्दू', पृ० 170

कि धीवर जाति का व्यक्ति 'चौका करे जला दे आग, अदहन धरे, पका दे साग/ गूंदे बेले, सेंक न सके किन्तु आश्चय'[1] उन्होंने उचित ही यह आह्वान किया है, उस बेचारे को यह भेद, बतला दे कोई भी वेद।[1] आमलेट खाना आधुनिक काल के नगर जीवन का ऐसा अग बन गया है कि उसका 'साँझ बनाने को आमलेट/फोडती है सूरज के अडे को'[2] के रूप म उपमानमूलक प्रयोग भी किया जाने लगा है। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव स्वरूप खान पान के समय काँटे छुरी के प्रयोग का प्रचलन बढने के सम्बन्ध म उचित ही कहा गया है "हम छुरी काँटे से/सिर्फ इसलिए खाते हैं/कि उसस हमको होटल का बरा/क्लर्क समझकर टिप की आशा रखता है/इसलिए नही कि/हम इसके आदी हैं और/हमारी भोजन पद्धति अवैज्ञानिक है नाखूनों म जहर होता है।[3]

भारत मे कभी दूध घी की नदियाँ प्रवाहित हुआ करती थीं, किन्तु अपनी निधनता के कारण सम्प्रति एक ओर तो ग्रामवासियो की यह दशा है कि वे 'ऋण शोधन के लिए दूध घी बेच बेच धन जोडेंगे/बूद बूद बेचेंगे, अपन लिए नही कुछ छोडेंगे'[4], जबकि नगरो म रहने वाले भारत के अधिकाश लोगो को भी अत्यधिक मँहगे दूध घी के प्रयोग की सामथ्य नही होती और मध्य-वग तक के लोग "जीते हैं पी चाय काफी/दूध क्रीम मक्खन से/वचित ही सुबह शाम।"[5] दूध और घी के अभाव मे भारतवासियो के हड्डियो का ढाचा मात्र रह जाने पर गहरा दु ख व्यक्त किया गया है।[6] शुद्ध घी जिसे सामान्यत देशी घी कहा जाता है, जन सामान्य की पहुँच स एसा परे है कि श्रीकान्त वर्मा ने उसकी दुष्प्राप्यता घी का टीका लगवाने के उल्लेख द्वारा व्यजित की है।[7] देशी घी का स्थान शनै शनै कृत्रिम वानस्पतिक घी ने ग्रहण कर लिया है जिसे सामान्यत डालडा और कोटोजम कहा जाता है। डालडा और कोटोजम के प्रयोग को आरभ म अप्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता था और यह विश्वास भी किया जाता था कि उसके प्रयोग स बीमारियाँ फैलती हैं "चाटन स आज कोटोजम हुआ यह हाल है/रोगी रह हम हर

---

1 'हिन्दू' पृ० 171

2 समानान्तर सुर्ने शान्ता सिनहा पृ० 17

3 'एक हस्ताक्षर और' राजा दुबे, पृ० 66

4 'रेणुका' दिनकर, पृ० 15

5 'इतिहास पुरुष' देवराज, पृ० 20

6 "अब शुद्ध घी या दूध का मिलता न ढूढ नाम है।
सब रिक्त पौरुष आज बस, ककाल है या चाम है"
'परतत्र' र० श० मिश्र पृ० 44

7 'उठती है मरोड अभी से टीका लगवाइये घी का।' 'जलसाघर', पृ० 11

समय, कैसा भयकर काल है। [1] वृद्धलोगों द्वारा वर्तमान तरुण पीढ़ी की शारीरिक दुर्बलता, उसकी दृष्टि तथा मस्तिष्क की निर्बलता की प्रतीति कराने के लिए उन्हे 'डालडा ब्राड' बताने की साकेतिक व्यग्यात्मक शैली अपनायी जाने के मूल म यही धारणा क्रियाशील रहती है। श्रीकृष्ण सरल ने स्वर्गवासी कवि भूषण के मुख से इसी तथ्य की व्यजना कराते हुए कहलाया है— 'लोग डालडा युग के मुझसे क्या लेंगे टक्कर/मेरी मूछें देख देखकर खायेंगे वे चक्कर।' यह स्थिति विडम्बनापूर्ण ही कही जायेगी कि आठवें दशक मे लोगों को डालडा की उपलब्धि भी इतनी अधिक दुष्प्राप्य हो गयी थी कि बरसानेलाल चतुर्वेदी के यह उद्‌गार सर्वथा उचित प्रतीत होते हैं—' हे वानस्पती तुम्हे प्रणाम/तुम्हारे स्वागत को घर घर/खडे रहते सब नारी नर/सभी की रग रग मे तुम व्याप्त/तुम्हारे ही कारण से आज/गृहस्थों की रहती है लाज।' [3]

परम्परागत सस्कृति म अतिथि सत्कार के लिए दूध और लस्सी का प्रयोग किया जाता था जिनका स्थान अब चाय और काफी ने ग्रहण कर लिया है। वसे तो अब चाय के निर्यात म भारत का महत्त्वपूर्ण स्थान है किन्तु आरभ मे इसका प्रचलन अग्रेजों द्वारा किये जाने के कारण इसको आग्ल सभ्यता का प्रतीक मानते हुए चाय पीने का विरोध किया गया था— ला चार पैसे का चपक वे चाय का लेकर पिए/क्यों स्वस्थ रोगी हो गये ? जो तप्त पानी भर पिएँ। [4] चाय पीने का प्रचलन अब ग्रामीण जीवन म भी होता जा रहा है। चाय और काफी का प्रचलन बढने के मूल म इस तथ्य का भी प्रमुख हाथ है कि अधिकाश लोग दूध दही मक्खन तो/हम स्वप्न प्राप्य है [5] की नियति भोगते हैं। दूध दही और मक्खन की दुष्प्राप्यता के कारण ही दधि मक्खन की चोरी के लिए प्रसिद्ध श्रीकृष्ण को एक आधुनिक कवि द्वारा यह आश्वासन देने को विवश होना पड़ा है कि आपके आगमन पर मैं आपको डटकर चाय पिलाऊँगा।[6] चाय पान के बहुत से नगरवासी बुरी तरह आदी हो चुके हैं। देवराज के उद्‌गार हैं सुनता [redacted] खुफी भी करती है/चाय बिना मक्खन के फिर भी वे चाय पीना छोड नही पाते क्योंकि ' सच कहूँ/कम्बख्त अब/मुह से लग गयी है। [7] बहुत से नगरवासी प्रातःकाल चाय

---

1 परतत्र, र० श० मिश्र पृ० 44
2 राष्ट्रभारती पृ० 13
3 रग और व्यग्य पृ० 12
4 परतत्र र० श० मिश्र पृ० 43
5 'धरती और स्वर्ग' देवराज, पृ० 92
6 'रग और व्यग्य' बर० ला० चतु०, पृ० 12
7 'धरती और स्वर्ग' देवराज पृ० 93

पिये बिना बिस्तर ही नहीं छोड़ पाते, "उठो डालिंग उठो/खानसामा तीसरी बार चाय बनाकर लाया है।"[1] चाय पान को पाश्चात्य सभ्यता या साहबियत का लक्षण समझने की धारणा अभी सर्वथा निर्मूल नहीं हुई है अतः एक कवि ने व्यंग्य पूर्वक यह भाव व्यक्त किया है 'प्रथम श्रेणी का सभ्य नागरिक वह है जो/सवेरे उठते ही चा चा' चिल्लाए।' कुछ लोगों की स्थिति यह है कि 'बेड-टी आती है माशन'[2] के अनुरूप वे बिना बेड-टी पिये शौच हो नहीं जा पाते। कवि ने यद्यपि ऐसे लोगों का 'बड़े लोग' बताकर उपहास किया है किन्तु इसी कवि ने श्रम जीवियों को भी चाय की दूकान पर/एक कड़क, हाफ स्पेशल'[4] का आर्डर देते दिखाया है। कहना न होगा कि 'कड़क' स्पेशल, 'हाफ-स्पेशल, चाय की पत्तियों तथा दूध की मात्रा को लेकर प्रचलित हुए विशेषण हैं, जिनका अभिप्राय बिना पढ़े लोग भी समझते हैं।

(ग) शराब आदि मादक पदार्थों के सेवन का विरोध

शराब आदि मादक पदार्थों के सेवन का अधिकांश कवियों ने नाना तर्क देकर विरोध ही किया है, जबकि कतिपय कवियों ने इच्छानुकूल खान पान की सुविधा मिलने के नाम पर सुरा-पान का समर्थन भी किया है। जहाँ तक सुरा पान का सम्बन्ध है उसके सर्वाधिक प्रखर समर्थक कवि बच्चन कहे जा सकते हैं। उनकी मधुशाला और मधुबाला के चाहे जो आध्यात्मिक प्रतीक रहे हों, किन्तु अपने अभिधार्थ में उनके उद्गार मदिरा-पान का खुला समर्थन करते थे। बच्चन को इस दृष्टि से उन दिनों पर्याप्त विरोध और आरोप सहन भी करने पड़े थे। स्वर्गीय रामवृक्ष बेनीपुरी ने तो उनके बिहार आने पर उन्हें गोली मार देने की घोषणा कर दी थी जबकि कवि शील ने मधुशाला के प्रत्युत्तर में 'चर्खाशाला' शीर्षक काव्यकृति की रचना करते हुए लिखा था—'पड़े गाज उस मदिरालय पर रहे न अब बाकी बाला/कवियों के कंठों में गूंजे गाधी की चर्खाशाला।'[5] अन्य कवियों ने भी मदिरा पान के साथ ही अफीम, भाँग गाँजा, चरस आदि मादक पदार्थों के सेवन की भर्त्सना की है।

मैथिलीशरण गुप्त ने बीसवीं शती के द्वितीय दशक के आरंभ में ही समाज का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया था कि 'अँगरेज़ वणिकों ने नशे की लौ

---

1 'अनुपस्थित लोग' भा० भू० अग्र० पृ० 67
2 देश दिल्ली और अहम रामप्रसाद मिश्र पृ० 61
3 4 पका धान मानिक बच्छावत, पृ० 30
5 'चर्खाशाला, पृ० 22

लगायी है हम।[1] इस दुर्व्यसन का परिणाम यह निकला है कि प्रतिदिन मात्र दो चार आना कमाने वाले कुली और मजदूर भी साध्य काल म नशे म दीख पड़ते घूर हैं।" स्थिति यहाँ तक बिगड चुकी है कि— मर जायें चाहे बाल बच्चे भूख मे मारे सभी/पर छोड़ सकते हैं नहीं उस दुर्व्यसन को वे कभी। [2] उन्होंने भारतीयो म इस कहावत का प्रचलन हो जान पर भी गहरा शोक व्यक्त किया है कि जो व्यक्ति पीता न गाँजे की कली/उस मद स औरत भली।'[3] गुप्त जी ने उस काल म प्रचलित मादक द्रव्यो का नामोल्लेख करते हुए कहा है चडू, चरस, गाँजा, मदक, अहिफेन, मदिरा सग है।'[4] उक्त मादक पदार्थों म स 'चडू' 'अफीम म किवाम को तम्बाकू की तरह पीने को कहा जाता है[5] चरस गाँजे क पेड स निकले हुए गोद को कहत हैं[6] 'गाँजा' भाँग की जाति क नशीले पौध की पत्तिया को तम्बाकू की तरह पीना कहा जाता है[7] 'मदक' अफीम के सत और पान के योग स बना तम्बाकू की तरह पिया जाने वाला नशीला पदार्थ होता है[8] तथा अहिफेन का शब्दकोषीय अर्थ तो साँप की लार या विष है[9] किंतु हमारा अनुमान है कि गुप्तजी द्वारा उल्लिखत अहिफेन का इगित कदाचित अहि दश की ओर है। अहि दश क सदभ म हमने कहो पढा है कि बेहद नशे की स्थिति म रहन के अभिलाषी लोग अपन पास डिबिया म बहुत छोटे सप रखते हैं और उन सर्पों से अपनी जिह्वा पर हल्का सा दश लगवाकर नशे की मस्ती म पड रहते हैं।

गुप्तजी के अतिरिक्त नाथूराम शर्मा शकर न भी भारतीयों स अपनी भूलो को सुधारने का आग्रह करते हुए इस दृष्टि स खेद व्यक्त किया है कि बहुत से भारतीय मदिरा ताड़ी, भग, कसूमा रग निचोड़ तियार कर पीते हैं और 'सुलसे चडूबाज, गँजेडी, मदकी चरसी चार/झाड़ झाड़ चूस चिलमा फो अग पजार पजार' के दुर्व्यसनो म प्रवत्त रहते हैं।[10] गाधीजी द्वारा सचालित शराब बन्दी आदोलन के अतगत काग्रसी स्वयसेविकाओ द्वारा जब शराब की दूकानों पर धरना दिये जाते थे तो आग्ल शासन की ओर से 'झडे छीने डड मारे बात बात म अडकर टोका'[11] की नीति अपनायी जाती थी। कवि शील ने भी

---

1 "अगरेज वणिको ने नशे की लौ लगायी है हम।
हम दोष देते हैं कि तब यह मौत आयी है हम।'
भारत भारती', पृ० 144/270

2 4 वही, प० 144/272 144/268, 144/268

5 9 दे० 'हि दी बहत कोश' प० 419, 432 376, 1041 128

10 'शकर सवस्व प० 248

11 जननायक', पृ० 309

मदिरालय के द्वार बन्द हो, पड जाये उनम ताला/धरना द पीने वालो पर गाधी की चर्खाशाला"[1] के रूप म इन धरनों की ओर इगित किया है। गोपालशरण सिंह ने किसी शराबी की पत्नी के मुख स सुरा पान के विरोध मे पति का स्वास्थ्य नष्ट होन बच्चा के भूखो मरने आदि के उसी प्रकार के उदगार व्यक्त कराये हैं जस शराब-बन्दी सम्बन्धी नाटका और विनापनो म अक्सर सुनने को मिलते रहते हैं। एक कवयित्री ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि आजकल धार्मिक साधना क नाम पर "भाँग धतूरा एल० एस० डी० सबको देता निर्वाण/आत्मबोध, परलोक बोध/लोक बोध सुबोध होता है/पीते ही मरीवाना,' की धारणा जोर पकड रही है। श्यामसिंह शशि के अनुसार महानगरो की पॉश कालोनियो मे चरस, स्लमा म ठर्रा कालजा और पार्कों में एल० एस० डी० तथा जमुना घाटों पर गाजे क दौर चलत रहते हैं जिसस 'शराब के नशे म धुत/आदमी सा शहर/या शहर सा आदमी [4] की स्थिति विद्यमान रहती है। परेश न नगरो में बने उन भूमिगत आपानक गहो का उल्लेख किया है जहा सुरा-पान के साथ ही 'गणिकाओं के प्रभामडल म शामिल होन की'[5] भी सुविधा उपलब्ध रहती है। कुमार विकल न सुरा-पान का समर्थन करते हुए शिकायत के लहजे म कहा है कि मेरे वोट से चुना गया प्रतिनिधि मुझ पर नशाबन्दी क्यो थोपना चाहता है जबकि मैं एक सख्या के रूप म नही अपितु आदमी के रूप म जीवित रहन का अभिलाषी हूँ और ताजा दाल रोटी खान क साथ ही अच्छी शराब पीन का इच्छुक हूँ।[6] गिरिजाकुमार माथुर ने नश क इजेक्शनो का लगा फैशनबिल चस्का [7] के रूप म नशे की उस प्रवृत्ति की ओर इगित किया है जिसमे बहुत स लागों को मर्फिया आदि के इजेक्शन लगवान की आदत पड जाती है।

शराबखोरी भी एक प्रकार से वेश्यावृत्ति जसा ही सामाजिक अभिशाप बन चुका है। सरकार द्वारा इसे रोकने की दिशा मे आधे मन से जो भी प्रयास किये गये हैं, शराबी लागों की किसी भी प्रकार नशा करने की लत तथा भ्रष्ट पुलिस-व्यवस्था के कारण उनमे सफलता नही मिल सकी है। तमिलनाडु आदि कुछ प्रातो म जहां शराब-बन्दी लागू है स्पिरिट और वार्निश म कुछ नशीले पदार्थ मिलाकर उन्हें देशी और विदेशी शरावो क रूप म बेचने का ऐसा काला

1 'चर्खाशाला' पृ० 17
2 ग्रामिका' पृ० 55 56
3 'हमी' 'पदमा सुधि पृ० 28
4 'शिलानगर मे' श्याम० शशि पृ० 65
5 6 'निषेध सत्र', पृ० 133, 165
7 'भीतरी नदी की यात्रा', पृ० 48

■ धा पनपा है जो अब तक तमिलनाडु बम्बई दिल्ली आदि नगरो मे इस प्रकार से बनी सस्ती शराब पीने वाले हजारो लोगो की जानें ले चुका है। अवध रूप मे निर्मित कच्ची और सस्ती शराब को पीकर आय दिन लोगो क मरते रहन के समाचारों के परिप्रेक्ष्य म ही उपेन्द्रनाथ अश्क न सरकार की शराब बन्दी योजना का विद्रूपात्मक अकन करते हुए इस योजना के विरोधियों का पक्ष प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक ओर तो शराब तैयार करन के अवध ■ ध को धडल्ले से फलते फूलते दिखाया है— ह्विस्की के दो पग चढ़ाने के बाद/तुम बहक गय थे/तुम उस ह्विस्की ही कहते थे/जबकि तुम अच्छी तरह जानत थे/कि वह सिर्फ ठर्रा है—ठर्रा। काले व्यापारियो के हाथो/ह्विस्की की खाली बोतलो म भरा हुआ/हमारे देश के हजारो लाखो गरीबों के/गम गलत करने वाला/हमारा राष्ट्रीय पेय/ठर्रे स महगा/ह्विस्की से सस्ता/कि जसे यह हमारी मिलावट भरी आजादी।" अश्क के आगे दिय विचारो का समथन करना तो कठिन है हाँ वस्तुस्थिति यही है कि शराब बन्दी की योजना कुछ नेताओ की हठीली मनोवृत्ति का प्रतिफलन मात्र बनकर रह गयी है उसको व्यापक जन समथन प्राप्त नही है—

जनतन्त्र जिन्दाबाद/मरने दो सौ पचास लोगो को/स्पिरिट या वार्निश पीकर/जीकर ही वे क्या करेंगे ?/शराब बन्दी के लिए हमने आदोलन नही किय ?/धरने नही दिये ?/सुख सुविधाए नही लुटायी ?/सूनी वीरान रातें जेला म नही बितायी ?/शराब को हम यू सरे आम न बिकने देंगे।" उन्ही के शब्दो म वस्तुस्थिति यह है कि सरकार खुश है कि नशाबन्दी लागू कर दी, अफसर खुश कि उनकी जेबें भरती रहती हैं 'पीने वाले खुश कि उन्हे शराब मिल रही है, पिलानेवाले खुश कि उनका ■ धा जोरो स चल रहा है। ऐसी दशा म भी हम शराब बन्दी जिन्दाबाद' का नारा इसलिए लगाते रहते हैं कि सबका ख्याल रखना जरूरी है/जनतन्त्र की मजबूरी है।'[2]

(घ) वेशभूषा के पाश्चात्य उपकरणों तथा फैशनपरस्ती का विरोध

पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क तथा अग्रेज उद्योगपतियो के प्रयत्नो के फलस्वरूप उन्नीसवी बीसवीं शताब्दियो क अतगत भारतीयो द्वारा कुछ नये किस्म के वस्त्रो स निर्मित नये ढग की पोशाको का पहना जाना आरभ हुआ है। परम्परागत वस्त्रो म ढाका की मलमल आदि कुछ ऐसी किस्म भी सम्मिलित थी जिनका पहले भारत स निर्यात किया जाया करता था किंतु आग्ल शासन काल म भारतीय वस्त्रोद्योग को नष्ट कर दिया गया। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई

---

1 2 अदृश्य नदी', पृ० 48, 48

कि भारतेन्दु हरिश्चद्र को यह विलाप करना पडा था कि हमारे देश के लोगों का ब्रिटिश मिलों म बनी मलमल और मारकीन के बिना काम ही नहीं चल पाता, जिसमे ऐसा प्रतीत होता है मानो वे परदेशी जुलाहों के गुलाम बन गए हैं।[1] भारतवासिया के खान पान की अपेक्षा, उनकी वेशभूषा पर पाश्चात्य सभ्यता का अधिक प्रभाव पडा है अत कवियो ने इस दिशा म निन्दा और व्यग्य परक उक्तियाँ भी अधिक मात्रा म लिखी हैं। भारतवासिया की आधुनिककालीन वेश भूषा म आये पश्चिमीपन का उपहास करते हुए नाथूराम शर्मा शकर ने श्रीकृष्ण स 'गोरे गॉड बनन का आग्रह करते हुए कहा था कि अब आप मुकुट उतारकर सिर पर साहिबी टोप धारण किया कीजिए, मुख पर चदन लगाना छोडकर पोडर मला कीजिये आँखों म काजल लगाने की जगह आपको आला (उत्तम) एनक लगानी चाहिए काना म कुडलो क स्थान पर 'मेकराफून' प्रयुक्त करना चाहिए जबकि पीताम्बर और काले कम्बल के स्थान पर कोट और पतलून पहनना आरभ कर देना चाहिए। इसी प्रकार आपको पादुकाओ के स्थान पर इटालवी बूट, गठीली लकुटी के स्थान पर छाता और बेंत तथा मुरली के स्थान पर बिगुल अपना लेना चाहिए, और अतत आप 'डालो डबल वाच पाकिट म/चमकें चैन कचनी चार'[2] अर्थात आपके पास दुहरी स्वण चनो वाली दो जेबी घडियाँ भी होनी चाहिए। स्पष्ट है कि कवि के व्यग्य का शिकार कोई ऐसा व्यक्ति रहा है जिसे दूसरे शब्दो म 'काला अग्रेज' कहा जा सकता है। हरिऔध ने भारतीय पुरुषा की शृगार प्रियता का उपहास यह कहकर किया है कि जब स उन्होने कघी चोटी करना सीख लिया है तब स उनका मरदानापन समाप्त हो गया है और अब तो मात्र यह कमी रह गयी है कि वे दोना हाथो म चूडियाँ पहनकर माँग म सिन्दूर भरना आरभ कर दें।[3] आग्ल वेशभूषा के हैट और सूट के प्रयोग को भारतीयो द्वारा अपना लेने की भत्सना करते हुए उन्होने, 'मुह काला करना के मुहावरे का प्रयोग किया है,[4] जबकि चुरुट पीने के साथ नेक

---

1 'मारकीन मलमल बिना चलत नही कछु काम/परदेसी जुलहान के मानहु भये गुलाम।' भारतेन्दु ग्रथा०, भाग 2

2 'अनुराग रत्न' पृ० 276 77

3 "अब तो चूडी पहन हाथ म दोना/रहा माग म सेंदुर ही का भरना,
तब से सारा मरदानापन भागा, जब से सीखा कघी चोटी करना।"
'बोलचाल', पृ० 7

4 'देख लो सवार सिर पर है, सूट से राज हो रहा जग
फबतियाँ से सियाह मुह कह लो, कम चढा है न साहबी रग।"
'मम स्पश , पृ०

टाई को भी अपना नेन के कृत्य को उन्होंने 'नाक कटाने की तरह लज्जास्पद कृत्य बताया है।[1] कालेज के फैशनेबुल या पाश्चात्य सभ्यता म रगे युवक युवतियो को सम्बोधित करते हुए जोश मलीहाबादी ने तो उन्हें 'आह जीती जागती बदबख्तियाँ माँ बाप की बताकर क्षोभ व्यक्त किया था। माखन लाल चतुर्वेदी न 'बूट चाहिए सूट चाहिए काला हैट और नेक्टाय/कन चाहिए, चेन चाहिए घड़ी सहित फिर टनो चाय की यह कहकर भर्त्सना की है कि भारत के भावी विद्वान छात्रों का यह कैसा रग ढग है ?[3] एक अन्य कवि ने भी पाश्चात्य सभ्यता से अपनाये गये वस्त्राभूषण और तौर-तरीको का उपहास करते हुए लिखा है, "भर गर्मी म नाइट सूट पहनना/काँटे छुरी स चावल चपाती खाना (उगलियां स न छूना) पत्नी स आप कहकर बालना/कार का दरवाजा फुर्ती से खोलना/फिर थाहे/नाइट क्लब स तीन बजे पलटना/बच्चे को जबदस्ती ममी डडी/सभी कुछ सिखाना (प्यार स गोद म न उठाना)/कमर झुके बूढ़ बाप को/हर महीने पचास का मनिआडर भेज देना (साथ रखन की हिमाकत न कर बैठना)।[4]

पुरुषा की पतलूनें और जूते फशन के कई उतार चढ़ाव देख चुके हैं। छठे सातवें दशक म कुछ दिनो चौड़ी मुहरी की पेंट और चौड़े मुह के जूतो का प्रचलन रहा था जो अचानक ही ड्रेनपाइप पेंट और प्वाइंटेड या नुकीले जूतो मे बदल गया। इन जूता को वचनदेव कुमार ने उचित ही छुछुंदरी जूतों की सज्ञा प्रदान करते हुए किसी फशनबिल युवक की यह वशभूषा प्रस्तुत की है— ड्रेनपाइप पेंट और मुह से सिगरेटी छल्ले/कान म पपियाँ कधो पर कियोकारपिनी छल्ल/ पाँवो म छुछुन्दरी जूते ठाट हीरो मार्का अलबेले।[5] फशन क कारण चौबीस और छब्बीस इच की मोहरी वाल पेंटो की मुहरी सिकुड़कर नो इच रह गयी मानो वह एक प्रकार का चूड़ीदार पायजामा ही हो।[6] पुरुषो की वेशभूषा म आजकल कुछ ही दिनो म आ जाने वाले इस परिवतन के कारण उनके कुछ ही दिनो तक पहने गये कपड़े भी आउट-आफ फैशन होने के कारण बेकार हो जाते हैं। रामावतार चेतन ने इस विडम्बनामयी स्थिति को भली प्रकार उभारते हुए कहा है कि मैं

---

1 'है चुरुट चाट चौगुनी' जी मे बढ गई सूट बूट की नाइ। 'ममस्पश पृ० 95 जब लगाई गयी गले से तो काटती नाक क्यो न नक्टाई।

2 शेर ओ शायरी सपा० गोयलीय, पृ० 389

3 साता पृ० 44

4 जग लगे सपने, विजयचद पृ० 74

5 ओ अजनमा सुनो डा० वचनदेव कुमार पृ० 76

6 ' टेरीवूल की नो इची मोहरी/और सबसे नीचे शाप नेरो टो। '
'परवलय , राजेन्द्र ग्रसमाना, प० 25

अपनी वे पोशाकें/केवल सिली हुई रखी जो/लाई गयी प्रयोग मे नहीं/एक बार भी' और जो मात्र 'सिल जाने की गुनहगार हैं उनको/बेच रहा हूँ/भाव लाट के' क्योंकि फैशन का कारवाँ इन्हे/बीसो गज पीछे छोड चुका है/इनको अपना लेने से मुह मोड चुका है।[1]

पुरुष वग द्वारा आग्ल-सभ्यता के प्रभाव स्वरूप विशेषत नगरो मे कमीज, पेंट और कोट आदि वस्त्रो के पहनावो को अपना लिया गया है। मसूरी जैसे पयटन प्रधान नगरो म चाहे नर हो अथवा नारी, परम्परागत धोती के पहनने का तो रिवाज ही उठता जा रहा है— 'धोतिया हैं जान पडती, भीड मे धब्बा लगा है/बस यहाँ पतलून साडी फ्राक की भरमार सी है।'[2] रामनरश त्रिपाठी की सूटेड बूटेड युवको के विषय म व्यग्योक्ति है, कि नौजवानो की न पूछो साहबी पोशाक मे वे/तेल, साबुन क्रीम से अपना अजब चेहरा बनाये/लिडियो की बँटरी चारो तरफ अपने लगाये/बाज होन चल रहे हैं/शान स पलकें उठाय।'[3] स्वतत्रता प्राप्ति से पूव ही नही उसके दस बारह वष पश्चात तक भी साहबी मनोवृत्ति के लोगो म हैट पहनने का पर्याप्त प्रचलन परिव्याप्त था और हैट पहनकर वे स्वय को सामान्य लोगो से ऊच समझने लगते थे। ऐसे लोगो का उपहास करते हुए रामनरश त्रिपाठी के उदगार हैं कि यह कहना ही पर्याप्त नही है कि हैट की छाया से दिमाग, ललाट श्रवण और नेत्र धूप से बचते हैं सिर पर पक्षियो की बीट नही गिरती, और उसस अपढ देहातिया म भय उपजता है, अपितु उसका सबसे बडा लाभ यह है, सिर पर हैट रख चाहे जो अनय करो/हैट ईश्वर की दृष्टि स बचाती है।'[4] सम्प्रति हैट पहनन का प्रचलन तो मृतप्राय दशा म है, किन्तु वेशभूषा मे उन उपकरणो का एकच्छत्र साम्राज्य है जिनके प्रयोग का कवियो ने आरभ म तीव्र विरोध किया था।

(ङ) नारियों की फशनपरस्ती की निन्दा

नारियों की वेशभूषा के सम्बन्ध म उदगार व्यक्त करते हुए कवियों ने उनके पारदर्शी वस्त्रो के साथ ही शरीरागो के उभारो को और भी अधिक उभारने वाली कसी हुई पोशाक तथा अद्ध नग्न सी वशभूषा की तीव्र निंदा और उपहास किया है। उनके पारदर्शी वस्त्रो के विषय म कहा गया है, ढाँपते हैं इस तरह से/ताकि और उघडे तन/दृष्टि उठती दृष्टि झुकती/टिक नहीं पाते नयन, जबकि चोलियों

---

1 'चाँद के नीचे', पृ०21

2 3 आधुनिक कवि रामनरेश त्रिपाठी', पृ० 83, 83

4 'वही, पृ० 112

से झांकता है/नकली उद्दाम यौवन।"[1] नकली उद्दाम यौवन के संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि आजकल नकली दाँतों की बात तो छोड़िये नकली केशों, नकली उरोजों तथा नकली नितम्बों के प्रयोग द्वारा आधुनिकाएं स्वयं को अधिक से अधिक सुंदर तथा सुंदरता के प्रतिमानों पर खरी सिद्ध करने का प्रयास करती रहती हैं।[2] आधुनिकाओं द्वारा प्रयुक्त उत्तेजक अंगरागों की कहानी यह है कि उनके— लिपस्टिक, रूज लवेण्डर, इवनिंग पेरिस की/ईथरी गमक में तन मन बौरा जाता है/बेचारी नीति बराये ताक धरी रहती/मांसल उभार में कालकूट उफनाता है।[3] रामनरेश त्रिपाठी ने लिपस्टिक के प्रयोग द्वारा सुंदर दिखने का असफल प्रयोग करने वाली युवतियों के विषय में व्यंग्य विद्रूपपूर्वक लिखा है— "रंग काला है किसी का पोतकर वह भी सफेद/रात पर दिन की सवारी की छटा दिखला रही है/किंतु उनके लाल होठों से दहलता है कलेजा/नोच खाया है किसी को कुछ ? लगा सा गाल पर है।[4]

बहुत सी आधुनिकाएं पुरुषों जैसी पोशाकें पहनती हैं और वह भी अत्यधिक चुस्त होने के कारण उनके शरीरांगों से ऐसी चिपट जाती हैं कि वे नग्नप्राय सी ही प्रतीत होने लगती हैं "तन से चिपकी बुशर्टें और जींस/नकली ठहाके लगाती/घूम रही हैं/नवयुग की स्वच्छन्द तितलियाँ।[5] नीरज ने महानगरों के राजमार्गों पर विचरण करती नारियों की वेश भूषा को बेशर्म ब्लाउजों का अधनंगा फैशन कहकर निंदा की है।[6] रवीन्द्रनाथ त्यागी ने खेदपूर्वक कहा है कि महानगरों के सिनेमा गृहों के बाहर या बाजारों में अधनंगी टाँग, अधनंगी कमर और अधनंगे वक्षों की फसल पकने लगती है।[7] फैशन की दीवानी इन आधुनिकाओं को नागार्जुन ने धासक सज्जा की विद्रूपात्मक संज्ञा प्रदान करते हुए दिखाया है कि

---

1 'अंजुरी भर धूप', हरि० पाठक अजेय पृ० 66

2 "नकली बातों, नकली दाँतों की क्या बातें, नकली केशों, नकली उरोज का क्या कहना।" 'मिट्टी की बारात', शि० म० सिं० सुमन, पृ० 140

3 वही, पृ० 140

4 आधुनिक कवि रामनरेश त्रिपाठी, पृ० 83

5 'धारा हुआ प्रभामंडल', उपेन्द्रनाथ अश्क, पृ० 68

6 "महकते इत्रों में/नाइलोनी साड़ी में/ऊँची हील पर/लचकती थिरकती स्कर्ट में/बेशर्म ब्लाउजों के अधनंगे फैशन में/अंग्रेजी शराब का नशा/रूप का गर्व/और पैसों का दर्प चला करता है।" आज के लोक० हिंदी कवि नीरज, सम्पा० क्षे० सुमन पृ० 105

7 'आदिम राग', रवीन्द्रनाथ त्यागी, पृ० 25

जब ऐसी युवतियाँ कार म बैठकर वोट डालने आयी तो उनकी 'तिकोने नाखूनो वाली उगलियाँ/सुख नेलपालिश/कीमती रिस्टवाच/अँगूठियो के नग/कानो के मणि पुष्प चमक उठे। हा यह जानकर कि वोट डालने स पूव उन्हें अपनी उँगलियो पर मसि चिह्न लगवाना पडेगा वे कह उठीं 'हाय इतने सुदर हाथ हो जायेंगे दागी' और वे नागरिकाएँ बिना वोट डाले ही लौट गयी।[1] इसी प्रकार गिरिजाकुमार माथुर ने अधुनातन वेशभूषा मे सज्जित रमणियो को अगो की दिखलाती घूमती नुमाइशें' बताकर घृणा व्यक्त करते हुए कहा है कि उनकी भडकीली वेशभूषा और उसमे स झलकते अगों को देखकर लोगो की "लालसा रूपी जिह्वाएँ/कभी चोच सी छोटी और कभी गजो लम्बी होकर/चाट रही हैं/फर्राती उघडी टाँगें/छातियो के झुड/बालो के घोंसले/एकडो मे पीछे उठे।"[2] एकडो मे पीछे उठे बालो के घोसलो वाली आधुनिकाओ के धमयुग साप्ताहिक के एक बेचारी फशन की मारी' शीषक स्तम्भ म बडे मनोरजक कार्टून निकला करते थे, जिनमे उनके कुतुबमीनार चुम्बी जूडों मे बेंगन लोटा आदि तरह तरह के उपकरण बँधे दिखाये जाते थे।

(च) मूछें चोटी और यज्ञोपवीत

लोकजीवन म 'मद मुछारो, बल सिगारो अर्थात बनी बडी मूछों का मर्दानगी का प्रतीक समझने की धारणा अभी तक सुनायी पडती है। मध्य युग मे किसी को अपन सम्मुख मूछो पर ताव देते देखना अप्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता था और महाराज पृथ्वीराज के चाचा कन्ह की आंखो पर तो दण्ड स्वरूप एक रत्नजटित पट्टी ही बाँध देनी पडी थी, क्योकि उ हो। अपन सम्मुख महाराज भोला भीम के चचेरे भाइ को मूछें मरोडत देखकर उसका वध कर दिया था।[3] हाँ आधुनिक काल म ऐसे लोग (सना के जवान और ग्रामीण लोगो क अपवाद सहित) बहुत कम हैं जो मूछे रखते हैं या अपनी मूछ ऊँची रखने की शान के पीछ मुल्कराज आनन्द की ए पेयर आव मुस्टेच्यूज' शीषक कहानी क नायक की तरह अपने घर की टाला माला मूछें नीची कर लेन वाल को सौंप सकते हैं। मुल्कराज की कहानी का अभिप्राय भी मूछो की शान को मिथ्या दिखाना ही है जो निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव का प्रतिफलन कहा जा सकता है। भारत के शिक्षित वग म मूछें छँटवाकर मक्खी जसी छोटी छोटी मूछें रखने का

1 आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन, सपा० प्रभाकर माचवे पृ० 71 72
2 भीतरी नदी की यात्रा पृ० 44 45
3 द० हमारा शोध प्रब ध हिन्दी-वीरकाव्य म सामा० जीवन की अभिव्यक्ति पृ० 68

फैशन चलाने का श्रीगणेश कर्जन द्वारा किया गया था जिसको लक्ष्य करके *अकबर की व्यंग्योक्ति थी कि कर्जन ने पुरुषों को स्त्री बना दिया है 'कर दिया कर्जन ने जन मर्दों की इज्जत छीन ली।'*[1] बाद में मूछें पूर्णत मुडवाकर रखने या क्लीन शेव्ड रहने का प्रचलन बढ़ा था, तो लोक जीवन में उसके विरोध स्वरूप 'सौ गुंडों का गुंडा और एक मुछमुंडा' की लोकोक्ति हो प्रचलित हो गयी थी जिसका मूलाधार इस प्रवृत्ति की रोकथाम करना ही था। हाँ अतत नगरों में यह प्रथा बढ़ती ही चली गयी है। गणेशचन्द्र जोशी ने अकबर को हिंदुओं की दाढ़ियाँ और कर्जन को उनकी मूछों की दुम कटवाने का अपराधी बताया है।[2] आंग्ल शासन काल में जेलरों को यह तथ्य पसंद नहीं था कि कैदियों की मूछें जेलर से लम्बी हों अत वे उनसे बलात उनकी मूँछें छाँटी करा देते थे। कन्नौज जेल की एक घटना के अनुसार वहाँ के जेलर ने राजनतिक बंदियों को आदेश दिया था—"लो कची मूछों को छाँटो यह शान तुम्हारी कभी हो/मुझसे छोटी मूछें रखो मैं साहब हूँ तुम कैदी हो।[3] घटनानुसार बहुत से कैदियों ने अपनी मूछें छोटी कर ली थीं किंतु स्वाभिमानी मंगल मालवीय ने झपटा झपटा नर शार्दूल साहब की ही मूछें काटी/अपने साहस से उस नर ने पापी तन की डालें छाँटी[4] के रूप में एक प्रकार से मूछों सम्बन्धी मध्ययुगीन मर्यादा को ही पुनरुज्जीवित किया था। श्रीकृष्ण सरल ने मूछों को पुरुषत्व की निशानी दिखाते हुए किसी मूछ विहीन रिक्शा चालक से भगतसिंह को यह कहते चित्रित किया है— लड़ते जाओ दोस्त मात मत खाना पीछे हटकर/ताव तुम्हारे बदले मैं देता अपनी मूछों पर।[5]

यज्ञोपवीत और चोटी का विलुप्तीकरण

भारतीय पुरुषों द्वारा मूछें रखाने और उन पर ताव देने का सम्बन्ध तो विशेषत क्षत्रियों की मर्यादा प्रतिष्ठा से ही सम्बन्धित था जबकि शिखा और यज्ञोपवीत तो एक प्रकार से हिंदुत्व के जातीय चिह्न रहे हैं। चाणक्य द्वारा नंद वंश के उन्मूलन की प्रतिज्ञा अपनी शिखा में गाँठ लगाकर ही की गयी थी जबकि चूड़ाकरण या चूडाकर्म नामक संस्कार का सम्बन्ध मूलत चूड़ा या शिखा या कहिये मुड़े हुए सिर पर एक बाल गुच्छ छोड़ने से ही था।[6] देवल ऋषि की यज्ञो

1 शेर ओ शायरी सपा० गोयलीय
2 'रणजागरण' पृ० 151
3 4 जयमानव' ब्रह्म० दी० ललाम पृ० 34
5 सरदार भगतसिंह पृ० 294
6 'चूड़ा का तात्पर्य है बाल गुच्छ, जो मुंडित सिर पर रखा जाता है इसे 'शिखा' भी कहते हैं। अत चूडाकर्म या चूडाकरण वह कृत्य है जिसमें जन्म

पवीत और शिखा के सम्बन्ध मे टिप्पणी है 'बिना यज्ञोपवीत और शिखा के कोई भी धार्मिक कृत्य नही करना चाहिए। बिना इन दोनो के किया हुआ धार्मिक कृत्य न किया हुआ समझना चाहिए। यदि कोई व्यक्ति घणावश मूखतावश या अबोधता के कारण शिखा कटा लेता है तो उसका पापमोचन तप्तकृच्छ प्रायश्चित से ही सभव है।'[1] औरगजेब द्वारा हिन्दुओ को मुसलमान बनाये जाने के सदभ म यह किंवदती प्रसिद्ध है कि वह यज्ञोपवीतो और शिखाओ के ढेर लगवाया करता था। भूषण ने भी जब 'बेद राखे बिदित पुरान राखे सारयुत राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मे के साथ ही हिन्दुन की चोटी, रोटी राखी है सिपाहिन की कांधे मे जनेऊ राख्यो माला राखी गर म के रूप म महाराज शिवाजी द्वारा हिन्दुओ के यज्ञोपवीत और चोटियो को बचा लेने का भाव व्यक्त किया था तो उ होने इन दोनों तथ्यो का हिन्दू जातीयता के प्रतीक चिह्नो के रूप म ही उल्लेख किया था। यदि भूषण द्वारा उल्लिखित हिन्दू जातीयता क प्रमुख सकेत चिह्नो के परिप्रेक्ष्य म विचार किया जाय तो कहा जा सकता है कि औरगजेब तो लाख प्रयास करने पर भी हिन्दुओ स यज्ञोपवीत चोटी शाकाहारी भोजन तथा वेद और पुराणो मे से किसी भी वस्तु का प्रयोग नही छुड़वा सका था, किन्तु उनम से मात्र वेदो के अतिरिक्त आधुनिक काल के विशेषत नगरवासी हिन्दू अन्य सभी वस्तुओं का या तो परित्याग कर चुके हैं या उनके प्रति उदासीन हैं अथवा उनस घणा करने लगे हैं। कहना न होगा कि यह परिवतन भारतीयो के पाश्चात्य सभ्यता के सम्पक म आने के साथ ही भारतीय युवको को ईसाई मिशनरियो द्वारा हिन्दू घम की निन्दा रूपी शकरावेष्ठित कुनन की गोलियाँ खिलाने का परिणाम है। सम्प्रति पुराणादि धार्मिक ग्रथ कोरी गप्पें माने जाने लगे हैं, खान-पान म सामिष भोजन एव सुरा पान का सभी वर्गों के लोगो मे प्रचलन है जबकि चोटी और यज्ञोपवीतो को मात्र वे ग्रामीण लोग धारण करते हैं जो हमारे तथाकथित सुसस्कृत वग के लोगो की दष्टि मे निपट गवार और पिछड हुए दकियानूसी लोग हैं।

उन्नीसवीं बीसवी शतियो के अतगत यज्ञोपवीतो के प्रयोग अप्रयोग को लेकर मनोरजक स्थिति रही है। एक ओर स्वामी दयानन्द का आयसमाजी आदोलन था जिसके अतगत सभी जातियो के नर नारियो को यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार प्रदान किया गया। स्वामी दयानन्द द्वारा शूद्र जातियो को भी यज्ञो

के उपरान्त पहली बार सिर पर एक बाल गुच्छ (शिखा) रखा जाता है।' 'धमशास्त्र' का इति०', भाग 1, डॉ० पी० वी० काणे पृ० 203

1 दे० वही प० 205

2 'भूषण ग्रथावली, सपा० ब्रजरत्न दास, 'शिव० भूषण' छद, 51

पवीत धारण करने का अधिकार देकर, वर्ण गत ऊँच नीच की धारणा के मूल पर कुठाराघात करने की चेष्टा की गयी। इसका सर्वथा विरोधी प्रयास ब्रह्मसमाज के नेता केशवचन्द्र सेन का रहा जिन्होंने इस तथ्य पर बल दिया कि किसी भी वर्ण के ब्रह्मसमाजी को यज्ञोपवीत नहीं पहनना चाहिए। उनकी यह माँग तो स्वीकार कर ली गयी किन्तु जब केशव का यह आग्रह हुआ कि ब्रह्मसमाज के मंदिर में वेद पाठ करने वाले आचार्यों ब्राह्मणों को भी यज्ञोपवीत नहीं पहनने चाहिए, तो मामला तूल पकड़ गया और इसी प्रकार के कुछ अन्य कारणों से ब्रह्मसमाज दो गुटों में ही विभक्त हो गया था।[1] स्वामी विवेकानन्द को मध्यमार्गी कहा जा सकता है। उन्होंने अपने गुरु रामकृष्ण परमहंस के जन्म दिवस पर साठ अब्राह्मण शिष्यों को यज्ञोपवीत प्रदान करते हुए कहा था हमारे गुरु के सभी भक्त वस्तुतः ब्राह्मण हैं। आज के लोग अपने अधिकारानुसार वैश्यत्व और क्षत्रियत्व को प्राप्त करेंगे।[2]

आधुनिक काल के कवियों ने यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में तो नहीं हाँ चोटी को लेकर पर्याप्त उद्गार व्यक्त किये हैं। यज्ञोपवीत के सम्बन्ध में मैथिलीशरण गुप्त ने इस तथ्य की भर्त्सना की है कि यह तथ्य उचित नहीं प्रतीत होता कि चाहे जो व्यक्ति यज्ञोपवीत पहनाकर ब्राह्मण बना लिया जाये क्योंकि ऐसा करने से तो मत प्राय हिन्दू समाज का और भी अधिक पतन होगा।[3] उन्होंने इस तथ्य को अहोभाग्य कहा है कि वश्य यज्ञोपवीत पहनते हैं किन्तु उनके द्वारा यज्ञोपवीत धारण करते हुए भी द्विजों के अनुकूल आचरण न करने और यज्ञोपवीतों को मात्र चाबियाँ लटकाने के लिए प्रयुक्त रस्सी से अधिक महत्त्व न देने की प्रवृत्ति की निन्दा की है।[4] पुरातन संस्कृति के द्विजातियों के इस प्रधान प्रतीक चिह्न का प्रयोग सम्प्रति नगरवासियों में तो मृतप्राय दशा में ही है।

हरिऔध ने चोटी को हिन्दुओं का जातीय चिह्न स्वीकार करते हुए उन लोगों की तीव्र निन्दा की है जो पेटों की खातिर अपनी चोटी की लज्जा नहीं रख पाते थे अर्थात नौकरी पाने की लालसा में या तो ईसाई हो जाते थे अथवा अपनी चोटी कटाकर अंग्रेजी फैशन के बाल कटवाने लगते थे।[5] कमाई के टकों की खातिर चोटी की मर्यादा न रख पाने वालों के साथ ही उन्होंने उन जीभ के चटोरों का भी जी भरकर लताड़ा है जो क्षणिक जिह्वास्वाद के लिए अपने पूर्वजों

---

1 दे० हमारी परम्परा सपा० वियोगी हरि में शरदेन्दु का 'ब्रह्मसमाज' शीर्षक लेख पृ० 525

2 स्वामी विवेकानन्द की जीवनी', आशा प्रसाद, पृ० 243

3 4 हिन्दू पृ० 93 133 34

5 चुभते चौपदे, पृ० 116

की मर्यादा प्रतिष्ठा पर पानी फेरते हुए चोटी कटवा लेते थे।[1] यह जीभ का चटोरापन होटलो मे अखाद्य भक्षण के अभिलाषियो द्वारा अपनी परम्परागत वेश भूषा और केश विन्यास को त्यागकर यूरोपियनो की तरह रहने लगने का प्रतीक था क्योंकि रूपनारायण पाण्डेय ने भी लिखा है—"अश्रद्धा हो गयी पुरानी परिपाटी पर/चोटी कटवा चले भले होटल के अदर।"[2] प्रतीत होता है कि मास भक्षण के शौकीन ऐसे लोग जिनके घरो के चौकों मे कदाचित प्याज का भी आना वर्जित रहता था इस उद्देश्य से अपनी चोटियाँ कटवा देते थे, जिससे होटल मे उनके सिर पर लहराती चोटी (तथा ग्रीवा मे पड़े यज्ञोपवीत) को देखकर, लोग उनकी निन्दा न कर सकें—उन्हें ईसाई या मुसलमान समझने के भ्रम मे रहे। प्रस्तुत सदर्भ मे हरिऔध की यह अभिव्यक्ति भी इसी ओर सकेत करती है—

"लग गयी यूरोपियन रगत भली/क्यो बनें हिन्दी गधे भूका करें।
साहबीयत म रहेगे मस्त हम/थूकते हैं लोग तो थूका करें।।"[3]

कालान्तर मे यज्ञोपवीत की तरह चोटी भी न रखने वाले ब्राह्मणादि की भर्त्सना निन्दा की प्रवृत्ति शिथिल होती गयी है और कदाचित यही कारण है कि द्विवेदी युग के परवर्ती काल के कवियो मे से मात्र जगदीश चतुर्वेदी हम यह भाव व्यक्त करते मिलते हैं कि मैं अपनी शिखा को नोचकर फेंक देना चाहता हू' (वास्तव मे हमे सन्देह है कि सभी प्रकार की सामाजिक मर्यादाओ को मेटने के लिए आतुर चतुर्वेदीजी के सिर पर शिखा होगी !) क्योंकि 'निष्ठा और धर्म के दाग म मैं जिन्दा नही रहना चाहता ।'[4] पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाववश हिन्दुत्व के इन परम्परागत चिह्नो के विलुप्तीकरण को लेकर आहत विक्षुब्ध लोगो को हम समाश्वासन के रूप म इस तथ्य की जानकारी कराना चाहेगे, कि पश्चिमी सभ्यता की आँधी म मात्र भारतीयो की ही चोटियाँ गायब नहीं हुई हैं, अपितु सी० डी० एम० केटलबी के अनुसार चीनियो को भी चोटी की दृष्टि से ऐसी ही नियति भोगनी पड़ी है[5], जबकि जापानी युवको द्वारा तो अपने पूजास्थल

---

1 लुट गई मरजाद पत पानी गया/पीढियों की पालिसी चौपट हो गई।
चोट खा वह ठाट चकनाचूर हो/चाट से जिसकी चोटी गई।'
'चुभते चौपदे', पृ० 117

2 पराग' पृ० 5

3 चुभते चौपदे, पृ० 117

4 इतिहास हन्ता, पृ० 12

5 चीन के पुरुष वर्ग सिर पर चोटी रखते थे। अब पश्चिमी सभ्यता के रग मे चीनी लोग चुटिया रखने म शर्म महसूस करने लगे थे।' 'आधुनिक काल का इतिहास, अनु० विश्व प्रकाश, पृ० 706

पैगोडाओ म आग लगा दी गयी थी।[1]

आभूषण विरोधी चेतना

भारत कभी सोने की चिडिया कहलाता था। विदेशी यात्रियो ने जहाँ भारत के स्वण भडार की प्रशसा की है वहाँ इस तथ्य के विषय मे खेद व्यक्त किया है कि यहाँ की नारियों की आभूषण प्रियता के कारण बहुत सा सोना वाणिज्य व्यवस्था मे प्रयुक्त होने के स्थान पर आभूषणों के रूप म भारतीय महिलाओं के सन्दूको मे बेकार पडा रहता है। इस दृष्टि से यह एक शुभ लक्षण ही है कि आधुनिक काव्य मे आभूषणो को पतन का निमित्त बताकर, नारियो के हृदय मे उनके प्रयोग के प्रति विरुचि जाग्रत करने वाले उदगार व्यक्त हुए हैं। यद्यपि अभी जन मानस मे आभूषण विरोधी भावनाएँ घर नही कर पायी हैं तो भी सोने के आकाश चुम्बी मूल्य तथा कवियो द्वारा स्वण नियन्त्रण योजना का समथन करते हुए आभूषण विरोधी भावनाए व्यक्त करने के तथ्यो ने सुशिक्षिताओ मे अपना प्रभाव दिखाना आरम्भ कर दिया है।

रामकुमार वर्मा ने नारियो को प्रबोधित करते हुए कहा है कि यदि आभूषण प्रियता का रोग नारियो मे इसी प्रकार बढता रहा तो फिर यही समझ लो भारत/को करना होगा दुख भोग।[2] पत ने मकर सक्रांति के पव पर ग्रामीणाओं के गंगा स्नानाथ जाते समय उन्हें सोने चाँदी गिलेट और पीतल के आभूषणो से लदी बताते हुए व्यग्यपूवक कहा है 'गहन ही गवारिनो के धन'।[3] शिक्षिताओ के अतमन मे आभूषण विरोधी चेतना जाग्रत करने की दिशा म आधुनिक कवियो द्वारा आभूषणो को नारी दास्य के चिह्न बताने के तथ्य का महत्वपूण हाथ स्वीकार करना चाहिए। शील का कथन है पुरुष पुगव ने तुम्हारी नाक छद/बाँध रस्सी स तुम्हें गहिणी बनाया' है।[4] गणश च ■ जोशी म बतर ने स्वण मे कलियुग का निवास मानने की परपरागत धारणा का और भी आग बढाते हुए 'सोना खुद ही महाकाल है' की धारणा व्यक्त की है और कहा है कि स्वर्णाभरणो के कारण नारी जीवन नरक तुल्य बना हुआ है सोने की य बनी बेडियाँ नारी जीवन नरक बनातीं। उन्होने आधुनिक नारी द्वारा इस तथ्य को हृदयगम कर लेने पर बल दिया है कि देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए स्वण की अपेक्षा इस्पात की अधिक आवश्यकता है क्योंकि, ये सोने के हरिण हर रहे, सीता के

1 आधुनिक काल का इतिहास', अनु० विश्व प्रकाश पृ० 688
2 'कुलललना' प० 94
3 ग्राम्या प० 41
4 लावा और फूल, प० 52

स्वाधी व सभी विधि।" उन्होंने राष्ट्रीय सुरक्षा कोष मे अपने समस्त आभूषणों को सौंप देने वाली किसी महिला से कहलाया है कि नारियो की आभूषण प्रियता पुरुषों के जीवन को ग्रहण की भांति सपीडित करती रहती है, 'पुरुषो को ही गहन लगे नारी के गहने/भार हो गयी दोनो को हर सांस सांस तक।' आभूषण तो उस बबर युग की याद दिलाते हैं जब कुमारियाँ बाँध ली जाती होंगी अग-अग से'।[3] उदाहरणाथ कक्ण स ले कडी चूडियाँ हथकडिया सी/पायल पग म स्वय बेडिया सी बजती हैं/और गले मे चद्रहार तौका की नक्लें/कहती क्या ये कया पुरानी नही युग से? पूछू मैं अपनी बहुओ से वे जवाब दें।"[4] जोशीजी ने आभूषणो के सम्बध मे आधुनिक नारी के इस चितन को भी अभिव्यक्ति प्रदान की है कहाँ काम आते ये जेवर मरती बेला? ढेला यह मिट्टी का जलता नहीं साथ तक/आज आधुनिक नारी सब कुछ समझ रही यह/पुरुषो ने ही स्वण लोभ दे कर परसे हैं।'[5] इस नवीन चेतना के सदभ म दो लोकगीत भी उल्लेखनीय हैं, जिनम से बनारस की ओर के गीत मे कोई पत्नी पति द्वारा विरोध करने पर भी बजाज का उधार चुकाने के लिए अपने आभूषण सौंपते हुए कहती है कि हे राजा गहना करडा नाहो साधि न एको माही भावई हो/ तोहार मुह रही हुरीभर बिन गहने सोभव हो।"[6] इसी प्रकार एक राजस्थानी लोकगीत म परिवार के सदस्यो को ही विभिन्न प्रकार के आभूषण मानने का भाव व्यक्त किया गया है।[7]

(ज) रेडियो, सिनेमा और पाश्चात्य नृत्यो का सास्कृतिक प्रभाव

मनोरजन के आधुनिक साधनों म से कवियों ने रेडियो सिनेमा तथा पाश्चात्य नत्यों के सम्बध मे अधिक उदगार व्यक्त किये हैं। इन माध्यमों म स रेडियो को तो मनोरजन[8] के साथ साथ लोगों के जगन-सोने का भी नियमन करते दिखाकर साम्प्रतिक जीवन का अपरिहाय अग सिद्ध किया गया है[9] जबकि सिनेमा को बहु जन प्रिय माध्यम दिखाते हुए भी उनकी कहानियो की इस दृष्टि से भत्सना की गयी है कि व युवक युवतियो का चारित्रिक ह्रास करती हैं। इस तथ्य की शिकायत करते हुए केशवचद्र वर्मा के उदगार हैं 'इन हिदुस्तानी फिलिम बनाने

1-5 रण जागरण' 29 116, 117, 117, 141

6 7 कविता कौमुदी तृ० भा०, पृ० 232 827

8 ' बस प्रतीक्षा म खडा/अनमना क्यू म/रेडियो सीलोन सुनता/ट्राजिस्टर कान स लगाये। बहुत दिन बीते वचन पृ० 61

9 रेडियो पर व दना प्राग्राम म तलत महमूद की कव्वाली सुने काफी मिनट गुजर गये/ उठो डार्लिंग उठो आकाशवाणी स मौसम का हाल भी प्रसारित हो चुका है।' अनुपस्थित लोग, भा० भू० अग्र०, पृ० 67

वाले/निर्माता अभिनेताओ ने' सोच रखा है कि अपना प्राण लगा देंगे/पर पदा ही करके छोड़ेंगे/लला मजनू की असंख्य जोड़ी जनता मे ।'[1] नरेन्द्र शर्मा ने भी शिकायत के स्वर मे कहा है कि सिनेमा जो 'कल तक व्यसन समझी जाने वाली चलचित्र विधा थी 'आज विद्या व्यवसाय' बन गयी है । चलचित्र निर्माताओं की व्यवसाय बुद्धि के कारण मानव प्रज्ञा की उपेक्षा की जाती है जबकि उनकी धनलिप्सा महत्त्वपूर्ण हो उठी है और तदनुकूल बाक्स आफिस हिट होने वाले फार्मूलो पर चित्र बनाये जाते हैं । आवश्यकता इस तथ्य की है कि कोटि नयन कोटि श्रवण' आकृष्ट कर लेने वाले इस यन्त्र दूत के तन्त्र को शुद्ध किया जाये इस विद्या को मन्त्रपूत बनाया जाय यन्त्र तो दास है हमने उसको स्वामी क्यों बना रखा है और तन की भूख के सम्मुख मन का पग पग' पर अपमान क्या करते रहते हैं ?[2] सिनेमा देखने का युवकों को किस सीमा तक व्यसन लगता है इस तथ्य की व्यंजना डॉ॰ वचनदेव कुमार के इन उदगारो हुई है रात चूहे घर से निराश लौटे/प्रात घर में बिल्लियां उदास बैठी फिर भी ऐसे घरो के ' हीरो मार्का अलबेले/सिनेमा की टिकट खिड़की पर मचा रहे हो हल्ले ।''[3] प्रभाकर माचवे ने भारतीय फिल्मो की यथार्थ जीवन से विमुख बे सिर पैर की कहानियो की भर्त्सना करते हुए दिखाया है कि उनमे सौ मे साठ अनहोनी कृत्रिम सम्भाव्यता/कथानक मे नकलीपन गाना भड़कीला चीप/अभिनय मे वदेशिक छटाए हप हूप हूप हीप/भारतीय नाम की भयात भवितव्यता' रहती है ।[4] इन फिल्मो मे सभी प्रकार की कृत्रिमता रहती है "वही चांद नकली है आंसू गिलसरीन के/नकली हैं नकली सितारे ये स्क्रीन के/गटापार्चा राम हैं गटापार्चा जानकी/और अब ज्यादा हुआ तो दो ढोल ड्रम की/कही करा दो स्ट्राइक कोई जुलूस मोरचा कुछ कोरस हो/कम कसकर रस का अतिरेक गरज यह कि खूब खूब बस हो ।[5] कवियो ने इस तथ्य को भी उभारा है कि चलचित्र विधा के विकास ने भारतीय रंगमंच कला को पर्याप्त ठेस पहुँचायी है । अभिनेताओ मे वसे तो सच्ची अभिनय प्रतिभा कम ही होती है किन्तु उनकी प्रतिभा का समुचित लाभ भी नही उठाया जाता । किसी अभिनेता के मुख से कहलाया गया है लोगो मे वासना जगाना/मेरा मुख्य काम/या फिर उन्हे हँसाना/या खिझाना, रुलाना/भाटो भाडो, विदूषको का अभिनव विकास मे/कला का उपहास मैं । '[6] इसी प्रकार कोई अभिनेत्री यह भावना व्यक्त करती चित्रित की गई है कि मेरा सौंदर्य 'सामाजिक काम

---

1 वीणापाणि के कम्पाउंड में पृ॰ 58
2 'श्यामा निर्झर पृ॰ 133
3 'ओ अज मा सुनो पृ॰ 76
4 5 स्वप्न भंग पृ॰ 78, 79
6 [illegible]

का मादक्तम उत्तेजक होता है और मैं सावभौम वेश्या/जिस पर अधिकार सबका।' वह आगे भी कहती है नारी के यौन का उचित अधिकारी एक/जहाँ दो हुए वे लगाव बन जाते हैं/मेरा यौन सावजनिक यौन बन जाता है/मैं वैज्ञानिक वेश्या/मैं यन्त्रीकृत गणिका। मैं जगत उपभोग्या'[1] बन चुकी नारी हूँ।

मनोरजन का एक साधन ऊचे स्तर के होटलो, रेस्तराओ म भोजन करना और नृत्य सगीत का आन द लेना भी है। इन रेस्तराओ म पाश्चात्य सस्कृति के खान पान और नृत्य सगीत का ही बोलबाला रहता है और 'भरत-नाटयम' या कत्थक जस भारतीय नत्यो का नाम भी नही सुनाई पडता। कतिपय नृत्यो के नाम और नतकियो की वेशभूषा का अनुमान इस उद्धरण से किया जा सकता है— आओ/बाल डास करें/टिवस्ट नाचें/चा चा/रम्बा/ट्रोट/मगर-/मैं अपनी पारदर्शी चुन्नी नही उतारूगी/तुम अपन फ्रॅंच सूट पर/उन्नावी पगडी कसे रहना/मैं इतनी बेशम नही हू/न तुम ही इतन अधार्मिक/चा चा/हा हा/रम्बा।''[2]

रामदरश मिश्र न खद व्यक्त किया है कि अपनी महान् भारतीय सस्कृति की दोहाई देत रहने वाल लोग भारत की राजधानी दिल्ली क नाइट क्लबो म किस प्रकार भारतीय सस्कृति की बखिया उधडकर विदेशी सस्कृति की पौध लगाते रहते हैं— हां खडा है एक सास्कृतिक नगर/और भीतर की रगीन गुफाओ म/जाज की धुन पर/लडखडा रहा है/एक नगा प्यासा जगल/जिसम पौधे पेरिस और यूयाक से मगाए गये थे।' उनके अनुसार देश का दुर्भाग्य यह है कि इस विदेशी विलासमयी सस्कृति म रमने वाले अधिकाशत देश के चोटी के नेता यायाधिकारी व्यापारी और धार्मिक नता होत हैं इस जगल मे खाये हुए हैं अनक चेहर/ याय विधान शासन व्यापार, धम/टिवस्ट की धुन पर। इन रगीन गुफाओ (अडर ग्राउड डिस्कोथिको क्लबो) म भरतनाटयम थिरकने लगता है/ सतीत्व पटाकाट सा सरकन लगता है नाचे/रशमी साडी ऊपर उठकर स्कट बन जाता है। इन आगल-नत्यो को भारत स निष्कासित की गई अश्लील महायानी मुद्राओ का पुनरागमन घोषित करत हुए एक अ य कवि ने कहा है एक बार महायानी मुद्राओ का/कफन स ढककर/ताबूतो सहित/समुद्र पार प्रवाहित कर दिया गया था/और अब ? सदियो के बाद/जब वे आढकर मुखौटे/आ धमकीं क्लबो रेस्टाराओ म/तो उनक सुनहरी बाल/सबको धोखा दे गए/चाकू म/कची स/शूलों स/भालों स/करके श्रृगार/महायानी मुद्राए/मद्धिम प्रकाश म/करने लगी नृत्य

---

1 देश दिल्ली और अहम डा० राम० प्र० मि० पृ० 89 90
2 जग लगे सपन' विजयचद पृ० 17
3 पक गयी है धूप पृ० 125
4 वही पृ० 125

फॉक्स ट्रॉट, वॉल्टज, रॉक एन रोल।'[1]

बस और रेल यात्राओ द्वारा सास्कृतिक मूल्य सक्रमण

आवागमन के साधनो के क्षत्र मे आधुनिक काल के अतगत ज्वलत परिवतन हुए हैं और मध्यकालीन आवागमन के बहुत से उपकरण या तो अजायबघरो की शोभा बढ़ाते हैं अथवा ग्रामीण उत्पादनो का ढोने के काम आते हैं। आवागमन के सम्प्रति सर्वाधिक मात्रा मे प्रयुक्त किए जाने वाले उपकरण बस और रेलें हैं जो देश के एक छोर के निवासियो को दूसरे छोर के निवासियो से तो ,जाड़ती ही हैं, उन्होने छुआछूत की धारणा तथा नारियो के पर पुरुप स्पश को पाप समझने की भावना को मिटाने म महत्त्वपूण भूमिका अदा की है।

देश की बढ़ती हुई जनसख्या के अनुपात मे परिवहन साधनो का विकास न हो पाने के कारण बसो और रेलो म होने वाली धक्का मुक्की और फजीहत को लेकर आधुनिक कवियो ने पर्याप्त खीझ व्यक्त की है। पहली समस्या तो बस के आने की प्रतीक्षा मे लम्बे समय तक क्यू म खड रहने की है, इस क्यू मे खड खड बालम आधा जीवन तो बीत गया।'[2] लखनौआ कल्चर के अनुयायियो का आधा तो क्या पूरा जीवन बीत जाने पर भी दिल्ली की बसो मे सवार होने का अवसर नही मिलेगा, क्योकि जब तक धक्का मुक्की करते हुए वे स्वय बस म चढन के स्थान पर, दूसरो से तकल्लुफपूवक पहले आप कहने का शिष्टाचार निभाएँगे तब तक तो बस थोड़ी देर रुककर चली भी जाएगी और उनको प्रतिदिन क्यू मे बीत गया दिन सारा, मिला न बस मे स्थान है[3] की ही नियति भोगनी पड़गी। जब घटों की प्रतीक्षा के उपरा त 'क्रोधित दानवो जसी बसें घरघराती हैं और भीड़ें हरहरा कर टूटती हैं उनपे तो कडक्टर दहाड़ते हैं/हटो हटो जगह नही।[4] बस के आते ही सवारियो मे मचने वाली भगदड और उनके हथकण्डो का यह चित्र अवलोकनीय है, ' टन/कडक्टर की कमांड/और चालक की खीज/के बीच/बस रुक गई/बगल वाली लड़की झुक गई/कुछ तैराक सड़क के किनारे लग गये/और किनारे के गोताखोर/मचाते हुए शोर/बढ भीतर की ओर/सारी भीड कांपती हुई/बढ रही है/बस बनकर पैर और ऊपर उठे हुए हाथ/एक साथ/सभा तर वक्र रेखाओ का ग्राफ।'[5] खचाखच भरी बस या ट्रामो की भीतरी दशा जिनम अनेक लोग जैसे तैसे खड़े रहते हैं यह होती है बडी भीड/रास्ते खचाखच/कशमकश/

---

1 'अनाम युग', ओमप्रकाश भाटिया 'अराज' पृ० 10 15

2 3 'कहै पेदडीदास, चिरजीत पृ० 58, 6

4 ये फूल नही', अजितकुमार प० 38

5 'परवलय', राजे द्र धस्माना, पृ० 17

ट्राम और बसो मे/आदमी बुरी तरह/अटके हैं/मालूम होता ऐसा/कमरे म लगी/चार खूटियो पर/बहुत से कमाज/लटक हैं। बस क पायदानो पर लटककर यात्रा करन बालो को एसी अनुभूति होती है, मानो हाथ बस म ही टगे रह गय हैं/और पैर हो न हा बयू म रह गए हैं। [2] बसो को भोड भाड मे सर्वाधिक दुर्गति महिला यात्रियो का भोगनी पडती है और रेल-यात्रा स भी बढकर बस यात्रा ने पर पुरुष स्पश को पाप समझन की परपरागत धारणा को धज्जियाँ उडा दी हैं, वह छुई मुई की तरह/सिमटी हुई सण्डविच लडकी/शायद पहली बार/उम्र के उभारो पर दबाव स शमाती नही गरमाती है। [3]

एक कवि न बसा का महानगरो के जीवन रूपी रक्त को प्रवाहित करने वाली धमनिया स उपमित करत हुए उचित ही कहा है, बसें चल रही/महानगर की नसें चल रही/जाल सरीखा बिछी हुई/बस की गतियों से रक्तवाहिनी नालिया स/ताजे क्ण पहुचाए जात/काय क्षत्र पर/और थके लौटाए जात/हचके खात झटक खात/राजगार धधो म उलझी/सासो की कसमकसे चल रही। [4] बस-यात्रा न छुआछूत और ऊच नीच की भावना की भी धज्जियाँ उडा दी हैं अत बलदेव वशी क यह उदगार कि, धमनिर्पेक्षता की बाँहो मे झूलते मुसाफिर/मुसाफिर हाना धम निरपक्ष हाना है [5] इस तथ्य की ओर उचित ही सकेत करते हैं कि ठसाठस भरी बस तथा रेल-यात्राओ न यात्रियो की छुआछूत सम्ब धी मा यताओ की चूलें हिला दी हैं।

रेलों का स्टशन पर आगमन, उनमे सवार होने की चष्टा तथा उनकी रवानगी क तथ्य सास्कृतिक दृष्टि स एक नूतन प्रकार के वातावरण का सृष्टि करत हैं। आधुनिक काल स पूव कोई भी एसा वाहन नही था जा हजारो लागो को एक साथ दश क एक छार स दूसर छार तक ल जा सके। सम्प्रति किसी भी स्टेशन पर यह दृश्य दखा जा सकता है प्लट फाम से लगती गाडी पर चढ़ने को/य घबराये प्यास चेहरे/भाग रहे हैं इस डिब्बे स उस डिब्बे तक/शार शराबा सीट नही खाली है। [6] जस ही रल चलती है तो हिलत हुए रुमाल/बहुत कुछ कहने का काँपते आठ/उठन गिरते पलक/मूक आँखो म तडपत/कितन कहे अनकहे स दशे/प्लेटफाम विदा के कोलाहल म कसमसा उठता है। [7] चाहे रल यात्रा हो या बस-यात्रा

1 'पत्ता धान' मानिक बच्छावत पृ० 9
2 अनुपस्थित लोग भा० भू० अग्रवाल पृ० 78
3 परवलय राजे द्र धस्माना, पृ० 17
4 'चाँद के नीचे रामावतार चेतन पृ० 32
5 दशकदीघा स पृ० 90
6 7 बैरग बेनाम चिटिठयाँ रामदरश मिश्र, पृ० 33, 65

आजकल 'मेला ठेला' के अवसर पर उनमें प्रायः ऐसी ही स्थिति रहती है 'कुहनी दचका धक्के देना कंधे दचका धक्के सहना/दामा माँगना रोब गाँठना' और धक्का देने की हरकतों पर लज्जित होने के स्थान पर सब तरह यह शोभन है[1] की अनुभूति करते रहना।

(अ) किराये के मकान और झुग्गी झोपड़ियाँ

औद्योगिक सभ्यता के विकास के साथ साथ ग्रामवासियों की शहरों में आकर रहने लगने की प्रवृत्ति बढ़ी है। माँग और अनुपूर्ति के सिद्धांतानुसार माँग के अनुपात में मकान न मिल पाने के कारण उनके किराय में अनाप सनाप वृद्धि हुई है और कुछ लोग तो मकान बनवाकर किराये पर उठाने का ही धंधा करने लगे हैं। कतिपय सरकारी-अर्द्ध सरकारी निकाय भी अपने कर्मचारियों को आवास की सुविधा प्रदान करने की दृष्टि से क्वाटर अथवा फ्लैट बनाकर देते हैं और उनके वेतन में से एक निश्चित राशि काटते रहते हैं। कतिपय बड़े अफसरों के लिए बनाये गए बंगलों के अतिरिक्त क्वाटरों में रहने वाले प्रायः सभी लोगों को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन लोगों से बदतर स्थिति उन लोगों की होती है जिन्हें नगरों की पटरियों पर ही रात गुजारने की विवशता भोगनी पड़ती है। बालकृष्ण शर्मा नवीन ने किसी श्रमिक बस्ती का चित्रण करते हुए उसका बड़ा ही हृदयद्रावक चित्र प्रस्तुत किया है— उधर बिलबिलाते थे कीड़े, नाबदान में किलबिल किलबिल/इधर सड़ी गन्दी कच्ची सी, नाली का पानी था पंकिल/उठते थे अबखरे भयंकर, सड़न और बदबू के ऊपर/और वहीं पर बने हुए थे, मानव नामक कीड़ों के घर।[2] कवि ने प्रश्न किया है कि क्या ऐसे मलिन घरौंदों को भी घर की संज्ञा दी जा सकती है? उन घरौंदों को घर कहने वालों को उसकी चुनौती है कि यदि आप एक बार वहाँ पधारने का साहस करेंगे तो देखेंगे कि वहाँ पर माँद जसी तंग और गीली ऐसी कोठरियाँ बनी हुई हैं जिनकी दीवारें जगह जगह से दरकी हुई हैं। उन्होंने समाज का ध्यान श्रमिक बस्तियों की दयनीय दशा की ओर आकृष्ट करते हुए कहा है कि जिन कोठरियों में कुत्ते भी रहना पसन्द नहीं करेंगे, 'उनमें श्रमिकों के बच्चों को पड़ता है दिन दिन भर रहना।'[3] परिणाम यह निकला है कि श्रमिकों के बच्चे बचपन से ही संक्रामक रोगों के रोगी बन जाते हैं। उनका तिल्ली बढ़ी जिगर बढ़ आया, ढाँचा हुआ सूखकर काँटा'[4] की स्थिति भोगनी पड़ती है। नरेन्द्र शर्मा ने बम्बई की किसी गंदी बस्ती

---

1 'नयी कविता' अंक 1 1954, रामबहादुर मुक्त, पृ० 46

2 4 'हम विषपायी जनम के', पृ० 459 60

को नरक, घूरे की ढेरी, तथा मानवता की चद्दर पर दाग घोषित किया है,[1] तो रामदरश मिश्र ने महानगरों मे स्थित गदी बस्तियों के विषय म लिखा है, ' इन अधी गदी गलियो म, झोपडियो म/आवारे कुत्तो सी गुमसुम/जा य नगी काली आकृतियाँ सोयी हैं इनके भीतर स फूट फूट/बह रही चमकती शिला राशियाँ यहाँ वहाँ/जैसे कि चीर कब्रो को/जीवित आत्माएँ उमड उठी/ये घुसती जाती महानगर की पेंदी म/सडका नीचे बिछ रही अनको रगो वाले भवनो की नींवो म।'

नयी दिल्ली के लोदी कालोनी म बने छह मजिल फ्लटस, मकान हीनो की दृष्टि म हा स्वग तुल्य आरामदेह हैं किन्तु उनम रहन वाले एक भुक्त भोगी कवि क उद्गार, किसी भी नगर मे बन बहु मजिले मकानो म रहन वालों की कठिनाइयो का मुखरण करते हैं, ऊपर नीच दो-दो मजिल/ छोटी बालकनी कहाँ अगीठी धरें/सुलग जाय जल्दी जल्दी/धुआँ न पास/धुले धुलाय कपडो पर हल्दी। प्रात के चार बजे से रात्रि के आठ बजे तक इन क्वाटरो म धुएँ आदि क कारण जीवन नरक लगे/बीते भर आकाश रात म/दखें ठग ठगे की स्थिति रहती है। बीच की मजिलो मे रहन वालो को यह कचोट भी निश्चय ही सताती रहती होगी कि उनसे 'धरा गगन छिन गय बाप र/यह तकदीर बनी।' सरकारी कार्यालयों के रूप मे प्रयुक्त करने या किराये पर उठाने क लिए महानगरो म 'स्काई स्क्रपर' नामक जो असख्य बहु मजली इमारतें बनायी जा रही हैं, उन्हे आधुनिक काल की स्थापत्य कला की विशिष्ट उपलब्धि कहा जा सकता है। यद्यपि आधुनिक काल स पूव भी कुतुब मीनार विजय स्तम आदि कुछ बहुत ऊची इमारत बनायी अवश्य गयी थी किन्तु उनका उपयोग आजकल की तरह आवास आदि मानव हित के कार्यों के लिए नही किया जाता था। गिने चुने गगनचुम्बी राजमहलो के स्थान पर सम्प्रति महानगरो म एसी अनक बहुमजली इमारतें दिखायी पडती हैं जिनक सम्बध मे एक कवि की यह प्रतिक्रिया उचित ही है कि मानो वे आसमान को भी कद कर लेने के गर्वील दावे से/उ मत्त होकर अटटहास कर'[4] रही हैं।

गृह सज्जा की सामग्री गृहस्वामी के आर्थिक स्तर, उसके व्यवसाय तथा आये दिन बदलने वाली सास्कृतिक अभिरुचियो के अनुरूप बदलती रहती हैं। कमरे के फर्नीचर मे भी कभी बहुत बडो बडी और भारी वस्तुओ का रिवाज चलता है तो

1 एक बहुत गदी बस्ती है मेरे घर के आसपास/नर का नही मुझे होता है उसम नरकाभास/मानवता को चादर पर बम्बई नगर पर दाग/बस्ती है घूरे की ढेरी शेष बम्बई बाग।' 'बहुत रात गये', पृ० 149

2 ब रग बनाम चिटिठयाँ पृ० 32

3 'आदमी परेशाँ है' महेश उपाध्याय पृ० 32

4 शू य पुरुष और वस्तुए', बी० कु० जन, पृ० 175

अपने धंधे को चमकाने के अभिलाषी व्यवसाय शीघ्र ही उनके स्थान पर हल्के फुल्के उपकरणो का फैशन चलाने मे सफल हो जाते हैं।[1] साहित्यकारो के कक्षों मे यदि बुद्ध और रवीन्द्र शोभायमान दिखते हैं तो नव धनाढ्य वर्ग के कक्षो मे प्राय श्वेत श्याम या रंग बिरंगी आधी नंगी/बालाओ की तस्वीरो की प्रधानता रहती है। एक अन्य कवि ने आधुनिकतम गृह सज्जा का यह चित्र प्रस्तुत किया है किताबो से भरे शल्फ, दीवारो पर पुरान इराटिक मीनियचर/लिटेस्ट तकनीक के माडन पन्गि/कोन मे बयूपिड और वीनस की पुरातन मूर्तियाँ/उनके सम्मुख सजे इमो नीराजन और धूपायन/बहुत ही नायाब डिजाइन के एक रेक पर/यूरोप और अमरीका की लटेस्ट किताब/जो कल पुरानी हो जायगी/मोहन जो डरो और हरप्पा से लगाकर/आज तक के ताजा से ताजा सिरामिक्स/अजूबा फसी क्राकरी चायना ग्लास वेयर/यादो और कल्पना के पखो वाले/टैरेस गाडन मे कक्टस की अनोखी वेराइटियाँ यूरप के वायलेट और ट्यूलिप भी।[2] कहा जा सकता है कि जीवन के अन्य अंगो की भांति गृह सज्जा की सामग्री मे भी पाश्चात्य उपकरणो का प्रयोग बढता जा रहा है।

प्रस्तुत अध्याय मे सामाजिक सघटन और सामान्य रहन के सम्बन्ध मे व्यजित हुई चेतना से स्पष्ट होता है कि हमारी परम्परागत वर्णाश्रम व्यवस्था सम्प्रति आखिरी सांस ले रही है। छुआछूत सम्बन्धी धारणा भी नगरीय जीवन से बहुत कुछ अंशो मे विलीन हो चुकी है। खान पान सम्बन्धी आचार विचारो तथा वेशभूषा मे पाश्चात्य उपकरण अपनाने के तथ्यो का मात्र द्विवेदीयुगीन कवियो तक ही विरोध उपहास किया जाना, इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि बाद मे उन्हे एक प्रकार से हमारी नवीन जीवन प्रणाली का अग मान लिया गया है। किसी समय हिंदुत्व के प्रमुख प्रतीक रहे यज्ञोपवीत और शिखाओं के विलुप्तीकरण के प्रति आधुनिक काल के कवियो ने ऐसा उपेक्षा भाव प्रदर्शित किया है मानो इन तथ्यो का हिंदुत्व से कुछ लेना देना ही नही है। आभूषण विरोधी चेतना निश्चय ही युग बोध से प्रेरित रही है जबकि बस और रेल यात्राओ को उचित ही धर्म निरपेक्षता का पोषक प्रदर्शित किया गया है। सिनेमा की सांचे मे ढली प्रेम कहानियो तथा पाश्चात्य नृत्यो के क्लबो मे प्रदर्शित अश्लील रूपो की भर्त्सना उचित ही है, जबकि मजदूरो तथा निधनो की बस्तियो की नारकीय दशा को उभारकर उनके सुधार की चेतना जाग्रत करना आधुनिक काल के मानवता वादी दृष्टिकोण का सहज प्रतिफलन कहा जा सकता है।

---

1 'समानान्तर सन शान्ता सिनहा पृ० 79

2 भारती के खडहर जगदीश कुमार पृ० 35

3 शून्य पुष्प और वस्तुए वीरेन्द्र कुमार जैन पृ० 177

द्वितीय अध्याय

पारिवारिक एव नारी जीवन सम्बन्धी नवीन चेतना

किसी भी राष्ट्र की सस्कृति के लघु सस्करण के दशन उस राष्ट्र के पारिवारिक जीवन म किय जा सक्ते हैं। परिवार ही किसी देश या समाज की ऐसी इकाई होती है जो बच्चो के रूप मे समाज के भावी सदस्यो के सस्कृतीकरण का उत्तरदायित्व निर्वाह करती है। विभिन्न देशो की धार्मिक आर्थिक, राजनीतिक और कलात्मक आदि आवश्यकताओ के अनुरूप, उनके परिवारो का गठन भी भिन्न भिन्न रूपो मे हुआ करता है, जो सास्कृतिक विकास की जटिल प्रक्रिया का नसर्गिक परिणाम होता है। पौरस्त्य एव पाश्चात्य जगत की भिन्न सस्कृतियो के अनुरूप ही उनका पारिवारिक जीवन तथा उससे सम्बंधित मान मूल्य भी भिन्न रहे हैं। उन्नीसवी बीसवी शताब्दियो म ऐसे अनेक कारण क्रियाशील रहे हैं जिन्होने भारतीय सस्कृति के पारिवारिक जीवन को पर्याप्त मात्रा म प्रभावित किया है। पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के सम्पर्क के अतिरिक्त भारत मे औद्योगिकता के विकास, शिक्षा के प्रसार तथा जीव विज्ञान क क्षत्र म हुई खोजो ने भी पारिवारिक जीवन के आस्था विश्वास तथा मान मूल्यो को बुरी तरह प्रभावित किया है। यह सत्य है कि भारतीय सस्कृति के ग्रामीण जीवन मे अभी तक पारिवारिक जीवन सम्बन्धी इन नूतन आस्था विश्वास एव मान मूल्यो का विशेष प्रभाव प्रसार नही लक्षित होता किन्तु ग्रामीण समाज के परिवार भी नगर जीवन म आय परिवतन के प्रभाव स्वरूप सक्राति की स्थिति से गुजर रहे हैं। आखिर नगरो म आ बसे अधिकाश लोग मूलत ग्रामवासी ही हैं अत उनके द्वारा अपने ग्रामीण परिवारो स सम्बन्ध तोडना अतत ग्रामीण परिवारो को भी नवीन पारिवारिक मान मूल्यों को स्वीकार करने के लिए विवश कर रहा है। आधुनिक काव्य म पारिवारिक जीवन की विशृखलता पति पत्नी के पारस्परिक अलगाव, माता पिता और सतान के पारस्परिक शिथिल सम्बन्ध विवाह विरोधी तथा असगत वैवाहिक प्रथाओ म सुधार करने, नारी जागृति तथा स्त्रियों की दशा

सुधारने आदि तथ्यों की प्रचुर परिमाण म अभिव्यक्ति हुई है। इन उदगारो स उभरने वाली *पारिवारिक जीवन तथा नारी दशा सम्ब धी चेतना पर आगे प्रकाश* डाला जा रहा है।

(क) पारपरिक सयुक्त परिवारों का विघटन

सयुक्त कुटुम्ब प्रणाली भारतीय सस्कृति की चतुवण व्यवस्था की तरह ही एक प्रकार स अनोखी व्यवस्था रही है जिसके अतगत एक ही घर म गहपति, उसकी पत्नी एव सतान क अतिरिक्त गहपति के पिता और बाबा माता और दादी, उसके भाई बहिन, भाइयो की पत्नियाँ और उनकी सतानें आदि अनेक व्यक्ति एक ही परिवार के अभि न अग क रूप मे निवास करत रहे हैं। परिवार के इन विभि न सदस्यो की भि न भि न मर्यादाए और कत व्य निर्धारित थे जिससे गह कलह की सभावनाए कम ही रहती थी। हाँ यह भी नही कहा जा सकता कि सयुक्त परिवारो के विभि न सदस्यो क पारस्परिक सम्ब ध सदव मधुर ही होते थ क्योकि सास बहू भावज ननद जेठानी देवरानी के झगडे पारिवारिक सुख शाति म व्याघात पहुचाने वाले कुख्यात झगडालू युग्म रहे हैं। इन झगडालू युग्मो स सम्बधित सदस्यो म स्त्रियो का ही परिगणन होने स स्पष्ट है कि सयुक्त कुटम्बो के विघटन का मूल कारण स्त्रियाँ स्वीकार की गयी हैं और प्राय स्त्रियों द्वारा ही रचित लोकगीतो स भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।[1] आधुनिक कवियो मे स सत्यपाल चुघ न इस दष्टि स विस्मय व्यक्त करके कि एक कमरे मे बठी होन पर भी सास बहू और ननद चुप थी, सास बहू और ननदों के पारस्परिक झगडो की ओर ही इगित किया है।

कस्बो और ग्रामो म भी यद्यपि आजकल सयुक्त परिवार बिखराव की ओर अग्रसर हो रहे हैं तो भी उनम सयुक्त परिवार को अब भी उच्चादश समझने की धारणा विद्यमान है। इस आदश की ओर इगित करत हुए बच्चन ने दिखाया है कि महानगरों के असम्पृक्त जीवन के सवथा विपरीत कस्बो म अब भी एसा माहौल विद्यमान है कि यदि किसी की बेटी की विदा का अवसर होता है तो एक मुहल्ले की बटी बाहर जाती है/छोटे बड सभी की आँखें भर आती हैं। इसी प्रकार *बहुओ के सुलक्षणी या कुलक्षणी समझे जाने का आधार यह तथ्य होता है कि उस* परिवार विशेष की सुख शाति म वद्धि हुई है अथवा गह कलह बढा है जब से मदन वहू आयी है/घर म सुख समद्धि जस टूटी पडती है/बहू नही लक्ष्मी आयी

---

1 दे० कविता कौमुदी त० भा० सपा० रामनरेश त्रिपाठी प० 563

2 विस्मय की बात/कमरे म बैठी थी/औरतें चपचाप/विस्मय और बढा/जब जाना/व परिजन थी/ननद बहुए/बहुए सास। भोर कठ' प० 25

है/ × × × और सदन के घर कुलच्छनी ऐसी आयी भाई भाई अलग हो गये/ घर बँटवारे का झगडा है। [1]

आधुनिक का य प्रणताओ मे से परम्परावादी कवियो ने सयुक्त परिवारो के परम्परागत आदश की पुनप्रतिष्ठा का प्रयास किया है। मै० श० गुप्त ने रामकथा के माध्यम से होता है कृतकृत्य सहज बहुजन गहो [2] क रूप मे इसी तथ्य को रेखाकित करते हुए परिवार के सदस्यो को ही नही अपितु पूरी अयोध्या नगरी के निवासियो को भी किसी लता पर खिले हुए पुष्पो की भाँति परस्पर सदभाव पूवक निवास करत चित्रित किया है।[3] इसी प्रकार नल कथा के पौराणिक आख्यान का आश्रय लेकर ताराचन्द हारीत की दमयन्ती तथा कमलाका त शुक्ल की 'वैदर्भी' शीषक कृतियो मे भी आदश भ्रात भाव देवर भावज तथा जेठानी-देवरानी 'सम्ब धो की प्रतिष्ठापना का प्रयास किया गया है जबकि नल और उनके भाई पुष्कर का आख्यान मूलत कौरवो पाडवो जैसी द्यूत क्रीडा द्वारा राज्यापहरण जनित भ्रात कलह की घटना से सम्ब धित है। इन दोनो कृतियो के अतिम भाग मे पूरा परिवार प्रम सूत्र म गुथते दिखाया गया है विशेषत इस तथ्य का आश्रय लेकर कि इस बार जुए मे पराजित हुए पुष्कर को नल की पत्नी दमय ती चौदह वष के लिए वन म वास करने नही जाने देती, और पुष्कर भावाभिभूत होकर दमयन्ती के चरणो म गिर पडता है।[4]

सयुक्त कुटम्ब प्रणाली का महिमाकि त करके तदथ प्रेरणा देने वाले पूर्वोक्त पौराणिक प्रसगों के अतिरिक्त जहाँ तक उनकी वास्तविक स्थिति की अभि यजना का सम्ब ध है स्वय मथिलीशरण गुप्त ने भी यह उदगार यक्त किय हैं कि अविचार पूण गह कलहो के कारण आजकल सम्मिलित परिवार प्रणाली निदित होती जा रही है।[5] गोपालशरण सिंह ने खदपूवक कहा है, 'घर के कलह का न तार कभी टूटता है/फिर किस भाँति सुख शांति रहे ग्राम म। [6] पत के उदगार हैं 'आज पारिवारिक जगजीवन अध नयन कलहो स कवलित [7] रहते हैं। मुक्तिबोध ने भी गह कलह से त्रस्त बहुए मुडेरा से कूद अरे/आत्म हत्या करती हैं [8] की चि ताजनक स्थिति की आर सकेत किया है।

---

1 उभरते प्रतिमानो के रूप, पृ० 109
2 3 साकेत, प० 98, 15
4 वैदर्भी क० का० शुक्ल प० 172
5 'इस गृह कलह से ही कि जिसकी नींव है अविचार की/निदित कदाचित् है प्रथा अब सम्मिलित परिवार की।' भा० भा० पृ० 146
6 माधवी प० 74 7 'स्वण किरण प० 142
8 चाद का मुह टेढा है', पृ० 68

पारिवारिक सम्ब धो मे आये शथिल्य को कुछ बढ चढ रूप म उभारते हुए वीरे द्र कुमार जैन ने किसी अस्पताल म भरती हुए व्यक्ति को घर न लौटने की इच्छा व्यक्त करते चित्रित किया है। उसे अपना घर विदेश जैसा अपरिचित और अजीब प्रतीत होता है। उसको परिजनो के मध्य डायलाग या सवाद की स्थिति के विपरीत बहसें या अबोलापन रहने के प्रति घृणा है। वह ऐसे पडौसियो से भी बचना चाहता है जो भीतरे चाकू फूने बतन या मास के पीपो के समान हैं। उसे पारिवारिक जीवन सुरक्षा शू य तथा नाना प्रकार के अभावो दोषो से ओत प्रोत प्रतीत होता है।[1] गिरिजाकुमार माथुर ने नौकरी पेशा अथवा सुशिक्षिता आधुनिकाओ के दाम्पत्य जीवन म आने वाले शथिल्य को उभारते हुए कहा है कि उन्होने मन के सुख चन को/सदियो की तपस्या से/एक गहस्थी बसायी थी कि तु 'वह एक दिन कपड फेंककर कबरे मे नाचने लगी/विज्ञापनो मे बैठ गयी। तद तर परिणाम यह निकला कि 'घर होटल मे बदल गया और सारा अपना पन उजडा/बाजारू हुआ रूपरग/आदमी हुआ सस्ता/अब माँ है न बाप है/न पत्नी है न पति है/अब पलेवसी गिलास मे/किसी भी उथडे पलग मे/कोई भी मद है/कोई भी औरत है।' ज्ञात नही कि जगदीश चतुर्वेदी की यह आत्म स्वीकृति सत्याधत है या मात्र कल्पना विलास कि माँ बहिन और पत्नी प्रिया म अब कोई अतर नही दिखता है मुझे।'[3] अर्थात उन्होने पारिवारिक सम्ब धो को तिलाजलि दे दी है। इसी प्रकार अम्बाशकर नागर को न जाने क्यो आजकल का 'हर पति शान्तनु/हर पत्नी सत्यवती/हर पुत्र द्वपायन यास प्रतीत हुआ है।[4] अर्थात उ हें सवत्र अवध सबधो और आरज सतानो की भरमार का अनुभव होता रहता है। महानगरो के नौकरी पेशा दम्पतियो वाले परिवारो के सम्ब धो मे श्याम विमल के यह उदगार सवथा सटीक हैं कि आज परिवार सिफ रविवार हो गये हैं[5]—अर्थात रविवार के अतिरिक्त परिवार के सदस्य एक दूसर से मिल जुल नही पाते। उमाकात मालवीय न भी आजकल के दौड धूप भर पारिवारिक जीवन की त्रासदी को उभारते हुए लिखा है— भीड भाड भाग दौड/सूत्र खो गये/माँ बेट पति पत्नी यत्र हो गये।[6]

---

1 जिसमे सुरक्षा नहीं समाहिति नही मुकाम नही/ × × × गुजायश नही कद है घुटन है कुठा है/पर्दे हैं हृदयो क बीच/दीवारें हैं आत्माओ के बीच।
शू य पुरुष और वस्तुए प० 178 79

2 भीतरी नदी की यात्रा प० 48 49

3 निषेध सक० प० 27

4 चाँद चाँदनी और कक्टस प० 73 5 दीमक की भाषा प० 74

6 सुबह रक्तपलाश की प० 35

(ख) पति पत्नी सम्बन्धो मे शथिल्य और तनाव

स्त्री शिक्षा के प्रसार नारियों की आत्म निभरता नैतिक मान्यताओं के ह्रास आदि तथ्यो के कारण पति पत्नी के सम्बन्धो मे शथिल्य और तनाव की वद्धि होती जा रही है। समाज के सर्वाधिक सवेदनशील सदस्य कवियों ने इस विघटन को भाँपते हुए मुखरित ता किया ही है अनेक तथाकथित क्रातिकारी कवियों ने पत्नियो का अपने पतियो के विरुद्ध मरणान्तक सघष छेडने का भी परामश दिया है। स्पष्ट है कि इन परामर्शों की क्रियान्विति पहले से ही शिथिल हुए दाम्पत्य सम्ब धो को पूण विघटन के कगार पर लाकर खडा कर देगी—यह दूसरी बात है कि अभी इन कावीरो की उक्तियो की ओर स्वभाव से ही धीर गभीर भारतीय नारियाँ विशेष ध्यान नहीं दे रही हैं।

शिक्षित पति पत्नी के सम्ब धो को विघटित करने की दिशा में साइमन द बुआ आदि पाश्चात्य विचारकों का इस चिन्तन सरणि के अतत भयकर परिणाम निकल सकते हैं कि पत्नी और कुछ न होकर दीघकालीन ठेके या किराये पर ली गयी वेश्या मात्र है क्योंकि परपरागत भारतीय सस्कृति म पत्नी या विवाह को धर्माचरण का अविभाज्य अग स्वीकार करने का उदात्त मूल्य विद्यमान रहा है। एसी दशा मे यह अभिमत पूणत विध्वसात्मक प्रतीत होता है कि उन स्त्रियो मे जो अपने शरीर को वेश्याओ के रूप म या विवाहिताओं के रूप मे बेचती हैं मात्र, इस मूल्य और अवधि का ही अतर है जो इन दोनो अनुबधो के मूल मे क्रियाशील रहता है। ये दानो ही प्रकार की स्त्रियाँ मथन कम की सेवा द्वारा जीविकाजन करती हैं मात्र इस अतर के साथ कि पत्नी को एक व्यक्ति द्वारा जीवन भर के लिए किराये पर लिया जाता है जबकि वेश्या के कई ग्राहक होते हैं और वे उसकी सेवा का मूल्य टुकडो म चुकाते हैं। इसी प्रकार पत्नी की रक्षा का दायित्व एक पुरुष द्वारा सम्हाला जाता है जबकि वेश्या की रक्षा सभी लोगों द्वारा इस रूप म की जाती है कि वे उसको किसी भी एक व्यक्ति की ज्यादतियो से सुरक्षित रखते हैं।[1]

वेश्या और पत्नियों के मध्य उपर्युक्त थोडा सा अतर स्वीकार करने का दृष्टिकोण आधुनिक काव्य म भी कई कवियों द्वारा उभारा गया है। राजीव

---

1 In La Puberte Harro says The only difference between women who sell themselves in prostitution and those who sell themselves in marriage is the price and length of time the contract runs For both the sexual act is a service the one is hired for life by one man the other has several clients who pay her by the piece "
The Second Sex Simone De Beauvoir p 569

सक्सेना ने प्रश्न किया है 'वह घर है या कोठा, जहाँ एक भोली सी औरत/लिट जाती है साथ मे दो रोटी की खातिर ?'[1] रांगेय राघव को जो सतीत्व का गर्व उठाती सुंदरियाँ पथ पर चलती हैं मे उल्लिखित सतवतियो के संदर्भ मे यह आपत्ति रही है कि क्या ऐसी स्थिति नही है कि वे पति की लोलुप तृष्णा का, साधन नही सतत बनती हैं ?'[2] पंत जी का तो मानव चेतना ही विवाह के अगणित पापो मे निमग्न प्रतीत हुई है।[3] निरकार देव सेवक ने विवाह को दानवी समाज द्वारा स्त्रियो का गला घोटने के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला फाँसी का फंदा बताते हुए कहा है हाथो मे दानव समाज के फाँसी का फंदा है शादी/जिसमे फँसा फँसाकर गरदन/बलि पशुओ की तरह अनेको/शुद्ध सरल उत्साह भरे मन/श्वास वायु के रुक जाने से सिसक सिसक तजते हैं जीवन।[4] एक अन्य कवि की दृष्टि मे सम्प्रति विवाह और बलात्कार पर्याय बन चुके हैं—

"जिस समाज मे ब्याह ही बलात्कार हो/प्यार ही व्यभिचार हो/कोई आश्चर्य नही/उस समाज मे जिसे बलात्कार कहा जा रहा हो/ व्यभिचार पुकारा जा रहा हो/ वही दर असल प्यार हो/सच्चा विवाह संस्कार हो।[5]

पति पत्नी के पारस्परिक सम्बन्धो के मूल मे काम परितुष्टि और भरण पोषण मात्र का ही सम्बन्ध स्वीकार करने की परिणति अनिवार्यत भयावह परिणामों मे होनी चाहिए थी और आधुनिक काव्य मे उन दुष्परिणामो की भी अभिव्यंजना हुई है। एक कवि ने किसी पति के इस शिक्वे का मुखरण किया है कि उसकी पत्नी की दृष्टि मे उसका मूल्य किसी तांगा चालक की दृष्टि मे उसके कमाऊ घोड़े के मूल्य के तुल्य है।[6] जगदीश चतुर्वेदी ने पड़ोसियो से खीझे हुए पति अपनी पत्नियो को इसलिए कोसते दिखाये हैं कि उन्होने हमे कायर बनाया है और इसीलिए 'हर शादी शुदा मर्द कायर है। उधर पत्नियों की भी दशा यह है कि हर शादी शुदा स्त्री फ्रस्ट्रेटेड है। पारिवारिक तनाव की स्थिति यह रहती है कि वे एक दूसरे को प्यार नही करते/क्योकि वह एक दूसरे को हेय समझते हैं।' उनके अनुसार हर मर्द खरगोश की तरह चुप और हर औरत बिल्ली की तरह खूँख्वार होते हुए भी औपचारिकता के परिवेश मे × × × सोचते रहते हैं, एक दूसरे को जहर देने की बात। कवि का निष्कर्ष है कि 'हर औरत अपने पति से घृणा करती है/हर मर्द अपनी पत्नी को तलाक देना चाहता है।'[7] पत्नियो को किसी समय के पति-परमेश्वरो को जहर देने को समुत्सुक दिखाने के इस उल्लेख के

---

1 'प्रतिश्रुत पीढी' सक०, पृ० 173 2 'मेधावी' पृ० 243

3 स्वर्ण किरण पृ० 42 4 चिनगारी, पृ० 14 15

5 जग लगे सपने, विजयचद पृ० 32

6 दीपाराधना, आ० श० माधु० पृ० 145 7 'विजप, सक० पृ० 58

साथ ही अजित कुमार की यह अभिलाषा अवलोकनीय है "पत्नियाँ/क्यो नहीं/खर्राट भरते/गधाते/अपने पतियो की/गदनें मरोड देती हैं ? [1] कवि ने भारतीय नारियो को इस दिशा म पाश्चात्य नारियो से भी बाजी मार ले जाने के लिए प्रबोधित किया है क्योकि वहाँ की नारियो द्वारा खर्राट भरने वाले पति से तलाक लेने के समाचार तो पढे हैं किंतु ऐसे पति दानव की गदन मरोडने का समाचार अभी तक तो नही पढा सुना है।

सौभग्य या दुर्भाग्यवश आधुनिक काव्य मे ऐसे कवियो का भी अभाव नही है, जो पत्नियो द्वारा सोते पतियों पर नहीं अपितु उनकी जीती जागती दशा मे ही कुल्हाडी चलाने के समथक हैं। निरकार देव सेवक ने आधुनिक नारियो का आह्वान करते हुए कहा है कि वे मनु महाराज (कवि के शब्दो मे 'चाचा कलम कुठार) के वश म उत्पन्न हुए पुरुषो के विरुद्ध बगावत आरभ कर दें। उसका तक है कि ये पुरुष उ ही मनु के वशज हैं जि होने नारियो के प्रति अन्याय करते हुए तुम्हारे सिर पर सदैव पिता पुत्र, भाई और पति रूपी पहरेदार नियुक्त रहने की व्यवस्था दी थी।[2] ध्यातव्य है कि कवि का इगित मनुस्मति के जिस—"पिता रक्षति कौमारे भर्तारक्षति यौवने/रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"[3] —श्लोक की ओर है उसमे पहरेदारी की नही, अपितु रक्षा की ही बात कही गयी है। इस कवि ने तो नही किंतु विजयसिंह पथिक ने मनुस्मतिकार के इस श्लोक की बखिया उधडते हुए असुर नारियो के माध्यम से आधुनिककालीन नारियो को यह तथ्य सुझाने का प्रयास किया है कि 'पिता, भ्राता या पति मे से किसी के भी आश्रय मे रहना अघ की खान है। जब तुम्हें भी पुरुषो जसे ही हाथ पर और बुद्धि प्राप्त है तो फिर किसी पुरुष का पालतू पशु बनकर रहना कहाँ की बुद्धिमानी है ? [4] निरकार देव सेवक ने भी इसी प्रकार की धारणा स अनुप्रेरित होकर पत्नियो को अपने पतियों के विरुद्ध जिहाद छेडने के लिए उदबोधित करते हुए कहा है—'जिस दानव की दीवानी तुम बनी हुई हो आज/जिसको मान लिया है तुमने साक्षात भगवान/जिसके चरणो मे तुम समझे बठी हो कल्याण/जिसका पूजन आराधान कर तर जाओगी तुम भवसागर/वह उस कुल का ही है जिसमे उपजे

---

1 कविताएँ 1965 सक०, प० 3

2 'नारी तेरे रूप अनेक, सक०, प० 173

3 'मनुस्मति' 9/3

4 'और भले ही पिता भ्राता के हो या पति के आश्रित/पर आश्रित रहना भी ता है करना अघ सचित/जब हैं हरि ने दिए तुम्ह भी सब कर पद ज्ञान/तब पर आश्रित हो नीचा पद लेना है अघ खान।' 'प्रह्लाद विजय' प० 143

मनु महाराज चाचा कलम कुठार।"[1] अतत कवि का निष्कर्ष यह है कि पति को देवता नही अपितु साक्षात काल समझना चाहिए और उसको मुह लगाना उचित नही है—'पति देवता नही तुम्हारा यह सदेह है काल/इस लगाकर मुह तुम नाहक मना रही हो हाय।'[2] सेवक जी ने भारतीय नारियो क इस दुर्भाग्य पर भी आंसू बहाये हैं कि उन्ह जमन सेनाओ द्वारा रूस पर आक्रमण करने और रूसी सेनाओ द्वारा जमनी को पैदली शह द्वारा मात देने का सुवृत्तात भी ज्ञात नही है। वे तो पति और सास जिठानी आदि की सेवा मे अनुरत रहकर जूठन पर पलने वाली ऐसी दासियाँ है जिन्हे गह स्वामिनी होने का भ्रम है।[3] इस पदली मात से प्रकट हो जाता है कि कवि ने रूसी सास्कृतिक परिप्रेक्ष्य का आश्रय लेकर पति दानव को पछाडने या सास जिठानी को भाड म झोंकने की गुहार लगाई है। इस तथ्य मे सदेह नही कि भारतवासियो का 'नबहूँ दीनदयाल के भनक परेगी कान' के सिद्धान्त म आस्था रही है अत यदि कुछ कवि निरन्तर ही ऐसा सत्परामश देते रहें तो कालान्तर मे पति रूपी दानवो की जाति वास्तव म ही मटियामेट हो सकती है।

एक अन्य कवि राम इकबाल सिंह 'राकेश' ने उन कुलवधुओ के प्रति तीव्र घृणा व्यक्त की है जो पाणिग्रहण के पश्चात गहस्वामिनियां बन जाती हैं जो अपने व्यापक विशद प्रेम को व्यक्ति विशेष मे केन्द्रित करके किसी राम की सीता बनने की भूल करती हैं— मुझे घणा है गह की दासी पाणिगहीता कुलवधुओ से/केन्द्रित है कर लिया जिन्होने एक व्यक्ति मे एक बिन्दु पर/एक राम की सीता बनकर/अपने व्यापक विशद प्रेम को।[4]

राकेश जी को उन छुई मुई की तरह लाजवन्ती नव वधुओ से भी घणा है जो लोक धम के भय से 'दत रहित बुढ्ढो के होठो म अपन कोमल अधरो को सौप देती हैं जिन्हें रूढिग्रस्त जजर समाज का क्रूर कलदर बदरिया के समान अपने इशारो पर नचाता रहता है। इस कवि का सुखद स्वप्न वसुधरा पर ऐसे स्वग का निर्माण करना है जिसमे दो हृदयो का सम्मिलन न होगा/परम्परागत सस्कारो से/नियम निदेशो से निर्धारित/ × × × जहाँ स्वतत्र पवन सा होगा मानव भी स्वतत्र निर्बाधित/और प्रेम के लिए न होगी पाप पुण्य की सीमा।[5] ज्ञात नही कवि का यह स्वर्गिम ससार रूस में तो विद्यमान है अथवा नही किन्तु नार्वे स्वीडन पोलण्ड आदि पाश्चात्य देशो के सम्बन्ध म यदा कदा जो समाचार पत्रिकाओ म छपते हैं उनसे स्पष्ट होता है कि धम नतिकता तथा किसी एक की सीता बनने की मूढताओं को तिलाजलि देकर इन देशो के बहुत से युवक युवतियाँ गाय और साँड या भैसा और भसा के रेवड के रूप म रहते हुए यौन स्वाच्छन्द्य की वशी

1 5 'नारी तेरे रूप अनेक' सकलन प० 173, 173, 174, 98, 99

बजाने लगे हैं। कहना न होगा कि इस आदिमयुगीन स्थिति के दुष्परिणामों से छुटकारा पाने के उद्देश्य से ही विवाह संस्था का विकास हुआ था तथापि यदि आधुनिक काल का मानव समाज पुनः अपने गुफावासी पूर्वजों के युग में लौटना चाहता है तो चारा ही क्या है?

सधवा भारतीय नारियों के लिए उनकी माँग का सिन्दूर और मस्तक की *बिंदी सौभाग्य चिह्न का पर्याय रहे हैं किन्तु आनन्दवर्धन 'रत्नपारखी'* ने उनकी तुलना उस अति अपवित्र कलंक से की है जिसे पुरुष अपने अधिकार की पशु और दास आदि वस्तुओं पर तप्त लौह से दाग दिया करता था।[1] कवि के अनुसार *सधवा नारियों की मस्तक की बिंदी माँग का सिंदूर हाथ की चूड़ियाँ (कवि नथ-रूपी नकेल का उल्लेख करना भूल गया है!) आदि सुहाग के चिह्न उस समय का स्मरण दिलाते हैं, जिस क्षण तुमने प्रयम किया था, परवश पुरुष दास्य का वरण।*'[2] उसका कथन है कि चूंकि अब तुम स्वतन्त्र हो और पुरुष वर्ग के समकक्ष ही नहीं अपितु उससे सबल भी हो, अतः नर के कूट यन्त्र का ध्वंस करते हुए 'हे चिर कल्याणी पहरो क्षमता का अवतंस !'[3] कवि ने उन्हें पुरुषों के इस प्रावतन पाखण्ड को भी सत्वर भस्म कर देने के लिए प्रबोधित किया है कि वे तो घर में बैठी संयम और त्याग वृत्ति का आचरण करती रहें 'और उधर नर परनी व्रत का नियम करे स्वर अपलाप।'[4] कवि की अंतिम अभिलाषा और परामर्श यह रहा है कि आधुनिक नारियों को पातिव्रत्य और सतीत्व की शाप जैसी परम्परागत धारणाओं को उच्छिन्न करके पुरुषों के साथ समत्व और सखित्व का सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।[5] आनन्द शंकर माधवन ने भी कुत्ता और कुतिया के संवाद के माध्यम से, स्त्रियों के प्रति इतर सम्बन्धों का यह तर्क देकर प्रतिपादन कराया है, 'जैसे तुम *वैसी मैं।*'[6] *उन्होंने एक अन्य कविता में पत्नी से स्व-पति को यह उपालंभ अवश्य* दिलाया है *मैंने हर काम में हर समय सीता को/अपने सामने रखा था/पर* हाय तुम राम न रहे।[7] शरणबिहारी गोस्वामी की अहल्या पति द्वारा उपेक्षित होने पर किसी आधुनिक नारी की तरह यह आक्रोश व्यक्त करती है 'यदि पति द्रोही हो जमी नींव को तोड़े/नारी भी क्यों न गृहस्थ धर्म को छोड़े?'[8] वह यह प्रश्न भी उठाती है कि जब पुरुष सकड़ों विवाह कर सकता है तो फिर स्त्रियों के

---

1 4 नारी तेरे रूप अनेक, सक०, पृ० 167

5 कब तक पातिव्रत्य का नारी लगा रहेगा शाप/कब तक उस वैधव्य भाव का वहन करोगी ताप? आज मिटा डालो इस अवनी से वह सतीत्व का कोप/वह सतीत्व कैसा जिससे हो जावे रस ही का उच्छोप।'

—वही पृ० 168

6 7 'दीपाराधना', प० 43, 199 8 'पापाणी' ...

लिए ही 'पर नर की छाया घातक त्रिशूल क्यों समझी जाती है ? तथा पातिव्रत यदि पुण्य तत्त्व है पत्नीव्रत क्यों नहीं धम है ?'[1]

पति पत्नी के पारस्परिक झगड़ो और उनके सतान पर पडने वाले दुष्प्रभाव को अनेक कवियो ने नाना रूपो म उभारा है। गि० कु० माथुर ने किसी उच्च मध्य वग के पति-पत्नी के सदभ म कहा है मैंने देखा है/भागते हुए तुम्हें/अपने ही बनाये घर से/अपराधी सतान हमलावर स। उनकी सतान को भी आधी नींद मे चौंककर जग जाने की दशा मे प्राय 'जनकों क बीच/शोर धुक्का फजीहत मुक्केबाजी झडप झगडा/सूजी आँख दाँत कटी बाँह फटी शट स्कट टाप का तो दृश्य दिखाई पडता ही रहता है उसके साथ ही बार बार घर मे आती × × × एक और नयी माँ की स्थिति भी सहन करनी पडती है। ऐस पारिवारिक जीवन मे मोह माया कोमलता सवेदना का कोई स्थान होने का प्रश्न ही नहीं उठता। पारपरिक सस्कृति मे पत्नी तो पति के दुराचरण को मन मसोस कर सहन करती रही है किन्तु पति न पत्नी को दुराचरण के लिए अनेक प्रकार से दडित किया है। ऐसी दशा मे पति द्वारा यह जानते हुए भी कि उसकी पत्नी के मस्तक पर लगी बिंदिया पर किसी पर पुरुष की उगलियो की रखाए हैं पर फिर भी मैं चुप हूँ की स्थिति को सहन करते रहना, निश्चय ही दाम्पत्य सम्ब ■ को निभान की नवीन स्थिति ही कही जायेगी। यही नहीं वह पति उपेक्षा भाव से यह भा कहते मिलता है तुम्हारी चिकोटियाँ तुम्हारी चिमटियाँ तुम्हार चुम्बन/जिस भी मिल रहे हो मिलने दो/ × × × और जब तुम्हें मेरी जरूरत लगे/ मजे स मेरे पास आ जाओ।'[2] दिनेश नदिनी ने पति पत्नी को दो परस्पर विरोधी *पगडडियाँ तथा एक डाल पर बठ दो ऐसे पक्षी बताया है जिनकी काय प्रणाली* दिशा हर्ष उत्कष सब भि न हैं जिनके प्रण प्रतिभा/सोग ध सुहाग/वादेवफा/ मरण जीवन के तौर तरीक/दूसर हैं।[3] केवल गोस्वामी को अपनी पत्नी का आत्मसमपण इस विवशता का परिणाम प्रतीत होता है कि एक श्रमिक नारी की तरह सो सको चैन से/तुम रात भर तनावो स मुक्त होकर। इसी कारण उनका अतमन स्व पत्नी के प्रति जुडाव लगाव की अनुभूति नहीं कर पाता अपितु मात्र एक दया भाव ही जाग्रत करता है। कवि की यह स्वीकारोक्ति भी अवलोकनीय है कि उसको 'एक स्त्री से दूसरी स्त्री मे कतई अतर नहीं पडता क्योंकि विघटन के इस युग म हर स्त्री गोपी है।'[4] सतान और पति के प्रति उदासीनता ऐसी है कि, किरण जन के शब्दो म नौकरी करके लौटी कोई पत्नी अपने नहीं अपितु पति

---

1 पाषाणी' पृ० 93 2 भीतरी नदी की यात्रा' पृ० 65 66
3 दो टूक बाल कवि बरागी पृ० 50 51 4 'इति, पृ० 28
5 'ब ■ कमरो की सस्कृति, पृ० 36

के बच्चो का प्यार करती है और 'पति के स्थान पर सामने/एक व्यस्त परछाई देख/जसे किसी दूसरे के पति को झेल करती है, और 'कभी घर अजनबी लगा/कभी अपने को अजनबी पाया [1] की स्थिति भोगती रहती है। दाम्पत्य जीवन के बिखराव को रमेश रजक ने मेरा बदन हो गया पत्थर का/सोनजुही से हाथ तुम्हारे/लकडी के हो गय'[2] के रूप म अभिव्यक्ति प्रदान की है, तो महेश उपाध्याय ने दो अदद थकान के/पहाडो के बीच/घाटी सा काम पडा है/ × × × चाँदी के तारो से कसा हुआ दिन/कितना मायूस खडा है',[3] के माध्यम से नौकरी पेशा दाम्पत्य जीवन की उस त्रासदी को उभारा है जा अतत उन्हें कलह और अलगाव की ओर उ मुख कर देती है। कतिपय कवियो ने पति के हाथो पत्नी की अथवा पत्नी के हाथो पति की दुगति होन के परिप्रेक्ष्य मे जो विवाह विरोधी चेतना व्यक्त की है उस पर दृष्टिपात कर लेना भी उपयोगी रहेगा।

(ग) विवाह विरोधी चेतना

लोक जीवन म विवाह को एक एसी मिठाई बताये जाने की धारणा प्रचलित है जिसे खान वाले भी पछताते हैं और वे लोग भी जिन्हे वह उपलब्ध नहीं हुई है। दिनकर ने प्राय इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हुए कहा है 'शादी जादू का वह भवन निराला है/जिसके भीतर रहने वाले निकल भागना चाहते हैं/और खडे हैं जो बाहर वे घुसने को बेचन हैं।'[4] विवाहोपरा त अधिकाश पुरुषो की पत्नी के हाथो बुरी गति बनने के तथ्य की व्यजना उन्होने इन शब्दों के माध्यम से की है शादी वह नाटक अथवा उपन्यास है/जिसका नायक मर जाता है पहल ही अध्याय म। [5] बच्चन ने विवाह को गले पडा ढोल समझन की धारणा यक्त की है [6] तो रणजीत ने किसी विवाहिता युवती के इस मनस्ताप को चित्रित किया है कि उसे किसी भल घर की लडकी की तरह उसी का होकर रहना पडेगा जिसके साथ उसका विवाह कर दिया गया है।[7] रघुवीर सहाय ने भी ऐसा ही भाव

1 'यात्रा और यात्रा किरण जन पृ० 45
2 हरापन नही टूटेगा' पृ० 57
3 आँधी आयगी पृ० 44
4 5 नये सुभाषित पृ० 10
6 गल पडा जा ढाल बजाना उनको होगा/इमी नोट पर सब रोमास खतम होता है।' उभरते प्रतिमानो क रूप' पृ० 109
7 'यह है तेरा पति ! इसके सिवा नहीं तेरी गति/× × × पहले किसी से शादी करो/फिर अपने हिस्से जो आये उसी पर मरो।'' 'प्रतिश्रुत पीढ़ी', सक०, पृ० 214

लिए ही 'पर नर की छाया घातक त्रिशूल क्यों समझी जाती है ? तथा पातिव्रत यदि पुण्य तत्त्व है पत्नीव्रत क्यों नही धम है ? [1]

पति पत्नी के पारस्परिक झगडो और उनके सतान पर पडने वाले दुष्प्रभाव को अनेक कवियो ने नाना रूपो म उभारा है। गि० कु० माथुर ने किसी उच्च मध्य वग के पति पत्नी के सदभ म कहा है मैंने देखा है/भागते हुए तुम्हें/अपने ही बनाये घर से/अपराधी सतान हमलावर से। उनकी सतान को भी आधी नीद मे चौंककर जग जाने की दशा म प्राय 'जनकों के बीच/शोर धुक्का फजीहत मुक्केबाजी झडप झगडा/सूजी आँख दाँत कटी बाँह फटी शट स्कट टाप' का तो दश्य दिखाई पडता ही रहता है उसके साथ ही बार बार घर म आती × × × एक और नयी माँ की स्थिति भी सहन करनी पडती है। ऐस पारिवारिक जीवन म मोह माया, कोमलता सवेदना का कोई स्थान होने का प्रश्न ही नही उठता। पारपरिक सस्कृति मे पत्नी तो पनि के दुराचरण को मन मसोस कर सहन करती रही है किन्तु पति न पत्नी को दुराचरण के लिए अनेक प्रकार से दडित किया है। ऐसी दशा म पति द्वारा यह जानते हुए भी कि उसकी पत्नी के मस्तक पर लगी बिदिया पर किसी पर पुरुष की उँगलियो की रखाए हैं पर फिर भी मैं चुप हू की स्थिति को सहन करते रहना, निश्चय ही दाम्पत्य सम्ब ध को निभाने की नवीन स्थिति ही कही जायगी। यही नही वह पति उपेक्षा भाव [redacted] यह भी कहते मिलता है तुम्हारी चिकोटियाँ तुम्हारी चिमटियाँ तुम्हारे चुम्बन/जिस भी मिल रहे हो मिलन दो/ × × × और जब तुम्हें मेरी जरूरत लगे/ मजे स मेरे पास आ जाओ।'[3] दिनेश न दिनी न पति पत्नी को दो परस्पर विरोधी पगडडियाँ तथा एक डाल पर बठ दो ऐसे पक्षी बताया है जिनकी काय प्रणाली, दिशा हृप उत्कप सब भि न हैं जिनके प्रण प्रतिज्ञा/सौग ध सुहाग/वादवफा/मरण जीवन के तौर तरीके/दूसर हैं। [4] केवल गोस्वामी को अपनी पत्नी का आत्मसमपण इस विवशता का परिणाम प्रतीत होता है कि एक श्रमिक नारी की तरह सो सको चैन से/तुम रात भर तनावो से मुक्त होकर। इसी कारण उनका अतमन स्व पत्नी के प्रति जुडाव लगाव की अनुभूति नहीं कर पाता अपितु मात्र एक दया भाव ही जाग्रत करता है। कवि की यह स्वीकारोक्ति भी अवलोकनीय है कि उसको 'एक स्त्री से दूसरी स्त्री मे कतई अतर नहीं पडता क्योकि विघटन के इस युग मे हर स्त्री गोपी है।' [5] सतान और पति [redacted] प्रति उदासीनता ऐसी है कि, किरण जन के शब्दों मे नौकरी करके लौटी कोई पत्नी अपने नहो अपितु पति

---

1 'पापाणी' प० 93 [redacted] भीतरी नदी की यात्रा प० 65 66
3 'दो टूक साल कवि बरागी, पृ० 50 51 4 इति पृ० 28
5 'ब द कमरो की सस्कृति , पृ० 36

के बच्चो को प्यार करती है और 'पति के स्थान पर सामने/एक व्यस्त परछाई देख/जैसे किसी दूसरे के पति को हेल' करती है, और कभी घर अजनबी लगा/कभी अपने को अजनबी पाया [1] की स्थिति भोगती रहती है। दाम्पत्य जीवन के बिखराव को रमेश रजक ने 'मेरा बदन हो गया पत्थर का/सोनजुही से हाथ तुम्हारे/लकड़ी के हो गये' के रूप म अभिव्यक्ति प्रदान की है, तो महेश उपाध्याय ने दो शब्द थकान के/पहाड़ो के बीच/घाटी सा काम पडा है/ × × × चांदी के तारो से कसा हुआ दिन/कितना मायूस खड़ा है,[2] के माध्यम से नौकरी पेशा दाम्पत्य जीवन की उस त्रासदी को उभारा है जो अतत उन्हे कलह और अलगाव की ओर उन्मुख कर देती है। कतिपय कवियों ने पति के हाथो पत्नी की अथवा पत्नी के हाथो पति की दुर्गति होने के परिप्रेक्ष्य म जो विवाह विरोधी चेतना व्यक्त की है, उस पर दृष्टिपात कर लेना भी उपयोगी रहेगा।

(ग) विवाह विरोधी चेतना

लोक जीवन म विवाह को एक ऐसी मिठाई बताये जाने की धारणा प्रचलित है जिसे खाने वाले भी पछताते हैं और वे लोग भी जिन्हे वह उपलब्ध नही हुई है। दिनकर ने प्राय इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हुए कहा है शादी जादू का वह भवन निराला है/जिसके भीतर रहने वाले निकल भागना चाहते हैं/और खड़े हैं जो बाहर वे घुसने को बेचैन हैं।"[4] विवाहोत्तरा ने अधिकाश पुरुषों की पत्नी के हाथो दुर्गति बनने के तथ्य की व्यजना न होने इन शब्दों के माध्यम से की है, शादी वह नाटक अथवा उपन्यास है/जिसका नायक मर जाता है पहले ही अध्याय म। [5] बच्चन ने विवाह को गले पड़ा ढोल समझने की धारणा व्यक्त की है [6] तो रणजीत ने किसी विवाहिता युवती के इस मनस्ताप को चित्रित किया है कि उसे किसी भले घर की लड़की की तरह उसी का होकर रहना पड़ेगा जिसके साथ उसका विवाह कर दिया गया है।[7] रघुवीर सहाय ने भी ऐसा ही भाव

---

1 'यात्रा और यात्रा' किरण जैन पृ० 45

2 हरापन नही टूटेगा पृ० 57

3 आँधी आयगी पृ० 44

4 5 नये सुभाषित पृ० 10

6 गले पड़ा जो ढोल बजाना उनको होगा/इसी नोट पर सब रोमांस खतम होना है।" उभरते प्रतिमानो के रूप' पृ० 109

7 'यह है तेरा पति । इसके सिवा नहीं तेरी गति/× × × पहले किसी से शादी करो/फिर अपने हिस्से जो आये उसी पर मरो।' 'प्रतिश्रुत पीढ़ी', सक०, पृ० 214

व्यक्त किया है, 'पढ़िये गीता/बनिये सीता/फिर इन सब मे लगा पलीता/किसी मूर्ख की हो परिणीता/निज घर बसाइय।'[1] मणिका मोहनी ने तो विवाहित जीवन को इंसान से जानवर बन जाने की, कुत्तो की तरह एक दूसरे का चाटते रहने की अनिवार्य परिणति घोषित किया है।[2] देवराज ने विवाह सम्बन्ध का यह तक देकर विरोध किया है कि पत्नियाँ प्राय 'ईर्ष्या असूया डाह क्रोध वाली होती हैं तथा 'पति के शरीर मन धन पर एकाधिकार करना चाहती हैं बीबियाँ।[3] उन्होंने कवि कलाकारो द्वारा विवाह न करने का समर्थन करते हुए कहा है कि, पत्नी प्रतिभा की अशक्ति' होती है। इसी प्रकार आत्मोद्धार या साधना की दृष्टि से भी पत्नी एक बाधा बतायी गयी है, गेह बद्ध जीवन म आध्यात्मिक साधना कभी ठीक नही सभव नही/सतों की शिक्षा यही अनुभव यही।[4] पत्नी की तुलना म वे प्रेयसी को प्रतिभा का सम्बल मानते तो हैं,[5] किन्तु उनकी अंतिम धारणा यह है प्रेयसि हो या पत्नी/नारी पुरुष जीवन का भारी अभिशाप है।[6] दिनकर कृत उर्वशी में भी नारी के प्रेयसी रूप को अत्यधिक महिमान्वित किया गया है। उर्वशी क सान्निध्य में पुरुरवा तो 'तिदिध्यासन और ऐकायनिक समाधि' की सुखानुभूतियो को प्राप्त होते ही हैं कब्र मे जाने की आयु को पहुचे महर्षि च्यवन भी रूपसी सुकन्या की प्रथम झलक पाकर कह उठते हैं अब होगा क्या अपर स्वग जिसका संधान करू मैं/हरि प्रसन्न यदि नही, सिद्धि बनकर तुम क्यों आयी हो?[7] नारी के पत्नी की अपेक्षा प्रेमिका रूप के अत्यधिक प्रशसक होते हुए भी दिनकर के पुरुरवा की भी नारी सम्बन्धी धारणा का निष्कष देवराज की नारी को अभिशाप मानने की उपर्युक्त धारणा स भिन्न नही हैं—"प्रिया हाय! छलना मनोज्ञ, वह पुरुष मग्न हसता है/जब चाहिए उसे रो उठना कठ फाड चिल्लाकर।[8]

आधुनिक काव्य म पत निमल नरेश मेहता आदि कवियों द्वारा जिस निर्बाध मुक्त कामाराधना का प्रतिपादन किया गया है वह प्रकारा तर स विवाह प्रथा का विरोधी है। इस सदभ म पत ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यद्यपि 'जाति गोत्र गत वैवाहिक प्रजनन को पुराने या विगत सास्कृतिक मूल्य के रूप म स्वीकृति भले ही मिली हुई है, तो भी इस प्रकार क दाम्पत्य सम्बध से उत्पन्न

---

1 'सीढियो पर धूप मे', पृ० 149

2 सुबह होने से लेकर दिन डूबने तक/मैं इतजार करती हू रात का जब हम दोनो एक ही कोने म सिमटकर एक दूसरे को/कुत्त की तरह चाटेंग/विवाह के बाद जिदा रहने के लिए/जानवर बनना जरूरी है। अकविता पृ० 54 55

3 6 'इला और अमिताभ' पृ० 31 32 33 52

7 8 'उर्वशी', पृ० 108, 146

होने वाली संतान को मेरे मत में जारज अर्थात् अवैध ही कहा जाना चाहिए। अपने मत का स्पष्टीकरण करते हुए उनका तर्क है कि 'नर नारियों के विवाह बंधन में आबद्ध होने के स्थान पर उनके प्रीति तत्त्व को ही 'संस्कृत लोक मूल्य' माना जाना चाहिए। भू विकास के स्थिति क्रम में विवाह बंधन को स्वीकृति प्रदान करना आवश्यक अवश्य रहा है, किन्तु वह रससिद्ध कामना का शुभ प्रीति परिणति का परिचायक नहीं होता है। ऐसी दशा में विवाह को भोग लालसा की अनुमति से अधिक महत्त्व नहीं दिया जा सकता।[1] परम्परागत संस्कृति में संतानोत्पत्ति हेतु किये गये सहवास को धर्म विहित घोषित किया गया है। इसके विपरीत दिनकर ने कामतुष्टि या कामाराधना को ही परम लक्ष्य तथा संतानोत्पत्ति को उसका अनिश्चित आनुषंगिक फल समझने की धारणा व्यक्त की है[2] जो निश्चय ही विवाह सम्बन्ध के संतति जन्म सम्बन्धी पक्ष की अवहेलना करती है।

(घ) माता पिता और संतान के सम्बन्धों में बिखराव

माता पिता और संतान के मध्य परम्परागत प्रगाढ़ सम्बन्धों के स्थान पर आधुनिक काव्य में जिस बिखराव और शैथिल्य की व्यंजना हुई है उसके मूल में संतान विषयक परिणत नैतिक धार्मिक मूल्यों तथा परिवार नियोजन के साधनों के रेडियो दूरदर्शन से धुआंधार प्रचार और परखनली में कृत्रिम शिशुओं की उत्पत्ति का भी पर्याप्त हाथ माना जाना चाहिए। आत्मोद्धार की अपेक्षा राष्ट्रोद्धार को वरीयता दिये जाने के कारण सम्प्रति पुत्र के सम्बन्ध में यह उदात्त धारणा कि 'पुं नाम नरकात् त्रायते इति पुत्रः' अर्थात् पुं नामक नरक की यातनाओं से त्राण के लिए पुत्रोत्पत्ति आवश्यक है—इस रूप में परिणत हो गयी है कि अपुत्र होने की दशा में किसी शिक्षक संस्था अथवा संघ को गोद लेकर उसमें अध्ययन करने वाले राष्ट्र सुतों की श्रद्धांजलियों से सद्गति प्राप्त की जा सकती है।[3] म० श० गुप्त जैसे परंपरावादी कवि द्वारा इस युगानुकूल धारणा का मुखरण करने के साथ ही बलदेव प्रसाद मिश्र की पुत्र द्वारा श्राद्ध कर्म किये जाने के संदर्भ में यह परिणत चेतना प्रशंसनीय है कि श्राद्ध का सर्वोच्च रूप लोक संस्थाओं को दान देना है।[4] इस

1 भोग लालसा की अनुमति भर वह/युग्म कर्म में बद्ध भावना गति/अंध काम आवेगों से प्रेरित/कृमियों सी रेंगती मनुज संतति।' लोकायतन पृ० 505

2 निरुद्देश्य निष्काम काम सुख की अचेत धारा में/संतानें अज्ञात लोक से आकर खिल जाती हैं। उर्वशी पृ० 84

3 यदि अपुत्र हो ले लो गोद कोई संस्था संघ मनोज्ञ/जहाँ राष्ट्र सुत सौ सौ छात्र श्रद्धांजलि दें बनें सुपात्र।'' 'हिंदू' पृ० 149

4 'कुटुम्ब का बड़ा धर्म अवश्य श्राद्ध है कर/सर्वोच्च श्राद्ध है लोक संस्था के हित दान ही। रामराज्य, पृ० 132

परिणत युगचेतना का सम्बल पाकर ही दासता काल में अनेक युवक युवतियों न इस तथ्य की चिन्ता न करते हुए कि निस्संतान मरने की दशा में उन्हें अकृत योनि भोगनी पड़ेगी, राष्ट्रोद्धार की कामना से अनुप्रेरित होकर यह संकल्प कर लिया था कि भारतमाता के दासता पाश कटने तक वे कौमार्य व्रत का निर्वाह करेंगे। श्रीकृष्ण सरल ने सरदार भगतसिंह को वन्दिनी है मातृभूमि परिणय है पाप मुझे/मातृ मुक्ति लक्ष्य आज उर में'[1] की प्रतिज्ञा करते चित्रित किया है। पंत ने भी लोकायतन में किसी इकलौते पुत्र द्वारा इसी प्रकार की प्रतिज्ञा कर लेने पर उसके पिता को जहर खाकर आत्महत्या कर लेने की धमकी देते चित्रित किया है।[2] हाँ, पुत्र की तो बात छोड़िये जब उसकी पुत्री भी राष्ट्रोद्धार हेतु कौमार्य व्रत का संकल्प कर लेती है तो हताश पिता एक ओर तो यह सोचकर संतोष करता है बेटी बेटे की स्वदेश से स्वतन्त्रता से हुई सगाई जबकि दूसरी ओर इस तथ्य के लिए यह आत्म प्रतारणा करते हुए कि मैंने इन्हें पढ़ाया लिखाया ही क्या था? अपने आक्रोश को इन शब्दों में मुखरित करता है बहा दिया मैंने गंगा में उन दोनों को पढ़ा लिखाकर।[3] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी मृदुला और चंदन नामक अंतर्जातीय प्रेमी युगल को कौमार्य व्रत लेते चित्रित किया है। पहले तो इस अंतर्जातीय विवाह के लिए मृदुला के माता पिता सहमत ही नहीं होते। जब पुत्री की आयु ढलती देखकर वे सहमत होते भी हैं तो प्रेमी युगल द्वारा राष्ट्रोद्धार हेतु कौमार्य व्रत का संकल्प कर लेने के कारण यह विवाह नहीं हो पाता।[4] कहना न होगा कि सर्वश्री वी० सी० राय वी० के० कृष्ण मेनन, चन्द्रभानु गुप्त कुमारी पद्मजा नायडू और अटलबिहारी वाजपेयी आदि पुरानी पीढ़ी के अनेक नेताओं के कुमारत्व के मूल में निश्चय ही सद्भगत तथ्य का ही हाथ रहा होगा।

जैव वैज्ञानिक खोजों के फलस्वरूप परखनली शिशुओं की उत्पत्ति तथा परिवार नियोजन के नाना साधनों के खुल्लमखुल्ला भोंडे प्रचार के कारण भी माता पिता की संतान सम्बन्धी तथा संतान की माता पिता सम्बन्धी उदात्त धारणाएँ परिणत-आहत हुई हैं। कहाँ तो हमारी परम्परागत प्राचीन संस्कृति में संतति जन्म को ईश्वरीय अनुकम्पा का फल मानते हुए तदर्थ नाना तप प्रताधिक अनुष्ठानों का आश्रय लिया जाता था और कहाँ आजकल का यह धुआँधार प्रचार कि संतान का होना न होना पति पत्नी की इच्छा पर निर्भर है और उसे रोकने का एकमात्र सरल उपाय है निरोध।' प्राचीनकालीन संस्कृति में संतति जन्म की महत्ता के परिचायक गर्भाधान पुंसवन और सीमन्तोन्नयन नामक तीन

1 सरदार भगतसिंह' पृ० 288 2 3 "लोकायतन", पृ० 46 77
4 'स्वतन्त्रता की बलिवेदी', पृ० 87

सस्कारो का मिलना[1] स्पष्ट करता है कि गर्भाधान को एक धार्मिक एव पावन कृत्य समझते हुए तदथ दवी शक्तियो की आराधना आवश्यक समझी जाती थी। यह सत्य है कि अत्यधिक सुसस्कृत परिवारों मे ही गभाधान से सम्बधित इस प्रकार की धार्मिक क्रियाओ का प्रचलन रहा होगा, किन्तु शिशु के जन्म को एक आधुनिक कालीन कवि द्वारा मशीनी प्रक्रिया के रूप मे चित्रित करते हुए यह दिखाना कि सतति ज म पुरुष के उदर म स्थित मशीन द्वारा स्त्री के गर्भाशय के साँचे म जीवाणुओ को पहुँचा देने का प्रतिफलन है[2] शिशु जन्म सम्बन्धी पुनीत भावनाओ को सवथा ध्वस्त कर देता है। यही नही कवि ने शिशु जन्म को ईश्वरीय अनुकम्पा के स्थान पर प्रकृति का ऐसा षडयन्त्र घोषित किया है जिसमे व्यक्ति निजी आनन्द के लालच म फँस जाता है—'पर प्रकृति सतान मागती है/स्वय को भोगनेवाले जीव माँगती है/ × × × लिहाजा प्रकृति ने अगो के उस घषण मे/पीडा नही, परम आनन्द रखा है/स्त्री की गुफा को घषण का आनन्द है/पुरुष के यत्र को स्खलन म तृप्ति है/ यह दोनो का लालच है/और उनका यह लालच प्रकृति का षडयन्त्र है/या चलिये कारसाजी है/ × × × आज उसके लिए सतान अनिवाय नही रही/पर आन द वह छोड नही सकता।'[3] कहना न होगा कि जीव विज्ञान की पुस्तको के माध्यम से आधुनिक काल के किशोर किशोरियो को प्राय इसी प्रकार की बातें पढायी जाती रहती हैं जिसके फलस्वरूप कम स-कम विज्ञान की शिक्षा प्राप्त दम्पति तो सतति जन्म को ईश्वरीय कृपा का फल मानने के स्थान पर एक नैसर्गिक जविक प्रक्रिया ही स्वीकार करते हैं।

टेस्ट टयूब या परखनली शिशुओ की उत्पत्ति ने इस दिशा म रही सही पुरातन मान्यताओ को भी ध्वस्त एव निमूल सिद्ध कर दिया है। पत ने शख ध्वनि म मानव शिशु जन्म के मूलाधार जीन' की सफल सप्राप्ति या विकास पर उचित ही उल्लास भी व्यक्त किया है और विषाद भी। उल्लास इस तथ्य के प्रति कि मानव मेधा अतत जीव के विकास के उस गुह्य सूत्र को खोजने म सफल

---

1 दे० हिन्दू सस्कार डा० राजबली पाडेय पृ० 60 स 79 तक

2 'स्त्री के पेट म एक गर्भाशय है/ × × × पुरुष क पेट म भी मशीन है/जो हजारो जीवाणुओ को एक साथ जन्म दे सकती है/स्त्री के गर्भाशय का द्वार जीवाणु की दस्तक पर ही खुलता है/द्वार खुलता है और जीवाणु के प्रवेश करते ही बद हो जाता है/फिर यह जीवाणु नौ महीने तक गर्भाशय के साँचे म पडा रहता है/ × × × सो यह स्वयमेव गर्भाशय का द्वार खोलकर बाहर आ जाता है/और मनुष्य कहलाता है।'
'शब्दों का वश भूषण वनमाली, पृ० 88 89

3 वही पृ० 88 89

हो गयी है जिससे अब मानव स्वय ही अपना ब्रह्मा या स्रष्टा बनकर इच्छित प्रकार की मानवजाति का विकास कर सकता है। उन्होने इस दु सभावना के प्रति विषाद भी व्यक्त किया है कि कही एसी विकट स्थिति न आ जाये कि शुभ निशुभा जैस सहारक मानव दानवो की सृष्टि करके मानव अपने सवनाश का स्वय ही माग खोल दे।[1] कृत्रिम प्रजनन की सफलता से निश्चय ही परिवार सस्था का अस्तित्व सकट म फसने की सभावना है। कारण यह है इस प्रकार उत्प न हुए बच्चो और उनके माता पिता क मध्य परपरागत पारस्परिक रक्त सम्ब ध क दढ सूत्र की वह भावना शेष नही रहेगी जो पारिवारिक आत्मीयता की धुरा रहती आयी है। बहुत सभव है कि परखनली स उत्पन्न व्यक्ति बेगानेपन से अभिभूत होकर स्वय को महाशून्य के महासमुद्र म रज और वीय की बलबलाहट स्वीकार करत हुए इस प्रकार क उदगार व्यक्त करन लगें आ मेरी गति के अक्ष दक/मेरी आँखें वापस कर दे/कि मैं ज म लेने वाला हूँ/एक टेस्ट टयूब मे/मेरी माँ होगी रज/पिता होगा वीय/सभोगित सृजन प्रक्रिया से परे/मात्र महासमुद्र मे महाशून्य की बलबलाहट।'[2]

जहाँ तक आजकल के माता पिता और उनकी सतानो के पारस्परिक सम्ब धो की आधुनिक का य म यजित हुई परिणत चेतना का सम्ब ध है एक ओर तो शिक्षित माता पिता सतति ज म को ईश्वरीय अनुकम्पा के स्थान पर यय का सिर बोझ स्वीकार करते हुए परिवार नियोजन के साधना की विफलता को कोसत मिलत हैं, जबकि दूसरी ओर आधुनिक बच्चे भी स्वय को परिवार नियोजन के ,साधनो की विफलता का परिणाम मात्र घोषित करत दष्टिगाचर होते हैं। फलत आधुनिक का य म माता पिता द्वारा सतान और सतान द्वारा माता पिता के प्रति व्यक्त किए गए उदगारो म एक दूसरे के प्रति प्राय घणा अवज्ञा और पाप बोध की अभि य जना हुई है। उदाहरणाथ रसकेलि में निमग्न दम्पति के आन द मे व्याघात तो बच्चे पहल भी डालते ही होंगे हाँ उनक लिए इस प्रकार की श दावली का प्रयोग एक आधुनिक युगीन माँ ही कर सकती है—

बच्चो को ब द करो/शोर बहुत करते हैं/हमारी ठठाली म मुए/आ पसरते हैं/कालेज अस्पताल और/नसरियाँ खली हैं/माँ बाप के लिए ही/कम्बख्त क्यो मरते हैं?[3]

नसरी स्कूल कालेज ब द हो तो ये मुए किसी बीमारी या एक्सीडेंट के कारण

1 शखध्वनि पृ० 17
2 अनाहूत सक० देवप्रकाश पृ० 157
3 वीणापाणि के कम्पाउड म, केशवचद्र वर्मा पृ० 11

अस्पताल मे ही मरती क्यो नहीं हो जाते ?—यह है आधुनिक माता का अपत्य प्रेम। अब ऐसी कम्बख्त औलाद द्वारा माँ बाप को इसलिए गाली बकना कि इन दुष्टों ने अपने मजे के लिए हम इस नरक तुल्य जगत म ला पटका है, किसी प्रकार अनुचित नही कहा जा सकता। इसीलिए आधुनिक कालीन एक सुपुत्र सोचत है 'काश! प्रसव काल मे मेरी माँ की मत्यु हो गयी होती[1] अथवा य दोनो कम्बख्त अब भी क्यो नही मर जाते जिसस मैं अनाथालय म मौज स रहता।[2] एक पिता ने अपने गभस्थ शिशु को सबोधित करते हुए कहा है कि ह 'अनाहूत/अभ्यागत,/आते हो ? आओ/आत ही हो ओ तो/स्वागत करना ही है हाय दव वज्रपात/माथा मैं थामे हू/सात मास पहले से।[3] दूधनाथ सिंह को सकोच है, "आह मेरी पत्नी! मैं तेरे गभ मे भविष्य का निरपराध आत्मघाती कसे रख दू ?"एक ओर सतानोत्पत्ति के विषय म माता पिता को सकोच है तो दूसरी ओर बच्चे भी जान गय हैं कि "हम अनचाहे ज मे/हमारे माता पिताओ ने भी नही चाहा/परिवार नियोजन के असफल उपायो क परिणाम हम।"[4] विडम्बनामयी स्थिति यह है, अब हम अन-जाने लोग/फिर अनचाहो स तानो को ज म देंग/परिवार नियोजन क असफल उपायो की प्रतीक/यह कसी विपाक्त लीक।[5] इसी प्रकार एक अ य पिता भी सद्योजात पुत्र स कहता है, फमिली प्लानिंग की समस्त योजनाओ को चुनौती दान/दोनो घूस भरपूर तान/आप जो सराय प्रगटे/सो आपका स्वागत है।[7] अर्था भाव स सत्रस्त बेचारे माता पिता करें भी तो क्यो करें अवकि परिवार नियोजन क साधनो का रेडियो दूरदशन स विज्ञापन सुनत हुए—उनको बार बार यह आश्वासन मिलत रहन पर भी कि अनचाहे बच्चो क ज म को रोकन का सरल-सुगम उपाय है निरोध,—सतति निरोध का यह तथाकथित राम बाण, अतत अमृत धारा की शीशी म भरा बम्बे का पानी सिद्ध होकर रह जाता है!

अ य कवियो म कलाश वाजपेयी के कविता नायक की स्वीकारोक्ति है 'मैं भी वही गलत परिणति सभोग की/मैं भी उत्पत्ति हू आह/रति रोग की।'[8] राजीव

---

1 2 'मैं उसकी दाढी नोचता रहा/बकता रहा हर पुरा व्यवस्था को गालियाँ/अपने बाप को/अपने ज म के लिए कोसता रहा/क्यो नही मर गयी मेरी माँ अस्पताल म/क्यो पदा की गई एक मछली/बिना पानी के तालाब मे। तथा उसक माँ बाप मरे—/वो अनाथालय म मजे स है। (काश मेर भी माँ बाप मर गय होते!) 'हलफनामा, सुरेश किसलय, प० 17 61

3 बधन के सतु प्रवासी प० 25 26 4 अपनी शताब्दी के नाम, प० 77

5 6 जग लगे सपन, विजयचद, प० 75, 76

7 वीणापाणि के कपाउड मे केशवचन्द्र वर्मा, पृ० 11

8 'देहान्त से हटकर', प० 100

सर्वसेना प्रत्येक पुत्र या पुत्री के जन्म को पाप की निशानी घोषित करते हुए घर और कोठे में कोई अन्तर ही नहीं मानते वह घर है या कोठा जहां एक भोली सी औरत लेट जाती है साथ मे दो रोटी की खातिर/हर बेटा और बेटी जहां किसी पाप की निशानी।'[1] वीरेन्द्र कुमार जैन की दृष्टि में बच्चे महज रात के सामीप्य की मानोटोनस और लाचार गर्मी के परिणाम हैं अथवा वे आत्म प्रवंचक प्रमो/प्रणय और परिणय की झूठी पड़ गयी अग्नियों/और पसेव के चिकने इनला पीलो पलगो पर/फिसलते मथुनो की पदायश हैं।[2] लीलाधर जगूडी के कविता नायक के उद्गार हैं कि मैं भी एक अधूरे का लौटाया हुआ गोन हू/जिसे मेरे पिता ने किया था/एक खिलाड़ी दो जिस्मो के खेल मे टनकता है/और गहर धँसकर बो आता है पिता[3] तो सुरेश सलिल इस पाप बोध से ग्रस्त रहे हैं कि मेरे अभिम पु मेरे आत्मज! मेरे क्षणिक सुख भोग का जायजा अब तुम्हें ही भरना है।[4] जीवन शुक्ल की स्वीकारोक्ति है कि 'कौन चाहता था/तू जन्मे/मेरी आधी रोटी का सुख छीने/मैं देह ठंडी कर रहा था/तू ने माथा गरम कर दिया।[5] बच्चन के अनुसार आधुनिक काल के कुछ बच्चे जमाने की कशमकश म घबराकर अपने माता पिता से यह जवाब तलब करते मिलते हैं कि आपने हमे उत्पन्न ही क्यो किया था ?[6] इस प्रश्न का एक पिता द्वारा उचित ही इन शब्दो म उत्तर दिया गया है मेरे बाप ने मुझ बिना पूछे/मुझ पदा किया था/और मेरे बाप से बिना पूछ उनके बाप ने उ हे/तुम्ही नई लीक धरना/अपने बेटो से पूछकर उ ह पदा करना।[7] प्रस्तुत सदर्भ म श्यामवर्णा शीर्षक उप यास के शशिकात नामक पात्र द्वारा अपनी माता के प्रति व्यक्त किया गया यह आक्रोश मरी उत्पत्ति बिना मेरी सहमति के हुई है। मैं पदा कहाँ होना चाहता था ? उत्प न होने का पाप मेरे सिर पर तुमने तथा पिताजी ने मढा[8] है, इस तथ्य की ओर सकेत करता है कि अपने जन्म के लिए सवाल जवाब करने वाले य 'बच्चे और बच्चा को रति रोग अधर मे हुई भूल या नेह ठंडा करने

1 प्रतिश्रुत पीढी सक० प० 173
2 'शून्य पुरुष और वस्तुए प० 177
3 नाटक जारी है प० 74
4 5 साठोत्तरी कविता सक० प० 16 76
6 जि दगी और जमाने की कशमकश म/घबराकर मेरे लडके मुझसे पूछते हैं/हम पदा क्यो किया था।' कटत प्रतिमानो की आवाज बच्चन, प० 43
7 वही प० 43 44
8 उद० स्वातन्त्र्योत्तर हि दी उप यासो मे मूल्य सक्रमण डा० हेमेन्द्र पानेरी पृ० 155

का परिणाम समझने की धारणाएँ कहो पाश्चात्य साहित्य से अपनाया गया मात्र तो नही है। हाँ राजे [redacted] किशोर द्वारा पिता की ओर से सतान को दिलाया गया यह परामश स्वाभाविक ही है बाप कभी बनना मत पैसे न हो यदि/बटे और बेटियो के क्रोध और घणा से बचना।[1]

(ड) परिवार-नियोजन समथन और विरोध

परिवार नियोजन की अनिवायता मूलत बीसवीं शती की ही देन है अ यथा इसने पूव पौरस्त्य और पाश्चात्य देशो म प्राय अधिकाधिक सतानें उत्प न करने से सम्ब धित धमशास्त्रीय विधान विद्यमान रहे हैं। हमारे धमशास्त्रो म ऋतु स्नाता स्त्री स पति का सहवास न करना पापों मे परिगणित था 'जबकि भ्रूण हत्या या गभपात के अपराध के लिए तो वद्ध हारीत (7/192) ने स्त्री की नाक, कान एव अधर काट लेने की व्यवस्था दी है और इसको पति की हत्या करने जसा दोष या अपराध स्वीकार किया है। क या के पुष्पवती होन स पूव ही उसके विवाह का विधान करते हुए पाराशर स्मतिकार का कथन है कि माता पिता और ज्येष्ठ भ्राता रजस्वला क या का मुख देखने पर नरक के भागी होते हैं।[3] इस सम्ब ध म चाणक्य न यह व्यवस्था दी थी कि यदि पति स्त्री के ऋतु काल को प्रच्छ न रखे या समागम के लिए उसके पास न जाय तो उस पर छियानवे पण दण्ड होना चाहिए,[4] जबकि पाराशर स्मति मे गभपात को ब्रह्महत्या से भी बढकर पाप घोषित किया गया है।[5] यह तथ्य परिणत परिस्थितियो का ही प्रतिफलन है कि जन सख्या की वद्धि की दष्टि से हमारे पूवजो ने तो क याओ के अल्पायु म विवाह तथा ऋतु काल मे अश्वमेव सभोग का विधान करते हुए गभ पात को दडनीय अपराध या महापाप घोषित किया था, जबकि आधुनिक काल मे भारत सरकार को जन सख्या नियमन की दष्टि से उनके सवथा विरोधी तथ्यो का आश्रय लेना पड रहा है। उसने गभपात को तो वध घोषित कर ही दिया है गभपात कराने की सभावना ही उत्प न न हो इस दष्टि से वह लूप निरोध, कॉपर टी, नसब दी आदि परिवार

---

1 स्थितियाँ अनुभव तथा अ य कविताएँ प० 19

2 दे० धमशास्त्र का इतिहास डॉ० पी० वी० काणे, अनु० अर्जुन चौबे काश्यप भा० 1 प० 334

3 'माता चव पिता चव ज्यष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरक या ति दष्ट्वा क या रजस्वलाम। पाराशर स्मति' 7/8

4 'तीथगूहनागमने षण्णवतिदण्ड। कौटिलीय अथशास्त्र धमस्थीयम प्रकरण 3/2 प० 275

5 'यत्पाप ब्रह्महत्याया द्विगुण गभपातन।" 'पाराशर स्मति 4/20

नियोजन सबधी माध्यमो का धुआँधार प्रचार भी कर रही है। परिवार नियोजन के साधनो का धर्माचार्यों की ओर से तो ईश्वर के कार्यों मे दखलदाजी बताकर विरोध किया ही जाता रहा है जबकि महात्मा गाधी जैसे कुछ साधु वृत्ति के लोगो द्वारा भी उसको नैतिक दृष्टि से पाप बताकर विरोध किया गया है 'जब सतान की इच्छा न हो तब स्त्री पुरुष को आपस म सहवास करना पाप है। सतति निग्रह के कृत्रिम साधनो को काम मे लाने का परिणाम नपुसकता और स्नायविक ह्रास होता है। अपने कामो के परिणामो स बचने की कोशिश करना गलत और पापमय है। और यह तो और भी बुरा है कि कोई शख्स पहले तो अपन पाशविक मनो विकारो को तृप्त कर और फिर उसके परिणामो स बचे।'[1] पडित नेहरू न गाधी जी के इन उद्गारो को उद्धृत करत हुए उनके सम्ब ध मे एक प्रकार स सामान्य जन मत को व्यक्त करते हुए लिखा था व्यक्तिगत रूप स मैं गांधीजी के इस रुख को बिलकुल अस्वाभाविक और भयावह पाता हूँ और अगर गाधीजी की बात सही है तो मैं उन पापियो म स हू जो नपुसकता और स्नायविक ह्रास के किनारे पहुच गय हैं। रोमन कैथोलिको ने भी बड जोरो से सतति निग्रह का विरोध किया है लेकिन वे अपनी दलीलो को उस आखिरी दर्जे तक नही ले गय जिस दर्जे तक गाधी जी ले गये हैं।[2] नेहरू द्वारा ब्रह्मचय साधन द्वारा परिवार नियोजन का असभव प्राय बताने या कहिए अपेक्षित सख्या म बच्चे होन पर पति पत्नी द्वारा सदव ही ब्रह्मचय का पालन करने को दुष्कर बताने पर भी गोपालशरण सिंह ने दिखाया है कि गाधीजी के आश्रम म निवास करन वाले अनेक दम्पति ब्रह्मचय व्रत का पालन करते थे।[3] ब्रह्मचय साधन द्वारा सतति निरोध की बात कुछ अन्य लोग भी उठाते रहे हैं जिसकी अव्यावहारिकता को लक्षित करके ही पत न इस दिशा म जन धारणा को इस रूप म मुखरित किया है—

"बाह्य साधन से गभ निरोध बुद्धि सगत कुसुमास्त्र अजेय।
शुभ्र नर नारी उर का प्रम अयी हो स्मर पर जीवन ध्येय।"[4]

पाश्चात्य जगत म भी परिवार नियोजन के सम्ब ध म आधुनिक काल स पूव प्राय भारतीय संस्कृति जसे ही या कहिए उनस भी कठोर मानदण्ड प्रचलित रहे हैं। सट आगस्टाइन ने उस स्त्री को उतन ही शिशुओ की हत्या करने का पापी घोषित किया था जो शिशु प्रसव क उपयुक्त होते हुए भी, जितन शिशुओ को जन्म देने से बचने का प्रयास करती थी।[5] सन 1526 मे हेनरी द्वितीय ने तो यह

---

1 'मेरी कहानी', पृ० 807 2 वही पृ० 807
3 'सपत्नीक नर भी करते थे ब्रह्मचय का पालन।' 'जगदालोक' पृ० 63
4 'लोकायतन' पृ० 271
5 दे० द सेकण्ड सेक्स साइमन द बुआ पृ० 150

राजाज्ञा ही घोषित करा दी थी कि भ्रूण हत्या राज्य के प्रति अपराध है और उसने इस प्रकार के आचरण के लिए भारी जुर्माने का कानून बना दिया था।[1] इसी प्रकार सन 1810 मे फ्रेंच कानून के द्वारा गर्भपात को पूर्णत निषिद्ध घोषित कर दिया गया था।[2] यही नही बीसवी शती मे हुए दो महायुद्धो के कारण जब यूरोपीय देशो की पुरुष जनसख्या का शोचनीय ह्रास हो गया तो सोवियत रूस ने तो ऐसी महिलाओ को पुरस्कार देने आरम्भ कर दिए थे जिनके सात या उनसे अधिक बच्चे उत्पन्न होते थे।[3] स्पष्ट है कि बीसवी शती से पूर्व ही नही अपितु इस शती में भी कतिपय राष्ट्र अपनी जनसख्या मे हुए ह्रास को लेकर चिन्तित रहे हैं जबकि अविकसित एव विकासशील राष्ट्रों की मुख्य समस्या यह रही है कि वे टिड्डी दल की तरह बढती जनसख्या की बाढ़ को किस प्रकार रोक सकते हैं ?

आधुनिक काव्य के रचयिता कवि यद्यपि समाज के उस वर्ग से सम्बद्ध कहे जा सकते हैं जो परिवार नियोजन के विषय मे स्वत ही सजग रहता है तो भी उनकी कविताओ का मूल स्वर सरकार द्वारा चलाए गए इस कार्यक्रम का मुक्त समर्थन नही करता। बच्चन के विचार हैं कि यह तथ्य तो सच है कि देश की आबादी बढ गयी है अत वह कम होनी चाहिए पर जवानो को बच्चे न पैदा करने चाहिए/ऐसे हम बूढो का षडयत्र मानते हैं।''[4] उनका परामर्श है कि यदि सरकार देश की जनसख्या कम करना चाहती है तो उसे एक ऐसा विधेयक पास कराना चाहिए कि पचास वर्ष की आयु से ऊपर के लोग 'जो जी भर भोग चुके हैं/और ऊब चुके हैं/झुके हैं/चुके हैं/जो वृद्ध खड्डूस हैं/हर नई बात के नपुसक विरोधी हैं, ऐसे सभी व्यक्ति 'एक दिन/अफीम की पुड़िया खाएँ और सो जाएँ/और हाँ, फिर न उठ जमुहाएँ।[5] राजीव सक्सेना को यह स्थिति दु खद-घृणास्पद प्रतीत हुई है 'जहाँ हर स्पर्श मे पहने है/कट्रासेप्टिव का स्पर्श/और हर आनन्द को/उसके जन्मदाता हाथ/फेंक देते हैं कूड़ाघर मे।[6] हाँ कवि पंत ने परिवार नियोजन की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है कि वह जनतत्र की

1 2 दे० 'द सेवण्ड सेक्स', साइमन द बुआ पृ० 150 51

3 चिरजीलाल पाराशर ने रूस के बारे मे लिखाया है कि वहाँ किसी स्त्री के सातवाँ बच्चा उत्पन्न होने पर उसको 400 डालर प्रतिवर्ष की सहायता नियत कर दी जाती है और बच्चो की सख्या के आधार पर स्त्रियों को मातृत्व पदक मातृत्व गौरव का पदक तथा वीरमाता पदक दिए जाते रहे हैं। नारी और समाज पृ० 254 55

4 5 'कटते प्रतिमानों की आवाज', पृ० 26

6 प्रतिश्रुत पीढ़ी, सकलन, पृ० 182

सफलता की दृष्टि से परमावश्यक है। यदि परिवारों को सीमित नहीं किया जाता तो, अशिक्षित, निर्धन रुग्ण, अपंग बच्चे व्यर्थ ही भू भार बढ़ाते रहेंगे और जन भू स्वर्ग नरक म परिणत हो जाएगा।[1] उन्होंने अ यत्र भी कृमियों सी बढ जन सतति/भू भार बढ़ाती प्रतिक्षण/सपन धरा सभव तब जब हो परिवार नियोजन"[2] की धारणा व्यक्त की है।

परिवार नियोजन क सदभ म कुछ अन्य कवि प्रतिक्रियाएँ इस प्रकार हैं दिनकर सोनवलकर के अनुसार यौन विज्ञान और परिवार नियोजन/सिद्धान्त और प्रयोग/सबसे कठिन योग' है।[3] भूषण बनमाली क शब्दों म चूकि आजकल के दम्पतियों के लिए सतान अनिवार्य नहीं रही है पर आनद वह छोड़ नहीं सकता/लिहाजा सिर्फ जीवाणु का रास्ता ब द कर दिया गया है।[4] कुमार विमल को इस स्थिति के प्रति बडा आक्रोश रहा है पता नहीं आज की मनुष्यता किस योनि मेध की तयारी मे है। एक ओर सतति निग्रह का सामाजिक स्तर पर व्यापक प्रचार और दूसरी ओर यौन परिकल्पनाओ की यह उपासना। शायद ही किसी युग ने गर्भाशय का मुख ब द कर यौनाशय का द्वार इस तरह उ मुक्त किया होगा।'[5] केवल गोस्वामी ने नसबन्दी कायक्रम के सचालकों के प्रति रोष व्यक्त करते हुए कहा है, ' जिन्दगी घिसट तो सकती है/कि तु क्या होगा ?/राक्षसी नस्ल के इजाफे का/जो हमारी नसबन्दी करके/घेरती जा रही है हमे चारो ओर से/मेरी आवाज सुनो/और मुझे कहने दो कि रामराज्य का सपना/झूठा था/केवल कुछ महात्माओ या ऋषियो का षडयत्र।"[6] कवि का आक्रोश एक अन्य कविता मे भी व्यक्त हुआ है, नसबन्दी स प्राप्त/इनामी ट्राजिस्टर लटकाये/राष्ट्रपिता घूमते हैं/गली और चौराहो पर/और सुनत हैं पश्चिमी धुनों पर/देश भक्ति के गीत ' जबकि ' नौजवानों की भीड़ हाथ म पट्रोल और आग लिए/एक केन्द्र स दूसरे केन्द्र तक/लूप का पारितोषिक एकत्रित करती/बीमार औरतो का समूह/उनका पीछा करते हैं।"[7] अभिप्राय यह है कि नसब दी कायक्रम के सुचारु सचालन के लिए एक ओर तो विधायक गण पुरस्कार म प्राप्त ट्राजिस्टरो पर पश्चिमी सगीत की धुनें सुनते हुए थिरकते रहते हैं जबकि दूसरी ओर देश का क्षुब्ध तरुण वग बेरोजगारी आदि से बौखलाकर आग लगाने पर उतारू रहता है, तथा 'लूप' आदि परिवार नियोजन

1 2 लोकायतन पृ० 271 270 174
3 अकुर की कृतज्ञता, प० 10 11
4 'शब्दो का वक्ष, प० 91
5 अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य, प० 231
6 'बन्द कमरो की सस्कृति', प० 13
7 वही पृ० 70

कि साधनो के प्रयोग से पनपी बीमारियो के कारण स्त्रियाँ अस्पताला या फेमिली सेंटरों क चक्कर काटती फिरती हैं। बालकवि बैरागी[1] केशव चन्द्र वर्मा[2] और लीलाधर जगूडी[3] कवियो ने देश के आर्थिक विकास की दृष्टि से जनसख्या के नियम हेतु परिवार नियोजन का समर्थन किया है।

(घ) अनमेल विवाह आदि वैवाहिक कुरीतियो का विरोध

मध्यकाल म बहु विवाह बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि वैवाहिक कुरीतियों के कारण नारियों को बाल विधवा अथवा उपेक्षिता सपत्नी की अमानुषिक यातनाएँ सहन करनी पडती थी। द्विवेदी युगीन कवियों में से ना० रा० शकर, रामचरित उपाध्याय हरिऔध और मथिलीशरण गुप्त ने इन कुप्रथाओ का तीव्र विरोध करके उन्हें सुधारने की चेतना जाग्रत करने की चेष्टा की है। शकर न उन वद्धो को आडे हाथों लेते हुए जो अल्पवयस्काओं स विवाह करके उन्ह असमय ही वैधव्य की अग्नि म झोककर काल कवलित हो जाते थे—उनको नीचाशय और धम शत्रु बताकर भरसना की है।[4] उन्होन उस स्थिति का भी विद्रूपात्मक चित्रण किया है जब किसी अधेडावस्था से कम आयु की स्त्री की अल्पवयस्का पुत्री का किसी साठ-साला वद्ध स विवाह होता था और ऐसी विचित्र दशा समुपस्थित हो जाती थी कि न तो उस दामाद को उसकी सास बेटा कह पाती थी और न वह वद्ध वर ही अपनी सास को मा जी' कहकर सम्बोधित कर पाता था जबकि वधू का तो वह बाबा ही प्रतीत होता था।[5] सभवत यह लोकगीत 'डगमग डोले नारि बलम मेरो लागे बाबा सो शकर के ही उद्गारो से प्रभावित रहा है। शकर ने वद्धो द्वारा अल्पवयस्का कन्याओ स विवाह करने क कृत्य को 'पाप घोषित करके'[6] एक प्रकार स दूरदर्शिता का ही परिचय दिया है क्योकि भारतीय जनमानस को पाप पुण्य की भावना अधिक प्रभावित करती है। शकर ने 'डाकर टैल बने

---

1 'दो टूक' बालकवि बैरागी पृ० 105

2 'वीणापाणि के कपाउण्ड म पृ० 12

3 नाटक जारी है प० 82

4 हाय ! बछिया पै रखत हैं, विधवापन का भार/धम शत्रु हेकड पचों के हठें न नीच विचार। अनुराग रत्न', पृ० 219

5 "न बेटा सगी सास वाला कहे न माजी लला साठ साला कहे/कहे क्यों न बाबा वधू बाबा को। 'अनुराग रत्न', पृ० 246

6 वेश कल्प कर वद्ध बालिका कन्या वरते हैं/कर मनमाने पाप, न अत्याचारी डरते हैं। —वही—, पृ० 304

छोकड़ी वरनी के भरतार/छी छी छी बुढ़वा मगल को तजै न उत उतार,[1] के रूप मे भी वद्धो को छोकरियो स विवाह करने के लिए बुरी तरह धिक्कारा है। उन्होने छोटी आयु के वर कन्याओ के विवाह की भी यह कहकर निन्दा की है कि आठ वष की गौरी कही जाने वाली कन्या से अयानी आयु के लडके का विवाह होने के फलस्वरूप 'बाल विवाह गिराता है यो, घर घेर घर वार।' रामचरित उपाध्याय न इस दोहरी चाल का उपहास किया है कि कुछ लोग बाल विवाह का तो विरोध करत हैं किन्तु यह सोचकर वद्ध विवाह की निन्दा करने से बचते हैं कि 'क्योकि साठ के होकर भी दूल्हा अभी बनेंगे हम/किसी बालिका से विवाह कर, रस म कभी सनेंगे हम।'[3] हरिऔध को बाल विवाह और वद्ध विवाहो के कारण असमय ही विधवा हो जाने वाली नारियों को ईसाई और मुसलमानो द्वारा अपनाये जाने के तथ्य के प्रति बडा आक्रोश रहा है— कर कर बाल विवाह अबल बन य बल खोते/दुखी थ न विधवों के विधवापन ॥ होत/समझ लूट का माल लूटते थ ईसाई/मुसलमान की मुसलमानियत भी रग लाई।'[4]

बाल विवाह और वद्ध विवाह की कुरीतियो को हिन्दु धर्मावलम्बियो के ह्रास का निमित्त स्वीकार करने के कारण हरिऔध क स्वर की कटुता और तीखापन और भी अधिक बढ़ गय हैं। एक ओर तो उन्होंने आत्म प्रतारणा के रूप म यह कहा है कि हम हिन्दुओ जस बेढगे लोग और कौन होंगे जो हम आप ही तबाह होते हैं बेटियाँ ब्याह बूढो स।'[5] काल के ग्राम बनने की स्थिति को पहुचे वद्धो को क्लीवत कुमारियो स विवाह करते देखकर उन्होने प्रश्न किया है और सिर पर रख बनी का बन बना/बेहयाओं का बने सिर मौर क्यो ? [6] हरिऔध की इन वद्ध दूल्हाओ के सम्बन्ध मे अन्य व्यग्योक्तियाँ हैं किसलिए उस पर गडाये दाँत वह/दाँत एक भी जिसके मुह मे नही [7] तथा मूढ बूढ करें न मनमानी है जवानी हुए जवानी की भूखी।[8] म० श० गुप्त ने बाल विवाह विरोधी चेतना व्यक्त करते तदय—दादा दादी की नाती पाने की इच्छा को दोषी ठहराया था, 'कितना अनिष्ट किया हमारा हाय बाल्य विवाह ने/अधा बनाया है हम उस नातियो की चाह ने।[9]

दहेज प्रथा की भी कई कवियो ने निन्दा की है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस दृष्टि से विषाद व्यक्त किया गया कि यह कुरीति कुल ललनाओ का कोमल

---

1 2 अनुरागरत्न पृ० 218, 218
3 उद० हिन्दी कविता म राष्ट्रीय भावना, डा० हरि दामोदर पृ० 234
4 5 पद्यप्रसून पृ० 149, 159
6 8 वही पृ० 161 161 161
9 भारत भारती, 148/243

हृदय जलाती है/मनस्ताप से उनके तन को तप्तागार बनाती है।"[1] परमेश्वर द्विरेफ ने समाज का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि पुत्री विवाह के अवसर पर 'कपड़े आभूषण दहेज म/जीवन व्यय चला जाता है/एकमात्र कन्या विवाह म/बिक जाता है हरा भरा घर/सब स्वाहा कर देने पर भी/वर वालो को स्वाद नहीं पर[2] की विडम्बनामयी स्थिति को सुधारना चाहिए। दहेज की माँग किए जाने के कारण ज० प्र० मिलिन्द ने नारी जीवन के इस अभिशाप को मुखरित किया है कि वह क्रय विक्रय की वस्तु बना दी गयी विवाह पण्यशाला म"[3] तो मुकुटधारसिंह दीक्षित ने विषादपूर्ण स्वर मे यह भाव व्यक्त किया है कि 'स्वराज्य मिल गया मगर सुखी नही स्वदेश है क्योकि अभी यहाँ दहेज का कुरोग है लगा हुआ/निकृष्ट लेन देन का प्रयोग है जमा हुआ।'[4]

(छ) तलाक पुनर्विवाह और विधवा विवाह सम्बन्धी नवीन चेतना

(1) तलाक और पुनर्विवाह

तलाक या मोक्ष तथा मुक्ता या विधवा के पुनर्विवाह के प्रश्न परस्पर अतसम्बन्धित हैं। इनम से तलाक या वैवाहिक बन्धन से मुक्ति के अधिकार का तथ्य यद्यपि नारियो की ही दयनीय दशा को सुधारने की दिशा मे उठाया गया अपेक्षित कदम स्वीकार किया जाता है तथापि इस लोकोक्ति के परिप्रेक्ष्य म कि 'सिर पड़ि गई मौर घरें ते अब छूटेगी चिहु मरें स —अर्थात व्यक्ति अपनी विवाहिता स्त्री से मरकर ही छुटकारा प्राप्त कर सकता है—स्पष्ट है कि अवांछित जीवन सहचरी स परित्राण हेतु पुरुषों को भी तलाक के अधिकार की आवश्यकता बनी हुई थी। पति और पत्नी दोनो को ही तलाक का अधिकार मिल जाने पर उनके द्वारा राहत की सांस लने के मूल म भारतीय संस्कृति की इस विशिष्टता का उल्लेख किया जा सकता है कि उसम वैवाहिक बन्धन को जन्म जन्मान्तर का सम्बन्ध स्वीकार किया जाता रहा है। इस धारणा क अनुसार जब पति पत्नी का सम्बन्ध आगामी जीवनो मे भी बना रहता है तो फिर वर्तमान जीवन में इस सम्बन्ध से मुक्ति का प्रश्न ही नही उठता था। प्रस्तुत सदर्भ मे प्राचीन काल के धर्म शास्त्रो तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र म जो व्यवस्था मिलती है, वह मूलत इन तीनों ही तथ्यो की विरोधिनी है हाँ उसमें विवाह के आठ प्रकारों म स अधम समझे जाने वाले आसुर गान्धर्व पिशाच और राक्षस विवाहो मे मोक्ष के अधिकार का प्रावधान अवश्य विद्यमान है। इन चार प्रकार के विवाहो के सम्बन्ध में कौटिलीय अर्थशास्त्र में पति या पत्नी कर्म का निर्वाह न करने वाले

---

1 द्विवेदी काव्यमाला,' पृ० 473 2 'मीरा' पृ० 21 22

3 'स्वतन्त्रता की बलिवेदी पृ० 72 4 'जयभारत' पृ० 176

नर नारी तथा कुमार्गगामी पति और पत्नी के लिए राजकीय अर्थ दण्ड की तो व्यवस्था की गयी है किन्तु उनके विवाह बन्धन के टूटने के सम्बन्ध म यह विचार व्यक्त किया गया है ' *यदि स्त्री पति से द्वेष करती हो किन्तु पति उसे छोड़ना न* चाहे तो स्त्री को उससे छुटकारा नहीं दिलाया जा सकता। यदि पति अपनी निर्दोष पत्नी को छोड़ना चाहता हो किन्तु पत्नी न छोड़ना चाहे ता भी पति पत्नी अलग नहीं हो सकते। यदि दोनो ही परस्पर एक दूसरे से द्वेष करने लगें तो छुटकारा मिल सकता है।'' इस विधान म आगे कहा गया है कि यदि पुरुष का कोई दोष देखकर स्त्री उसे छोड़ना चाहती हो तो उस स्त्री को स्त्री धन का कोई अंश नही प्राप्त हो सकता।[1] धर्म विवाह की कोटि मे कौटिल्य ने ब्राह्मण प्राजाप य आर्ष तथा दैव नामक विवाहो का परिगणन किया है और यह विचार व्यक्त किया है कि इन विवाहो मे माता पिता का अनुमोदन रहने के कारण ये विवाह धर्मसंगत स्वीकार किये जाते हैं। अन्तिम चार प्रकार के विवाह अर्थात गान्धर्व आसुर पैशाच और राक्षस विवाह भी कौटिल्य के अनुसार उस दशा मे धर्मानुगत हो सकते हैं यदि उन्हें *माता पिता का समर्थन प्राप्त हो जाए क्योकि माता पिता ही वर पक्ष से* शुल्क ग्रहण करते हैं। उनके इस मत के परिप्रेक्ष्य म कहा जा सकता है कि कौटिल्य विवाहो के अधम चार प्रकारो मे भी उस दशा मे मोक्ष की अनुज्ञा नही देना चाहते जबकि ये विवाह भी माता पिता की स्वीकृति के कारण धर्मानुगत हो गये हो। कौटिल्य ने मोक्ष के सदर्भ मे नीचत्व परदेश वा प्रस्थितो राजकिल्विषी/ प्राणाभिह ता पतितस्त्याज्य क्लीबोऽपि वा पति[2] का विधान दिया है, जिसके अनुसार पत्नी को नीच या अधम परदेश म गए हुए राज्यापराधी हत्यारे और नपुंसक पति का त्यागने का अधिकार प्रदान किया गया है। कौटिल्य न विधवा या सधवा नारियों के पुनर्विवाह के समय उन्हें कितना स्त्री धन मिलना अथवा नहीं मिलना चाहिए—इस तथ्य का तो विवेचन किया है[4] किंतु नारियो क पुनर्विवाह की अपेक्षा वे उनके द्वारा नियोग की पद्धति अपनान अर्थात पति के भाई स सतानोत्पत्ति करा लेने क तथ्य के अधिक समर्थक रहे हैं।[5] अभिप्राय यह है कि मौर्य काल मे तलाक तथा विधवा विवाह की घटनाए कदाचित अपवाद स्वरूप

1 'अमोक्ष्या भर्तुरकामाणास्य द्विषती भार्या भार्यायाश्च भर्ता। परस्पर द्वेषा मोक्ष। × × × अमोक्षो धर्मविवाहानाम।' कौटि० अर्थशास्त्रम् धर्मस्थीयम प्रकरण तृ० अध्याय, टीकाकार पाण्डेय रामतेज शास्त्री, पृ० 278

2 पितृप्रमाणश्चत्वार पूर्वे धर्म्या। मातृ पितृप्रमाणा शेषा। तौ हि शुल्कहरौ दुहितु।' वही प० 271 72

3 5 दे० वही, धर्मस्थीयम प्रक०, प० 276, 273 74 284

ही घटित होती थी। कौटिल्य द्वारा प्रदत्त श्लोक मे 'पतिर यो विधीयते' अर्थात् दूसरे पति का वरण किये जा सकने का वह सकेत लुप्त है जो इस दिशा म नारद और पाराशर स्मृतियो तथा अग्नि पुराण म दिये गये एक जैसे ही इस श्लोक मे उपलब्ध है नष्टे मते प्रव्रजिते क्लीबे च पतितेऽनौ/पचस्वापत्सु नारीणा पतिर यो विधीयते।"[1] इन दोनो श्लोको का मूलभाव तो प्राय समान ही है किंतु कौटिल्य ने मात्र मोभ की स्थितियो पर प्रकाश डाला है जबकि नारद और पाराशर स्मृतियों तथा अग्निपुराण म उपलब्ध श्लोक म स्पष्ट ही पुनर्विवाह की स्थितियो का उद्घाटन किया गया है। कूटनीतिज्ञ कौटिल्य के विधान म उचित ही राजनीतिक अपराधी तथा हत्यारे पति को भी त्याज्य घोषित किया गया है जबकि स्मृतियो मे मते का उल्लेख विधवा विवाह को स्वीकृति प्रदान करता प्रतीत होता है। नारद और पाराशर स्मृतियो का रचना काल गुप्तयुग माना जाता है अत बहुत सम्भव है कि इस श्लोक की रचना के मूल मे च द्रगुप्त द्वारा अपनी भावज ध्रुवस्वामिनी से विवाह करने की घटना क्रियाशील रही हो। हा मोक्ष और पुनर्विवाह के समथक इस श्लोक के सम्ब ध म पराशर माधवीय ने यह विचार व्यक्त किया है कि वह कलियुग स पूव की समाज व्यवस्था स सम्ब धित है। इसी प्रकार मेधातिथि ने विधवाओं के पुनर्विवाह का घोर विरोध करत हुए पति शब्द को पालक अथ का बोधक बताया है। स्मत्यथसार (रचनाकाल सभवत 1150 ई० स 1200 ई०) ने इस सदभ म चार मतों का उल्लेख किया है—(1) यदि सप्तपदी के पूव ही वर मर जाय तो कन्या का पुन विवाह हो सकता है, (2) यदि पति सभाग के पूव मर जाय तो पुनर्विवाह हो सकता है (3) विवाहोपरा त कन्या के रजस्वला होने से पूव पति की मत्यु होने पर पुनर्विवाह हो सकता है तथा (4) विवाहोपरा त गभ ठहरने के पूव पुनर्विवाह आपत्तिजनक है।[2] अभिप्राय यह है कि आधुनिक काल मे पूव क अधिकाश धर्माचाय तलाक पुनर्विवाह और विधवा विवाह के विरोधी ही रहे हैं। उपरि उद्धत श्लोक म निर्दिष्ट मते' और प्रव्रजित की दशा म तो तलाक लेने का प्रश्न ही नही उठता था नष्टे का अभिप्राय था जिसके जीवित या मत होने के सम्ब ध म निश्चित ज्ञान न हो।[4] ऐसी स्थिति म अधिक सम्भावना यही है कि पत्नी इस सम्ब ध म निश्चित सूचना मिलने की प्रतीक्षा करती होगी। अब तलाक के लिए मात्र दो स्थितियाँ शेष बचती हैं पति का क्लीब या पतित होना। इनमे स पति के पतित होने के सन्दभ

---

1 डॉ० पी० वी० काणे के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि उक्त तीनों ही कृतियो मे यही श्लोक दिया गया है—

दे० धमशास्त्र का इति०' भाग 1 पृ० 343

2 4 दे० 'धमशास्त्र का इतिहास डॉ० पी० वी० काणे प्र० भा० पृ० 343

मे याज्ञवल्क्य स्मृति का यह मत उल्लेखनीय है कि यद्यपि पति को महापातक का दोष लगा होने पर, पत्नी उसकी परतंत्र नही रहती तो भी उसका परम धर्म यह है कि उसको पति की शुद्धि तक प्रतीक्षा करनी चाहिए।[1] स्पष्ट है कि पति के पातकी होने की दशा में भी पत्नियाँ पुनर्विवाह करने के स्थान पर उसकी परिशुद्धि की प्रतीक्षा करती होगी। अन्तिम स्थिति क्लीवता की है जिसके विषय में आश्वस्त भाव से यह कहा जा सकता है कि पुरुष प्रधान समाज में किसी पत्नी का यह सिद्ध करना सर्वथा असम्भव प्राय ही था कि उसका पति नपुंसक है। इस सदर्भ मे वस्तुस्थिति वही रहती होगी जिसकी ओर बिहारी ने पति की पति राखे बहू आपुन बाँझ कहाइ के द्वारा इंगित किया है। अभिप्राय यह कि धर्म विवाहों मे पुरुष तो पत्नियो को त्याग भी देते होगे किन्तु पुनर्विवाह की सभावना न होने के कारण पत्नियाँ पति के दुराचारी और क्लीव होने की दशा में भी मन मसोस कर रह जाती होगी। अपवादस्वरूप कुछ विवाह सम्बन्ध भी भंग होते रहे होगे और नीची जातियो मे पुनर्विवाह का भी प्रचलन था किन्तु ऐसे विवाह उत्तम नही समझे जाते थे। सम्प्रति विधवा और मुक्ता नारियो के पुनर्विवाह को वैधता प्राप्त है किन्तु समाज के दृष्टिकोण मे अभी तक इस दिशा में अपेक्षित परिवर्तन नही हुआ है। आधुनिक काव्य के प्रणेताओ ने विधवाओं की दयनीय दशा के चित्रण द्वारा प्रकारा तर से उनके पुनर्विवाह का मार्ग प्रशस्त करने की चेष्टा है जबकि स्त्रियो को तलाक का अधिकार दिये जाने के प्रति भी उनकी सहानुभूति परक दृष्टि रही है। प्राचीन आख्यानो मे राम द्वारा सीता का परित्याग एक प्रकार का मोक्ष ही कहा जा सकता है। ऋग्वेद की अपाला सम्बन्धी कथा मे दिखाया गया है कि महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला अत्यधिक कुशाग्रबुद्धि थी। उसके शरीर पर श्वेत कुष्ठ के दाग थे जिन्हे वैद्य ठीक नही कर सके। पिता अत्रि ने उसके शारीरिक कलक को ज्ञानाग्नि मे भस्म करने का निश्चय करके उसको मनोयोग पूर्वक शिक्षा प्रदान की। ब्रह्मवेत्ता कृशाश्व से अपाला का विवाह हो गया जो अपाला की यौवन कान्ति मे उसके श्वेत कुष्ठ के दागो को नही देख सके। हाँ ढलते यौवन में श्वेत कुष्ठ झलकने लगा तो कृशाश्व की अपाला के प्रति आँखे बदल गयी। हारकर अपाला को पिता के घर लौटना पड़ा। घर लौटी पुत्री को देखकर अत्रि दुखी हो उठे और उनका समस्त वेद वेदान्त ताक पर रखा रह गया। बाद मे अपाला ने इन्द्र को प्रसन्न किया जिन्होने उसको रथ के छिद्र से तथा शकट युग के छेद से तीन बार निकाला तो वह सुत्वचा हो गयी। कथा मे इस तथ्य का

---

1 'स्त्रीभिर्भर्तृवचः कार्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः। आ शुद्धेः सम्प्रतीक्ष्यो हि महापातकदूषितः।' 'याज्ञ० स्मृति, आचाराध्याय श्लोक 77

2 'ऋग्वेद कथा' रघुराज सिंह, पृ० 165 166

उल्लेख नहीं है कि फिर अपाला पति गृह को लौटी थी अथवा नहीं।

नारियों की दशा के सुधार से सम्बन्धित तलाक, पुनर्विवाह और उन्हें पुरुषों जैसे अधिकार प्रदान किए जाने के तथ्यों का दो एक अति परम्परावादी कवियों द्वारा इस प्रकार की मिथ्या धारणाएँ व्यक्त करते हुए कि ऐसा करना घर की रानी को दासी बनाने का षडयन्त्र है अथवा यह सीता और सावित्री की तौहीन है विरोध भी किया गया है। उदाहरण के लिए मन्न गोपाल सिंहल ने पहले तो मध्यकालीन जौहरों के सम्बन्ध में यह भाव व्यक्त किया है भारतीय नारी क्या भारतीय सभ्यता ही स्वयं आज तक जीवित है/आज तक प्रफुल्लित है, इन्हीं बलिदानों से, इन्हीं इतिहासों से।"[1] इन जौहरों को भारतीय सभ्यता का पर्याय मानने के परिप्रेक्ष्य में उन्होंने कहा है, कि कितने खेद का विषय है 'किन्तु आज आते हैं 'तलाक बिल विधवा विवाह बिल / महिला अधिकार बिल'/धारासभाओं में देव देश भारत की धारा सभाओं में/सतियों के भारत की धारा सभाओं में/सीता के भारत की धारा सभाओं में।'[2] प्रतीत होता है कि कवि ने यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता का कदाचित् यह अभिप्राय ग्रहण किया है कि भारत में नारियों की वास्तव में ही सदा से पूजा होती आयी है और हो रही है अत इस भ्रम के कारण ही वह उन्हें अब भी तथाकथित पूजा की ही वस्तु बने रहने देने का समर्थन करते हुए आक्रोशपूर्वक कहता है, स्वार्थी मनुष्य तू क्या क्या न करता है /अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए/आज तू नारी को नीचे गिराता है/ आज तू रानी को दासी बनाता है।[3] स्पष्ट है कि यह नारियों के तथाकथित 'रानीत्व' और देवीत्व की दोहाई देकर यथास्थितिवाद के समर्थक प्रतिक्रियावादी विचार ही हैं किन्तु यह तथ्य अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि कवि के इन उद्गारों में भारतीय समाज के बहुत बड़े वर्ग की आत्मा बोल रही है—कम से कम अधिकांश ग्रामीण समाज तो अब भी प्राय इसी प्रकार की मिथ्या धारणाएँ रखता है। कवि ने तलाक और विधवा विवाह का विरोध करते हुए कहा है कि इन बिलों के माध्यम से यद्यपि स्वार्थी मनुष्य नारियों को अधिकार देने की बात कर रहा है तथापि वस्तुस्थिति यह है कि इन अधिकारों के माध्यम से पुरुष वर्ग नारी आदि का छीन ही लेना है/उसका घर उसके लाल/उसका बल उसका धर्म उसकी शक्ति उसका कर्म/अरे तू भिखारिन बनाकर ही छोड़ेगा।"[4] नारियों को इस प्रकार के अधिकार प्रदान किए जाने के तथ्य का कवि इस दृष्टि से भी विरोधी रहा है कि ऐसा करने से भारत की देवियाँ दानवी बन जायेंगी देवी को दानवी बनाकर ही छोड़ेगा' तथा भारत को योरुप बनाकर छोड़ेगा।[5] यदि

---

1 2 'नारी तेरे रूप अनेक' सं० पृ० 79 80

3 5 वही पृ० 79 80

ने यह भी भविष्यवाणी की थी कि यदि पाश्चात्य सभ्यता में रँगे पुरुषों ने सीता और सावित्री तथा शिवाजी प्रताप और हकीकत राय की माताओं की वंशजा भारतीय नारी से खिलवाड़ करने की कोशिश की तो चाहेगी तुझे तो अभी धूल में मिला देगी/तेरी इस विदेशियत की शेखी ही भुला देगी,[1] किन्तु इतिहास साक्षी है कि आधुनिक नारी ने अपनी पाश्चात्य बहनों के आचरण की इतनी अधिक बातें अपना ली हैं कि यह भविष्य कथन निर्मूल ही सिद्ध हुआ है तथा पुरुष वर्ग भी इस प्रकार की आलोचनाओं से घबड़ाकर नारियों को उनके अपेक्षित अधिकार देने से पीछे नहीं हटा है।

अन्य कवियों में से बरसानेलाल चतुर्वेदी ने पतियों की हित रक्षा की दोहाई देकर तलाक बिल को पास न होने देने के लिए पंडित नेहरू और बालकृष्ण शर्मा नवीन से आग्रह करते हुए कहा है, हे नेहरूजी तुम दया करो/पत्नी वालों पर कृपा करो/माना तुम तो हो वीतराग/हे बालकृष्ण शर्मा नवीन/कुछ तो भविष्य का हो विचार/हे त्राहिमाम/हे पाहिमाम/तलाक बिल/कर देगा सत्यानाश। इन उदगारों में हास्य का पुट तो अवश्य है, किन्तु इनमें जनसामान्य के इस भय की भी अभिव्यक्ति हुई है कि स्त्रियों को तलाक का अधिकार मिल जाने से विवाहित पुरुषों का दाम्पत्य जीवन खतरे में पड़ जायेगा। ताराचंद हारीत ने दमयंती में नारियों को मोक्ष और पुनर्विवाह का अधिकार दिये जाने की विरोधी तथा समर्थक दोनों ही प्रकार की विचारधाराओं को मुखरित किया है। राजा नल दमयन्ती को जंगल में सोती छोड़कर चले गये थे और नैषध राज्य से बाहर रहने की चौदह वर्ष की निर्धारित अवधि बीत जाने पर भी उनके द्वारा न तो अपने राज्य में लौटना और न अपने जीवित होने का ही कोई समाचार प्रेषित करना नारद और पाराशर स्मृतियों में उल्लिखित नष्टे की या कौटिलीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से 'परदेश प्रस्थितो' की स्थिति थी। चूंकि नल ने दमयंती को सुषुप्त दशा में त्यागा था अतः इस तथ्य की भी संभावना थी कि उनका किसी जंगली जानवर द्वारा वध कर दिया गया हो। अभिप्राय यह है कि धर्मशास्त्रीय दृष्टि से दमयंती द्वारा पुनर्विवाह का निर्णय करना पूर्णतः शास्त्रसम्मत था, फिर भी काशी नरेश की सेवा में नियुक्त नल तथा स्वयं काशी नरेश भी दमयंती के पुनर्विवाह सम्बन्धी निर्णय को सुनकर चकित हो उठते हैं।[2] दमयंती के इस निश्चय के सम्बन्ध में रूढ़िवादी लोगों की यही प्रतिक्रिया रही होगी जिसको कवि ने नल के इन उदगारों द्वारा मुखरित किया है— 'शुभ नारि धर्म की लीक न शेष रहेगी,

फट जायेगी ध्रुव धरा! न भार सहेगी।

---

1 'नारी तेरे रूप अनेक' सक० 78 80

2 'रंग और व्यंग्य', पृ० 17

अब पुनवरण का सती स्वाग जब होगा,
यह धम लुप्त ससार भस्म तब होगा।"

अपने सतीत्व के लिए विख्यात किसी भारतीय नारी द्वारा पुनर्विवाह कर लेने पर 'धरा के फट जान' या 'धम के विलुप्त हो जाने के मूल म वह परम्परागत धारणा क्रियाशील रही है, जो नर नारी के विवाह सम्ब ध को ज म ज मातर का सम्ब ध स्वीकार करती थी। इस धारणा के कारण सती प्रथा को भी पर्याप्त बल मिला था क्योंकि यह विश्वास किया जाता था कि सती होने वाली पत्नी की आत्मा अपने दिवगत पति की आत्मा स स्वग मे जा मिलेगी और शरीर के रोम कूपा जितने वर्षों अर्थात् लगभग साढे तीन करोड वष तक स्वग मे निवास करती रहेगी।[2] दमय ती से सम्ब धत 'वदर्भी' शीषक का य मे भी नारी को आय सस्कृति का स्तम्भ बताते हुए विवाह को ज म ज मातर तक चलने वाला सम्ब ध ही बताया गया है। इस प्रकार की पुरातन मानसिकता स ओत प्रोत होने के कारण ही कमलाकात शुक्ल ने पति परित्यक्ता दमय ती क मुख से स्वय को पापिष्ठा समझने की भावना भी यक्त कराई है।[3] इसके विपरीत ताराच द्र हारीत ने पति पत्नी के सम्ब धो के विषय म इस परिणत दष्टिकोण को व्यक्त किया है कि जब निर्दोष दमय ती को उसका पति अद्ध रात्रि की वेला मे सोती छोडकर चला गया था, यदि तब यह ससार भस्म नही हुआ था—अर्थात यदि पति द्वारा निर्दोष पत्नी के परित्याग स न तो धर्म का लोप हुआ और न पृथ्वी ही फटी थी, तो फिर पत्नी के द्वारा पुनर्विवाह कर लेने पर ही इन तथ्यो की आशका क्यो की जा रही है?[4] अभिप्राय यह है कि परित्यक्ता निर्दोष पत्नी के द्वारा पुनर्विवाह करने की दशा मे धम के विलुप्तीकरण या नाश की दोहाई देना सवथा अनुपयुक्त है।

आधुनिक काल के अ य कवियों की उक्तियो मे यह परिणत दष्टिकोण ही व्यक्त हुआ है और उ होनें पति परित्यक्ताओ को पापिष्ठा नही अपितु एक प्रकार के सामाजिक अत्याचार मे पिसती नारी स्वीकार करते हुए, उनके प्रति सवेदनात्मक उद्गार व्यक्त किय हैं। उदाहरणाथ पत ने किसी मुक्ता नारी के सोसायटी गल जसे अधम जीवन के प्रति उसको पच-क यायो जैसी पवित्र कहलाकर

---

1 'दमय ती', पृ० 297

2 दे० 'धमशास्त्र का इति०', डॉ० पी० वी० काणे 1/350

3 छू न मुझ पापिष्ठा हू मैं आयपुत्र ने त्यागा। वदर्भी पृ० 166

4 ' निजन वन म निर्दोष सुपुप्त दशा म/निज प्राण प्रिया अनुपदा तथाध निशा मे/जब परित्यक्ता हो चुकी पुरुष के द्वारा/तब क्यो न भस्म हो गया, जगत यह सारा।" 'दमय ती पृ० 298

सहानुभूति व्यक्त की है।[1] शकुन्त माथुर की कोई परित्यक्ता नारी मेघ से प्रार्थना करती है कि वह कहीं दूर जाकर गरजे बरसे क्योंकि तुम्हारे गर्जन से ही मुझे डर लगता है/आज मैं डिवॉर्स करके अपने घर में बैठी हूं/साठ रुपये की नौकरी कर/एक बहुत पुराने सड़े मकान में रहती हूं।[2] इस तलाक का कारण यह रहा है कि 'मेरे साजन का मुझसे जी भर गया है/उसने किसी दूसरी को अपने बाहुपाश में भर लिया है।[3] उपेन्द्रनाथ अश्क ने किसी परित्यक्ता नारी को आवारा बगूला की संवेदनात्मक संज्ञा प्रदान की है और उसकी विराग विद्रोहात्मक मुद्रा को देखकर कवि को वह परित्यक्ता, चलती फिरती अग्नि ज्वाला अथवा जलता जलाल प्रतीत हुई है।[4] केदारनाथ अग्रवाल ने परित्यक्ता नारी की समता पेंशन पाये हुए उदास चपरासी या द्यूत में हारे हुए कातर व्यक्ति से करके इस तथ्य की व्यंजना की है कि उनका जीवन किसी ऐसे व्यक्ति की भांति वीरान उदास कातर हो उठता है जो अपना सर्वस्व खो चुका हो अथवा लम्बे समय तक दफ्तर में नौकरी करने के जीवन का आदी बन चुकने पर सदा मुक्त हो गया हो।[5]

भारत में अभी पाश्चात्य देशों की तरह तलाकों का ऐसा प्रचलन नहीं है कि खर्राटे भरने आदि क्षुद्र कारणों के फलस्वरूप सुबह हुए विवाह शाम को तलाक में परिणत हो जाएं अतः हमारे विचार से गिरिजा नंदिनी की यह उक्ति भारत की वैवाहिक स्थिति का सही चित्रण नहीं करती रिश्ते जोड़ने में तो कुछ/देर लग सकती है/पर पलक के गिरने और उठने तक/तलाक हो जाते हैं।[6] हां उनके द्वारा प्रस्तुत तलाकशुदा स्त्री की उदासीनतामयी जिन्दगी का यह चित्रण यथार्थ ही है तलाक दी हुई औरत की तरह/रात गहराकर/उदास हो गयी/और सांसों के दुर्निवार चढ़ावों पर चढ़ती/अतीत के खंडहर में/उतर गयी।[7] प्रभाकर माचवे ने नव रामायण शीर्षक कविता में लक्ष्मण के वनवास काल में उनके विरह में तड़पती रहने वाली प्राचीनकालीन उर्मिला का आजकल की परिणत परिस्थितियों में सुना वनगमन लक्ष्मण/लिया उर्मिला ने लक्ष्मण से तुरंत तलाक[8]—के रूप में, वनगमन से पूर्व ही तलाक लेते चित्रित किया है।

तलाक की यंत्रणा उच्च पदों पर नियुक्त सम्पन्न वर्ग की महिलाओं की अपेक्षा निम्न वर्ग की नारियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक त्रासद सिद्ध होती है। नवभारत

1 स्वर्ण धूलि पृ० 119
2 3 अभी और कुछ पृ० 64 64
4 खोया हुआ प्रभामंडल पृ० 64
5 यह उदास दिन/पेंशन पाये चपरासी सा/और जुए में हारे जन सा/× × × परित्यक्त पत्नी सा कातर। फूल नहीं रंग बोलते हैं पृ० 35
6 7 इति पृ० 20 58 59 8 स्वप्नभंग पृ० 67

टाइम्स में निम्न वर्ग की महिला कर्मचारी वनिता तेंदुलकर तथा उच्च पद पर सेवारत मनमोहिनी गुप्ता के साक्षात्कार छपे थे। इनमें से वनिता तेंदुलकर के तलाकशुदा जीवन का वृत्तान्त बड़ा दयनीय था। उन्होंने कहा था कि पति के अत्याचारों को सहन करते रहने से भी अधिक कुरूप और प्रताड़नामय है किसी तलाकशुदा औरत के लिये उसी समाज में जिन्दा रहना संघर्ष करना जहाँ औरत की जिन्दगी के कुछ मायने परम्परागत रूप से तय हैं। उन्होंने बताया था कि मेरे पूर्व पति के मित्रों ने लिए मेरे तलाक का अर्थ था मेरा अत्यन्त बोल्ड होना, अतः जहाँ वे पहले दो गज दूर खड़े होकर बातें करते थे, वहाँ वे अब किसी भी भावात्मक बहाव में बिना कन्धे पर हाथ रखें बात नहीं करते। मुझे दो नौकरियाँ इसलिए छोड़नी पड़ी कि वहाँ मेरे तलाक को लेकर खुसफुसाहट होने लगी थी। होस्टल में भी मात्र मिस या मिसेज को स्थान मिलता है तलाकशुदा बताने पर लोगों की आँखें फट जाती हैं। नारी स्वतन्त्रता, नारी समानता, महिला वर्ष सब थोथे नारे हैं। जिस समाज में अकेली औरत की परिभाषा कुलटा या चरित्रहीन होना है वहाँ तलाकशुदा को सहज व्यक्ति के रूप में मान्यता मिलना या प्राप्त करना अति दुर्लभ है। उन्होंने यह भी कहा था कि 'मुझे यह भी महसूस हुआ कि जिन मानसिक आघातों की पीड़ा से छुटकारा पाने और जिन्दगी को एक बार व्यवस्थित ढंग से जी लेने की आकांक्षा को नया रास्ता देने के लिए जद्दोजहद की थी जो विद्रोह किया था उसका फल बड़ा डरावना निकला है। मानसिक त्रासदी कहीं और अधिक बढ़ गयी क्योंकि तब लड़ाई एक व्यक्ति से प्रति थी जबकि अब पूरे समाज के साथ। अब क्या करती, जब चारों तरफ ढले भिंची मुट्ठियाँ अपनी तरफ तनी पायीं। परिणामतः उन्हें एक महीने तक एक स्वास्थ्य सुधार गृह में मोग क्रियाओं द्वारा मानसिक संतुलन प्राप्त करने के लिए भी रहना पड़ा था। इसके विपरीत मनमोहिनी गुप्ता ने कहा था, यह भी गलत आरोप है कि बदली हुई परिस्थितियों के मुकाबले समाज की सामूहिक चेतना में तब्दीली नहीं आयी है। प्रतिशत कम ज्यादा हो सकता है मगर बदलाव तो नकारा नहीं जा सकता।' इसके साथ ही उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय तेंदुलकर के सर्वथा विपरीत यह भी उत्तर दिया था मुझे अपने पति से अलग हुए इतना अरसा (चार साल) हो गया है पर यह कतई महसूस नहीं हुआ कि लोग मुझे इसीलिए उपलब्ध समझते हैं कि मैं तलाकशुदा हूँ और अकेली हूँ। यह तो उन्होंने भी स्वीकार किया था कि हमारे देश में तलाक को एक असामान्य कृत्य समझा जाता है और हम अपनी ही मानसिक विकृतियों की त्रासदी को आदतन बिछाते रहते हैं[1]—तो भी इन दो वर्गों की नारियों के तलाकशुदा जीवन का यह अंतर उल्लेखनीय है कि मनमोहिनी

1 'नवभारत टाइम्स' 18 नवम्बर, 1979, पृ० 4

गुप्ता स्वतत्र रूप म जीने के निश्चय और उसकी गरिमा बनाये रखने के सकल्प पर दढ थी जबकि तेंदुलकर ने थोडे ही दिनो के अत्यधिक कषैले जीवनानुभवो से परेशान होकर उन दो हाथो को थाम लेने की ललक व्यक्त की थी जिन्होंने उन्ही के शब्दो म *ढले भिची मुठियो के बीच दो हाथ सहारे को भी आगे बढ आये,* और मुझे न व्यतीत के अधरे स जोडा न चर्चित वतमान के फिकरो से आंका मुझ मेरी तरह से भी नही अपनी तरफ से समझा परखा था' ।

सम्पन्न वग की ऊची सवाओ म कायरत महिलाओं द्वारा तलाक होने पर राहत की सांस लेने की मनोदशा दिनेश नदिनी की भी कविताओ क दो उद्धरणों मे व्यजित हुई है । उन्होंने अपनी लाश शीषक कविता म किसी पत्नी स कह लवाया है कि अपनी कुमारी अभिलाषाओं की लाश के साथ वह भी लाश बन गयी है मैं भी लाश से चिपक कर/एक चलती फिरती/लाश हो गया हू ।'[2] कदाचित् यह जीवित लाश ही एक अन्य कविता म तलाक हो जाने पर राहत की सांस लती चित्रित की गयी है *'अच्छा हो हुआ कि/मोहमत्सर के/महासमुद्र मे डूबकर/एक दूसरे स/अलग हो गये हम/सिसकते हुए पच प्राणा म/लिपटे हुए/विषय विकारों के सप/विरक्ति के नेवलो द्वारा नष्ट कर दिए गये।'*[3] जगदीश चतुर्वेदी क अनुसार आधुनिक काल का प्रत्येक पति और पत्नी एक दूसरे को घणा करते हुए या तो जहर देना चाहता है या तलाक लेना चाहता है ।[4] उन्होंने इस स्थिति से छुटकारे का अपनी ओर से यह विचित्र समाधान भी सुझाया है काश हर मद मे दिमाग न होता/पर वफादारी और सभोग की शक्ति कुत्त जैसी होती/तो न बिगडते घर/न होते तलाक ।'[5] सामान्यत तलाक की यत्रणा पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियों को ही अधिक प्रताडित करती है किन्तु प्रभाकर माचवे ने चाहे आत्मा क प्रतीक द्वारा ही सही 'ओ मेरी *आत्मा/मेरी तलाक दी हुई प्रियतमा निजता'*—इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि तलाक देने वाले पुरुष भी यदा कदा इस आत्मालोचन के शिकार होते हैं कि मैं कापुरुष हू पुसत्व हीन हू ।[6] कहना न होगा कि सम्प्रति सामाजिक दष्टिकोण मे इतना परिवतन तो आ ही गया है कि चारित्रिक अधःपतन के लिए मात्र स्त्रियाँ ही दोषी नही समझी जाती और उन पतियो को भी अच्छी दृष्टि से नही देखा जाता जो अपनी पत्नियो का परित्याग कर देते हैं ।

(2) विधवा विवाह तथा विधवाओ की दशा सुधारने सम्बन्धी चेतना

विधवाओ की दशा सुधारने के आदोलन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तराद्ध म ही

---

1 नवभारत टाइम्स' 18 नवम्बर 1979 पृ० 4

2 3 इति प० 67, 73

4 5 'इतिहास हन्ता , पृ० 37 60 6 'मेपल प० 6

आरभ हो चुके थे अत बीसवी शती के आरभिक दो तीन दशको मे तत्सम्ब धी कविताएँ अधिक लिखी गयी हैं। मध्यवर्ती अ तराल के पश्चात स्वातन्त्र्योत्तर काल मे चीन और पाक स हुए सघर्षों के कारण सनिक विधवाओ के पुर्नविवाह के सदभ मे कवियो ने पुन अधिक मात्रा मे उदगार यक्त किय हैं। सती प्रथा ब द हो जाने पर विधवाओ म उन बाल विधवाओ की सख्या तीव्र गति से बढने लगी जो या तो अनमेल विवाह अर्थात वद्ध पति के काल कवलित हो जाने के कारण अपनी पहाड जसी युवावस्था को समाज द्वारा निर्धारित भोग विमुख एव तपो त्यागमय सयमित रूप म यतीत करने म असमर्थ थी अथवा बाल विवाह की कुप्रथा के फलस्वरूप परिवारजनो के मुख से सुनकर ही इस तथ्य का ज्ञान प्राप्त कर पाती थी कि उनकी अबोध अवस्था मे कभी उनका विवाह हुआ था और अब वे विधवाएँ हैं जिससे उनका किसी भी प्रकार के शृगार अथवा भोग विलास का अधिकार नही है। इन विधवाओ को जो पति को खा जाने वाली के रूप म प्रता डित की जाती रहती थी उनके श्वसुर गह के लोगो द्वारा तीथ स्थानो मे छोड आने की भी प्रथा थी जहाँ स वे वेश्याओ के दलालो अथवा विधर्मियो (ईसाई और मुसलमानो) के चगुल म फसकर हि दू धम के मुख पर कालिख पोतती रहती थी। ऐसी दशा मे आयसमाजी विचारधारा से अनुप्राणित कवियो ने विशेषत तथा उदारमना सनातन धर्मावलम्बी कवियो ने सामा यत विधवाओ के पुन विवाह तथा उनकी अ य प्रकार से सामाजिक दशा सुधारने सम्ब धी उद्गार व्यक्त किय हैं।

बाल विवाह वद्ध विवाह और अनमेल विवाहो का तीव्र विरोध करने की भाँति ही विधवाओ की दशा सुधारने सम्ब धी उदगार भी सर्वाधिक मात्रा मे नाथूराम शर्मा शकर, और हरिऔध ने यक्त किये हैं। 'शकर ने तो इस सदभ में गभ रडा रहस्य नामक लघु कृति ही लिख डाली थी, जिसस विधवा विवाह के विरोधियो की कुभकर्णी निद्रा भग हो सके। उ होने विधवा विवाह के विरोधियो को हेकड धम शत्रु कहकर धिक्कारते हुए कहा था— हाय वचियया पे रखत हैं विधवापन का भार/धम शत्रु हेकड पचो के हटें न नीच विचार।'[1] उ होने पुरुष वग का ध्यान इस ओर भी आकृष्ट किया था कि जब पुरुषो को वद्धावस्था म भी विवाह करने का अधिकार है जब अपनी कामवासना की परितुष्टि हेतु गलित पलिताग साठ साला बुडढा नयी नवेली दुलहिन ले आता है तो फिर अल्पवयस्का विधवाओ स यह अपेक्षा कसे की जा सकती है कि वे पचामत का अनुपान करते हुए सात्विक जीवन यतीत करती रह? उ होने विधवाओ

---

1 शकर सवस्व', पृ० 219 268

2 आप अनेक विवाह बुढापे तक करते हैं/धार-धार सिर मौर नयी बरनी वरते

के जारों के चक्कर मे फँसकर गर्भ गिराते रहने की ओर भी समाज का ध्यान आकृष्ट किया था।[1]

बाल विवाह के फलस्वरूप असमय ही विधवा हुई बाल विधवाओं की दशा सुधारने के सम्बन्ध में आर्यसमाज द्वारा अक्षत योनि विधवाओं के पुनर्विवाह तथा सतानार्थी विधवाओं द्वारा दिवगत पति के अनुजादि से नियोग पद्धति द्वारा दो एक सन्तान उत्पन्न कराने की महाभारतकालीन प्रथा का पुनरुत्थान करने का समर्थन किया था। शकर ने बालक उपजैगे नियोग की अब न रुकेगी राह/अक्षत योनि बाल विधवा ■ अवस करूंगा ब्याह के रूप में इन प्रथाओं का समर्थन किया है। कट्टर सनातनधर्मियों द्वारा इन दोनों ही प्रथाओं का विरोध किया जा रहा था जिन्हें शकर ने बुरी तरह आड़े हाथों लेते हुए उनको इस दृष्टि से पिशाच और उनके धर्म को छिनाला' कहा है कि वे विधवाओं का रंडी बन जाना या अधूरे गर्भ गिराना तो सहन कर लेते हैं किन्तु उन्हें पुनर्विवाह की अनुमति नहीं देते।[3] *शकर के उदगार कबीर जैसी अक्खड़ और लट्ठमार शैली में व्यक्त हुए हैं अतः इनसे निश्चय ही सनातन धर्मावलम्बियों में विधवाओं के प्रति* सवेदना जाग्रत होने के स्थान पर विरोध भाव ही जाग्रत हुआ होगा। इसके विपरीत हरिऔध ने खरी खोटी सुनाने के स्थान पर हिन्दू धर्म की दुखती रगों को छूकर उपयुक्त वातावरण निर्मित करने की चेष्टा की है। उनका यह कथन तो शकर जैसा ही है कि मन चाहे मास चावा करें औरतें पीती रहेगी माड़ ही/क्यो न रडुए ब्याह कर लें बोमियों पर रहेगी रॉड सब दिन रॉड ही।[4] हाँ उन्होंने समाज का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकृष्ट किया है कि विधवाओं को तीर्थ स्थानों में छोडना तीर्थस्थलों को नापाक बनाना है। उनका तर्क है कि सुधर चरित्र की विधवाएं तो घर पर ही तीर्थ बना सकती हैं। जहाँ तक दुश्चरित्राओं का

हैं/पर विधवा आजन्म दूसरा वर न वरेगी/कर पचामृत पान पुण्य से पेट भरेगी।' गभरडा रहस्य की भूमिका

1 "विधवा रिस रोक रो रही हैं लाखों कुल कानि खो रही हैं।
जारो के गर्भ गिराती हैं जनती हैं और मारती हैं।'

शकर सर्वस्व, पृ० 268

2 'अनुराग रत्न, पृ० 270

3 "अक्षत योनि अनेक बालिका विधवा होती हैं/पामर पडित पच पिशाचो को सब रोती हैं। × × × रडा मदन विलास वकीलों को दिखलाती हैं/ करती है व्यभिचार अधूरे गर्भ गिराती हैं/अछूता धर्म छिनाला है।'

अनुराग रत्न, पृ० 304

4 चुभते चौपदे, पृ० 151, 153

सम्बन्ध है उनके विषय म इस तथ्य को विस्मत नही करना चाहिए कि जो हमी रखें न उसका पाकपन/पाक तीरथ क्यो न तो नापाक हो ?[1] उनका सर्वाधिक प्रभावशाली तक यह था कि हमारी विधवाएँ मुसलमानो और ईसाइयो द्वारा अपनायी जाकर उनकी आँखों के तारो को ज म दे रही हैं। कल्पना की जा सकती है कि उनके इस अमोघास्त्र ने निश्चय ही कट्टर सनातनधर्मियो के भी गढ़ का भेदा होगा—

'गोद म ईसाइयत इसलाम की बेटियाँ बहुएँ लिटाकर हम लटे।
आह ! घाटा पर हम घाटा हुआ मान वेन्दो का घटाकर हम घटे।'[2]

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किसी विधवा के मुख से कहलाया है कि मुझ रूखा सूखा और जूठा अन्न खाना पडता है चडालिनी की तरह मुह ढककर बाहर निकलना पडता है तथा मेरा दुर्भाग्य देखिये कि मुझे अहर्निशि परिवार जनो की गालियाँ भी सहन करनी पडती हैं।[4] म० श० गुप्त ने यद्यपि यह धारणा व्यक्त की है कि विधवाओं का विवाह किया जाना कोई ऊचा आदश नही है तो भी इस तथ्य को दष्टिगत करते हुए कि परुष बूढ़े होकर भी विषयासक्ति के कारण विवाह-पर विवाह करत जाते हैं यही तथ्य उत्तम प्रतीत होता है कि दुराचार और व्यभिचार को मिटाने की दष्टि से विधवाओ के पुनर्विवाह को स्वीकृति प्रदान कर दी जाए।

अन्य कविता म निराला ने भारतीय विधवाओं की दयनीय दशा को मदिर म जलती शात दीप शिखा सा पावन और व्यथापूर्ण तरु स विच्छिन्न लता सा एकाकी और दयनीय तथा काल के कर ताडव नत्य के स्मृति लख जैसा हृदय द्रावक बताकर उनकी दशा सुधारे जाने के प्रति संवेदना जाग्रत करने का प्रयास किया है।[6] पत न विधवा परित्यक्ता वध्या और अनाथ नारियो पर किये जाने वाले

1 'चुभते चौपदे' प० 151, 154
2 आज वेवा हिन्दुओं की दीन बन दूसरो के हाथ में हैं पड रहीं।
जन रही हैं आँख का तारा वही, जा हमारी आँख म गड रही।',
वही प० 152
3 वही प० 153
4 'उच्छिष्ट रूप अरु नीरस अन्न खहो चडालिनीव मुख बाहर मूदि जहो। गालि प्रदान निशिवासर नित्य पहो, हा ह त ! दु खमय जीवन या वितहों।'
द्विवेदी काव्यमाला प० 113 14
5 'विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं उच्च आदर्श निबाह/पर उसस अच्छा सौ बार, जो है दुराचार व्यभिचार। हिन्दू, पृ० 63
6 परिमल, प० 88 89

अत्याचारों को कूप मडूकता का प्रतीक बताते हुए इस तथ्य को रेखांकित किया है, 'कठिन भू पर विधवा का धर्म त्याग, जप तप संयम उपवास' तथा कठिन जप तप संयम में लीन रहते हुए विधवाओं द्वारा अपनी इन्द्रियों को जीतकर, 'नित्य परिजन सेवा में लीन' रहना अत्यधिक दुष्कर कर्म है।[1] उन्होंने यह प्रश्न भी उठाया है कि विधवा को बद्ध देह अर्पित समाज को और मुक्त हृदय मन प्रभु का भाजन की नीति का क्यों पालन करना चाहिए? इसके साथ ही उन्होंने किसी विधवा को यह संकल्प करते भी चित्रित किया है कि जड़ समाज को, वह क्यों बेचे बलि पशु सा तन?' और वह 'जन जन का होगा उसका मन का संकल्प लेकर समाज सेविका बनने का निश्चय कर लेती है।[2] ज० प्र० मिलिन्द ने भी श्यामा नामक ब्राह्मण वंशीय विधवा को दलित शोषित वर्गों की सेवा का पथ अपनाते दिखाया है क्योंकि जिस व्यक्ति के साथ वह पुनर्विवाह करना चाहती थी 'उसमें साहस न था क्रांति का।' [3] यह क्रांति विधवा के साथ विवाह कर लेना ही थी। जबरनाथ पुरोहित ने तो ललकार रही विधवा नारी शापक से किसी विधवा के उद्गार व्यक्त कराते हुए 'हैं ठकेदार धर्म के ये जो हैं समाज के भी नेता' के रूप में इन धर्म और राजनीति के ठकेदारों से यह प्रश्न कराया है कि आप लोग तो अपनी काम पिपासा शान्त करने हेतु इधर उधर चक्कर लगाते फिरते हैं फिर विधवा को सच्चे प्रेम का भी अधिकार क्यों नहीं देते? कवि ने इस परिणत चेतना को भी मुखरित किया है कि अब जनता ना धोखा खायेगी/अब छोड़ अंधविश्वास आज, अपना पथ आप बनाएगी।[4] कहना न होगा कि अभी तक शिक्षित वर्ग में भी कम लोग ही ऐसे हैं जो विधवा विवाह को पाप समझने के अंधविश्वास से मुक्त हैं। रांगेय राघव ने विधवा का सूना जीवन तन की राख[6] बन रहने की स्थिति को उभारा है तो एक अन्य कवि ने उनके घुटनपूर्ण जीवन में उनके इन्द्रियों के दमन के सूख जाने का उल्लेख करते हुए कहा है फिर हाड मांस का/यह हृदयहीन ढांचा/इधर उधर/डोलता है बोलता है/आहो और सुप्त/व्यथाओं की कथा।[5]

विधवाओं की दशा सुधारने की दिशा में संवेदनापूर्ण वातावरण के निर्माण में उन विधवाओं की दयनीय स्थिति का भी महत्वपूर्ण हाथ रहा है जिनके पति या तो स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में आंग्ल शासन के दमन चक्र का शिकार हो गये थे अथवा जिनके स्वामियों ने पाकिस्तान और चीन से हुये युद्धों में वीरगति

---

1 2 लोकायतन पृ० 317 67
3, स्वतन्त्रता की बलिवेदी पृ० 14 5 समर्पण, पृ० 27 28
4 मेघाश्री पृ० 243
5 पकाधान मानिक बच्छावत पृ० 62

प्राप्त की है। ज० प्र० मिलिन्द की सन् 1945 की लिखी कविता म किसी क्रान्तिकारी की विधवा-पत्नी के प्रति 'अखिल राष्ट्र का तुमको नमन' जसे श्रद्धापरक उद्गार व्यक्त किये गये हैं। कवि ने उसको महिमामयी तथा आदर्शों के ज्योति-पुज की ऐसी शुभ्र रेखा कहा है जिसने अपना जीवन-सवस्व मात-मन्दिर म भेंट चढ़ा दिया है। हा कवि ने उसके पुनर्विवाह का समथन नही किया है अपितु सुयोग्य पति की सुयोग्य जीवन-सहचरी होने के प्रमाण-स्वरूप उससे अपना जीवन भी प्रिय के प्यारे उसी लक्ष्य के हित उत्सर्ग कर देने की कामना व्यक्त की है।[1] रघुवीरशरण मित्र ने किसी स्वाधीनता-सेनानी को फांसी का फदा चूमने से पूव स्व-पत्नी को यह परामश देते चित्रित किया है कि वह उसकी चिता भस्म का काजल आंजा कर, भस्म म रक्त मिलाकर उसका सिंदूर के रूप म प्रयोग किया करे, तथा उसकी अस्थियो के फूलो की माला धारण करके, किसी सधवा जैसी ही गर्वानुभूति किया करे।[2]

देश रक्षाथ युद्ध म शहीद हुए सनिको की विधवाओ के सन्दभ म नरेन्द्र शर्मा ने 'मन्दिर की प्रतिमा है या करुणा की कविता/किसी दिवगत सनिक की वह विधवा जाया' जस संवेदना-परक उद्गार व्यक्त किये हैं। सातवें दशक म चीन और पाक से हुए युद्धो के उपरान्त सनिक विधवाओ के सामूहिक पुनलग्नो के समाचार प्रकाशित हुए थे। सनिक विधवाओ को सिलाई या बुनाई की मशीन आदि ऐसे उपकरण भी प्रदान किये जाते रहे हैं जिनके माध्यम से वे अपना जीविकाजन कर सकें। उक्त सामूहिक पुनलग्नो के सम्बन्ध म अधिक सभावना यह है कि उनम कदाचित ब्राह्मण और क्षत्रिय जाति की विधवाएँ कम ही सम्मिलित रही होगी, क्योकि ये दोनो तथाकथित अत्युच्च जातियाँ ही विधवा विवाह का विरोध करती रही हैं जबकि अन्य जातियो म तो विधवा विवाह यत्किंचित रूप म पहले से ही प्रचलित रहा है। रमेशचद्र मिश्र ने इन सनिक विधवाओ को समाज के सम्मुख प्रश्न चिह्न के रूप म प्रस्तुत करते हुए पुनलग्न सम्बन्धी धार्मिक मान्यताओ म युगानुकूल परिवतन कर देने की आवश्यकता पर बल दिया है। कवि का प्रथम तक तो यह रहा है कि उन नारियो को दमहीना के स्थान पर ऊर्जस्विनी महिलाएँ कहा जाना चाहिए जिनके स्वामियो ने देश रक्षाथ हुए युद्ध म अपने प्राण न्योछावर किये हैं। यह सत्य है कि सरकार की ओर से उनको मिले भेंट मे ढेरो प्रमाण-

---

1 कतिपय के गीत', पृ० 98 101

2 ले जाकर मेरी भस्मी को उसमे थाडा रुधिर मिलाना
होगा वह सिंदूर तुम्हारा उसको अलको बीच लगाना।
बची हुई भस्मी को पत्नी अजन बना लगा लोचन म
अस्थो के फूलो की माला, गूथ पहिन इठलाना मन म।" परतत्र, पृ० 73

पत्र/मुद्रा-पत्र राज्य से/घनी सवेदनाएँ, स्वराज्य के समाज से, किन्तु जहाँ तक धर्मशास्त्र का सम्बन्ध है वह अब भी इन नारियो को 'दे रहा है मर्यादा विधवा की।' कवि का दूसरा तर्क है कि आधुनिक काल बुद्धिवादी युग है अत बौद्धिकता का तकाजा यह है कि जिस नारी का पति युद्ध म वीरगति प्राप्त करे उसको सधवा कहा जाना चाहिए। उसने यह तर्क भी दिया है कि सम्प्रति मध्ययुगीन जौहर प्रथा (तथा सती प्रथा भी) समाप्त हो चुकी है, अत न तो ये विधवाएँ पति की मृत्यु होने पर चितारोहण कर सकती है और न तलवार की धार पर चलने जैसे सयमित जीवन-यापन को अपना सकती हैं। अत या तो इन युद्धो के कारण असमय ही वधव्य भोगने वाली नारियो के पुनलग्न के सम्बन्ध मे धर्माचार्यों को युगानुकूल नवीन व्यवस्था करनी चाहिए, अन्यथा इन युद्ध विधवाओ, को नये युग की नागरिकाओ अर्थात नगर वधुओ की क्रूर नियति भोगनी पडेगी।[1]

(ज) नारी जीवन विषयक सक्रातिमयी चेतना

आधुनिक काव्य मे नारियो की दशा मे सुधार, उनकी जागृति सतीत्व या पातिव्रत्य मुक्त प्रेम, विवाहेतर यौन-सम्बन्ध वेश्या-वृत्ति आदि नारी जीवन से घनिष्ठ रूप मे सम्बन्धित तथ्यो के विषय मे एक प्रकार से सक्रातिमयी चेतना की व्यजना हुई है। राष्टीय-सास्कृतिक काव्यधारा से सम्बन्धित कवियो ने पौराणिक काल्पनिक नारी-पात्रा के चरित्र का महिमान्वित अकन करके आधुनिक काल की नारियो को पुरातन नारी आदर्शों को अपनाने की ओर प्रेरित करने का प्रयास किया है। कवियो द्वारा एक ओर तो आधुनिक कालीन नारियो क जीवनादर्शों मे पर्याप्त अतर आ जाने के प्रति खेद व्यक्त किया गया है, तो अधिसख्य कवियो ने उनकी जीवन-दशा को सुधारने और उन्हे पुरुषो जसे अधिकार दिये जाने पर भी बल दिया है। कवियो ने जहाँ नारी जागृति और समानाधिकारो का समर्थन किया है वही उन्होंने उसके 'माड' रूप की तीव्र निन्दा भी की है। इसी प्रकार बलात्कार की शिकार अथवा किसी विवशतावश शरीर बेचने वाली काल-भाल तथा वेश्याओ के प्रति सहानुभूतिपरक उद्गार व्यक्त किये गये हैं। कवियो की इस परिणत अथवा नवीन चेतना पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) परम्परागत नारी-आदर्शों के विलुप्तीकरण क प्रति रोष

अपेक्षाकृत परम्परा प्रेमी कवियो ने इस दृष्टि से गहन विषाद और रोष व्यक्त किया है कि आधुनिक काल की नारी अपने परम्परागत उच्चादर्शों को तिलाजलि

---

1 बुद्धि-युग की सधवा—पाये वीरगति जिसका पति/कसे वह मात्र विधवा ? प्रश्न यह युग के यथार्थ का। ' 'टेनी मेढ़ी सीढ़ियाँ', सव०, पृ० 64 65

देकर पाश्चात्य सभ्यता के रग मे रँगती जा रही है। र० श० केलकर ने खेदपूर्वक कहा है 'सीता, सावित्री, अनुसूया गाधारी/वह पूर्वापर नारी हो गई लोप/विधि का प्रकोप/रह गया यह क्काल नारी का/विकृत है दीप्य रूप, कृत्रिमता मे अनूप/पाश्चात्य ग्रसित नारीत्व आज/है विकल खोजता विलास/ × × ×सेवा-प्रेम सहनशीलता, थी क्षमता-नारी थी/बन गयी वस्तु विक्रय की कचन विनिमय की/लिप्सा, द्वेष, कलह, कामुकता प्रज्वलित आज नारी म/नतिकता ! वह है स्वप्न एक ।'[1] रामकुमार चतुर्वेदी,[2] राजेश दीक्षित,[3] और बाबूराम पालीवाल,[4] आदि कवियो ने भी प्राय इसी प्रकार के उद्गार व्यक्त करते हुए आधुनिक नारियो से यह आग्रह किया है कि वे अपनी महान् पूवजाओ के आदर्शों को अपनाने की चेष्टा करें।

(ii) नारी दशा के सुधार तथा जागति पर बल

कहने को तो प्राचीन वाङ्मय से ऐसी अनेक उक्तियाँ उदधत की जाती रहती हैं जिनके आधार पर यह सिद्ध किया जाता है कि प्राचीन काल मे नारियो की बडी समुन्नत दशा थी किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि अपवादस्वरूप कुछ नारियो के विदुषी या उनकी सम्मान्य स्थिति होने के अतिरिक्त, आधुनिक काल से पूर्व नारियो का बहदश समाज की उपेक्षा अनादर, शोषण, यातनाओ और निन्दा का ही पात्र बना रहा है। ऐसा भी नही है कि मात्र भारत मे ही नारियो की अधोदशा रही हो अपितु विश्व के प्राय प्रत्येक देश और प्रत्येक धम मे या तो नारियो को भोग की वस्तु समझा जाता था अथवा आत्मोन्नति मे बाधा डालने वाली माया या शैतान की सहधर्मिणी। ब्राह्मण धम म नारियो की गणना शूद्रो के साथ करते हुए उन्हें वेदाध्ययन के अधिकार से वचित किया गया। जन धम मे स्त्री के उद्धार के लिए यह आवश्यक माना गया कि पहले वह सत्कर्मों द्वारा पुरुष-योनि म जन्म ग्रहण करे तब कही जाकर उसका उद्धार हो सकता है। बौद्ध धम-सघ म गौतम बुद्ध ने नारियो को स्थान दिया तो था किन्तु इस टिप्पणी के साथ कि पाँच हजार वष चलने वाला बौद्ध धम अब मात्र पाच सौ वष ही चल पायेगा। ईसाई सतो न तो नारी की निन्दा भारतीय सतो से भी बढकर की है। सेंट आगस्टाइन का मत था कि समवत ईश्वर ने नारी की रचना इसलिए की है कि अकेला शतान मनुष्य को स्वग से पतित करने के लिए बहकाने मे असमथ था।[5] सेंट बड ने अपनी माता को एक पत्र मे लिखा था कि तुम पापिन हो और तुमने मुझे पाप से जन्म दिया है।[6] साइमन द बुआ ने नारियो की अधोदशा के सदभ में

1-4 'नारी तेरे रूप अनेक', सक० पृ० 207, 245, 246, 266

5 6 नारी और समाज', चिरजीलाल पाराशर, पृ० 319, 325

इस घटना का सर्वाधिक हाथ दिखाया है कि माता होते हुए भी मरियम ने अपने पुत्र ईसा मसीह के सम्मुख झुककर, उनसे यह प्राथना की थी कि मैं लार्ड की दासी हूँ। बुआ ने बडे खेदपूवक कहा है कि मानवता के इतिहास मे यह प्रथम घटना थी, जब कोई जननी अपने पुत्र के सम्मुख इस प्रकार अवनत हुई थी।[1] भारत की मध्ययुगीन सस्कृति म भी एक ओर तो कबीर और दरिया जसे सत उसे नारी बडा विकार' अथवा असिउ बरस की बुढिया दरिया ना पतियाय के रूप म निंद्य घोषित करते रहे तो सामती वातावरण मे उसे मात्र भोग का साधन समझा जाता रहा। रीतिकालीन कवियो ने नायिका भद के रूप मे स्त्रियो का ऐसा गर्हित रूप मे चित्रण किया है कि प्रत्येक नारी कौन गने पुर बन नगर कामिनि एकै रीति/देखत हरैं विवेक को चित्त हर करि प्रीति' की उक्ति चरिताथ करते प्रतीत होती है। अभिप्राय यह है कि आधुनिक काल से पूव नारियो के इस रूप का चित्रण प्राय नही ही हुआ है कि समाज निर्माण की दिशा मे नारी जाति भी महत्वपूण योगदान कर सकती है उसकी दशा सुधारने की आवश्यकता है, अथवा उसे पुरुषो जसे अधिकार दिये जाने चाहिए। ऐसी दशा मे आधुनिक काल के अधिसख्य कवियो द्वारा नारियो की दशा सुधारने और उनकी जागति का समथन करने की चेतना का महत्व स्वयसिद्ध है।

मथिलीशरण गुप्त ने समाज का ध्यान इस विसगति की ओर आकृष्ट किया है कि पुरुषो द्वारा रचित धमशास्त्रीय ग्रन्थो मे भेदभाव पूण नीति का आश्रय लेते हुए अपने लिए सभी सुविधाओ का तथा नारियो के लिए अनेकानेक बधनो का प्रावधान रखा गया है।[2] इसी प्रकार उन्होने नारी निकले तो असती है नर यती कहाकर चल निकले की विसगति को उभारते हुए विषादपूवक कहा है कि अनादर और अविश्वास द्वारा प्रपीडित अभागिन अबला, आत्महत्या कर लेने के अतिरिक्त कुछ भी नही कर पाती।[3] उसके जीवन की सक्षिप्त परिभाषा ही यह है कि उसके आँचल मे है दूध और आँखो मे पानी[4] अर्थात वह पति और समाज द्वारा सताई जाने पर भी रोते धोते जीवन व्यतीत करते हुए अपने स्तन्य द्वारा सतान का भरण-पोषण करती रहती है अपत्य प्रेम के कारण आत्म-हत्या भी नही कर

---

1 द सेकण्ड सेक्स, साइमन द बुआ, पृ० 207

2 'नरकृत शास्त्रो के सब बधन है नारी को ही लेकर,/अपने लिए सभी सुविधाए पहले ही कर बठे नर।' पचवटी, पृ० 32

3 'हा! अबला ओ अरी अनादर अविश्वास की मारी/मर तो सकती है अभागिनी कर न सके कुछ नारी।" 'द्वापर पृ० 32

4 अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी/आँचल म है दूध और आँखो म पानी।' यशोधरा पृ० 69

पाती । प्रसाद जी ने मनु की इस दृष्टि से भर्त्सना करायी है कि वे पुरुषत्व के मोह और दर्प में इस तथ्य की अवहेलना करते हैं कि नारी की भी सत्ता उपेक्षणीय नहीं है तथा 'समरसता है सम्बन्ध बनी, अधिकार और अधिकारी की' के सिद्धातानुकूल उन्हें उसके साथ सामरस्यपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। मार्क्सवादी चिन्तन से अनुप्रेरित युगवाणी और ग्राम्या शीर्षक कृतियों में नारी-उद्धार का सर्वाधिक प्रबल समर्थन कवि पंत ने किया है। युगवाणी में उन्होंने 'मुक्त करो नारी को, मानव/चिर वन्दिनि नारी को/युग-युग की बर्बर कारा से जननि सखी प्यारी को'[1] का आह्वान किया है। उन्होंने इन तथ्यों पर भी बल दिया है कि अब नारी को मानवी का गौरव दिया जाना चाहिए क्योंकि 'युग-युग से अवगुंठित गहिणा' द्वारा पशुवत बंधनों को सहन करते रहने के कारण 'नष्ट हो गयी उसकी आत्मा' जबकि मात्र 'त्वचा रह गयी पावन।'[2] नारी को पुरुषवत अधिकार और महत्त्व दिये जाने के तथ्य को रेखांकित करते हुए पंत ने कहा है कि अभी तक हुआ यह है कि पुरुष-वर्ग द्वारा क्षुधा और काम से प्रेरित होकर जैसे जीवन के अन्य उपकरणों पर अधिकार किया गया था उसी प्रकार उसने 'नारी भी कर ली अधिकृत'।[3] इसी कारण, 'करती वह जीवन यापन, युग-युग से पशु सी पालित।' ग्राम्या में भी उन्होंने इस स्थिति का तीव्र प्रतिवाद किया है कि नारी पुरुष के 'भोग की पुतली बना ली गयी है' 'वह नर की लालस प्रतिमा शोभा सज्जा से निर्मित है।'[4] उन्होंने इन तथ्यों का भी विरोध किया है कि 'उसका जीवन मान, मान पर नर के है अवलंबित' तथा 'दृष्टि स्पर्श सना से वह हो जाती सहज कलंकित।' उन्होंने बलपूर्वक इस तथ्य को उभारा है कि नारी 'योनि' मात्र न होकर 'मानवी' समझी जानी चाहिए अतः 'उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित'।[5] पंत ने शंखध्वनि में इस तथ्य का बड़े उल्लासपूर्वक उल्लेख किया है कि आधुनिक नारी घर की देहरी को लाँघकर शिक्षा, राजनीति, प्रशासन, वाहन चालन, पर्वतारोहण, सैनिक सेवा, आदि सभी क्षेत्रों में पुरुषों की समता प्राप्त कर चुकी है। उनका तर्क है कि सामाजिक निर्माण के क्षेत्र में नारियों के बहुआयामीय योगदान के परिप्रेक्ष्य में नारियों को अबला के स्थान पर अब सबला कहा जाना चाहिए।[6] एक अन्य कवि ने भी इस तथ्य का उल्लेख किया है कि आधुनिक काल की नारी डाक्टर, वकील, डिप्टी-कलेक्टर, प्रोफेसर, लेखक, मिनिस्टर आदि उन सभी पदों पर प्रतिष्ठित है, जो पहले कभी पुरुष-वर्ग की ही बपौती समझे जाते थे।[7]

1-3 युगवाणी' पृ० 64, 64, 65 4 5 'ग्राम्या पृ० 85, 85
6 शंखध्वनि' पृ० 43
7 'आज डाक्टर है वकील है डिप्टी और कलक्टर भी है/प्रोफेसर है लेखक है सम्पादक और मिनिस्टर भी है।' नारी तेरे रूप अनेक', सक० योगे० 'लल्ला, पृ० 386

नारियों सम्बन्धी परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण ही पंत ने सीता के परित्याग की घटना का 'पर संस्कृति में सहती अबला, कब से ईर्ष्या कुत्सा, पीडन' के रूप में उल्लेख करते हुए, उसे सुनकर मन के सिहर उठने का भाव व्यक्त किया है।[1] दिनकर ने तो इस घटना के संदर्भ में अपना आक्रोश 'सूखो सरयू साकेत भस्म हो रानी' के रूप में व्यक्त करते हुए मार्मिक भाव से कहा है कि तुम न जाने 'किस अशुभ लगन में' उत्पन्न हुई थी ?[2] दिनकर ने इस विसंगति को भी उभारा है कि भविष्य-वक्ता पुरुषों को तो हम ईश्वर के अवतारों के रूप में पूजा करते हैं जबकि भविष्य-कथन करने वाली नारियों को डाइन बताकर दण्ड देते हैं।[3] 'नीरज' ने नारी निन्दकों की पाखंडी कामुक कायर, दुर्बल मन और नरक के कीड़े बताकर भर्त्सना की है [4] और यह भाव व्यक्त किया है कि नारियों द्वारा तिरस्कृत लोगों की प्रेम-असफलता और उनकी कलुषित वासना ही भ्रष्ट होकर मनोग्रंथि बन जाती है। इस मनोग्रंथि से पीड़ित 'ये पण्ड समझते हैं कि हमी कर रहे कला का प्रणयन हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह होती है कि 'रे नहीं अरे यह ललित कला यह तो मल मूत्र विवेचन' मात्र होता है।[5]

जग० प्र० मिलिन्द ने आधुनिक नारी द्वारा परम्पराओं के भंजन के प्रति आह्लाद और समादर व्यक्त करते हुए कहा है 'स्वीकार करो वंदन अभिवंदन कवि का।' उन्होंने आधुनिक नारी की जागरूकता आत्मनिर्भरता आदिक विशेषताओं का बड़ा ही महिमान्वित अंकन करते हुए उसको पुरुष वर्ग की अनुचरी के स्थान पर सहचरी और सूत्रधार दिखाते हुए, उसके मुख से कहलाया है कि मैं "स्वावलम्बी/स्वयपूर्ण/स्वास्फूर्त नारी हूँ नये क्रांतिकारी युग की।' तथा 'एक क्षण को भी/सहन अब न करूंगी मैं/दुष्टता प्रवंचकता, शोषण/छलकपट छद्म/आडंबर/विषमता/दासता अन्याय/××× उस अदृश्य का भी/कहलाता जो ईश्वर/विश्व में विषमता का जहाँ शेष अंश/पदाघात मेरा भी पहुँचेगा।[6] महेन्द्र भटनागर ने सन् 1952 की लिखी 'नई नारी' शीर्षक कविता में यह भाव व्यक्त किया है कि सम्प्रति 'तुम नहीं हो वही युग-युग पुरानी पैर की जूती किसी की/आदमी के/कुछ मनोरंजन समय की वस्तु केवल/××× अब मुक्त कड़ियों से तुम्हारे हाथ

1 लोकायतन', पृ० 65
2 रेणुका' पृ० 42 3 'नये सुभाषित' पृ० 8
4 वे हैं पाखंडी कामुक जिनको स्त्री ने ठुकराया है।
वे लोग नरक के कीड़े हैं, वे कायर हैं दुर्बल मन हैं,
जो नारी पर विष वमन करें, ऐसे भी इस जग में जन हैं।
हम विषपायी जनम के, पृ० 520
5 वही, पृ० 522 6 'नई किरण', पृ० 11

हैं।'[1] नारियों पर विगत-युगो मे किए गए अत्याचारो के प्रति एक प्रकार का पाप-बोध भी पनपा है जिसे भटनागर ने 'देना होगा मूल्य तुम्हारा, पिछले जीवन का ऋण भारी'- के रूप मे अभिव्यक्ति प्रदान की है। नरेन्द्र शर्मा न तो पति और पुत्र शोषित करते हैं, जिनके पुण्य गात्र को[3] के रूप म पति के साथ ही पुत्र द्वारा भी नारी शरीर का शोषण किये जाने का भाव व्यक्त किया है, जिसके परिप्रेक्ष्य म हम कदाचित सारिका' पत्रिका मे किसी लेखक द्वारा व्यक्त किए गए यह विचार स्मृत हो उठते है कि पुरुषो द्वारा नारी का इस रूप म भी शोषण किया जाता रहा है कि वह उससे (कुच-कलशो के रूप म) अपनी सतान के लिए दो मटकी दूध ढुलवाता रहता है। उन्यशकर भट्ट न बीसवी शती के प्रथमार्द्ध म हुई नारी-जागृति की यह कहकर प्रशसा की है कि वह लज्जा का आवरण चीर कर अपनी विमाहित-तद्रिल दशा मे जाग उठी है। उसने मूढ रूढियो की चिलमन भग कर दी है, और 'टूटी इसी प्रकार वद्ध सीमाएँ नारी की/प्राचीन यतिमूलक कलक चीर/आज वह अग बनी/दिश के समाज के विचार के नवीन तार जोडती-सी नस-नस/जीवन शक्टधुरी स्वाभिमान शक्ति की।'[4]

कतिपय कवियो न ग्रामीणाओ तथा श्रमिक महिलाओ की दयनीय दशा को उभारते हुए उनकी दशा सुधारे जाने क तथ्य को रेखाकित किया है। म० श० गुप्त न कृषक-वधुओ की दयनीय दशा पर स्वय दया को ही रोते दिखाते हुए कहा है कि हिम-ताप और वर्षा म अनक प्रकार के कठिन काय करते रहने पर भी वे बेचारी तो भी कदाचित् ही कभी भरपेट पाती अन्न हैं।[5] पत ने ग्रामीण नारियो को चिर द य और अविद्या अधकार स सपीडित दिखाते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि 'वह स्नेह, शील सवा, ममता की मधुर मूर्ति/× × ×कर रही मानवी के अभाव की पूर्ति आज।' इसी आधार पर उन्होंने ग्रामवधुओ को नागरिकाओ की अग्रजा घोषित किया है।[6] दिनकर ने किसी मजदूरनी को स्वग की रानी के रूप म सम्बोधित करते हुए यह व्यथा व्यक्त की है कि 'स्वग की रानी भटकती भूमि पर आह विधि कसा निठुर व्यापार है'[7] तो निराला ने झुलसती हुई लू/रुई ज्यों जलती हुई भू' के अत्यधिक गम झुलसाने वाल वातवरण म गिट्टियाँ तोडती मजदूरनी की आतरिक व्यथा को 'मार खा रोई नही' की साकेतिक उक्ति द्वारा व्यजित किया है।[8] अन्य कवियो म देवराज[9] बच्चन,[10] और भगवतीचरण

---

1 2 'चयनिका' पृ० 147 48, 161
3 'अग्निशस्य', पृ० 65
4 पूर्वापर', पृ० 156
5 'भारत भारती' पृ० 95
6 ग्राम्या पृ० 20 21
7 'प्रणभग', पृ० 61
8 अनामिका', पृ० 81 82
9 'धरती और स्वग, पृ० 57 58
10 'बहुत दिन बीते', पृ० 17 19

वर्मा[1] आदि कवियों ने मजदूर स्त्रियों की दयनीय दशा के सम्बन्ध में संवेदनापरक उद्‌गार व्यक्त किये हैं जबकि रमेशचन्द्र मिश्र ने इस विडम्बनामयी स्थिति की ओर संकेत किया है कि मजदूरनियों के तो 'वत्सल उरोज सूखे रहते हैं' अत उनके बच्चों को पानी या पाउडर के दूध पर निर्भर रहना पड़ता है, जबकि फलों का रस तो/पीते शहरी शिशु/पैन्न होते जो मैटरनिटी लीव में/जिनकी मम्मी पाती हैं पूरी तनख्वाह।'[2]

(iii) आधुनिकाओं की तीव्र निन्दा

आधुनिक काव्य प्रणेताओं ने नारियों को शिक्षा तथा पुरुषों के समान अधिकार दिये जाने आदिक तथ्यों का तो समर्थन किया है, किन्तु नारी के आधुनिका अथवा 'माड' रूप की परम्परावादी कवियों ने ही नहीं, अपितु पत जैसे उन कवियों ने भी तीव्र भर्त्सना की है जिन्होंने नारी-उद्धार का प्रबल समर्थन किया है।[3] उदाहरणार्थ स्वयं पंत ने ही आधुनिकाओं की निन्दा करते हुए कहा है कि तुम्हारे व्यक्तित्व में पुष्पों की तरह खिले रहने, लहरों की तरह इठलाकर चलने, तितलियों की तरह रंग बिरंगी वेष भूषा धारण करने विभिन्न नर-पुष्पों का मकरन्द पान करते फिरने, चिड़िया की तरह चहकते रहने, मार्जारी की तरह मौका पाते ही झपट्टा मारने के तथ्यों का तो समन्वय रहता है किन्तु नारीत्व का सर्वथा अभाव मिलता है।[4] उनके अनुसार आधुनिकाओं के स्वभाव और आचरण में पशुओं जैसी पाशविकता पक्षियों जैसी स्वच्छदता तथा कृत्रिम शृंगार प्रसाधनों जैसी कृत्रिमता का समावेश रहता है। आधुनिकाएँ चूंकि शिक्षित और सुसंस्कृत होती हैं अत युग के सत्याभास अर्थात अर्द्ध-सत्य उन्हें शीघ्र ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं और वे स्वयं को सर्वाधिक पुरुषों की समकक्षिणी समझने लगती हैं। पंत ने स्पष्ट किया है कि आधुनिकाएँ देखने भालने में तो सौंदर्य-माधुर्य और महिमा से मंडित नारियाँ प्रतीत होती हैं, किन्तु जहाँ तक उनके आंतरिक गुणों तथा परम्परागत स्त्रियोचित गुणों का सम्बन्ध है उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि उनमें उनका सर्वथा अभाव होता है 'प्रेम दया, सहृदयता शील, क्षमा, पर-दुख कातरता/तुममें तप संयम, सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता।'[5] गि० कु०

---

1 एक दिन' पृ० 58 59
2 'कब होगा नामकरण' पृ० 19
3 युगवाणी', पृ० 64
4 'तुम सब कुछ हो फूल लहर, तितली विहगी मार्जारी,
आधुनिके तुम नहीं अगर कुछ नहीं सिर्फ तुम नारी।' ग्राम्या, पृ० 83
5 वही, पृ० 83

माथुर ने आधुनिकाओ की अवाध भोग लिप्सा की निन्दा करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि वे विवाह-सूत्र मे इस उद्देश्य स ही बँधती हैं कि उसकी आड मे स्वराचार मे लिप्त रह सकें ।[1] हमारा विचार है कि भारत मे ऐसी नारियो की सख्या नगण्य ही होगी । हमे एक अन्य कवि के यह उदगार वस्तुस्थिति के अधिक निकट प्रतीत होते हैं, जिनमे किसी नौकरीपेशा तथा क्लब जाने वाली आधुनिका को भी अधिकाशतया, पुरातन मान्यताओ का निर्वाह करते चित्रित किया गया है 'आपसे मिलिये/आप आधुनिका है/स्वतन्त्र-व्यक्तित्व रखती है/कलाई की साकल/सोने की चूडी से बदल ली है/दफ्तर मे छ घंटे काम करने के बाद/घर जाकर निर्विरोध/डालिग की चपातियाँ खानसामा होते हुए/स्वय सेंकती हैं/ × × × आधुनिका हैं/क्योकि—/हसबड के साथ/हफ्ते मे दो बार/क्लब हो आती हैं (जहा डियर की ड्रिक्स का साथ) कोक पीकर निभाती हैं/अच्छा-बुरा/(केवल हसबड के साथ) बाल नाच लेती है/उल्टा-सीधा/टिवस्ट कर लेती हैं/अधुनिका/स्वतन्त्र-चेता/पुरुष की बराबर स्वतन्त्र व्यक्तित्व रखने वाली/हर पहली को कुल तन्खा/डियर के हाथ पर रख देन वाली ।'[2] कवि के व्यग्यात्मक स्वर मे स्पष्ट है कि वह ऐसी नारी को आधुनिका नही स्वीकार करना चाहता किन्तु भारत की अधिसख्य नारियो की औसत आधुनिकता सदभगत नारी जैसी ही समझी जानी चाहिए ।

(ङ) सतीत्व तथा एकनिष्ठ प्रेम सम्बन्धी परिणत चेतना

भारतीय नारियाँ अपने सतीत्व या पातिव्रत्य के लिए विश्व विख्यात रही हैं और भारतीय संस्कृति मे नारियो के पातिव्रत्य की एक उच्चादश के रूप मे परिगणना होती रही है । मर्यादा पुरुषोत्तम राम जसे कतिपय आदश पुरुष-पात्रो के अतिरिक्त सतीत्व का यह मानदण्ड प्राय एकपक्षीय ही रहा है और पुरुष वग को एकाधिक नारियो से सम्पर्क की स्वतन्त्रता दी जाती रही है। प्रेम की एक निष्ठता के निर्वाह का सम्बन्ध भी नारी-जाति से ही जोडा जाता है किन्तु आधुनिक काल के नारी-पुरुषो को समानाधिकार दिये जाने के वातावरण मे सतीत्व और एकनिष्ठता का उत्तरदायित्व मात्र नारियो पर ही डाले जाने के तथ्य के समक्ष भी प्रश्नचिह्न लगाया गया है । इसी प्रकार इस तथ्य को भी उभारा गया है कि नारी के तन की पावनता के स्थान पर उसके मन की पावनता ही महत्वपूर्ण

1 "रगी पुती जीन कसी/कमिक्स गध वसी बालदार औरतें/उत्तेजना की नग्न नौ/मासल काम मेशिनी/घर सिफ स्वाँग है/विवाह एक सुविधा है/पति मानपत्नी है/मुक्ति देह तृप्ति/वयक्तिक अधिकार है/सतान श्रुटि है, अपराध है/अब देवी और दानवी/दोनो ही एक हैं ।' 'माध्यम' माच 1967, पृ० 34

2 'जग लगे सपने', विनयचन्द, पृ० 49 50

है—अर्थात यदि वह किसी पुरुष द्वारा धोखे से अथवा बलपूवक भोग भी ली जाती है तो इस कृत्य मे उसकी सहमति न होने के कारण उसको पापिन या भ्रष्टा नही कहा जा सकता। सतीत्व सम्बन्धी इस परिणत चेतना के आधार पर ही, इन्द्र द्वारा छल से भ्रष्ट की गयी अहल्या के प्रति शरणबिहारी गोस्वामी ने राम के मुख से यह उद्गार व्यक्त कराये हैं "झलक रहा सम्पूण नारीत्व/जो/कुछ हुआ उसमे/मन ने कब साथ दिया ?/आत्मा जिसके सग थी उसकी है पतिव्रता।'[1] यह दृष्टिकोण वस्तुत उचित ही है, किन्तु इस नवीन दृष्टिकोण की भी कुछ सीमा होनी ही चाहिए। ऐसी दशा मे हम कवि के यह उद्गार सवथा अनुपयुक्त प्रतीत होते हैं "नारी शिरोमणि आप/अक्षत सतीत्व रमण करता है आप म/सती सिरमौर आप, जब-जब गिना जायेगा/नाम सतियो का, तब/ सवप्रथम होगी आप।"[2] वस तो कवि के इन उदगारो पर भारतीय सस्कृति मे स्वीकृत उस मान्यता का प्रभाव है जो न जाने किन विवशताओ के कारण अहल्या द्रौपदी, कुती, तारा और मदोदरी का पच कन्याओ के रूप म स्मरण करती आयी है[3] किन्तु इन एकाधिक जन भोग्या नारियो को किसी आधुनिक काल के कवि द्वारा भी नारी सिरमौर' या सती सिरमौर बताना हम इस दृष्टि से अग्राह्य ही प्रतीत होता है कि यह दृष्टिकोण एकनिष्ठ पत्नियो को स्पष्ट ही बहुजन भोग्या होने की प्रेरणा देता है। पात नही कसे सन् 1973 75 की कालावधि म दिल्ली विश्वविद्यालय क महिला कॉलेजो की दीवारो पर यह लाल रग का नारा लिखा भी दिखायी पडता रहता था कि भारतीय नारियो का आदश सावित्री नही अपितु द्रौपदी है।

रति क्रिया म तन और मन की लिप्ति निर्लिप्ति को चारित्रिक पावनता या कालुष्य का निकष समझने की धारणा कवि पत ने भी व्यक्त की है।[4] उन्होने एक कथा-प्रसग द्वारा भी इस तथ्य को उभारा है कि डाकुओ-लुटेरो (विधर्मियो द्वारा भी) द्वारा भ्रष्ट की गयी नारी वस्तुत भ्रष्ट नही समझी जानी चाहिए।[5] पत ने 'करुणा' नामक एक पति-परित्यक्ता नारी के परकीया या गणिका जसे जीवन को भी गौरवान्वित किया है। उसके मुख स यह सुनकर कि क्या जान आप कहेगे/मेरा परकीया का जीवन विनय नामक पात्र उसे पच-कन्याओ की श्रेणी की

---

1 2 'पापाणी', पृ० 121, 122

3 दे० 'हिन्दी वहत कोश' पृ० 749

4 देह न रति से होती कलुपित हृदय प्रेम प्रति जो रित अर्पित।'
किरणवीणा' पृ० 119

5 'मन से होत मनुज कलकित/रज की देह सदा से दूषित।
प्रेम पतित पावन है तुमको/रहन दूगा मैं न कलकित।"
स्वणधूलि', पृ० 117 18

छठी पवित्र कन्या घोपित कर देता है।[1] वह करुणा से यह भी कहता है कि यद्यपि आपको सत्यकाम की माता जावाला की तरह अपना यौवन धन बेचकर जीवन निर्वाह करना पडा है तो भी आपके मुखमडल की गरिमा और मन की आभा से आपके पुण्यमय जीवन की झलक मिल रही है।[2] हमारे विचार से भारत के भक्ति-क्षेत्र म तो परकीयावाद की महत्व-स्वीकृति अवश्य रही है किन्तु सामाजिक क्षेत्र मे स्त्री विशेष की परिस्थितिया को देखत हुए उसके 'परकीया' अथवा 'सोसायटी गल' जस जीवन को पुण्यमय बताना नितान्त अनोखी धारणा है। इसी प्रकार जगदीश चतुर्वेदी ने निजी भोगेच्छा की तुष्टि-हेतु शील-सयम और पातिव्रत्य की बखिया उधेडी है— तुमन इसे/शील भग के आसपास का धार्मिक अतिक्रमण समझा है/पर धम/मेरे लिए कोई समस्या नही और/शील-सयम मूखता का पर्याय।' उनकी घोपणा है मुझे पतिव्रता धम मे रुचि लेने वाली वकरियो का साथ पसद नही।'[3] साम्प्रतिक जीवन के शिथिल यौन-सम्बन्धो को उभारते हुए केवल गोस्वामी के उद्गार हैं— सनिक करत हैं काक्टेल पार्टियो मे विनिमय औरता का,'[4] जबकि श्यामसिंह शशि ने पत्नियो की अदला-बदली की दूषित मनोवृत्ति को उद्घाटित करते हुए कहा है कि महानगरो के क्लबो मे 'होते हैं चाबियो के खेल/बीवियो के अदलाव-बदलाव।'[5] भारतीय सास्कृतिक जीवन मे आयी इस नयी व्याधि का प्लूटाक ने रोम के बुद्धिजीवी वग म[6] तथा विल डुरट ने कुछ आदिम जातियो मे अवश्य प्रचलन दिखाया है, अन्यथा यह सवथा अश्रुत पूव सास्कृतिक दूपण है।

(5) वेश्याओ के प्रति सहानुभूतिपरक चेतना

विश्व के समस्त देशो म वेश्या-वृत्ति एक आवश्यक सामाजिक बुराई के रूप म प्रचलित रही है। कुछ लोगो ने उसे मिटाने के प्रयत्न किये हैं तो कतिपय महत्वपूर्ण पुरुषो ने उसके प्रचलन को सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक भी घोपित किया है। यद्यपि ईसाई धम म वेश्या-वृत्ति की घोर निन्दा की गयी है किन्तु अतत उसको एक आवश्यक बुराइ (नसेसरी ईविल) के रूप म स्वीकृति-सी दे दी गयी है। सेंट आगस्टाइन और सेंट थामस ने इस तथ्य पर बल दिया था कि वेश्या वृत्ति को मिटाना समाज मे भ्रष्टाचार को बढावा देना होगा, क्योंकि किसी नगर

1 2 स्वणधूलि' पृ० 119 119
3 इतिहास हता', पृ० 58 4 वद कमरो की सस्कृति', पृ० 71
5 शिला नगर मे' पृ० 81
6 'नारी और समाज, चिरजीलाल पाराशर पृ० 31-32
7 सभ्यता की कहानी', पृ० 40 41

मे वेश्याओ की कमी ही स्थिति होती है जसी किसी स्थान की मल प्रवहन नालिया (सीवर लाइन) की ।[1] शापन हावर की दृष्टि मे वेश्याएँ समाज द्वारा एक पत्नी व्रत की वेदी पर वलिदान चढायी जाने वाली नारियाँ रही हैं [2] तो यूरोप के नतिक इतिहासकार लेकी का अभिमत था कि वेश्यावत्ति भ्रष्टतम कोटि का दुराचार होते हुए भी सदाचार की महानतम सरक्षिका है' ।[3] इसी प्रकार का मत अमेरिकी विद्वान हैवलोक एल्स का भी है कि वेश्या सावजनिक सदाचार की दुराचारिणी सरक्षिका है ।[4] साइमन द बुआ का निष्कर्ष है कि पूव मध्ययुग मे तो सदाचार के नियम इतन शिथिल थे कि वेश्याओ की मुश्किल से ही आवश्यकता रहती थी किन्तु जब परवर्ती बूजुआ समाज मे एक-पत्नीवाद का कठोरतम रूप से पालन किया जाने लगा तो पुरुषो का गहणीतर आनन्द के लिए वेश्याओ की ओर उन्मुख होना पड़ा,[5] अर्थात् वेश्यावत्ति के बन्धावे का मूलकारण 'एक-पत्नीवाद' है।

जहाँ तक भारतीय संस्कृति का सम्बन्ध है उसक सदभ म शापन हावर और साइमन द बुआ के मत विशेष सारगर्भित नही लगते क्योकि यहा प्राचीनकाल म वेश्यावत्ति को प्रश्रय प्राय उसी सामन्त वग से मिलता रहा है जिनके अनेक पत्नियाँ और रक्षिताएँ होती थी। कौटिलीय अथशास्त्र म वेश्याओ के राजकीय सरक्षण के साथ ही, उनसे कर वसूल करने की भी व्यवस्था निर्दिष्ट की गयी है। इस प्रकार वेश्यायें सामन्त एव धनिक वग के मनोरजन का साधन होने के साथ ही जब राजकीय आय का भी माध्यम बन गयी तो वेश्यावत्ति के उन्मूलन की दिशा म यहाँ कोई कदम ही नही उठाया गया। धम और राजनीति के कुटिल गठबन्धन का यह परिणाम और निकला कि राजकीय आय की वद्धि की भाति धार्मिक स्थलो की भी आय बढाने के लिए इस व्यभिचार को बहुत से देशो मे पूजा-स्थलो मे अपना लिया गया। कारथेज म देवी के विशाल मदिर के पास ही

---

1 Both St Augustine and St Thomas asserted that the suppression of prostitution would mean the disruption of society by debauch Prostitutes are to a city what s wers are to a place ' The Second Sex Simone de Beauvoire p 134

2 3 'As Schop nhaver put it pompously Prostitutes are human sacrifices on the alter of monogamy Lecky his torian of European morals formulated the same idea some what differently Supreme type of vice they are the greatest guardians of virtue ' Ibid Ibid p 134

4 'नारी और समाज', चिरजीलाल पाराशर पृ० 245

5 दे० 'द सकड सेक्स', पृ० 134

कुमारी कन्याओ का खेमा नामक एक बडा वेश्यालय था, जहाँ मंदिर के चारो ओर लगे तम्बुओ म कुमारियाँ अपने दहेज के लिए धन जुटाया करती थी।[1] साइमन द बुआ के साक्ष्य पर हम इसम यह तथ्य और जोडना चाहते हैं कि यह वहाँ के पुजारियो की धूर्त चाल थी क्योंकि इस प्रकार अर्जित धन म से निश्चय ही कुछ अश मंदिर को भी देना पडता होगा। बुआ ने दहेज के लिए धनार्जन-हेतु वेश्यावृत्ति करने का तो नही किंतु हेरोडोटस के साक्ष्य पर इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि पाँचवी शताब्दी ईसा-पूर्व बेबीलोनिया मे यह प्रथा थी कि वहाँ प्रत्येक नारी को अपने जीवन म एक बार मिलित्ता के मन्दिर मे स्वय को किसी अजनबी को धनार्जन के लिए समर्पित करना पडता था, और इस प्रकार अर्जित धन को मंदिर को सौंप देने के पश्चात् ही उसे घर लौटकर पवित्र जीवन व्यतीत करने की अनुमति प्राप्त थी।[2] बुआ ने कहा है कि यह धार्मिक वेश्यावृत्ति मिस्र और भारत म आधुनिक काल तक प्रचलित रही है जबकि पिडार (Pidar) के साक्ष्य से ज्ञात होता है कि ग्रीस म विशेषत समुद्री किनारो पर बसे तथा ऐसे नगरो के मन्दिरो म जहाँ यात्री आते रहते थे, उनके मनोरजन के हेतु सुदर नव-युवतियाँ उपलब्ध रहती थी। इन युवतियो की आय पुजारियो और मन्दिरो के खर्च चलाने पर व्यय की जाती थी।[3]

औरगजेब के विषय म अवश्य प्रसिद्ध है कि उसने सुरावन्दी के साथ-साथ वेश्यावृत्ति के भी उन्मूलन की दिशा म कदम उठाये थे अन्यथा भारत म आधुनिक काल से पूर्व इस दिशा म किसी अन्य प्रयास का उल्लेख हमारे देखने म नही आया है। विदेशो म इस दिशा मे अनेक बार प्रयत्न किये जाने का उल्लेख मिलता है "रोम की साम्राज्ञी थ्योडोरा ने जो स्वय भी पहले एक वेश्या थी, वेश्यावृत्ति को रोकने का भरसक प्रयत्न किया था। तेरहवी सदी मे पोप इन्नासेंट और ग्रेगी नवम ने वेश्याओ से जन-साधारण का विवाह कराकर उन्हें समाज मे खपाने का प्रयत्न किया था लेकिन उन्हें सफलता नही मिली। अमरिका के डा० पारखस्ट ने वेश्यावृत्ति को रोकने के लिए एक विशाल आन्दोलन चलाया था, जो अततो गत्वा असफल रहा। फ्रांस म एक बार लुई नवम ने सब वेश्यालयो को बन्द करके वेश्याओ को फ्रांस से निकाल भी दिया था लेकिन दो साल बाद ही लुई ने अपनी पहली आज्ञा रद्द कर दी थी। पन्द्रहवी शताब्दी के अत मे लदन से वेश्याओ को बिल्कुल निकाल दिया गया था परन्तु पचास वर्ष के भीतर ही वहाँ फिर से वेश्यालय खोल दिये गये। × × × यूनान के बादशाह सोलन ने वेश्याओ के लिए नगर म बाहर मकान बनवा दिये थे और उन्हें एक खास पोशाक पहनने की आज्ञा दी

1 'नारी और समाज', चि० ला० पाराशर, पृ० 158

2 3 'द सेकड सेक्स' साइमन द बुआ पृ० 121, 121

थी।"[1] सबस अधिक चौकाने वाला तथ्य यह है कि ईरान द्वारा यूनान पर अधिकार कर लेने के पश्चात जब ईरानियो ने वेश्यावत्ति को मिटाने के उद्देश्य से उन्हे जरा जरा से अपराध पर कडे दड दिये तो 'परिणाम यह निकला कि वहाँ गुप्त वेश्यायें बढ गयी। यहाँ तक कि सम्भ्रान्त घरानो तक की स्त्रियाँ वेश्यावत्ति करने लगी।'[2] फास मे 13 अप्रैल 1946 से वेश्यावत्ति निरोधक कानून लागू है और वेश्याओ की सम्प्राप्ति अपराध घोषित कर दी गयी है फिर भी एच० एम० पाशले के शब्दो मे 'इस दिशा मे निपेधात्मक तथा धूततापूण नीति अपनाये जाने के कारण वेश्यावत्ति धडल्ले से चल रही है।'[3] अमेरिका म तो वेश्याओ न अपने अधिकार रक्षक सगठन बना रखे है और वहाँ की राह चलती वेश्याए अखबारो मे छपी सूचनाओ के अनुसार पुलिस के लिए सिरदद बनी हुई हैं। भारत मे भी देवदासी प्रथा पर तो पहले ही प्रतिबन्ध लगा दिया गया था जबकि सन 1956 से वेश्या वृत्ति भी कानूनन प्रतिबन्धित है। हाँ काल-गल्स के रूप मे वेश्यावृत्ति पुन नये रूप मे उभर रही है और उसकी चपेट मे यूनान की तरह बहुत सी लडकियाँ और वधुएँ सम्भ्रात घरो की भी आती जा रही हैं।

आधुनिक काल से पूववर्ती काव्य मे वेश्या-नत्य प्रेक्षण तथा नगरवासिनी वेश्याओ का कवियो द्वारा सवथा अकुठ भाव से चित्रण किया गया है। वेश्याओ के प्रति अठारहवी शताब्दी मे किस प्रकार की सामाजिक धारणा थी, इस तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए यह प्रमाण पर्याप्त होगा कि कवि मान ने महाराजा राजसिंह द्वारा वेदादि धार्मिक ग्रथो के श्रवण और वेश्या-नत्य प्रेक्षण का एक ही साँस मे इस प्रकार वणन किया है मानो इन दोनो कृत्यो मे कोई भेद ही नही है।[4] वसे तो बीसवी शताब्दी मे भी कुछ ही वर्षों पूव तक ऐसी सामाजिक स्थिति थी कि उस बारात को उच्चकोटि की बारात ही नही समझा जाता था जिसम वर का पिता नर्तकियाँ लेकर न आया हो, किन्तु आधुनिक काव्य प्रणेता बीसवी शताब्दी के आरम्भ से ही इस प्रथा के विरोध मे आवाज बुलन्द करते मिलते हैं। हाँ इस दिशा मे चालीसोत्तरी पीढी के कवियो ने ही अधिक उदगार व्यक्त किये है।

नगर नगर मे स्थापित वेश्याओ के चकला से फलने वाले व्यभिचार की निन्दा करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने वेश्या गमन को अधम व्यभिचार या पतित कम की श्रेणी मे स्थान देते हुए कहा है कि छोटे-बडे नगरो के अनुरूप ही उनम छोटे-बडे चकल होते है। इन चकलो के कारण फलने वाले व्यभिचार के फल

---

1 2 'नारी और समाज' चि० ला० पाराशर पृ० 23, 24

3 द सेकड सक्स' साइमन द बुआ, पृ० 167 पा० टि०

4 दे० हिन्दी वीरकाव्य मे सामा० जीवन की अभि०, डा० राजपाल शर्मा, पृ० 159 60

स्वरूप हम अपने धर्म और धन दोनों ही तथ्यों से हाथ धोने पड़ते हैं और न जाने कितने लोग पतित कंगाल और रोगी होते रहते हैं।[1] गुप्तजी ने इस दृष्टि से भी गहन मनस्ताप व्यक्त किया है कि वार वधुएँ हमारे धार्मिक सामाजिक उत्सवों का अनिवार्य अंग बन गयी हैं और हमारे सभी पर्वों पर वे इस रूप में विद्यमान रहती हैं मानो सभी शुभ कर्मों की अधिष्ठात्री वेश्यायें ही होती हों। इस विडम्बना पर अश्रुपात करते हुए उन्होंने उचित ही यह भाव व्यक्त किया है कि हमारी इससे अधिक अधोगति और क्या हो सकती है?[2]

अन्य कवियों में शील ने पहले तो वेश्याओं के प्रति यह संवेदना व्यक्त की है कि सुन्दरता की प्रतिमूर्ति बनी उस मंजिल पर अपना सौंदर्य बेचती जो नारी बैठी हुई है उसके 'अंतर में दोजख-सी दावा-सी/चिन्ता-सी/चिता-सी/धधक रही है आग। अपनी बुभुक्षा शांत करने को विवशतावश उसने मान-अपमान और सतीत्व खो दिया है, किन्तु हुई फिर भी/क्या उसके उदर की पूर्ति? कामुक नरों ने/चुभाया/तेज छुरियाँ/मृत-सी/शोक में/विषाद में/पड़ी रही।' 'शील' की वेश्या रो धोकर ही नहीं रह जाती, अपितु वह जाति धर्म और समाज के नाम पर थूकते हुए, उन्हें घृणा का गरल पिलाने को सन्नद्ध मिलती है, 'नहीं अभी जीना है/जिऊंगी/समाज की बर्बरता पर/थूकूंगी/हजार बार/धर्म को/जाति को/निष्ठुर पाशविकता को/घृणा का/कुंकुम का/गरल पिलाऊंगी।'[3] नरेन्द्र शर्मा तो कवि के स्थान पर एक सच्चे समाज-सुधारक की भूमिका तक उठ गये हैं। समाज को इस तथ्य के लिए धिक्कारते हुए कि उसने 'गृह-सुख से निर्वासित कर दी हाय मानवी बनी सर्पिणी/यह निष्ठुर अन्याय?'—वे किसी वेश्या को बहन कह-कर सम्बोधित करते हैं और उसके मस्तक पर निधन चुम्बन अंकित करते हुए, समाज की दृष्टि में सर्पिणी-तुल्य वेश्या को भाई का निर्बल निर्मल प्रेमालिंगन' समर्पित करने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं।[4] 'नीरज' की उक्तियाँ भी पर्याप्त मार्मिक हैं, मूलगंज की इस बस्ती के कोठों पर रातें सोने के लिए नहीं अपितु जागरण के लिए होती हैं। यहाँ की रातों की विडम्बना यह है कि यहाँ पर सौंदर्य की अपरूप कलियाँ एक ही रात्रि में विवाहित होकर विधवा भी हो जाती हैं।[5] उन्होंने अन्यत्र भी कहा है कि इस पूंजी मसनद के सहारे पे टिकी दुनिया में/प्यार बिकता है गली-गाँव खिलौने की तरह/होता ईमान है नीलाम बर्तनों की

---

1 "व्यभिचार ऐसा बढ़ रहा है देख लो चाहे जहाँ/जैसा शहर, अनुरूप उसके, एक चकला है वहाँ/जाकर जहाँ हम धर्म धन खोते सदैव सहर्ष हैं/होते पतित कंगाल रोगी सैकड़ों प्रति वर्ष हैं।" 'भारत भारती, पृ० 147/282

2 वही, पृ० 147/283

3 'एक पग', शील, पृ० 32-33

4 'प्रभातफेरी', पृ० 126

5 नीरज की पाती', पृ० 17

तरह/बिछाई जाती है औरत रे ! बिछौनो की तरह।'[1] डा० रामविलास शर्मा ने समाज के सम्मुख यह प्रश्न उपस्थित किया है कि भारत तो पुण्य भूमि कहा जाता है फिर बंगाल म 'तीस हजार युवतियो ने क्यो वेश्यालय म जाकर आश्रय पाया ?'[2] वीरेन्द्र कुमार जैन की कविता का सन्दर्भ तो परमाणु-युद्ध की भयावहता का है किन्तु उसम वेश्यालयो के जीवन का बडा ही घृणोत्पादक चित्र प्रस्तुत किया गया है 'महलो की नीवो के ठंडे अधियारो म/कीडो से बुलबुलाते स्लम और ब्रायल/नर-नारी के आलिंगन नही/केवल लिंगो और योनियो के ढेर/निरानन्द प्राणिक संघर्ष/उनमे से प्रसव होते बच्चे नही/क्षय और प्लेग के कीटाणु/कैंसर की रक्तावरोधी गाँठें/लाचार गर्भपातो के ढेर/और आकारहीन डिम्ब/नारियाँ नही माएँ नही बहनें नही प्रियाएँ नही पत्नियाँ नही /समर्थो के सिफलिस और गिनोरिया को चुपचाप सह ले जाने और बहा ले जाने को मजबूर/अडर ग्राउंड नालियाँ।[3] देवेन्द्र उपाध्याय ने भी वेश्याओ को टी० बी० और सिफलिस के रोग लग जाने का चित्रण किया है जिसे आदत पड गयी है/ नौजवान खूबसूरत वेश्या की तरह/एक लम्बे अनन्त जुलूस से रौंदे जाने की/और भविष्य के लिए जो जमा कर रही है/टी० बी० और सिफलिसी कीटाणु/बलगम म बहान/ढेर सारा अच्छा गदा रक्त।[4] डा० विनय ने उन लोगो का उपहासात्मक उल्लेख किया है जो वेश्यावृत्ति बन्द किये जाने म चिन्तित है वे लोग/ वैशाली की नगरवधू के सौन्दर्य/की स्मृतियो म डूबे हुए/मुरझाये कैक्टस पर ! केवडा डालकर अभिशप्त वेश्याओ को नगर से/भगाये जाने की खबर सुनकर चिन्तित हैं।[5] मृत्युंजय उपाध्याय के वेश्याओ के प्रति संवेदनापूर्ण उद्गार हैं सिंदूर पर हजारो का नाम/होठ पर अठन्नी की चमक/गर्भ मे अज्ञात पिता का अंश/फेफडो म टी० बी० की गमक/एक रुपया। नही दो रुपया/कौन ?/ सीता ? /सावित्री ?'[6]

वेश्यावृत्ति के प्रचलन के सम्बन्ध मे प्रकाश दीक्षित ने यह भाव व्यक्त किया है कि न जाने कितनी राधाओ को अर्थात असफल प्रेमिकाओ को वेश्यावृत्ति अपनाने के लिए विवश होना पडता है और निष्ठुर समाज उनकी नकली मुस्कराहटो मे छिपे दर्द को समझ नही पाता है। जब समाज मे धन की झूठी महत्ता समाप्त हो जायेगी तभी ऐसा अवसर आयेगा जिसमे मन्दिर जसी देह और हर सूरत मूरत-सी पावन समझी जायगी और तब किसकी मजाल जो जिस्म खरीदेगा

---

1 नीरज की पाती पृ० 30 2 तारसप्तक', सक०, पृ० 241
3 शून्य पुरुष और वस्तुए पृ० 123
4 5 सन्दर्भ सक० पृ० 93, 29
6 प्रतिश्रुत पीढी सक०, पृ० 10

तेरा ? [1] नीलकण्ठ तिवारी ने भी इस गर्हित प्रथा का मूल कारण चाँदी के चंद टुकडे प्रदर्शित किये हैं, 'चन्द टुकडो के नीलाम पर ही यह चढी है/रूप की वल्मीक मे यह सर्पिणी विधि न गढी है।'[2] कवि ने वेश्याओ के प्रति गहन संवेदना व्यक्त करते हुए उनको मूलत शुचि पवित्र एव सच्चरित्र बताया है जबकि उसने सामाजिक रूढि रीतियाँ धार्मिक पाखड, भोगलिप्सा और गुरुडम की तीव्र भर्त्सना करते हुए कहा है क्रूरता सकीर्णता, अन्यायमय, अभिशाप हो की/रूढि गुरुडम, भोग-लिप्सा, भीरुता के पाप हो की/धर्म पाखडी कुपथों आदि की जजीर से हो।/बद्ध है यह लाश किसकी ? विद्ध शत-शत तार हो।'[3] कवि ने इसी क्रम म आगे कहा है कि एक निर्दोष अबला की लाश को मिथ्याभिमानी लोग वेश्या की सज्ञा प्रदान करके तिरस्कृत किया करते हैं। वासना से अभिभूत दुष्ट मानव द्वारा हैवान बनकर नारीत्व का भक्षण करने का कृत्य निश्चय ही धिक्कार-योग्य है।[4] रामावतार त्यागी ने वेश्या के मुख से उसका आत्म-परिचय दिलाते हुए, मैं हूँ ऐसी दुल्हन कि जिसका होता है हर रात स्वयवर जैसे बडे ही मार्मिक उदगार व्यक्त कराते हुए उससे आगे कहलाया है "अपयश का सिंदूर माँग मे, निन्दा का मेरा दहेज है/मेरा जीवन कालकूट के हाथो जसे बिका हुआ है।'[5] विजयचद ने वेश्याओ की दयनीय दैनिक दशा को उभारते हुए उसके मुख से यह भाव व्यक्त कराया है कि यदि आप किसी दिन, दिवस के उजाले मे मेरी दशा देखेंगे तो मेरे सौन्दय और वैभव-विलास के सम्बन्ध म आपका स्वप्न टूट जायेगा क्योंकि तब 'मैं मने कीचड छेद भरे पेटीकोट मे/पीकदान उलट रही होऊँगी/माहोल दमघोटू गर्द स भरा होगा।'

प्रस्तुत अध्याय म पारिवारिक एव नारी-जीवन के सम्बन्ध म व्यजित हुई नवीन चेतना से स्पष्ट होता है कि सास्कृतिक मूल्य की दृष्टि से तो अब भी सयुक्त परिवार ही उत्तम समझे जाते हैं अन्यथा उनका पर्याप्त विघटन हो चुका है। माता पिता और सन्तान के पारस्परिक सम्बन्धो मे खटास आ चुकी है। इस खटास के मूल म एक ओर तो नव-वैज्ञानिक खोजो के कारण सतति-जन्म को पावन क्रिया समझने की भावना के तिरोहित हो जाने का तथ्य क्रियाशील है, जबकि परिवार नियोजन के साधनो का रेडियो और दूरदर्शन से खुल्लम-खुल्ला धुआँधार प्रचार भी बच्चो के मन म यह सस्कार जमा ही देता है कि वे शायद गर्भ निरोध के साधनो के विफल रह जाने का अवाछित परिणाम हैं। अनेक कवियो द्वारा व्यक्त की गयी इस प्रकार की चेतना पर चाहे अभी विदेशी साहित्यकारो का प्रभाव भले ही हो किन्तु वह परखनली शिशुओ की उत्पत्ति तथा परिवार नियोजन के साधनो के

1-3 नारी तेरे रूप अनेक' सक०, पृ० 390 92 112,113
4 सपने महक उठे,' पृ० 52 5 जग लगे सपने', पृ० 25

भौंडे प्रचार का नैसर्गिक परिणाम सिद्ध होती है। पहले भ्रूण-हत्या को महापाप माना जाता था, जबकि सम्प्रति उसको कानूनन वध घोषित कर दिया गया है। स्त्री शिक्षा के प्रचार प्रसार और उनकी नौकरी-जनित आत्म निर्भरता अधिक उम्र मे विवाह होने स्त्रियो के समानाधिकारो पर बल दिये जाने आदिक तथ्यो ने मिलकर पति-पत्नी सम्बन्धो म भी दरार उत्पन्न कर दी है कम-से-कम पत्नियाँ अब पहले जसी दब्बू नही रह गयी हैं—उन्हें पर की जूती मानकर दरकिनार नही किया जा सकता। मार्क्सवादी रुझान के अनेक कवियो ने पत्नियो को पतियो के प्रति बगावत के लिए उत्प्रेरित करते हुए सतीत्व जसी परम्परागत धारणाओ की खिल्ली उडायी है। सतीत्व या पातिव्रत के विरोध म अकवितावादी कवि भी इसी सरणि के अनुयायी मिलते हैं। कतिपय कवियो ने विवाह प्रथा को ही मिटा देने की वकालत की है।

युग-युगान्तर स शोषित प्रपीडित नारियो की दशा सुधारने की प्रबल चेतना जाग्रत करने का प्रयास करत हुए आधुनिक काव्य म उन्ह भोगोपकरण मात्र समझने का तीव्र विरोध किया गया है। अधिसख्य कवियो ने उनकी शिक्षा समानाधिकारो सामाजिक निर्माण मे महत्वपूण भूमिका आदिक तथ्यो का मुक्तकठ से समथन किया है। उनकी अधोदशा को सुधारने की दृष्टि से ही एक ओर तो बहु विवाह वद्ध विवाह अनमेल विवाह जसी उन प्रथाओ की निन्दा की गयी है जिनके कारण नारियो को अकाल-वैधव्य अथवा उपेक्षिताओ की नियति भोगनी पडती थी, जबकि दूसरी ओर विधवा विवाह तलाक और पुर्नविवाहो का समथन किया गया है जिससे विधवा और मुक्ता नारियो को राहत की साँस मिल सके। कवियो ने अत्याधुनिकाओ (माड) के तो स्वराचार की निन्दा अवश्य की है अन्यथा उनका दृष्टिकोण नारी-जीवन के पतिततम रूप वेश्या और काल गल्स के प्रति भी पर्याप्त सहानुभूति और सवेदनापरक रहा है। इसी प्रकार बलात्कार की शिकार हुई नारियो को भ्रष्ट मानने के स्थान पर इस तर्काधार पर निष्पाप घोषित करना भी कि उन घिनौने कृत्य के प्रति उनकी अन्तरात्मा निर्लिप्त थी नारी-दशा सुधारने की दृष्टि से एक ऐसी नवीन चेतना है जिसकी लम्बे समय से अपेक्षा बनी हुई थी।

तृतीय अध्याय

धार्मिक आस्था-विश्वास तथा नैतिक मूल्यो सम्बन्धी नवीन चेतना

धार्मिक आस्था विश्वासो की विश्व के प्राय सभी देशो के सास्कृतिक जीवन पर इतनी गहरी छाप रही है कि आधुनिक काल से पूर्व धर्म बहुत कुछ अशो मे सस्कृति का पर्याय बना रहा है। हाँ आधुनिक काल मे आकर धर्म विरोधी भावनाएँ अभूतपूर्व रूप म पनपी हैं। इन धर्म विरोधी भावनाओं के विकास मे एक ओर तो उन वैज्ञानिक खोजो का पर्याप्त हाथ रहा है, जिनके परिप्रेक्ष्य मे मानव किसी अज्ञात शक्ति के स्थान पर स्वय को ही सृष्टि नियन्ता समझने के भ्रम मे ग्रस्त होता गया है। सूर्य पृथ्वी, चन्द्रमा मगल आदि ग्रह-नक्षत्रो से सम्बन्धित अधुनातन खोजो ने पौराणिक आस्था विश्वासो की कब्र ही खोद दी है। कृत्रिम वनस्पतियों के उत्पादन से लेकर परखनली शिशुओ के जन्म की सफलता ने आधुनिक काल के वैज्ञानिक विश्वामित्रो को नवीन सृष्टि की रचना-सामर्थ्य के अहकार का अवसर प्रदान कर दिया है। चिकित्सा के क्षेत्र मे महामारियो पर प्राप्त विजय ने, इन महामारियो को दैवी प्रकोप समझने और उनके परिशमनार्थ देवी-देवताओ की पूजाराधना करने की धारणा का बुरी तरह आहत किया है। मानववाद समतावाद मानव मात्र की स्वतन्त्रता आदि से सम्बन्धित राजनीतिक विचारधाराओ ने भी जीव-मात्र म ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार करने की धारणा को यह नवीन आयाम प्रदान किया है कि जब हमारे सम्मुख ईश्वर का दीन दलित दुखी, चलता फिरता प्रतिरूप विद्यमान है तो फिर उसको बिलखता छोडकर ईश्वर की पूजा के लिए किसी मन्दिर-मस्जिद या चर्च म जाना सर्वथा निरर्थक है। मार्क्सवादी विचारको द्वारा उद्घाटित इस तथ्य के सम्बन्ध मे अधिक विवाद का अवकाश नही है कि जन-सामान्य का सर्वांगीण शोषण करने की दिशा म राजनीति या शासन-सत्ता और धर्म की या पोप-पुरोहित पडे-पुजारियो की मिलीभगत रही है। इस मिली भगत के कारण ही प्राय प्रत्येक धर्म म ऐसी शिक्षाओ का बाहुल्य है जो लोगो की शासन सम्बन्धी विद्रोह भावना का परिशमन करते हुए, उन्हें यथास्थिति मे

रहने की ओर प्रेरित करती हैं। इस नई चेतना से अनुप्रेरित मार्क्सवादी समाज व्यवस्था में तो धर्म को निंद्य-त्याज्य घोषित कर ही दिया गया है, मानवतावादी विचारक भी परम्परागत धार्मिक भावनाओं को आधुनिक कालीन जीवन के लिए उपयोगी न पाकर उनमें सुधार-परिष्कार कर लेने के समर्थक हैं। पाश्चात्य संस्कृति के एकेश्वरवाद की प्रतिक्रिया और प्रभावस्वरूप आधुनिक कालीन भारत में हिन्दू धर्मावलम्बियों में ब्रह्मसमाज और आर्यसमाज जैसे दो नये धार्मिक सम्प्रदाय ही प्रचलित हो गये हैं। आर्यसमाज और रामकृष्ण मिशन के अनुयायियों द्वारा दलितों, अनाथों, विधवाओं, बाढ़ या अकाल-पीड़ितों की सहायता करने की दिशा में जो कदम उठाये जा रहे हैं उन्हें ईसाई मिशनरियों की वैसी ही गतिविधियों से अनुप्रेरित स्वीकार किया जाना चाहिए। अभिप्राय यह है कि सम्प्रति धर्म आत्म साधना और आत्मोद्धार की मध्ययुगीन संकीर्ण मनोवृत्ति का परित्याग करके बहुत कुछ अंशों में जन या लोक-सेवा का पर्याय बनता जा रहा है। आधुनिक काल में अस्पृश्यता निवारण, अछूतों के मन्दिर प्रवेश, नारियों और शूद्रों को वेदों और धर्म शास्त्रों के अध्ययन के अधिकार मिलने आदि तथ्यों का भी परम्परागत धार्मिक धारणाओं के भंजन की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वर्णाश्रम व्यवस्था के मृत प्राय दशा में होने तथा परम्परागत दृष्टि से अध्ययन-अध्यापन द्वारा जीविकार्जन करने के लिए प्रसिद्ध रहे ब्राह्मणों द्वारा भी जूतों की अथवा नाई की दूकानें चलाने का व्यवसाय अपना लेने जैसे तथ्यों का भी नैतिक मानदण्डों में ह्रास होते जाने की दिशा में कम हाथ नहीं रहा है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि यद्यपि भारत के ग्रामीण समुदाय की धार्मिक भावनाओं में इस समय भी कोई ज्वलंत परिवर्तन नहीं दिखायी पड़ता, तो भी शिक्षित वर्ग तथा नगर-जीवन में मध्ययुगीन आस्था विश्वासों को बदलने या उनमें सुधार-परिष्कार करने की चेतना जाग्रत हो चुकी है। इस परिवर्तित चेतना को विवेचन-सौकर्य की दृष्टि से अधोलिखित शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता है—

(क) ईश्वर की मृत्यु, अनस्तित्व और सर्वशक्तिमान न होने विषयक चेतना।
(ख) धर्म, धर्मस्थल मूर्तिपूजा और संकीर्तनादि सम्बन्धी परिणत चेतना।
(ग) अवतारों देवी-देवताओं और स्वर्ग-नरक सम्बन्धी परिणत चेतना।
(घ) निर्धनों-दलितों को नारायण समझने की चेतना।
(ङ) नेताओं के ईश्वरत्व तथा नवीन तीर्थस्थलों विषयक चेतना।
(च) साधु-सन्त पंडे-पुजारी और गो रक्षा सम्बन्धी परिणत चेतना।
(छ) सर्व धर्म समभाव तथा साम्प्रदायिकता विषयक चेतना।
(ज) पर्वों-त्योहारों सम्बन्धी नवीन चेतना।
(झ) निवृत्ति, भाग्यवाद और कर्मफल सम्बन्धी परिणत चेतना।
(ञ) नैतिक मान्यताओं में ह्रास तथा उनमें युगानुकूल परिवर्तन करने

सम्बन्धी चेतना।

(ट) भूत प्रेत और शकुन-अपशकुनादि सम्बन्धी परिणत चेतना।

(क) ईश्वर की मृत्यु, अनस्तित्व और सर्वशक्तिवान न होने विषयक चेतना

ईश्वर विरोधी धारणा यों तो हरिऔध ने भी व्यक्त की है तथापि यह प्रवृत्ति छायावादोत्तर कालीन कवियों में ही अधिक परिलक्षित होती है जो इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि उसके मूल में आजकल के बौद्धिकतावादी वातावरण के साथ ही अस्तित्ववादी तथा मार्क्सवादी दर्शनों की अनीश्वरवादी धारणाओं का भी हाथ रहा है। हरिऔध ने प्रभु की सर्वशक्तिमत्ता के समक्ष प्रश्नचिह्न लगाते हुए कहा है कि हे प्रभु ! यदि तुम शक्तिवान होते तो अनर्थ के बीज लोक में नहीं पाप रत बोते। उन्होंने आगे कहा है कि ईश्वर के सर्वशक्तिवान होने की दशा में इस प्रकार की स्थिति सर्वथा स्वाभाविक थी कि वध-कर्ता द्वारा वध-हेतु तलवार उठाते ही उसका हाथ कटकर गिर जाता, आग लगाने वाले का सदय हाथ ही नहीं उठ पाता, गाली देने वाले की जिह्वा बन्द हो जाती। इसी प्रकार यदि कुकर्मों के व्यक्ति को तुरन्त ही मानसिक दण्ड मिलने लगता 'तो न धरा पर बड़े वेग से शोणित धारा बहती।'[1] पंत ने 'पतझर' में मध्ययुगीन ईश्वर का विरोध करते हुए कहा है कि वह 'रिक्त निषेध पलायन का शव अस्थि शेष चित पंजर' मात्र रह गया था अतः इस प्रकार का प्राणों के वैभव से वंचित ईश्वर मुझे न स्वीकृत किंचित।[2] 'स्वर्ण धूलि' में उन्होंने 'ईश्वर को मरने दो हे/वह फिर जी उठेगा'[3] की धारणा व्यक्त की है तो 'शंखध्वनि' में उन्होंने आस्था ईश्वर पर मुझ को—उससे सब संभव/वही बदल सकता बहिरंतर जीवन-मन को[4] की पात्र भेद से परस्पर विरोधी धारणाएँ व्यक्त की हैं। नवीन ने भिक्षुक-बच्चों को जूठे पत्ते चाटते देखकर विधाता का टेंटुआ भींचने का आक्रोश व्यक्त करते हुए कहा है, 'जगपति कहाँ ! अरे सदियों से वह तो हुआ राख की ढेरी।[5] सामान्यतया इस्लाम धर्म अपने अनुयायियों को खुदाई न्याय की आलोचना का अधिकार नहीं देता किन्तु प्रगतिशील रुझान के शायर अहसान बिन दानिश ने ईश्वर विरोधी वातावरण का लाभ उठाते हुए, निर्धनता-व्याकुलता के परिपार्श्व में, खुदा के हुजूर में भी उसके न्याय के विरुद्ध हाय ! हाय ! के नारे लगवा दिये हैं।[6]

---

1 'मर्मस्पर्श', पृ० 7 2 'पतझर', पृ० 229

3 स्वर्णधूलि' पृ० 59 4 शंखध्वनि, पृ० 92

5 'हम विषपायी जनम के', पृ० 493

6 शेर-ओ शायरी, सपा, पद० गोयलीय, पृ० 426

बच्चन ने ईश्वर के सम्मुख प्रणत होने के तथ्य को मनुष्य के पशु रूप का प्रतीक घोषित करते हुए यद्यपि ईश्वर-पूजा का विरोध किया है[1], तथापि उन्होंने इस तथ्य का उदघाटन किया है कि सम्प्रति ईश्वर सम्बन्धी तीन प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। *समाज का एक वर्ग सब-सुविधा-सम्पन्न ऐसे लोगों का है,* जिन्हे घर कार, कारोबार सुखी परिवार और अधिकार उपलब्ध है अत उन्हे ईश्वर की इसलिए दरकार' रहती है कि वे उसके प्रति अपने कृतज्ञता पुष्प समर्पित कर सकें। इसके विपरीत समाज का एक वर्ग ऐसा है जिसके पास 'न मकान है/न सरोसामान है/न रोजगार है/जरूर बड़ा परिवार है/भीतर तनाव है/बाहर बिखराव है। इस वर्ग को भी 'ईश्वर की इसलिए दरकार है कि/किसी पर तो अपना विष उगलें/किसी को तो गाली दे। बच्चन के अनुसार इन दोनो वर्गों की मध्यवर्ती स्थिति के लोगो में ही ईश्वर का अस्तित्व-अनस्तित्व चर्चा या बतरस का विषय बना रहता है 'ईश्वर है—नही है/पर बहस है/नतीजा न निकला है/न निकलने की मशा है/कम क्या बतरस है ?'[2]

वीरेन्द्र कुमार जैन ने भी एक ओर तो यह भाव व्यक्त किया है कि सम्प्रति 'धर्म, अध्यात्म और भगवान के पास 'आज के गतिमान इतिहास की चीत्कार का कोई जवाब नही है इसलिए नीत्शे के रूप मे चीख उठी थी यूरोप की विद्रोहिणी आत्मा की एक आवाज—/ईश्वर की मौत हो चुकी है।[3] इसके साथ ही उन्होंने ईश्वर के पुनर्आविष्कार पर बल देते हुए यह धारणा व्यक्त की है भगवान कही नही है /तो उसे खोज निकालना होगा।' और यदि वह भी सम्भव नही तो आज मनुष्य को स्वय भगवान बन जाना होगा।[4] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने एक कविता मे तो ईश्वर को 'मरे हुए डागर सा गधाता[5] अर्थात सामाजिक वातावतरण को दुर्गन्धिपूर्ण करते बताया है हा अन्यत्र उसके अस्तित्व को स्वीकार करते हुए यह प्रार्थना की है, यही प्रार्थना है प्रभु तुम से/जब हारा हूँ तब ना आइये।[6] उदयशकर भट्ट ने यह धारणा व्यक्त की है कि जब दु खो के घन घहराते है तो कल्पना प्रसव करती मानव की त्रुटि ईश्वर को।[7] रागेय राघव ने जगत् को इश्वर की रचना मानने के स्थान पर सतत प्रवहमान गति का परिपाक बताते हुए कहा है ' कौन किसका निर्माता बोल/सभी तो गति की चिर स्वच्छद/

---

1 प्रार्थना मत कर मत कर मत कर/× × ×यह मनुष्य का रूप नही है/पशु का है रे कायर! एकान्तगीत पृ० 118

2 'कटते प्रतिमानो की आवाज' पृ० 117 18

3 4 शून्य पुरुष और वस्तुएँ' पृ० 183 85

5 6 'गम हवाए, पृ० 46, 55

7 'पूर्वापर', पृ० 101

प्रबल धारा का सुन्दर रूप।'[1] रामेश्वर करुण ने ईश्वर पर पूंजीवादियों के फन्दे में फँसकर दोनों के प्रति उन जैसा ही निष्ठुर और निश्शील हो जाने का आरोप लगाते हुए कहा है 'एस निठुर निसील को कौन कहे करुनम।'[2]

अन्य कवियों में देवराज ने ईश्वर को सनकी तानाशाह' बताया है[3] तो कैलाश वाजपेयी के उदगार हैं कि उन्हें पता नहीं/कब्र/कहाँ होगी ईश्वर की', अन्यथा 'अपनी खाल छीलकर मैं खून भर देता उसके कंकाल में।'[4] उन्होंने उस व्यक्ति को मूख, चुका हुआ और नाली के सड़े हुए पानी जैसा बताया है जो, 'नंगे पत्थर/के आगे/झुकता है,'[5] तथा मोक्ष की व्यर्थता दिखाते हुए कहा है, 'मुझे रुचि नहीं/अपने या दूसरे या किसी तीसरे मूख के निर्वाण में।'[6] नीरज ने 'धन हर मन्दिर मठ का ईश्वर है'[7] की धारणा व्यक्त करते हुए कहा है कि यदि मैं सावन का मेघ होता तो ढहा बहाकर मन्दिर, मस्जिद गिरजे और शिवाले/ऊँची-नीची विषम धरा को समतल सहज बना' देता।[8] शील ने ईश्वर और धर्म को पूंजीपतियों की विरासत घोषित करते हुए कहा है कि उन्हीं की पत्रिकाएँ जनता को अफीम के घूट पिलाती रहती हैं।[9] अन्यत्र उन्होंने मजदूरों-दलितों से यह भाव व्यक्त कराया है कि 'ईश्वर रूपी लाश-फास लेकर मन्दिर-मस्जिद हम मिटाने की साजिश करते रहते हैं।'[10] मुन्नालाल मीतल ने शंकराचार्य की ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या की सर्वथा विरोधी धारणा व्यक्त करते हुए यह मौलिक ससार सत्य है धर्म और ईश्वर हैं मिथ्या'[11] की धारणा का प्रतिपादन किया है तो महेन्द्र भटनागर ने ईश्वर को काल्पनिक डिक्टेटर बताते हुए प्रश्न किया है, 'ईश पर विश्वास कैसा कौन पै अवतार आया ?'[12] भूपण वनमाली ने ईश्वर की मृत्यु हो जाने पर भी उसके अस्तित्व में विश्वास करने के तथ्य को बँदरिया द्वारा मृत बच्चे को गले लगाये फिरने का प्रतिरूप मानते हुए कहा है कि यदि तुम खुदा को 'जलाओगे तो आग मैं दूँगा/दफनाओगे तो ताबूत में आखिरी कील मेरी होगी/और पहला ढेला भी।[13] जगदीश चतुर्वेदी ने 'नीत्शे का परमात्मा उसके साथ मर गया, मेरा जिन्दा है'[14] की धारणा तो अवश्य व्यक्त की है, किन्तु उन्हें उसके अस्तित्व का बोध 'हर स्त्री के साथ सोते

---

1 'मेधावी', पृ० 88 2 'करुण सतसई', पृ० 11
3 'इला और अमिताभ', पृ० 90
4 6 देहान्त से हटकर' पृ० 77 78, 122, 77
7 'असावरी' पृ० 9 8 'बादर बरस गयो', पृ० 86
9 'लावा और फूल', पृ० 11 12 10 'उदयपथ', पृ० 4
11 उद० हि० का० में मा० चेतना', डॉ० जन० वर्मा, पृ० 496
12 'चयनिका', पृ० 115 13 'शब्दों का वक्ष', पृ० 84-85
14 'इतिहासहन्ता', 22

समय ही'[1] होता है। केवल गोस्वामी के शब्दों मे 'भगवान नाम की सृष्टि डाकुओ के चेहरे पर/भलमनसाहत का आवरण डालने के लिए हुई थी।'[2]

(ख) धर्म, धर्मस्थल, पूजोपासना और संकीर्तनादि सम्बन्धी परिणत चेतना

आधुनिक काल मे नीत्शे द्वारा ईश्वर की मृत्यु की घोषणा करके धर्म की मूल धुरी पर तो आघात किया ही गया है स्वयं धर्म तथा उससे सम्बन्धित मन्दिर-मस्जिद गिरजाघर आदि धर्मस्थलो मूर्तिपूजा और ईश्वर के गुण-संकीर्तनादि अंगो के विषय मे भी परम्परागत धारणाओ से पर्याप्त भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है और जैसा कि स्वाभाविक था उक्त तथ्यो के विरोध से सम्बन्धित काव्योद्गारो मे बाहुल्य मार्क्सवादी विचार धारा से अनुप्रेरित कवियो की उक्तियो का रहा है। इस तथ्य की भी प्रखर भर्त्सना की गयी है कि धर्म के प्रमुख प्रतीक मन्दिर-मस्जिद आदि धर्मस्थल भोली जनता के शोषण के केन्द्र हैं तथा राजसत्ता के साथ धार्मिक-सत्ता की ऐसी साँठ गाँठ रहती है कि वे दोनो एक-दूसरे के हितो का संरक्षण करते हुए जन शोषण मे लिप्त रहते है। इसी प्रकार मध्ययुगीन धर्म की आत्म-साधना, आत्मोद्धार, वैराग्य, आदि व्यक्तिवादी प्रवृत्तियो की भी तीव्र भर्त्सना करते हुए आधुनिक काल के कवियो द्वारा धर्म के जन हितवादी स्वरूप का समर्थन किया गया है।

पंत ने 'शिल्पी' मे धर्म की पंकिल दारु-मूर्ति को काल-कवलित होते चित्रित किया है। उसके सम्बन्ध मे निंदापरक उद्‌गार व्यक्त करते हुए एक पात्र कहता है यह जीर्ण धर्म की दारु मूर्ति है। इस धर्म के सम्मुख भू जन युग-युगान्तर से प्रणत होते रहे हैं और इसने आकाश-बेलि जैसा तर्क-जाल फैलाकर लोगो को पाप पुण्य मे, स्वर्ग-नरक' के चक्कर मे उलझाये रखा था, तथा रक्तपात बहु हुए धरा पर इसके कारण।'[3] लोकायतन मे उन्होने 'धर्म के दिन अब बीते' का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि सम्प्रति धार्मिक आस्था विश्वास बाह्याचारो के स्थान पर 'मन मंदिर मे वास करते है।'[4] उन्होने 'अपर लोक सुख कामी साधको द्वारा योग तप-त्याग' मे लीन रहने के धर्माचरण को उनके 'सिर के बल चलने' का प्रतीक बताकर उपहास किया है।'[5] सत्यकाम मे उन्होने परम्परागत रूढ़ि रीतियों' मे जकडे जन-जीवन के पथरा जाने उसके रेत का सागर बन जाने तथा पाप पुण्य के भय से जर्जरित हो जाने के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए खेदपूर्वक कहा है

---

1 इतिहासहन्ता' पृ० 62 2 'बंद कमरा की संस्कृति, पृ० 11
3 शिल्पी पृ० 74 75
4 5 'लोकायतन, पृ० 124, 88

कि धर्माचाय और उनके अनुयायी धम के वास्तविक मम को समझने के स्थान पर शास्त्र-पुराणो की तोतारटत म निमग्न रहते है फलत सम्प्रदायवाद और प्रांतीयता की भावनाएँ ऐसी प्रबल होती जा रही हैं कि 'एक राष्ट्र जीवन की आशा' दुष्कर प्रतीत होने लगी है।[1] एक अन्य कवि ने भारतवासियो द्वारा पूजा राधना पर अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहा है कि उसने हम गुलाम बनाने की भूमिका अदा की है।[2] रामेश्वर करुण ने धम को वनानिक प्रगति के माग का रोडा बताते हुए प्रश्न किया है 'जिस हिन्दू धम ने महला के अल्हड लडको को अवतार' बताया है श्रमजीवियो को शूद्र बताकर सताया है तथा मानव-बुद्धि पर ताला लगाते हुए पाखडो का प्रचार किया है उस अधम को खान को तुम धम क्यो बताते हो?[3]

'करुण' ने विप्रो को धम का जाली ठेकेदार बताते हुए[4] मठ मन्दिर की माया ने क्या-क्या न अनथ कराये/पर ब धन के दल बादल हा हन्त! इन्ही के लाए'[5] के माध्यम से इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर इंगित किया है कि हिन्दू और बौद्ध धम के पारस्परिक विद्वेष का भी भारत के दासतापाश म निबद्ध होने के मूल मे पर्याप्त हाथ रहा है। मुसलमानो द्वारा बगाल पर आक्रमण किय जाने के समय रमाई पडित नामक बौद्ध तान्त्रिक द्वारा लिखे गये शून्यपुराण' म मुसलमानो को धम ठाकुर बताकर उनके द्वारा मन्दिरो के तोडे जाने पर आह्लाद व्यक्त करना, मठ मन्दिरो के इस विद्वेष भाव की पुष्टि करता है।[6] जयनाथ नलिन के अनुसार आज कल के युद्धप्रधान एव मानव घृणा के वातावरण म 'गीता, कुरान बाइबिल पुराण' नये विचारो की लहरो म थपडे खाते बहते जा रहे है, और उनके साथ ही 'जा रही धम की बही लाश। धम की लाश को देखकर 'पगम्बर कितना परेशान/गीता का स्रष्टा भी हताश/ईसा कबीर, जरदुश्त, बुद्ध' भी 'लख रहे अजल शव के समान निश्चल असफल।[7] वीरेन्द्र कुमार जैन ने भी इस भय से अस्पताल न छोडने की इच्छा व्यक्त की है कि लौटकर दोहराना होगा/वेद, उपनिषद गीता पुराण/बाइबिल और कुरान को तथा उन 'कृष्ण बुद्ध, महावीर क्रीस्त और मुहम्मद को/जो मन्दिरो, गिरजो, मसजिदो, मठो/और आश्रमो की बुनियादो मे दफन हो चुके

---

1 'मन्यकाल, पृ० 154

2 "प्रत्यक्ष साधना पूजा का परिणाम विश्व म हम गुलाम।
कूकर शूकर से डोल रहे हम दीन हीन मानव ललाम॥"
जयमानव', प्र० च० दी० ललाम, पृ० 129

3 'तमसा', पृ० 114

4-5 तमसा', पृ० 129, 119 6 दे० सस्कृति के चार अध्याय,' पृ० 209

7 'धरती के बोल', पृ० 44

समय ही'[1] होता है। केवल गोस्वामी के शब्दों में 'भगवान नाम की सृष्टि डाकुओं के चेहरे पर/मलमनसाहत का आवरण डालने के लिए हुई थी।'

(ख) धर्म, धर्मस्थल, पूजोपासना और संकीर्तनादि सम्बन्धी परिणत चेतना

आधुनिक काल में नीत्शे द्वारा ईश्वर की मृत्यु की घोषणा करके धर्म की मूल धुरी पर तो आघात किया ही गया है, स्वयं धर्म तथा उससे सम्बन्धित मन्दिर मस्जिद गिरजाघर आदि धर्मस्थलों, मूर्तिपूजा और ईश्वर के गुण-संकीर्तनादि अंगों के विषय में भी परम्परागत धारणाओं से पर्याप्त भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किया गया है और जैसा कि स्वाभाविक था, उक्त तथ्यों के विरोध से सम्बन्धित काव्योद्गारों में प्राय मार्क्सवादी विचार धारा से अनुप्रेरित कवियों की उक्तियों का रहा है। इस तथ्य की भी प्रखर भर्त्सना की गयी है कि धर्म के प्रमुख प्रतीक मन्दिर-मस्जिद आदि धर्मस्थल भोली जनता के शोषण के केन्द्र हैं तथा राजसत्ता के साथ धार्मिक-सत्ता की ऐसी सांठ गांठ रहती है कि वे दोनों एक-दूसरे के हितों का संरक्षण करते हुए जन शोषण में लिप्त रहते हैं। इसी प्रकार मध्ययुगीन धर्म की आत्म-साधना आत्मोद्धार वैराग्य आदि व्यक्तिवादी प्रवृत्तियों की भी तीव्र भर्त्सना करते हुए आधुनिक काल के कवियों द्वारा धर्म के जन हितवादी स्वरूप का समर्थन किया गया है।

पंत ने शिल्पी में धर्म की पंकिल दारु-मूर्ति को काल-कवलित होते चित्रित किया है। उसके सम्बन्ध में निंदापरक उद्गार व्यक्त करते हुए एक पात्र कहता है 'यह जीर्ण धर्म की दारु मूर्ति है। इस धर्म के सम्मुख भू जन युग-युगान्तर से प्रणत होते रहे हैं और इसने आकाश-बेलि जैसा तक जाल फैलाकर लोगों को पाप पुण्य में स्वर्ग-नरक' के चक्कर में उलझाये रखा था, तथा रक्तपात बहु हुए धरा पर इसके कारण।[3] लोकायतन में उन्होंने धर्म के दिन अब बीते का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि सम्प्रति धार्मिक आस्था विश्वास बाह्याचारों के स्थान पर मन मंदिर में वास करते हैं।[4] उन्होंने 'अपर लोक सुख कामी साधकों द्वारा योग तप-त्याग में लीन रहने के धर्माचरण को उनके सिर के बल चलने का प्रतीक बताकर उपहास किया है।[5] सत्यकाम में उन्होंने परम्परागत 'रूढ़ि रीतियों' में जकड़े जन-जीवन के पथरा जाने, उसके रेत का सागर बन जाने तथा पाप पुण्य के भय से जर्जरित हो जाने के प्रति चिन्ता व्यक्त करते हुए खेदपूर्वक कहा है

---

1 इतिहासहन्ता', पृ० 62   2 'बंद कमरों की संस्कृति, पृ० 11
3 'शिल्पी, पृ० 74 75
4 5 लोकायतन', पृ० 124, 88

कि धर्माचार्य और उनके अनुयायी धर्म के वास्तविक मर्म को समझने के स्थान पर शास्त्र-पुराणों की तोतारटंत में निमग्न रहते हैं फलत सम्प्रदायवाद और प्रांतीयता की भावनाएँ ऐसी प्रबल होती जा रही हैं कि 'एक राष्ट्र जीवन की आशा' दुष्कर प्रतीत होने लगी है।[1] एक अन्य कवि ने भारतवासियों द्वारा पूजा राधना पर अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति का विरोध करते हुए कहा है कि उसने हमें गुलाम बनाने की भूमिका अदा की है।[2] रामेश्वर करुण ने धर्म को वैज्ञानिक प्रगति के मार्ग का रोड़ा बताते हुए प्रश्न किया है जिस हिन्दू धर्म ने महलों के अल्हड़ लड़कों को अवतार' बताया है, श्रमजीवियों को शूद्र बताकर सताया है तथा मानव-बुद्धि पर ताला लगाते हुए पाखंड का प्रचार किया है उस अधर्म की खान को तुम धर्म क्या बताते हो?[3]

'करुण' ने विप्रों को धर्म का जाली ठेकेदार बताते हुए[4], मठ मंदिर की माया ने क्या-क्या न अनर्थ कराये/पर बंधन के दल बादल हा हन्त! इन्हीं के लाए'[5] के माध्यम से इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर इंगित किया है कि हिन्दू और बौद्ध धर्म के पारस्परिक विद्वेष का भी भारत के दासतापाश में निबद्ध होने के मूल में पर्याप्त हाथ रहा है। मुसलमानों द्वारा बंगाल पर आक्रमण किये जाने के समय रमाई पंडित नामक बौद्ध तान्त्रिक द्वारा लिखे गये 'शून्यपुराण' में मुसलमानों को धर्म ठाकुर बताकर उनके द्वारा मन्दिरों के तोड़े जाने पर आह्लाद व्यक्त करना, मठ मन्दिरों के इस विद्वेष भाव की पुष्टि करता है।[6] जयनाथ नलिन के अनुसार आज कल के युद्धप्रधान एवं मानव घृणा के वातावरण में गीता कुरान, बाइबिल पुराण नये विचारों की लहरों में थपेड़े खाते बहते जा रहे हैं, और उनके साथ ही 'जा रही धर्म की वही लाश। धर्म की लाश का देखकर पैगम्बर कितना परेशान/ गीता का स्रष्टा भी हताश/ईसा कबीर जरदुस्त बुद्ध भी 'लख रहे अचल शव के समान निश्चल असफल'।[7] वीरेन्द्र कुमार जैन ने भी इस भय से अस्पताल न छोड़ने की इच्छा व्यक्त की है कि 'लौटकर दोहराना होगा/वेद उपनिषद गीता पुराण/ बाइबिल और कुरान को' तथा उन 'कृष्ण', बुद्ध, महावीर क्रीस्त और मुहम्मद को/ जो मन्दिरों गिरजों मसजिदों, मठों/और आश्रमों की बुनियादों में दफ्न हो चुके

---

1 'नयपथ', पृ० 154

2 प्रत्यक्ष साधना पूजा का परिणाम, विश्व में हम गुलाम।
कूकर शूकर से डोल रहे हम दीन हीन मानव ललाम॥'
जयमानव', प्र० च० दी० ललाम, पृ० 129

3 'तमसा', पृ० 114

4 5 'तमसा', पृ० 129, 119 6 दे० संस्कृति के चार अध्याय' पृ० 209

7 'धरती के बोल', पृ० 44

समय ही'[1] होता है। केवल गोस्वामी के शब्दो म 'भगवान नाम की सृष्टि डाकुओ के चेहरे पर/भलमनसाहत का आवरण डालने के लिए हुई थी। [2]

(ख) धम, धर्मस्थल, पूजोपासना और सकीतनादि सम्बधी परिणत चेतना

आधुनिक काल म नीत्शे द्वारा ईश्वर की मृत्यु की घोषणा करके धम की मूल धुरी पर तो आघात किया ही गया है, स्वय धम तथा उससे सम्बधित मन्दिर मस्जिद गिरजाघर आदि धमस्थलो, मूर्तिपूजा और ईश्वर के गुण-सकीतनादि अगो के विषय म भी परम्परागत धारणाओ से पर्याप्त भिन्न दष्टिकोण व्यक्त किया गया है और जसा कि स्वाभाविक था, उक्त तथ्यो के विरोध म सम्बधित काव्योद्गारो म बाहुल्य माक्सवादी विचार धारा से अनुप्रेरित कवियो की उक्तियो का रहा है। इस तथ्य की भी प्रखर भत्सना की गयी है कि धम के प्रमुख प्रतीक मन्दिर-मस्जिद आदि धमस्थल भोली जनता के शोषण के केन्द्र हैं तथा राजसत्ता के साथ धार्मिक-सत्ता की ऐसी सांठ गांठ रहती है कि वे दोनो एक-दूसरे के हितो का सरक्षण करते हुए जन शोषण म लिप्त रहते हैं। इसी प्रकार मध्ययुगीन धम की आत्म-साधना आत्मोद्धार वराग्य आदि यक्तिवादी प्रवत्तियो की भी तीव्र भत्सना करत हुए आधुनिक काल के कवियो द्वारा धम के जन हितवादी स्वरूप का समथन किया गया है।

पत ने शिल्पी मे धम की पक्लि दारु-मूर्ति को काल-कवलित होते चित्रित किया है। उसके सम्बध म निंदापरक उदगार व्यक्त करते हुए एक पात्र कहता है 'यह जीण धम की दारु मूर्ति है। इस धम के सम्मुख भू जन युग-युगान्तर से प्रणत होत रहे है और इसने आकाश-बेलि जसा तर्क-जाल फलाकर लोगो को पाप पुण्य म स्वग-नरक' के चक्कर म उलझाये रखा था, तथा 'रक्तपात बहु हुए धरा पर इसके कारण। [3] लोकायतन मे उन्होंने 'धम के दिन अब बीते' का भाव व्यक्त करत हुए कहा है कि सम्प्रति धार्मिक आस्था विश्वास बाह्याचारो क स्थान पर 'मन मन्दिर म वास करते है।[4] उन्होने 'अपर लोक सुख कामी साधको द्वारा योग तप-त्याग' म लीन रहने के धर्माचरण को उनके 'सिर के बल चलने' का प्रतीक बताकर उपहास किया है।[5] सत्यकाम म उन्होने परम्परागत रूढि रीतियो म जकडे जन-जीवन के पथरा जाने, उसके रेत का सागर बन जाने तथा पाप पुण्य के भय से जर्जरित हो जाने के प्रति चिन्ता व्यक्त करत हुए खेदपूवक कहा है

---

1 इतिहासहन्ता, पृ० 62 2 बद कमरो की सस्कृति पृ० 11
3 शिल्पी पृ० 74 75
4 5 लोकायतन', पृ० 124, 88

कि धर्माचाय और उनके अनुयायी धम के वास्तविक मम को समझने के स्थान पर शास्त्र-पुराणो की तोतारटत म निमग्न रहते हैं फलत सम्प्रदायवाद और प्रांतीयता की भावनाएँ ऐसी प्रबल होती जा रही हैं कि 'एक राष्ट्र जीवन की आशा' दुष्कर प्रतीत होने लगी है।[1] एक अ य कवि न भारतवासियो द्वारा पूजा राधना पर अत्यधिक बल देने की प्रवृत्ति का विरोध करत हुए कहा है कि उसने हमे गुलाम बनाने की भूमिका अदा की है।[2] रामेश्वर करुण ने धम को वज्ञानिक प्रगति के माग का रोडा बताते हुए प्रश्न किया है जिस हि दू धम ने महुला के अल्हड लडको को अवतार बताया है, श्रमजीवियो को शूद्र बताकर सताया है तथा मानव-बुद्धि पर ताला लगाते हुए पाखडो का प्रचार किया है उस अधम की खान को तुम धम क्या बताते हो ? [3]

'करुण' ने विप्रो को धम का जाली ठेकेदार बताते हुए[4] मठ म दिर की माया न क्या-क्या न अनथ कराये/पर अ धन के दल बादल हा हन्त ! इन्ही के लाए'[5] के माध्यम से इस ऐतिहासिक तथ्य की ओर इगित किया है कि हिन्दू और बौद्ध धम के पारस्परिक विद्वेष का भी भारत के दासतापाश म निबद्ध होने के मूल में पर्याप्त हाथ रहा है। मुसलमानो द्वारा बगाल पर आक्रमण किये जाने के समय रमाई पडित नामक बौद्ध तान्त्रिक द्वारा लिखे गये शून्यपुराण' म मुसलमानो को धम ठाकुर बताकर उनके द्वारा मन्दिरो के तोडे जान पर आह्लाद व्यक्त करना, मठ मन्दिरो के इस विद्वेष भाव की पुष्टि करता है।[6] जयनाथ नलिन के अनुसार आज कल के युद्धप्रधान एव मानव घणा के वातावरण म 'गीता कुरान, बाइबिल पुराण नये विचारो की लहरो में थपेडे खाते बहते जा रहे है और उनके साथ ही 'जा रही धम की बही लाश'। धम की लाश का देखकर पगम्बर कितना परेशान/ गीता का स्रष्टा भी हताश/ईसा कबीर जरदुस्त, बुद्ध' भी लख रहे अवल शव के समान निश्चल असफल ।[7] वीरे द्र कुमार जन ने भी इस भय से अस्पताल न छोडने की इच्छा व्यक्त की है कि 'लौटकर दोहराना होगा/वेद उपनिषद गीता पुराण/ बाइबिल और कुरान को तथा उन कृष्ण, बुद्ध, महावीर, नीस्त और मुहम्मद को/ जो म दिरो गिरजो, मसजिदो मठो/और आश्रमो की बुनियादो म दफन हो चुके

1 स यकाम', पृ० 154

2 प्रत्यक्ष साधना पूजा का परिणाम विश्व म हम गुलाम।
कूकर शूकर से डोल रह हम दीन हीन मानव ललाम ॥"
'जयमानव', प्र० च० दी० ललाम पृ० 129

3 'तमसा पृ० 114

4 5 'तमसा' पृ० 129, 119 6 दे० सस्कृति के चार अध्याय' पृ० 209

7 'धरती के बोल', पृ० 44

हैं।'[1] कवि ने यह भाव भी व्यक्त किया है कि एक ओर तो लोग ईश्वर की मृत्यु हो जाने की धारणा को दोहराते हैं, जबकि वे ऐसे ईश्वर और मुक्ति की खोज में सलग्न हैं, 'जो शराब के प्याला और वेश्यालय म मिल जाय/कोई टेबल पर फ्लावर वाज की तरह सजा हुआ निवाण/कोई अध्यात्म कि जिसका द्वार/किसी रासायनिक तत्व म खल जाये।'[2] उन्होंने आचाय रजनीश द्वारा प्रवर्तित सभोग स समाधि' नामक दशन (जिसे सहजिया सम्प्रदाय का पुनरुत्थान कहा जा सकता है) के सिद्धान्तो म आस्था व्यक्त करते हुए इद्रिय-सयम पर बल देने वाल पुरातन दाशनिक मता की अवमानना करत हुए कहा है कि जो धर्माचाय देह के जानने म असमथ रहे' थे, वे ही उससे भिन्न/किसी आत्मा की खोज म गये हैं। जो इद्रियो के भोग को अनन्त नहा बना सके हैं 'वही लाचार होकर इद्रिया के दमन के माध्यम से 'मुक्ति की खोज म भटक गये हैं।' हाँ अब ऐसी स्थिति आ गयी है कि 'कल तथाकथित ब्रह्मचय का/द्राविणी प्रणायाम आउट मोटेड हो जायेगा और 'ब्रह्म की चर्या म लीन व्यक्ति/बलात्कारी और दमित ब्रह्मचय की फाँसी म/अपनी आत्मा को लटकाकर/अपनी रक्तवाहिनिया म प्रवाहित सृजक ब्रह्म की/पल-पल हत्या नहीं करेगा।'[3] सत्यनारायण श्रीवास्तव न आधुनिककालीन किसी तथा कथित धर्मात्मा पुरुष को वास्तव मे हो इसी प्रकार की धमचर्या म लीन दिखाया भी है, उधर/अनेक सस्थाओ के द्वार पर/लगे पत्थरा पर मेरा नाम खुदा है/बड बडे अक्षरो मे/और इधर रभाओ के बीच बठा/मुर्गी-कबाब के पीसज को/लम्बे लम्बे नुकीले दाँता से निचोडकर/इद्र सभा का आनद पाता हू। अपनी दाशनिकता के सम्बध म उन महाशय के उद्गार हैं अपने एयर कडीशड कमरे मे पिकासो/के चित्र क एक ओर ता काषाय धारण किये/तथागत का चित्र टाँग' रखा है जबकि उसकी दूसरी ओर माशूका को बाँहो म दबोचे/सुरापान करत उमर खय्याम' का तथा 'यह है मेरी/शाम से सुबह तक की दाशनिकता। कवि की भी उचित ही यह टिप्पणी है कि 'जी हाँ यही है आज के बडे लोगा के समवय की वास्तविकता।[4] जहाँ तक देवी देवताओ की नत्यिक पूजोपासना का सम्बध है, अचल राजपूत के यह उदगार शिक्षित वग के अधिसख्य लोगो की तत्सम्बधी स्थिति की बानगी प्रस्तुत करते है कि जिस कलेण्डर पर चित्रित है/कोई वसीधर कामुक युवक/किसी मधुबाला की अधनग्न देह स/करता खिलवाड सा/वह कलेण्डर टँगा है/मेरे घर की दीवार पर/करता हुआ विज्ञापन/मेरी कृष्ण भक्ति का।[5] कहना न होगा कि महानगरीय जीवन म इस परम्परागत आदश की कि घर म देवालय भी होना चाहिए सम्प्रति इसी रूप म ही लकीर पीटी जाती है कि या तो

1-3 'शून्य पुरुष और वस्तुए पृ० 183 184 111
4 'उदगम', सक०, पृ० 186 5 'क्षितिज की खोज', पृ० 26

शो केस (दिवाल) मे देवी-देवताओ की मिटटी या धातु निर्मित मूर्तिया रख ली जाती हैं अथवा उनके चित्रयुक्त कलेण्डर टाग लिए जाते है।

अन्य कवियो म से भवानीप्रसाद मिश्र ने धम को राजनीतिज्ञो द्वारा भ्रष्ट कर देने का उल्लेख किया है[1] तो नीरज के शब्दा मे 'हैं काप रही मन्दिर, मस्जिद की मीनारें/गीता कुरान के अथ बदलते जाते हैं।[2] रामदरश मिश्र ने चोर-बाजारिया को भगवान की खोखली मूर्ति म/पसे भरकर रखत दिखाया है[3] तो शमशेर बहादुर सिंह ने 'धम की दुल्हन को काले बाजार म' मिलते दिखाकर[4] धम और चोरबाजारियो के अभिन्न सम्बन्ध को उभारा है। उन्होने कीतना की सक्रामक प्रथा को 'खाली राम नाम के सम स्वरा द्वारा 'अन्तर को खाली' करना बताते हुए यह आक्रोश व्यक्त किया है कि 'क्षार क्यो न हो जाय/सकल हिन्दुत्व वह/आज नाम को राम भजकर/पूजता/जो अपना कलक तन।[5]

कुछ अधिक ही प्रगतिशील कविया म से सरस वियोगी का आह्वान है—'तोडो फाडो, देव मन्दिरो का जाना अब बन्द करो।[6] सी० डी० एम० केटलबी ने दिखाया है कि ईसाई मिशनरिया के दुष्प्रचार से प्रेरित होकर जापानी युवकों न अपने परम्परागत शिटो धम के पूजा-स्थलो क प्रति घणा की आंधी मे उडते हुए पैगोडाओ को आग लगाकर नष्ट करना शुरू कर दिया था।[7] कदाचित् माक्सवाद की धम विरोधी भावनाओ के प्रवाह म बहते हुए इसी प्रकार का आचरण हमारे कवि कृष्ण कुरडिया भी—कम से कम अपने मानसिक जगत मे तो—कर ही चुके हैं—'मैंने तोड दिये है/अपने नगर के सभी मन्दिर/और उतार दी हैं/वे सभी मूर्तियाँ/जो लटका दी गयी थी मेरे गले म।[8] इसी प्रकार शिशु रश्मि ने मन्दिरो म विनानशालाएँ चलाते हुए राम और कृष्ण की मूर्तिया को ढलते हुए लाहे म गला पिघलाकर/एक नये साज का निर्माण' करने की इच्छा व्यक्त की है[9] तो चचल चौहान के प्रसाद और चरणामृत के सम्बध मे उद्गार हैं—'वाकइ प्रसाद की चीज न हलवा हैं न दूध/साफ-साफ रखा है जन-मास का लोथडा/दोने म गाढा खून।'[10] इस धमविरोधी चेतना के फलस्वरूप ही ललाम' न तो परम आस्तिक गाधीजी के मुख से भी कालमाक्स की यह धारणा व्यक्त करा दी है कि यह धम मूर्खों की अफीम, शतवार दूर से नस्कार।[11] कहना न होगा कि अभी जन-सामान्य

1 'त्रिकाल सध्या', पृ० 137 2 'प्राण गीत' पृ० 61
3 'पक गयी है धूप' पृ० 94 4 5 चका भी नही हूँ मैं, पृ० 28, 86-87
6 'चुनौती', पृ० 42
7 'आधुनिक जापान का इतिहास' अनु० विश्वप्रकाश, पृ० 688
8 'दिविक', सक०, पृ० 12 9 'कलम से कटा हुआ सूरज' पृ० 17
10 'प्रहार स्याह रात पर', सक०, पृ० 28 11 'जयमानव' पृ० 55

की धर्मविषयक चेतना पर उपर्युक्त काव्योद्गारों में व्यंजित धारणाओं का कुछ भी प्रभाव परिलक्षित नहीं होता अर्थात वे बौद्धिक विलास मात्र ही हैं।

मूर्तियों, मन्दिर-मस्जिदों तथा कीर्तनादि की निन्दा सम्बन्धी पीछे उद्धृत उक्तियाँ अधिकांशतः नास्तिक तथा मार्क्सवादी विचारधारा से अनुप्रेरित कवियों की हैं। हाँ आस्तिक कवियों ने भी इन तथ्यों का विरोध किया है कि दर्शनार्थियों से शुल्क लिया जाये अथवा नीची जातियों को मन्दिर प्रवेश का अधिकार न दिया जाये। यह तथ्य युग चिन्तन के हावी होने का ही प्रमाण है कि मैथिलीशरण गुप्त जैसे आस्तिक कवि ने भी 'दर्शनार्थ जिसके, देवें कुछ रौप्यखंड आज्ञापत्र लेना हो/ वह न दीश्वर है या बन्दी तुच्छ नर का/राजा या पुजारी फिर कोई वह क्या न हो?'[1]—जैसे उद्गारों के साथ ही शिवलिंग को राज्य और पंडितों द्वारा 'लाखों कमाने की माध्यम पत्थर की पिंडी'[2] बताकर क्षोभ व्यक्त किया है जो गुप्तजी के स्थान पर किसी मार्क्सवादी कवि के उद्गार प्रतीत होते हैं। दिनकर ने 'धन पिशाच की विजय धर्म की पावन ज्योति विलीन हुई'[3] की स्थिति पर चिन्ता व्यक्त की है जबकि पन्त ने एक ओर तो मूर्ति-पूजा का यह तर्क देकर विरोध किया है 'प्रतिमा पूजन मृत आदर्शों का पूजन भर है/धर्म भीरु दुर्बल जन जिनको/उर से चिपकाये हैं स्वर्ग-नरक के भय से।'[4] दूसरी ओर उन्होंने प्रतिमाओं को संस्कृति और कला के जीर्ण प्रतीक मात्र' बताते हुए कहा है 'प्रतिमाओं के सम्मुख नत मस्तक होना/अपमानित करना है मानव आत्मा को।'[5] बहुत कुछ इसी प्रकार की धारणा बच्चन ने भी व्यक्त की है 'प्रतिमाएँ/मन्दिर से उठकर म्यूजियम में आ गयी हैं/अब उन्हें पूजा नहीं/देखा परखा जाता है/अब मूर्तियों का नहीं/मूर्तिकार का गुण गाया जाता है।'[6] कवि-समाज के एक वर्ग द्वारा मूर्ति पूजा तथा धर्म विरोधी प्रबल वातावरण का निर्माण करने की चेष्टा किये जाने पर भी, वस्तुस्थिति प्रायः उसी प्रकार की है जो बच्चन के इन उद्गारों में मुखरित हो रही है 'तुमने/प्रतिमा का सिर काट लिया/पर लोगों ने उस सिर झुकाना नहीं छोड़ा है/तुमने मूर्ति को तोड़ा/लोगों की आस्था को नहीं तोड़ा है/और आस्था ने/बहुत बार/कटे सिर को धड़ से जोड़ा है।'[7]

(ग) नर में नारायणत्व तथा धरा पर ही स्वर्ग होने सम्बन्धी चेतना

दार्शनिक स्तर पर तो 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' या 'अहं ब्रह्मास्मि' के रूप में जीव को ही ब्रह्म समझने की धारणा प्राचीन काल से ही प्रचलित रही है किन्तु भगवान

---

1 2 सिद्धराज, पृ० 1/15, 1/24 3 रेणुका' पृ० 19
4 5 शिल्पी', पृ० 31 31
6 7 'उभरते प्रतिमानों के रूप', पृ० 147, 148

की झलक मठ-मन्दिर या मस्जिद के स्थान पर दीन-दलित-श्रमरत मानवो मे देखने की चेतना आधुनिक काल की लोकपरक जीवन दृष्टि का ही प्रतिफलन कही जा सकती है। इसी प्रकार आत्मोद्धार की अपेक्षा समष्टि के कल्याण पर बल देने की चेतना भी आधुनिक काल मे मानवतावादी विचारधारा के प्रबल होते जाने का परिणाम कही जा सकती है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'मैं ढूढता तुझे था जब कुज और वन म' से आरम्भ होने वाली कविता मे इसी तथ्य को रेखाकित किया है कि भगवान वन, निकुज या मन्दिरो के स्थान पर पतित असहाय लोगो के मध्य निवास करता है।[1] स्वप्न शीर्षक काव्य मे भी उन्होंने एसी ही धारणा व्यक्त की है, 'निस्सहाय निरपाय जहा है बठे चिन्तामग्न दीन जन/उनके मध्य खडे हरि के पद पकज के मिलते हैं दशन।[2] आधुनिक काल म लोक-सेवा सबधी चेतना की प्रबलता के कारण ही हरिऔध की राधा 'व्यापी है विश्व प्रियतम म, विश्व म प्रिय हमारा'[3] की धारणा व्यक्त करते हुए दीन-दलित निराश्रिता की सेवा को ही अपना जीवन ध्येय बना लेती है।[4] बलदेवप्रसाद मिश्र ने भी राम से शबरी को यह उपदेश दिलाया है 'लोक-सेवा ईश-सेवा, एक पथ दो नाम।[5] सियाराम शरण गुप्त ने कठोर श्रम करके भी जजर कुटिया म निवास करने वाले श्रमिको के वग के विषय म यह भविष्यवाणी की है 'नया इन्द्र पद इमके हित ही विरचित है निसशय।[6] पन्त ने यह विचार व्यक्त किया है कि चाहे मन्त्र-तन्त्र चित्त के ऊध्व सोपान भले ही हो किन्तु भू-जीवन ही ईश्वर का घर है।[7] उन्होंने इस दृष्टि से चिन्ता व्यक्त की है कि भारतीय ग्रन्थो के ईश्वर के पूजक हैं और दरिद्रो-श्रमिको रूपी 'जीवित ईश्वर से सपक न उनका स्थापित।[8] दिनकर ने तो स्पष्ट शब्दो मे यह घोषणा की है 'आरती लिए तू किसे ढूढता है मूरख/मन्दिरो राजप्रासादो तहखानो मे? दवता कही सडको पर गिट्टी तोड रहे/देवता मिलेंगे खेतो मे खलिहानो मे।[9]

नर म नारायण विषयक चेतना के अनुरूप ही परम्परागत नारायण के अवतार राम और कृष्ण म नरत्व की चेतना आधुनिक काल की नवीन दृष्टि की देन है। इस नवीन धारणा के कारण ही मथलीशरण गुप्त जसे आस्थावादी कवि को भी 'राम तुम मानव हो ईश्वर नही हो क्या?' की जिज्ञासा व्यक्त करनी पडी है जबकि बलदेव प्रसाद मिश्र ने 'मानव भी श्रीराम हैं अतिमानव भी राम/उसी रूप मे वे

1 'आधुनिक कवि रामनरेश त्रिपाठी', पृ० 2
2 स्वप्न, पृ० 29
3-4 प्रियप्रवास पृ० 16/112 17/68
5 'रामराज्य, पृ० 77
6 'दैनिकी' पृ० 17
7 8 'किरणवीणा' पृ० 215, 230
9 'धूप और धुआँ', पृ० 71

सुलभ, जिसको जिससे काम[1] की धारणा व्यक्त की है। पंत ने राम को स्व प्रजा के हित कामी शासक के रूप मे चित्रित करते हुए उनका सम्बन्ध 'नव कृषि संस्कृति के विकास[2] के साथ जोडा है, तो एक अन्य कवि ने उनकी दिव्य उत्पत्ति के सम्मुख प्रश्न चिह्न लगाते हुए कहा है, 'इस घोंघे की टट्टी को कौन भेदे' कि 'मुनि शृंगी के फलो से नही उपजती संतानें।'[3] रघुवीरशरण मित्र ने तो राम को रावण की भी अपेक्षा गया-बीता राज्य-लोभी प्राणी दिखाते हुए, रावण के मुख से कहलाया है रामचन्द्र के गुण गा गा रामायण रचने वालो/खुली अदालत मे रावण से आकर आँख मिला लो।'[4] सीता की अग्नि-परीक्षा को वह अपने चरित्र की परीक्षा बताते हुए राम से प्रश्न करता है 'जो अवतार/राज्य करते ही क्या तन धर कर आये थे? अन्यथा 'उत्तर दो क्यो राज्य न छोडा सीता से मुँह मोडा?'[5] श्रीकृष्ण को भी हरिऔध ने परिणत युग बोध के अनुरूप एक उत्साही जाति और मातृभू रक्षक-सेवक के रूप मे चित्रित करते हुए— स्वजाति औ जन्मधरा निमित्त मैं/न भीत हूँगा विकराल-व्याल से'[6] —उन्हें एक नृ रत्न अर्थात श्रेष्ठ मानव बताया है सारे अपूर्व गुण है हरि के बताते/सच्चे नररत्न वह भी इस काल के है।'[7]

अन्य कवियो मे नवीन ने निर्धन दलित वर्ग के स्वयं ही ईश्वर होने के तथ्य का आख्यान करते हुए कहा है छोड आसरा अलख शक्ति का ? नर, स्वयं जगत्पति तू है/तू यदि जूठे पत्ते चाटे तो तुझ पर लानत है थू है।[8] नीरज ने 'ब्रह्मसत्य जगन्मिथ्या' के सिद्धान्त का विरोध करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि 'भाई! यह दर्शन सन्त महन्तो का है बस/तुम दुनिया वाले हो दुनिया से प्यार करो/जो सत्य तुम्हारे सम्मुख भूखा नंगा है/उसके गाओ तुम गीत उसे स्वीकार करो।[9] कवि ने यह भाव भी व्यक्त किया है कि मठ-मन्दिरो मे तो उसका मस्तक पत्थरो के सम्मुख कभी नही झुक सका था जबकि जन जनार्दन की चरण रज किन्तु जब शिर पर चढाई/मिल गया मुझको सहज उस धूल मे भगवान मेरा।[10] मुख्तारसिंह दीक्षित ने कंधे-से-कंधा मिल जाये भारत भू को स्वर्ग बना दो/भूखा नंगा पड़ा झोपडी मे भगवान पुकार रहा है'[11] के रूप मे जनता को ही जनार्दन समझने की धारणा को मुखरित किया है तो मलखानसिंह सिसोदिया के भी उद्गार हैं माटी बन जाये पूजा, पसीना गंगा जल/श्रम मन्दिर निर्मित हो शोषण के ढहे महल।'[12] उन्होने उन हाथो को चूमने का उल्लेख किया है जिनसे दुर्गन्ध

---

1 'रामराज्य पृ० 11 2 'ग्राम्या' पृ० 59
3 'बन्द कमरो की संस्कृति' केवल गोस्वामी पृ० 11
4 5 भूमिजा' पृ० 24 23 6 7 प्रियप्रवास 11/25, 12/78
8 'हम विषपायी जनम के', पृ० 494 9 10 प्राणगीत पृ० 25 19
11 जयभारत', पृ० 137 12 दीवारो के पार', पृ० 15

पसीने की आती[1] है, क्योकि उन्ही के शब्दो मे वे हाथ सृजक पालक, सहारक'[2] के रूप म ब्रह्मा विष्णु महेश की देवत्रयी के कर्त्तव्यो का निर्वाह करते हैं। गोपाल-शरण सिंह ने भी यदि है जग म ईश्वरता/तो है मनुष्यता मे ही[3] की धारणा व्यक्त की है। इसी प्रकार इस धरा पर ही स्वग की स्थिति होने की चेतना भी व्यक्त की गयी है। मथलीशरण गुप्त के राम इस 'भूतल को स्वग बनाने आया' की कामना व्यक्त करते हैं जबकि उन्होंने स्वग और धरा की समतुल्यता सिद्ध करते हुए कहा है—'ऊचे रहे स्वग नीचे भूमि को क्या टोटा है?/मस्तक से हृदय कभी क्या कुछ छोटा है।'[4] दिनकर न रश्मिरथी में धरा के समक्ष स्वग तथा कण के समक्ष इन्द्र को परास्त दिखाकर—'आज तुला पर भी नीचे ही नही स्वग है ऊपर' तथा 'हुई परीक्षा पूण सत्य ही नर जीता सुर हारा'[5]—वसुधरा और नरत्व को गौरवान्वित किया है। पन्त ने नास्तिक चाल्स डार्विन को वज्ञानिक श्रमिको के माध्यम से नरक-तुल्य धरा को स्वग मे परिणत करते दिखाया है 'यह निश्चेतन नरक/नये चतन्य स्वग मे/सित परिणत हो सका/मुक्त धार्मिक यामा से।'[6] श्रीकृष्ण सरल के शब्दो म भी आधुनिक मानव का 'किसी स्वग की सुखद कल्पना म विश्वास नही है अपितु 'सौ-सौ स्वग उतार धरा पर, आज चला वह लाने।'[7] इसीलिए उसे स्वग पाने की कोई इच्छा ही नही है।[8]

(घ) नेताओ के दवीकरण तथा नवीन तीर्थस्थलों सम्बन्धी चेतना

आधुनिक काव्य म कतिपय युग-पुरुषो को ईश्वर का अवतार समझने तथा स्वतन्त्रता-सग्राम स सम्बन्धित स्थला को तीथ-स्थल समझने की धारणा भी व्यजित हुई है। गाधीजी को इतने अधिक कवियो ने देवता या ईश्वर का अश कहा है कि उनके सम्बन्ध म सुप्रसिद्ध वज्ञानिक आइन्सटीन की यह भविष्यवाणी किन्ही अशा म अभी स ही सच हो गयी लगती है कि भविष्य मे लोग इस तथ्य का मुश्किल से विश्वास कर पायेंगे कि गाधी उन जसे ही दो हाथ-परो वाले इन्सान थ। उदाहरणाथ पत न गाधीजी की मृत्यु क सदभ मे कहा है 'अतर्धान हुआ फिर देव विचर धरती पर/स्वग रुधिर से मत्य लोक की रज को धाकर।' उन्होंने देवपुत्र था वह जन-मोहन मोहन/सत्य चरण धर जो पवित्र कर गया धरा कण' के साथ ही यह भाव भी व्यक्त किया है कि उनके साथ राम, कृष्ण, चतन्य, मसीहा, बुद्ध और मुहम्मद विचरण करत थे।[9] दिनकर के उद्गार हैं 'बापू,

1-2 दीवारो के पार, पृ० 37, 38
3 सागरिका पृ० 80
4 नहुष', पृ० 27
5 'रश्मिरथी', 4/61 62
6 किरणवीणा', पृ० 176 78
7 8 'राष्ट्रभारती', पृ० 216, 256
9 खादी के फूल', सन०, पृ० 8

वलि का कृष्ण, विकल आया आँखा म नीर लिए/थी लाज द्रौपदी की जाती ले गाव-सा दौड़ा चीर लिए।[1] गाधीजी की अर्थी के विषय म उन्होंने 'यह अवधपुरी य राम चले, वृन्दावन व घनश्याम चले/शूली पर चढ़कर चले ग्रस्ट/गौतम प्रबुद्ध निष्काम चले'[2] लिखकर बापू को राम कृष्ण ईसामसीह और गौतम बुद्ध की श्रेणी म स्थान प्रदान कर दिया है। अन्य कवियो म बच्चन,[3] नरेन्द्र शर्मा[4] शि० म० सिंह सुमन[5], भवानीप्रसाद मिश्र,[6] गोपालशरण सिंह[7] और श्रीकृष्ण सरल[8] आदि कवियो न भी गाधीजी के देवत्व मे आस्था व्यक्त की है। गाधीजी से सम्बधित स्थला जस 'दिल्ली की भगी बस्ती'[9], वर्धा तथा सवाग्राम[10] को आधुनिक तीर्थ स्थल घोषित करत हुए इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गयी है कि चूंकि 'ईश्वर क अश ने किया है यहाँ निवास अत आत्मा का यहाँ है परमोज्ज्वल प्रकाश।'[11] श्यामनारायण पाडय न महारानी पद्मिनी द्वारा जौहर करन की स्थली चित्तौड के सम्बन्ध म तीर्थराज चित्तौड दखन को मेरी आँखें प्यासी का भाव व्यक्त करते हुए लिखा है— जहाँ पदिमनी जौहर व्रत कर चढ़ी चिता की ज्वाला पर/क्षण भर वही समाधि लगेगी, बठ इसी मृगछाला पर।[12] सास्कृतिक दृष्टि से यह तथ्य सवथा उचित है कि कवि ने हिन्दुओ को इस तथ्य क लिए लताड़ा है पर वहाँ किसी हिन्दू न छतरी भी नही बनायी/धिक हिन्दू मृत वभव पर, तत्काल रुलायी आयी।[13] तीर्थस्थल की पावनता स/कारागार हुए मडित,[14] अथवा 'मेरी पूजा हेतु पुजारिन मन्दिर कल फाँसी घर होगा'[15] के रूप म स्वाधीनता-सनानियो और क्रातिकारियो द्वारा कारागारो और फाँसीघरो को तीर्थस्थल समझन की चेतना के साथ-साथ यह धारणा भी व्यक्त की गयी है कि अब मन्दिरो मे शहीदो की पूजा हुआ करेगी 'वीर यतीन्द्रनाथ के मन्दिर बन जायेंगे डगर डगर म/बिस्मिल लहरी, खुदीराम के, मन्दिर होंगे नगर-नगर म।'[16]

मार्क्सवादी चिन्तन म धम को अफीम कहकर निंदा की गयी है किन्तु जसा

---

1 2 बापू' पृ० 21 38
3 'सूत की माला पृ० 164 4 रक्तचदन', पृ० 36
5 पर आँखें नही भरा, पृ० 105 6 गाधी पचशती, पृ० 13
7 'जगदालोक पृ० 337 8 'राष्ट्रभारती, पृ० 463
9 प्रभाती, सो० ला० द्विवेदी पृ० 82 83
10 सेवाग्राम, सो० ला० द्विवेदी, पृ० 151
11 प्रभाती सो० ला० द्विवेदी पृ० 82 23
12 13 'जौहर', पृ० 5 247
14 जननायक र० श० मिश्र पृ० 161
15 16 परतन्त्र', र० श० मिश्र, पृ० 73 34

कि अक्सर होता आया है स्वयं मार्क्सवादियों के लिए भी 'लेनिन' और 'माओ' के विचार एक प्रकार से ब्रह्म-वाक्य ही बन गये हैं। यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि मार्क्सवादी मत या सम्प्रदाय में दीक्षित लोग अन्य मतावलम्बियों की अपेक्षा कहीं अधिक कट्टर और सकीर्ण मनोवृत्ति के हैं जो नये मुल्ला द्वारा अल्ला अल्ला पुकारते रहने की लोकोक्ति को चरितार्थ करता है। जहाँ तक मूर्ति-पूजा का सम्बन्ध है अवसर विशेषों पर लेनिन के सुरक्षित रखे गये शव अथवा उनकी समाधि के दर्शन के लिए नर-नारियों की मीलों लम्बी कतारें हिम-वर्षा सहती प्रतीक्षा करती हैं जो भारत के कट्टर मूर्तिपूजकों द्वारा 'तिरुपति' या 'वैष्णोदेवी' के मन्दिरों में दर्शनार्थ दिखाये गये धैर्य से भी बढ़कर ही है। कुछ लोगों को मार्क्सवाद की धार्मिक मतों से तथा लेनिन की समाधि की भगवद् मूर्तियों से समता करने पर उचित ही एतराज हो सकता है किन्तु राम-कृष्ण-बुद्ध ईसा-कबीर की भाँति किसी महान पुरुष को अपना त्राता और संरक्षक मानकर उसकी पूजा करने लगने उसके प्रति श्रद्धा भाव प्रदर्शित करते हुए उसके कथनों विचारों को ही सत्य समझने की धार्मिक-जैसी प्रक्रिया लेनिन के सदर्भ में भी सक्रिय हो उठी है। शिवमंगल सिंह सुमन के लेनिन की समाधि विषयक उद्गारों में यह धार्मिक श्रद्धा भाव स्पष्टतया ही मुखरित हो उठा है 'धीमे चलो धीमे चलो/पलकें झुकाये रहो/मंदिर प्रवेश में विनम्र मौन होता है/दुनिया के दलितों प्रपीड़ितों और शापितों का/रक्षक, उद्धारक यहाँ सोता है'[1]। यह तो सत्य है कि लेनिन का 'कोई धर्म जाति या बिरादरी विशेष नहीं थी' और वे 'मानवता के मुक्तिदूत अग्रदूत' थे। सुमनजी का यह विचार भी उचित ही है कि 'यहाँ कोई मंदिर नहीं/मसजिद नहीं/गिरजा नहीं' है किन्तु इस सम्बन्ध में क्या कहा जायगा जब वे स्वयं ही 'फिर भी है अपार भीड़ भक्तों की' के रूप में लेनिन के भक्तों का उल्लेख करते हैं और क्रेमलिन के 'लाल चौक' को 'चाहे देश-जाति धर्म-वर्ण रंग के भेद भावों से मुक्त मनुजों की सतानों का ही सही, विश्व का महान तीर्थ'[3] घोषित करते हैं। यदि राम-कृष्ण को छोड़ भी दिया जाये तो गौतम बुद्ध ईसामसीह या कबीर के प्रति आरम्भ में लेनिन की भाँति ही मुक्ति-दूत के रूप में श्रद्धा व्यक्त की गयी होगी जबकि धार्मिक प्रक्रिया में वे अतत वर्ग विशेषों के आराध्य ही बन गये हैं। स्थूल रूप में इतना तो कहा ही जा सकता है कि रूस में एक ही पार्टी का वर्चस्व होने के कारण लेनिन के प्रति गांधीजी से भी बढ़कर श्रद्धा व्यक्त की जाती है यह दूसरी बात है कि गांधी जी के प्रति सम्मान को उनकी पूजा कहा जाये जबकि कामरेड लेनिन के प्रति श्रद्धा भाव को समानता और भाई चारे के भाव की अभिव्यक्ति। इतिहास गवाह है कि यह वीर-पूजा की प्रवृत्ति ही अतत धर्म

1 3 'मिट्टी की बारात' पृ० 100 101, 102

का बाना धारण करती रही है।

(ड) साधु संत और पंडे पुजारियों की निंदा

जन सामान्य में प्रचलित इस लोकोक्ति 'करें चाकरी आवें खोर सब त भर भोग के रोट' से स्पष्ट होता है कि साधु-सन्तों को सामाजिक जीवन पर निठल्ले लोगों का निरर्थक भार समझने की धारणा पनप रही थी। आधुनिक काल के काव्य में प्राय सभी कवियों के साधु-संत और पंडे-पुजारियों सम्बन्धी उद्गार निंदापरक ही हैं। हरिऔध ने जन सामान्य की पीर के प्रति उपेक्षा भाव रखने वाले साधुओं के विषय में कहा है वे जती हैं न अपितु बड़े दागी' हैं। इसी प्रकार कान जिनके फटे न परन्तु रु सुन/वे कभी हैं न कनपटे जोगी। उन्होंने ऐसे साधुओं को 'संतपन के काल' बताया है जो 'राख तन पर मले चढ़ाय भग/लाल आँख विष चढ़ाये वाले[1] घूमते फिरते हैं। उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि हम दुर्व्यसनग्रस्त साधु नहीं अपितु देश और जाति के हित में अपना जीवन समर्पित करने वाले साधु चाहिए।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने साधुओं-पंडे-पुजारियों की स्वर्ग के ठेकेदार कहकर निन्दा करते हुए कहा है कि नित्य कर्म न एक ऐसा हो म जो उनका किया।' ये लोग आप तो हैं ही पतित कामी कुपथगामी बड़े/पर पाप के भागी हम भी है बनाने को खड़े।' तीर्थयात्रा करने जाएं तो मंदिर विकृतियों से भरे मिलते हैं। कितनी शर्म की बात है कि अड्डे अखाड़े बन रहे हैं ईश के आवास भी। पुण्य के केन्द्र समझे जाने वाले मठ मन्दिर भ्रष्टाचार के अड्डे बने हुए हैं और उनमें हैं देव आप महन्तजी ही देवियाँ हैं दासियाँ। यही शोचनीय दशा है कि अब मन्दिरों का काम रामजनियों (देवदासियों) के बिना नहीं चल पाता उनमें अश्लील गीत गाये जाते हैं और राधा-कृष्ण की पुरातन लीलाएँ भ्रष्ट रूप में दुहराई जाती हैं—

'वे चीर हरणादिक वहाँ प्रत्यक्ष लीला जाल हैं/भक्त स्त्रियाँ है गोपियाँ गोस्वामि ही गोपाल हैं।'[3] गुप्तजी ने साधु-संतों को देशोद्धार के कार्यों के प्रति उदासीन बताते हुए क्षोभपूर्वक कहा है कि धूर्त पाखंडी और भंड (भाँड) लोग साधुता का ढोंग कर रहे हैं।[4]

पंत ने भारत के जनसामान्य के विषय में कहा है कि वे पले अंधविश्वासों में गत बने कूप-मंडूक सनातन।[5] उन्होंने ग्रामों में पुजने वाले पंडित पंडे, ओझा और साधु-संतों को यथानाम ग्राम्य-देवता कहकर सम्बोधित करते हुए उनके

---

1 चुभते चौपदे', पृ० 122 2 पद्य प्रसून पृ० 45

3 भारत भारती पृ० 127/92-96 4 हिन्दू' पृ० 134 35

5 'लोकायतन', पृ० 48

विषय म घृणापूर्वक कहा है कि 'सुबह शाम विजया, महुआ ताडी, गाँजा पीकर/ समाधिस्थ तुम रहो, तुम्हे जग से न काम। कवि ने उन्हें पशुओ मे कुत्सित बहु नारी सेवी आदि दुर्गुणो म युक्त बताते हुए कहा है कि तुम्हे 'रूढि रीति की खा अफीम/चिर निद्रा म लीन हो जाना चाहिए।[1] बलदेव प्रसाद मिश्र ने सन्यास के सम्बन्ध म यह परिणत धारणा व्यक्त की है कि 'आज म लोक सेवा करे अवैतनिक रूप म/जो व्रती हो सदाचारी वही सन्यास योग्य है।[2]

(च) गो रक्षा सम्बन्धी परिणत चेतना

मध्ययुगीन वीरकाव्य प्रणेताओ ने 'गो विप्र और सन्तो' की सुरक्षा को एक स्वर से राज धर्म घोषित किया है। आधुनिक काल की बदली हुई परिस्थितियो म विप्र और सत तो अपनी महत्ता खो ही बैठे है, गाय' की भी सास्कृतिक दृष्टि म पहली जैसी महत्ता नही रह गयी है। यही कारण है कि सातवें दशक म साधु-सन्तो और हिन्दुओ द्वारा गोहत्या-बन्दी' के प्रश्न को लेकर किये गये सरकार विरोधी भयकर प्रदर्शनो के सम्बन्ध म कवियो ने मिश्रित चेतना व्यक्त की है—अर्थात कुछ कवियो ने उनकी निन्दा भी की है। गो-हत्या बन्द किये जाने की माँग हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान के समर्थक प्रतापनारायण मिश्र द्वारा जिन शब्दो म की गयी है उनम मुसलमान और ईसाई दोनो को ही आडे हाथो लिया गया है।[3] उन्होने अपनी एक होली म भी हिन्दुओ को धिक्कारते हुए लिखा है कहे गऊ को माता तिनकी दुरगति देखें रोज/लाज धरम और धरम करम का इनम नाही खोज/भला इम हिन्दूपन पर लानत है।[4] अन्य कवियो म स हरिऔध, शकर म० श० गुप्तादि कवियो ने गोहत्या का तीव्र विरोध किया है जबकि शील, पत और केवल गोस्वामी ने इस माँग की निरर्थकता को उभारा है। हरिऔध ने गोमुत गात विभूति स अनराशि उदभूत है/भारतीय गौरव सकल गो गौरव सम्भूत है[5] की धारणा व्यक्त की है, तो नाथूराम शर्मा शकर ने सुरभी न घटें न अनाज घटे, के तथ्य पर बल दिया है।[6] गो-वध के विरोध म सर्वाधिक प्रखर स्वर मथिलीशरण गुप्त का रहा है। उन्होंने गो-वश पर ही किन्तु है यह देश अवलम्बित सदा' का भाव व्यक्त करते हुए विषादपूर्वक कहा है कि गाय और बैलो के वध के कारण एक ओर तो भूमि वध्या हो रही है जबकि घी-दूध दुर्लभ' हो जाने के कारण बल-धान्य की जडें कट रही' हैं। स्थिति यह है कि 'गो-वश के उपकार की सब ओर आज पुकार है/तो भी यहाँ उसका निरतर हो रहा सहार

---

1 ग्राम्या' पृ० 60 61 2 रामराज्य पृ० 131
3 4 प्रतापनारायण मिश्र ग्रथावली' प्र० भाग पृ० 59, 7
5 मर्मस्पर्श', पृ० 172 6 'अनुराग रत्न', पृ० 4

है।'[1] आंग्ल सरकार द्वारा सागर जिले के रतौना नामक कस्बे में कसाई-खाना बनाने की घोषणा का विरोध करते हुए सुभद्राकुमारी चौहान ने लिखा था, उधर गो भक्त कहाता देश, इधर ये लाखों गायें कटें/उधर करती वैतरणी पार/इधर ये हाय छुरी से छटें।'[2] अक्षय जैन ने मानव की इस कृतघ्नता का बड़ी वितृष्णा पूर्वक उल्लेख किया कि हम गायों का दूध पीते हैं उनका मांस खाते हैं उनकी हड्डियों पसलियों के बटन बनाते हैं फिर भी हमें 'इस बात का बहुत दुख है कि तुमको काटते समय/तुम्हारी चीख का उपयोग नहीं हो पाता।'[3]

केवल गोस्वामी ने गायों की संवेदना में घड़ियाली आँसू बहाते हुए कहा है कि अरी गायो! तुम्हारी नांदों में जो मुलायम कुट्टी, गुड़, खल और बिनौले आदि वस्तुएँ हैं वे 'तुझको माता समझने के कारण कतई नहीं हैं अपितु 'अगले दोहन के समय तेरा सफेद रक्त/और अधिक मात्रा में चुराया जा सके/सिर्फ इसलिए हैं।'[4] यह तथ्य सत्य होते हुए भी उसका बहुत कुछ उसी प्रकार के भोंडेपन के साथ प्रस्तुत किया गया है जैसे किसी क्रांतिकारी लेखक ने (कदाचित सारिका के एक लेख में) नर द्वारा शोषण किये जाने का एक रूप यह भी दिखाया था कि वह नारी को अपने (मात्र नर के!) बच्चों के लिए पयोधरों के रूप में दो मटकी दूध ढोते रहने की विवश स्थिति में रखता है। पंत के इन उद्गारों में भी यद्यपि गो दुग्ध को गो रक्त ही बताया गया है क्या न दूध था श्वेत रक्त ही अस्थि शेष इन/बौनी आकृतियों का जो चूड़ा खा रहती[5] तथापि वे चारे-दाने के अभाव में ठठरी मात्र हुई गायों से सम्बन्धित होने के कारण अनुचित नहीं प्रतीत होते। गो दुग्ध को रक्त समझने की धारणा कदाचित गांधीजी द्वारा इसी तर्काधार पर गो दुग्ध पीने का परित्याग कर देने के तथ्य से बनवती हुई थी, जिसकी ओर इंगित करते हुए, सियारामशरण गुप्त ने उन लोगों को चुप कराते हुए जो गांधीजी के हिन्दुत्व पर संदेह करते थे कहा था कि दया-वश गाय का दूध पीने का परित्याग कर देने तथा कोढ़ी ब्राह्मणों का भी समादर करने वाले गांधीजी से बढ़कर हिंदू धर्म का सच्चा अनुयायी और कौन हो सकता है।[6]

स्वातंत्र्योत्तर काल में गो-हत्या बन्द कराने का तथ्य धार्मिक भावनाओं की अपेक्षा राजनीतिक कटनीति से अधिक प्रेरित रहा है। इस तथ्य की माँग चूंकि

1 'भारत भारती' पृ० 98 2 मुकुल पृ० 123
3 'पंख कटा मेघदूत' पृ० 9 4 'बदकफरों की संस्कृति', पृ० 112
5 स्वर्ण किरण' पृ० 217
6 उससे बड़ा कौन हिंदू जो, गो द्विज को इस भाँति भजे।
तजे स्वयं गो-दुग्ध दयावश कोढ़ देख द्विज को न तजे। अंजलि और अर्घ्य, पृ० 10

राष्ट्रीय स्वयमवक सघ' और 'हिन्दू महासभा' जसी हिन्दूवादी सस्थाओ द्वारा उठायी जाती रही है और जनसघ प्रभृति दक्षिणपथी राजनीतिक दल भी उसका समथन करत रहे हैं, अन इस मांग का मुस्लिम-लीग ईसाई प्रतिनिधियो और वामपथी राजनीतिक दलो द्वारा तो विरोध किया ही गया है, भारत सरकार भी इस आशका के कारण कि कही विरोधी दल गो हत्या बन्द कराने का श्रेय न लूट ले जाएँ, उसके सम्बन्ध म उपक्षात्मक रुख अपनाती रही ह। सातव दशक म गो हत्या के प्रश्न पर शकराचार्यों सहित दश क साधु-वग न भी सत्याग्रह अन्दोलन का आश्रय लिया था जिसकी कवि शील न धम भीरु कुलहत वग की अतिम सांसो स आन्दोलित/गोहत्या के सत्याग्रह का/कितना है यह सत्य भयानक'[1] कहकर भत्सना की है। पत ने भी इस सत्याग्रह से विक्षुब्ध होकर सन 1966 म एक लम्बी कविता लिखकर साधु-वग का गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगान जस अनुवर लक्ष्य सिद्धि हित अनशन के अस्त्र का आश्रय लेन के लिए फटकारा है। पत क अनुसार गोहत्या के प्रतिरोध का आन्दोलन छिडना वस्तुत 'धर्मो क कंकाल जी उठे विगत युगो के'[2] तथ्य का पर्याय है। उनका तक है कि भारत की गायें तो पहले ही मृत प्राय होती हैं अत साधुओ द्वारा एक स्वर से गो वध पर प्रतिबन्ध लगाने की माग करना धार्मिक काय नही है— धम काय यह / धिक, य उतन दूर धम से/जितना ईश्वर भी न दूर इन दिङ मूढ़ो से।'[3] उन्होन 'सीग शकराचार्यों क भी उग आये लो ! रभा रह सब पूछ उठाकर-गोहत्या को बन्द करो' के रूप म शकराचार्यों का भी तीव्र उपहास किया है, जबकि त्रिशूलधारी प्रदशनकारी साधुओ की 'यह मध्य युगो का वनजीवी बबर अपरूप खडा पिशाच-सा' बताकर निन्दा की ह।[4] 'गो-हत्या बन्दी के आन्दोलन को राजनीति प्रेरित बताते हुए उन्होन घृणापूवक कहा है कि 'गोमाता का प्रेम न यह/उसका शोणित भी/पीकर यदि हम राज्य कर सकें तो तत्पर' हैं।[5] कांग्रेसी नेताओ का भी धिक्कारते हुए उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि 'कांग्रेस-नेता भी मुक्त नही इससे/कुत्तो से लडते कुत्सित भारतमाता की हड्डी हित।'[6] गायो के प्रति पूज्य भावना के विलुप्तीकरण के सम्बन्ध म अज्ञेय की यह व्यंग्याश्रित उक्ति उचित ही लगती है 'कहा की Sacred Cow भैंस भक्त भारतीय।'[7]

(छ) सव धम समभाव या जातीय एकता की चेतना

भारत मे निवास करन वाले विभिन्न धर्मावलम्बियो के सम्बन्ध म यह तथ्य

---

1 'आयाम' सक०, पृ० 67
2 6 'किरण वीणा,' पृ० 214 215 218, 218, 119
7 'अतरा', पृ० 72

नवीन चेतना का ही परिचायक है कि कुछ कवियों ने उन्हें भारत का भ्रात जातियाँ घोषित किया है। प्रेमघन ने शब्दों में—'हिंदू मुसलमान जैन पारसी ईसाई सब जात/सुखी होय हिय भरे प्रेमघन, सकल भारती भ्रात।[1] प्रेमघन जैसे ही उद्गार महावीरप्रसाद द्विवेदी[2] आदि कवियों ने भी व्यक्त किये हैं। हरिऔध ने सभी धर्मों में पारस्परिक साम्य होने का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि जगत में इस्लाम ईसाई जैन, बौद्ध और हिंदू आदि जितने भी धर्म हैं उन सभी के गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग तो अवश्य भिन्न है किंतु उनका गंतव्य एक ही है।[3] उनका मत है कि जब हिन्दुओं की शंखध्वनि, मुसलमानों की बाँग और ईसाइयों के लय-ताल में पगे गान हमारी इस सुरत को हैं उसी ओर ले जाते भगा तो यह स्वीकार करना चाहिए कि अन्य धर्मावलम्बियों के आराध्यों की निंदा करने वाला व्यक्ति सब पर चलाता है छुरा।'[4] गुप्त जी ने हिंदू मुसलमान और ईसाइयों के मध्य एक ही परमपिता की संततियों जैसा भ्रातृ भाव होने की अभिलाषा व्यक्त की है।[5] पंत ने आधुनिक काल के कलाकारों द्वारा ब्रह्मा की ऐसी मूर्ति बनाये जाने की आवश्यकता पर बल दिया है कि उसके क्रमशः राम गौतमबुद्ध हजरत मुहम्मद और ईसामसीह के रूप में चार मुख हिंदू मुसलमान ईसाई और बौद्धों की एकता के तथ्य का प्रतिपादन करते रहें।[6] बच्चन ने एक भारत के निर्माण की कामना व्यक्त की है जिसमें 'हिंदू मुस्लिम सिख ईसाई' परस्पर सामंजस्य से रहें।[7] दिनकर ने चीनी आक्रमण के समय मांगा वरदान धाम चारों से/मंदिरों, मसजिदों गिरजों गुरुद्वारों से[8] के रूप में धार्मिक सौमनस्य एवं एकता की भावना को उभारा है। गोपालप्रसाद व्यास ने भी मंदिर मसजिद गुरुद्वार और गिरजाघर की जय बोलकर[9] इसी प्रकार के धार्मिक समन्वय और सामंजस्य की धारणाओं में अभिवृद्धि करने की चेष्टा की है।

भारतवर्ष के भिन्न भिन्न धर्मों के अनुयायियों के मध्य सौमनस्य भाव जाग्रत करने का प्रयास करने के साथ ही आधुनिक काव्य प्रणेताओं ने हिंदू धर्म की विभिन्न शाखाओं के अनुयायियों के मध्य सौमनस्य स्थापित करने की भी चेष्टा

---

1 प्रेमघन सर्वस्व' पृ० 632

2 हिंदू मुसलमान ईसाई/यश गावें सब भाई भाई
सब के सब तरे मगाई फूलो फलो स्वदेश।' द्विवेदी काव्यमाला, पृ० 454

3 4 पद्य प्रमोद' पृ० 36 34

5 हिंदू मुसलमान क्रिस्तान परम पिता की सब संतान।
सभी बन्धु हैं लघु या ज्येष्ठ मत से मनुष्यत्व है श्रेष्ठ।' 'हिंदू', पृ० 104

6 लोकायतन, पृ० 263 7 'खादी के फूल' सं० पृ० 33

8 'परशुराम की प्रतीक्षा', पृ० 32 9 'रंग जंग और व्यंग्य, पृ०79

की है। हरिऔध ने शवा-वष्णवा तथा सनातनधर्मिया और आयसमाजिया, व मध्य होत रहन वाले निरयक वाद विवादा के प्रति गहन चिन्ता व्यक्त की है।[1] मथिलीशरण गुप्त ने इस तथ्य का खेदपूवक उल्लेख करत हुए कि 'मत भिन्नता का शत्रुता ही अथ कर लीजे यहाँ हिन्दुआ और बौद्धो की एकता का प्रतिपादन किया है।[3] हिन्दू धम की ही विभिन्न शाखाआ के अनुयायियो द्वारा स्वय को एक-दूसरे स भिन्न तथा हिन्दू धम स पृथक् समयन की प्रवृत्ति पर गहन विषाद व्यक्त करत हुए उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि जब भारतवासिया मे से कुछ जन ह कुछ बौद्ध हैं कुछ सिख ह, कुछ वष्णव ह कुछ शव हैं, कुछ शाक्त है, तो फिर न जाने हिन्दू किन्ह कहना चाहिए ?[4] कहना न होगा कि आग्ल शासन द्वारा हिन्दू मुसलमाना को ही नही अपितु हिन्दुआ और सिखा तथा त्रिवर्णों और अछूता के मध्य विघटन फलाने के वातावरण म गुप्तजी की यह सामयिक चेतावनी बडी उपयोगी सिद्ध हुई होगी।

हिन्दू और सिख—दिनकर न दिखाया है कि सिखा को हिन्दुआ स सवथा पृथक सिद्ध करन क लिए अगरेजो न ग्रथ साहिब क ट्रम्प द्वारा किये गय अनुवाद को अपयाप्त समझकर (इसम सिख गुरुआ का जगह जगह उपहास किया गया था) उसका मेक्लाफ नामक एक अन्य विद्वान से अनुवाद कराया था। सिखा क दस गुरुआ म से नौ के सिर पर आरम्भ म लम्बे केश नही थे, किन्तु मेक्लाफ न सभी गुरुओ क ऐसे चित्र बनवाय जिनके शीशा पर लम्बे केश थ।[5] इसी प्रकार पहल सिखा के विवाह हिन्दू-पद्धति स ही हुआ करत थे किन्तु आग्ल शासन न 'आनन्द मरिज एक्ट' द्वारा इस विवाह-पद्धति म भी पाथक्य का बीज-वपन कर दिया था। इस परिप्रेक्ष्य म गुप्तजी द्वारा सिख मत को हिन्दू धम का ही उसकी रक्षाथ एक नया सघटन घोषित करना[6] वस्तुस्थिति के अनुकूल तो था ही, युग की माँग स भी अनुप्रेरित था। गुप्तजी का यह तक भी पर्याप्त प्रभावशाली है कि सिख धम का उद्भव वेदपाठियो (अर्थात ब्राह्मणा) के कुल मे हुआ है क्योकि गुरु

---

1 'पद्य प्रमोद' पृ० 22 23

2 भारत भारती', पृ० 124/175

3 मगल घट', पृ० 145

4 पर मत हो चिन्तन हो-अध/अक्षय है घोषित सम्बन्ध।
जन बौद्ध सिख वष्णव शव/हिन्दू कौन रहा फिर देव ?
न हो, न हो, हे हिन्द खिन्न/सब अभिन्न हैं मत हैं भिन्न।' हिन्दू', पृ० 57

5 दे० सस्कृति के चार अध्याय' पृ० 405

6 "सिक्ख सघ हिन्दू कुल का ही, निज रक्षाय सघटन मात्र।"
'गुरुकुल, पृ० 245

नानक वंदी-वंश के थे।[1] उन्होंने इन तथ्यों को भी रेखांकित किया है कि सिख धर्म की शिक्षाएँ वेद विहित और वेदान्त के अनुकूल हैं तथा सिख-गुरुओं द्वारा अपने जीवन और पुत्रों का बलिदान देकर भी हिन्दू धर्म को न छोड़ना स्पष्ट करता है कि वे हिन्दुओं से भिन्न नहीं कहे जा सकते।[2] उदयशंकर भट्ट ने भी गुरु नानक को भगवान का अवतार तथा आर्य-संस्कृति का रक्षक बताकर हिन्दुओं और सिखों की एकता का प्रतिपादन किया है।[3]

हिन्दू तथा ईसाई—आधुनिक काव्य में अँगरेज जाति के सम्बन्ध में तो न के बराबर उद्गार मिलते हैं जबकि उनके सम्पर्क के दुष्प्रभावों तथा ईसाई पादरियों की कूट चालों के विषय में पर्याप्त उद्गार उपलब्ध हैं। भारतेन्दु ने अँगरेजों को भीतर भीतर सब रस चूसने में माहिर बताकर उनकी निन्दा ही की थी किन्तु गुप्तजी ने कदाचित परिस्थितियों के दबाव वश उनकी इन शब्दों में प्रशंसा की है 'हे अगरेज सुनो सस्नेह प्रीति योग्य तुम निस्सन्देह/तुमसे कुशल जनों का संग, देगा किसे न ओज उमंग।'[4] अँगरेज जाति की कुशलता के प्रशंसक होते हुए भी, धार्मिक दृष्टि से गुप्तजी ने भी हरिऔध की भाँति इस दृष्टि से गहन चिन्ता व्यक्त की है कि ईसाई मिशनरी हिन्दुओं को धड़ाधड़ ईसाई बनाते जा रहे हैं। हरिऔध ने खेदपूर्वक कहा है कि ईसाइयों की उस कूट-चाल के विषय में क्या कहा जाये जिसके कारण हिन्दुत्व अपने अगणित लालों को खो चुका है। इस क्षति का कारण वस्तुतः यह ही है कि धार्मिक दृष्टि से हिन्दुओं जैसे ऐसे मेमने विश्व में कहीं भी नहीं मिलेंगे, जिन्हें ईसाई शेर गड़पते जा रहे हैं।[5] उन्होंने 'हर ले रहे हैं आज हमारा सर्वस्व/गले का भी आज छीन न रहे हैं हार'[6] के रूप में सुशिक्षित और उच्च जातियों के भी युवकों के ईसाई हो जाने की प्रवृत्ति की ओर इंगित किया है। हरिऔध ने हिन्दुओं के ईसाई होने के कारणों में निर्धनता और पादरियों के कारनामों के साथ ही हिन्दू धर्म के अछूत सम्बन्धी अविवेक और कुमति का हाथ दिखाते हुए विषादपूर्वक कहा है, 'हिन्दू जाति जरा से है आज जर्जरित।'[7]

---

1 हुआ उचित ही वेदी कुल में प्रथम प्रतिष्ठित गुरु का वंश।"
'गुरुकुल', पृ० 38

2 वही पृ० 97 3 तक्षशिला' पृ० 7

4 हिन्दू पृ० 186

5 क्या कहें ईसाइयों की चाल को/लाल पंजे से निकल लाखों गये। × × ×
शेर जैसे क्यों न ईसाई बनें/हिन्दियों से मेमने क्या हैं कहीं ?
'चुभते चौपदे पृ० 136 37

6 पद्य प्रसून पृ० 135

7 वही पृ० 136

गुप्तजी न हिन्दुओ के विधर्मी होने के सदभ म दुर्भिक्ष-काल मे ईसाई पादरिया द्वारा दी गयी अन्न धन की सहायता का प्रमुख हाथ दिखात हुए दुर्भिक्ष पीडिता के मुख स यह मार्मिक उदगार व्यक्त कराये ह कि ह हमारे देशवासियो और धम ध्वजियो ! हम क्षुधा-पूर्ति के लिए व्याकुल हाकर ही विधर्मी हो जान को विवश हुए हैं, अत आप हमारे अपराध का क्षमा कर देना।'[1] सन 1928 म प्रकाशित 'हिन्दू' म भी गुप्तजी न फिर भी हा ! कसी यह लाज/हिन्दू ईसाई हा आज' का कारण यह बताया है कि 'घर की घणा' तथा पेट की भूख की दुहरी मार के कारण ही हिन्दुओ को यह विडम्बना भोगनी पड रही है कि निधन और अछूत वग के हिन्दू आज अधिकतर हैं क्रिस्तान।[2] हिन्दू धर्मावलम्बिया की इस अनुदिन होती जान वाली क्षीणता के कारण ही गुप्तजी ने सामान्य सनातन धर्मिया की अपेक्षा विशाल हृदयता का परिचय देत हुए जगती मे जब तक है बुद्धि, नही वेतुकी तब तक शुद्धि'[3] के रूप मे आयसमाज द्वारा प्रवर्तित शुद्धि-आन्दोलन का समथन करत हुए धम धुरीणा से कहा था "हे हिन्दू-समाज उठ जाग लगी हुई है घर म आग/मची हुई है कुल की लूट, गयी हिये की भी क्या फूट ?'[4] यह तथ्य नितान्त आवश्यक हो गया है कि, "कर निज पतिता का उद्धार, और खाल दे उनका द्वार/ × × × भूले भटके भाई बन्द, जो आवे, आवें सानन्द।[5] ब्रह्मसमाज, रामकृष्ण मिशन, आयसमाज और बाद मे अरविन्द आश्रम ने तो अपने द्वार विधर्मियो क लिए भी खोल ही रखे थे परम वष्णव कवि के रूप म विख्यात गुप्तजी ने भी विश्व के समस्त विधर्मिया को हिन्दू बना लेन के युगानुकूल विचार व्यक्त किय थे।[6] गुप्तजी की इस 'कृण्वन्तो विश्वमायम की अपर्याय धारणा की यह परिसीमा भी उल्लेखनीय है कि व आयसमाज द्वारा प्रवर्तित ऐस शुद्धि-आन्दोलन का समथन नहा कर पात जिसक अतगत नारिया और शूद्रो को शुद्ध करके ब्राह्मणत्व प्रदान किया जाता था और वे गुण-कम विहीन होकर भी ब्राह्मणा की भाति यज्ञोपवीत पहन सकते थे।[7] स्पष्ट है कि गुप्तजी नाम मात्र के हिन्दुत्व के नहा अपितु विधर्मियो की आचरणगत शुद्धि के पश्चात ही उन्हे हिन्दू मानन के पक्षधर रहे

1 'हे धम और स्वदश तुमको बार-बार प्रणाम है/हा ! हम अभागा का हुआ क्या आज यह परिणाम है/हमको क्षमा करियो क्षुधा-वश हम तुम्हे ह खो रहे/हाकर विधर्मी हाय ! अब हम हैं विदेशी हो रह।
'भारत भारती' पृ॰ 91/126

2 3 'हिन्दू', पृ॰ 97 101 4 5 वही पृ॰ 100, 114

6 'विजातीय भी मन को शोध, आवें पावें यहाँ प्रबोध
हिन्दू धम मुक्ति का द्वार, करे प्रवेश सब ससार।" वही, पृ॰ 114

7 किन्तु शुद्धि कभी वह हाय, कोई भी ब्राह्मण बन जाय
हो चाहे गुण कम विरुद्ध, किन्तु हो चुके हैं हम शुद्ध।' वही, पृ॰ 114

हैं। गुप्तजी ने ईसाइया से यह आग्रह भी किया था कि भारत पर विश्वास न करके तुम दूसरो अर्थात अँगरेजो के मुखापेक्षी क्या बने रहत हो? ध्यान रखो कि यूरोप का धम अपना लेन पर भी तुम्हारी चमडी ता गोरी नही हो गयी है, अत कही एसा न हो कि पश्चिम की राह पर चलते चलत तुम न घर के रहो न घाट के ही रह जाओ।[1] मानिक बच्छावत ने स्वातन्त्र्योत्तर-काल म भी निधना-दलिता-आदिवासियो के मध्य चलती रहन वाला ईसाईकरण की प्रक्रिया का पर्दाफाश करते हुए दिखाया है कि कोई पादरी एसे लागो म जिनम 'वहुत स/भूखे हैं नग हैं रोगी हैं अधे हैं/जिन्ह न रोटी है न कपडे हैं न धधे हैं', खान-पान और वस्त्रादि उपकरणो का वितरण करत हुए कहता है 'धन लो अन्न लो, कपडे लो/ये सब ईसू न भेजे हैं/ईसू की शरण म आओ/तुम्हारे सब सक्ट मिट जायेंगे।'[2] कहा जा सकता है कि सम्प्रति निधनो, दलिता आदिवासिया के ईसाईकरण की प्रक्रिया को रोकने की दृष्टि स उनकी आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु भारत-सरकार पर दबाव डाला जाने लगा है और लोकसभा म ईसाई मिशनरिया की गतिविधिया को लेकर कई बार तीव्र आक्रोश व्यक्त किया जा चुका है।

हिन्दू और मुसलमान—हिन्दू और मुसमान लगभग हजार वष स एक दूसरे के सम्पक म रहत आये हैं, अत सास्कृतिक दृष्टि से दोना ने एक-दूसरे की बहुत-सी बाता और रीति रिवाजा का नसर्गिक रूप म ही अपना लिया है। भारत के अधिकाश मुसलमाना के पूवज कभी हिन्दू थे, अत धम-परिवतन कर लने पर भी वे अपनी परम्परागत सास्कृतिक विरासत का माह नही छोड सके है। गाँवा म रहने वाले हिन्दू-मुसलमाना क मध्य यह सास्कृतिक सौमनस्य भली प्रकार देखा जा सकता ह। हाँ आग्ल शासन काल म अँग्रेजा की 'फूट डालो और राज्य करो की फूट-चाल के कारण उनके मध्य सौमनस्य की अपक्षा वमनस्य की वद्धि होती गयी थी जिसका दुष्परिणाम भारत विभाजन की दु खद घटना के रप मे हिन्दू मुसलमान दाना ही धर्मों के उदार चेता लोगो को भुगतना पडा है। आधुनिक काव्य म भारत के इन बहुसख्यक धर्मावलम्बियो के मध्य सौमनस्य तथा वमनस्य पूण दोना ही प्रकार की चेतना का मुखरण हुआ है।

(1) **सौमनस्य सम्बन्धी चेतना**—हिन्दू और मुसलमान दोना ही भारतमाता की सन्तानें ह और उन्हे परस्पर मिल-जुलकर रहना चाहिए, इस सौमनस्य भाव का श्रीगणेश भारतेन्दु ने इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिय[3] क रूप म कर दिया था। राय देवी प्रसाद पूण न उनके साथ को चोली-दामन की तरह अटूट वताते हुए कहा था, मुसलमान हिन्दुओ वही है कौमी दुश्मन/जुदा

---

1 वही पृ० 202 2 पक्तधान मानिक बच्छावत पृ० 48
3 'भारतेन्दु ग्रथा०', भाग 2, पृ० 683

जुदा करे जो फाड़कर चोली दामन।"[1] इसी परम्परा को आगे बढ़ाते हुए हरिऔध ने कहा था, "कुछ भेद भले ही हो उनके रहन-सहन में/पर एक अस्ल में हैं हिन्दू तुरुक सारा।"[2] मैथिलीशरण गुप्त ने 'काबा और कर्बला' शीर्षक कृति की रचना द्वारा ही अपनी धार्मिक उदारता का परिचय नहीं दिया है अपितु हिन्दू और मुसलमानों के मध्य भ्रातृ भाव का मूलाधार यह तथ्य प्रदर्शित किया है कि एक ही मातृभूमि के पुत्र होने के कारण उनके मध्य भाई भाई का नैसर्गिक सम्बन्ध है और उनके हित भी परस्पर सम्बद्ध हैं।[3] उन्होंने भारतीय मुसलमानों को सम्बोधित करते हुए इस तथ्य पर भी बल दिया कि तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुतः तुममें भी है हिन्दू रक्त।' तुम्हारी स्थिति तो मात्र उन हिन्दुओं जैसी है, जो विधर्म को अपनाने के कारण अपने मूल धर्म व कुलागत कर्मों को भूल चुके हैं।[4] उन्होंने भारतीय मुसलमानों को अरब और ईरान आदि मुस्लिम देशों का मुखापेक्षी न रहने का परामर्श देते हुए यह तथ्य भी समझाया है कि उन्हें भारत में रहने के कारण इसी देश को अपना समझना चाहिए, क्योंकि 'ऐंठ रहे हो जिन पर मूछ उन्हें तुम्हारी है क्या पूछ/देखो अरब और ईरान आप हो रहे हैं वीरान।'[5] उन्होंने भारत भारती में भी मुसलमानों को यह समझाने का प्रयास किया था कि भाइयो! जिस भारत में रहते हुए आपको शताब्दियाँ व्यतीत हो चुकी हैं उसे अपना वतन स्वीकार करते हुए तुम्हें लज्जानुभव नहीं होना चाहिए और भारत भूमि की महिमा तुम्हें अरब से कम नहीं समझनी चाहिए।[6] सियारामशरण गुप्त ने भी अपने अग्रज की भाँति हिन्दू-मुस्लिम एक्य का समर्थन करते हुए उन्हें एक ही मूल वान वृक्ष की एक ही डाल के दो पुष्प बताया है।[7]

कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के मध्य सन 1916 में समझौता हो जाने के पश्चात हिन्दू-मुस्लिम एकता को भी पर्याप्त बढ़ावा मिला। कुछ वर्षों तक हिन्दू-मुसलमानों के मध्य वास्तव में ही ऐसा सौमनस्य रहा था जिसका चित्रण करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा था कि दोनों ने ही अपनी धार्मिक संकीर्णताओं का परित्याग कर दिया है। मन्दिरों में चाँद की महत्ता स्वीकार की जाने लगी है, जबकि मसजिदों

---

1 'पूर्ण संग्रह', पृ० 212
2 पद्यप्रसून', पृ० 62 3 हिन्दू', पृ० 189
4 तनिक विचारो, न हो विरक्त, तुममें भी है हिन्दू रक्त। × × ×
तुम हिन्दू हो धार विधर्म भूल गये हो निज कुल कर्म।' वही, पृ० 189 90
5 वही पृ० 191
6 'भारत भारती, पृ० 100
7 'हिन्दू मुसलमान दोनों ही, एक डाल के हैं दो फूल।
और एक ही है दोनों का, बड़ा बनाने वाला मूल।" 'आत्मोत्सर्ग', पृ० 49

म मुरली की मधुर तानें सुनायी पडने लगी हैं, मक्का और वृन्दावन मे कोई अन्तर नही रह गया है तथा हिन्दू और मुसलमान मिलकर अल्ला और घनश्याम के नामो का उच्चारण करते हुए इस तथ्य के प्रति सचेष्ट रहते हैं कि हिन्दू धर्म अथवा इस्लाम धर्म को किसी प्रकार का कलंक न लगने पाये।[1] एक अन्य कवि ने भी हिन्दू-मुस्लिम सौमनस्य की ऐसी ही स्थिति का चित्रण किया है।[2] इस धार्मिक सौमनस्य की मुस्लिम शायरो की उक्तियो से भी पुष्टि होती है। मध्यकालीन काव्य म मुसलमानो का शख ध्वनि तथा हिन्दुओ को बाग का सुनायी पड जाना ऐसा पाप बताया गया है कि उसके प्रायश्चित स्वरूप कानो म पिघला हुआ सीसा डालने का उल्लेख मिलता है[3], जबकि हफीज जालन्धरी ने कहा है हे ब्राह्मण पुजारी ! तू अपनी शखध्वनि को मस्जिद तक भी पहुँचा दे, क्योकि बुरा क्या है मुअज्जन भी अगर बेदार हो जाय[4], अर्थात् शख ध्वनि सुनकर यदि अजान देने वाला मौलवी भी सचेत हो जाता है, तो इसमे बुराई ही क्या है ? आगा शायर देहलवी की ईश्वर विषयक मान्यता है, 'तुम्हारा ही बुतखाना, काबा तुम्हारा/है दोनो घरो म उजाला तुम्हारा।'[5] सागर निजामी की इस उक्ति की तो रूढिवादी इस्लाम धर्म की धारणाओ से किसी भी प्रकार सगति नही बैठ पाती कि नया आदम और नयी हव्वा बनाने के साथ ही मैं 'नयी दुनिया मे हर बन्दे को देवता बनाऊगा।'[6] हिन्दू मुस्लिम सौमनस्य की दृष्टि से गाधीजी के परामर्श पर कुछ वर्षों के लिए भूषण की रचनाएँ हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओ के पाठ्यक्रम से निकाल दी गयी थी। इस वातावरण म सुधीन्द्र-कृत जौहर शीर्षक कृति की रचना को हरिभाऊ उपाध्याय ने युगविरोधी बताया था (दे० इस कृति की भूमिका पृ० 4)। परिणामत डा० सुधीन्द्र को यह सफाई देनी पडी थी कि अपनी कृति म वे मुसलमान शासक अलाउद्दीन खिलजी की निन्दा नही कर रहे है अपितु मात्र असत की भर्त्सना कर

---

1 मन्दिर म था चाँद चमकता, मस्जिद म मुरली की तान।
मक्का हो चाहे वृन्दावन होते आपस म कुर्बान। × × ×
चिन्ता है होवे न कलंकित हिन्दू धर्म पाक इस्लाम।
गावें दोनो सुध-बुध खोकर या अल्ला जय-जय घनश्याम।'

समपण पृ० 89 92

2 जयमानव ब्रह्म० दी लनाम, पृ० 13 14

3 दे० हमारा शोधप्रबन्ध हिन्दी वीरकाव्य म सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति पृ० 283

4 शेर-ओ शायरी, सपा० अ० प्र० गोयलीय पृ० 101

5 6 वही, पृ० 105, 482

रह है[1]। पन्त ने आशा व्यक्त की थी कि हिन्दू मुस्लिमन ही रहगे भारत के नर अपितु मानव होगे वे नव मानवता से मडित।'[2] पन्त न मुहम्मद साहब की इस प्रशस्ति द्वारा भी कि जगी ईश वाणी कुरान चिर तप पूत उर भीतर' हिन्दुओ की धार्मिक उदारता का परिचय दिया है।[3] नरेन्द्र शर्मा न सदियो तक साथ रहने पर भी हिन्दुओ और मुसलमानो के तल और पानी की तरह पृथक रहन के प्रति चिन्ता व्यक्त की है[4] और बगाल के अकाल के सन्दभ म उनकी समानता का इस दृष्टि से प्रतिपादन किया है कि भूखो मरते अथवा नफाखोरी करत हिन्दू मुसलमानो म कुछ भी अन्तर नही है।[5] उन्होने सन 1945 म रचित एक अन्य कविता म भी पाकिस्तान की माग के सदभ मे हिन्दू मुस्लिम एकता का बडे सबल तर्कों द्वारा प्रतिपादन किया है, अरे भाइयो! हमारे द्वारा एक दूसरे को म्लेच्छ और दहकानी सम्बोधन स कमे काम चलेगा क्योंकि हम दोनो ही इस भारत धरा की सतानें हैं। यह सत्य है कि है अलग-अलग हम दोनो के, व्यवहार मान जीवन-दशन/सास्कृतिक स्रोत दोनो क दो, करते दो भावो का सिंचन' तो भी यदि हम दोनो मिलकर एक नही हो जाते तो हमारा कल्याण नही हो सकता। तुम लोगो न अपनी भाषा और साहित्य म इस्लाम स पूव की सस्कृतियो और उसस पूववर्ती बादशाहो को हो क्यो अपना रखा है? तुम अपने आदर्शों के लिए फारस और तुर्की के ही मुखा पेक्षी क्यो रहते हो और हिन्दुस्तान को अपना क्यो नही समझते? यह सत्य है कि मुस्लिम शासन-काल म हिन्दू जाति निबल थी और उसके प्रतिनिधि के रूप म मैं तुमसे आक्रोश व्यक्त किया करता था। उन दिनो छुआछूत के भूत स डरा हुआ मैं घर घुसना बना रहता था किन्तु अब मैं जाग्रत हो चुका हूँ तो क्या हुआ क्योकि 'मेरी जागति का अमृत किन्तु होगा तुमको विषपान नही।

उपर्युक्त तर्काधार पर कवि का सन्देश था कि अरे हिन्दुओ और मुसलमानो जननाति तुम्हारे ऐक्य की प्रतीक्षा कर रही है और मुसलमानो म युग की यह माँग है कि वे पूरे हिन्दुस्तान को ही पूरा पाकिस्तान समझें।[6] इतिहास साक्षी है कि पूरे हिन्दुस्तान को पूरा पाकिस्तान नही समझा गया जिसके मूल म आशुतोष प्रसाद शुक्ल ने 'विघटन हो या देश विभाजन हो/उनके लिए सुरक्षित सिर्फ एक

---

1 प्रणभग, दिनकर, पृ० 67
2 "नर की वन्दना है यह, है सत का यह अभिनदन
नर की नही भत्सना है यह असत मात्र का उन्मूलन।" 'जौहर' पृ० 12
3 खादी के फूल' सक० पृ० 8 5 'स्वणधूलि' पृ० 74 75
4 'रक्त चन्दन', पृ० 51
6 'हसमाला पृ० 33
7 'रक्तचदन' पृ० 17 18

कुर्सी हो [1] के रूप में उचित ही कुर्सी की भूख का हाथ दिखाया है। र० श० मिश्र के उन उदगारो मे भी 'मन्दिरो को तोडना, मस्जिद गिराना/धर्म कैसा धर्म है यह/ राजनीतिक पापियो का कर्म है यह'[2] इसी राजनीतिक षडयन्त्र को दोषी ठहराया गया है। नीरज ने हिन्दू मुसलमानों का मूल ध्येय राष्ट्र निर्माण बताते हुए यह भाव व्यक्त किया था कि मन्दिर मस्जिद काबा-काशी अथवा गीता-कुरान तो वे राह मात्र हैं जिनसे तुम्हें मानव हित की मंजिल तक पहुंचना चाहिए।[3] शमशेर बहादुरसिंह ने भी उन लोगो को आडे हाथो लिया है जो ईश्वर की अरबी में प्रार्थना करने और अल्लाह की सस्कृत में सध्या करने पर, ईश्वर और अल्लाह के रुष्ट हो जाने का प्रचार करते हैं और 'तू बता ईश्वर ! तू ही समझा मेरे अल्लाह'[4] —के रूप में उस सर्वशक्तिमान से ही इस तथ्य का समाधान करने की अभिलाषा व्यक्त की है।

(ii) **धर्मनस्य सम्बन्धी चेतना**—सन 1857 के सांस्कृतिक विप्लव के उपरांत ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हो गयी कि हिन्दू और मुसलमानों के मध्य स्वय को परम राजभक्त और दूसरो को प्रकारान्तर से राजद्रोही सिद्ध करने की जोरदार प्रवृत्ति पनपती रही, और इस प्रक्रिया में वे स्वय भी परस्पर दूर होते चले गये। इस पृथक्तावादी वातावरण में ही विगत शती के आठवें दशक में मुसद्दस हाली शीर्षक काव्यकृति प्रकाशित हुई जिसमें हाली ने मुस्लिम जातीयता की भावना को उभारते हुए मुसलमानों को भारत की जातियों में प्रतिष्ठा सरकारी नौकरियों में स्थान तथा व्यापार में समुचित हिस्सा प्राप्त न होने का रोना रोया है।[5] हाली सौदा भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र आदि प्राय समकालीन-से साहित्यकारों की उक्तियों में निजी जातीयता के उद्धार पर बल देने के साथ ही साम्प्रदायिकता की भी गध विद्यमान है। यही नही न जाने किन अज्ञात कारणो से हाली और सौदा ने तो ऐसे उद्‌गार भी व्यक्त किये हैं जो उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही पाकिस्तान के निर्माण का बीज वपन हो जाने का पूर्वाभास प्रस्तुत कर देते है। उदाहरण के लिए हाली ने एक ओर तो इस तथ्य को उभारा है कि मुसलमानो का रीति रिवाज आदि की दृष्टि से हिन्दुओं से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध

---

1 युगयात्रा, पृ० 80
2 मानवेन्द्र पृ० 482
3 नीरज की पाती पृ० 47
4 चुका भी नही हू मैं पृ० 100
5 न अहले हुकूमत के हमराज हैं हम न मनअत में हरकत में मुमताज हैं हम।
न रखते हैं कुछ मंजिलत नौकरी में न हिस्सा हमारा है सौदागरी में।
'शेर-ओ शायरी' सं० अ० प्र० गोयलीय, पृ० 281

नहीं है[1] जबकि वे आर्यावर्त के वासियों को यह चेतावनी देना भी नहीं भूलते—"हैं हमीं, ए आर्यावर्त । उन सवारों के सपूत/जिनकी दौड़ों में हैं बाकिफ तेरे दश्तो कोहसार ।" कदाचित हाली के इस दर्प के दमन-हेतु ही रामनरेश त्रिपाठी ने यह उत्तर दिया था कि भारत तो विश्व के देशों में शिरोमणि रहा है और मंगोलिया अमीरिया अरब ईरान, खुरासान और यूनान के मुकुट हमारे चरणों में लोटा करते थे।[3] इसी प्रकार 'सौदा' ने भारतभूमि को नापाक घोषित करते हुए कहा था —'गर हो कशिश शाहे खरासान की सौदा/सिजदा न करूँ हिन्द की नापाक ज़मीं पर।'[4] स्पष्ट है कि सौदा की मनोवृत्ति के आगे ही हिन्दुस्तान की नापाक भूमि को छोड़कर खुरासान जाना चाहते थे, किन्तु बेचारों को अन्त इस नापाक भूमि के ही आगोश में एक को 'पाक' स्वीकार कर लेना पड़ा था। इसके विपरीत हम प्रतापनारायण मिश्र का भी 'हिन्दी हिन्दू हिन्दुस्तान' का नारा मलीनतावादी तो प्रतीत होता है किन्तु उनके स्वर में निश्चय ही हाली और सौदा का स्वर-जमा घृणा नहीं है, और जैसा कि उनके इन उद्गारों में स्पष्ट है—'भाषा भोजन भेष विधान, तज न अपनी लाइ मतिमान/अभिसमनी नीशाय प्रमान, हिन्दी, हिन्दू हिन्दुस्तान'[5]—मिश्रजी के आक्रोश का मूल लक्ष्य मुसलमान एवं मुस्लिम सभ्यता नहीं अपितु उन दिनों जोर शोर से पनप रही आंग्ल भाषा पाश्चात्य वेशभूषा और खान-पान में सामिष भोजन तथा सुरा-पान की प्रवृत्तियाँ रही हैं।

अन्य कवियों के हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धों विषयक उद्गारों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट होता है कि इस सम्बन्ध में अधिकांश कवियों का दृष्टिकोण सहिष्णुता परक ही रहा है किन्तु मध्यकालीन गुलाम भारत के सांस्कृतिक इतिहास के कतिपय पृष्ठ ऐसे रह हैं जो हिन्दुओं को इस तथ्य का स्मरण कराते रहे हैं कि मुसलमानों के द्वारा हमारे मन्दिर भ्रष्ट किये गये थे, जबकि मुसलमान भी इस तथ्य को विस्मृत नहीं कर पाते कि वे शासक या विजेताओं की जाति के वंशज हैं। उदाहरणार्थ इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दू वारिये'[6] की उदार भावना व्यक्त करने वाले भारतेन्दु भी इस कसक को नहीं भुला पाते कि 'जहँ विसस्यो सोमनाथ माधव के मन्दिर' बने हुए थे तहँ मस्जिद बनि गयी होत अब अल्ला

1 थी हमारी कौमो मिल्लत रस्मो-आइत सब जुदा
रिश्ता-ओ-पैवन्द कोई हममें और तुझमें न था।'
उद्० आ० हिन्दी और उर्दू काव्य की प्रवृ०', डा० सुरेश, पृ० 46
2 3 वही वही, पृ० 467, 67
4 शेर-ओ शायरी सं० अ० प्र० गोयलीय, पृ० 458
5 प्रताप नारायण मिश्र ग्रंथावली, प्र० भा० पृ० 727
'भारतेन्दु ग्रंथावली भाग 2, पृ० 683

ईश्वर।[1] प्रिंस आव वेल्स के भारत आगमन पर भारतेन्दु के इन उद्गारों से भी कि मस्जिद लखि विसुनाथ ढिग पर हिये जो घाव/ताकहु मरहम सरिस यह तुव दरसन नर राव स्पष्ट है कि भारतेन्दु को दासता तो अंग्रेजों की भी स्वीकार नहीं थी, हाँ यह नयी गुलामी मुगलों की दासता की अपेक्षा इसलिए बेहतर प्रतीत होती थी कि आगन्तुक शासकों ने मन्दिरों को तुड़वाकर मस्जिदें बनवाने का धार्मिक उन्माद नहीं दिखाया था। इसी प्रकार यद्यपि गो-वध की दृष्टि से अंग्रेज भी मुसलमानों से पीछे नहीं थे, किन्तु भारतेन्दु को यह तथ्य कचोटता रहता था कि यदि देशद्रोही जयचन्द ने गो-हत्यारे तुर्कों को भारत में बुलाया होता, तो हम आज यह दिन नहीं देखना पड़ता। अपनी इस कसक को जब वे अपने स्वारथ भूल भुलाय, काहे कन्या धुनाये जयचन्दवा'[2] के रूप में मुखरित करते हैं तो इसका सम्बन्ध स्वतः ही मुस्लिम विद्वेष से भी जुड़ जाता है। भारतेन्दु परवर्ती काल के कुछ कवियों के उद्गारों की भी प्रायः यही स्थिति रही है कि वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की बातें करते-करते भूल में कुछ ऐसी बातें भी कह जाते हैं जो ऐक्य की अपेक्षा विद्वेष को उभारती हैं। सियाराम शरण गुप्त की 'आत्मोत्सर्ग' कृति इस तथ्य का अच्छा प्रमाण प्रस्तुत करती है। उन्होंने दिखाया है कि भगतसिंह को फाँसी दिये जाने के विरोध में जब देश के नगरों में व्यापक रूप से हड़तालें हुई तो कानपुर के भी बाजारों को बन्द रखने का आह्वान किया गया। इस अवसर पर मुस्लिम लीग द्वारा अपनाये गये रुख के कारण कानपुर के मुसलमानों ने अपनी दूकानें बन्द नहीं कीं। हिन्दुओं द्वारा इन दूकानों को बलात बन्द कराने के प्रयास को ही किसी शरारती व्यक्ति ने साम्प्रदायिक दंगे का स्वरूप दे दिया तो अल्ला हो-अकबर तथा 'हनुमानजी की जय' बोलते हुए लुटेरे एक-दूसरे सम्प्रदाय के घरों को जलाते हुए लूट-पाट में निमग्न हो गये और इस लूट-पाट एवं आगजनी से बचे वही जो शीघ्र दे सके गुंडों को मुँह माँगा द्रव्य।[3] विद्यार्थीजी ने दंगाई हिन्दुओं को समझाया तो उन्हें उत्तर मिला किया हमारे साथ गया जो करते हैं हम लोग वही।[4] इस उत्तर को सुनकर सियाराम शरण गुप्त ने विद्यार्थीजी के मुख से सच्चे हिन्दुत्व के सम्बन्ध में जो उद्गार व्यक्त कराये हैं वे प्रकारान्तर से मुस्लिमों को निन्दित नीच एवं जघन्य-कर्मा सिद्ध करते हैं—' निन्दित नीच, जघन्य काय कर भरते हो अपना घर/किस हिन्दू ने हाथ उठाया असहायों के ऊपर कब ?/हिन्दू होकर घोर अहिन्दू बनने चले अरे क्या अब ?[5] आंग्ल शासन के अन्तर्गत मुसलमानों के गुलाम होने के स्थान पर उनकी बराबरी का दर्जा प्राप्त कर लेने वाले हिन्दुओं में इस नवीन चेतना का उन्मेष भी कि अब हम उनके आघातों को पूर्ववत चुपचाप सहन नहीं

---

1 2 'भारतेन्दु ग्रंथावली भाग 2 पृ० 684 699

3 5 आत्मोत्सर्ग पृ० 28, 37 37

करेंगे, इन दंगों के भड़कने का एक अन्य कारण निर्दिष्ट किया गया है—

'न थे अभी तक होकर भी हम नहीं रहेगी अब यह बात।
नहीं सहेंगे घात और हम जागा है हममें प्रतिघात।[1]

हिन्दुओं की इस प्रतिहिंसापरक चेतना के सन्दर्भ में विद्यार्थीजी जैसे राष्ट्रीय विचारधारा से ओत प्रोत पुरुषों की यह चेतावनी उचित ही थी कि ऐसे उठने के बदले तो अच्छा था, गिर जाते तुम क्योंकि उस दशा में 'हिन्दू कुल के माथे पर यह कालिख तो न लगाते तुम।[2] कल्पना की जा सकती है कि उदार-मना मुस्लिम नेता भी अपने धर्मांध भाइयों को प्रायः इसी प्रकार के तर्क देकर साम्प्रदायिक दंगे भड़कने से रोकने की चेष्टा करते रहे होंगे, किन्तु वे अपनी पुरानी आदत से लाचार होने के साथ ही आंग्ल शासन की शह और मतांध नेताओं का समर्थन पाकर ऐसे क्रूर कुकृत्यों में संलग्न हो ही जाते थे जैसे, अबलाओं के स्तन काटे हैं भाँति भाँति के कष्ट दिये/आग लगाकर फूँक दिये घर मंदिर नष्ट भ्रष्ट किये।[3] इन कृत्यों के प्रत्युत्तर में हिन्दुओं द्वारा भी उसी प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त हो जाने के तथ्य को धिक्कारते हुए विद्यार्थीजी के मुख से गुप्तजी ने जो तर्क दिलाये हैं वे प्रकारांतर से साम्प्रदायिक विद्वेष को हवा ही देते हैं—

'उबल उठा क्या रक्त तुम्हारा हुई आज क्या ऐसी बात/आज प्रथम ही सहा है क्या, उत्पीडन लांछन अभिघात/सदियों से पददलित अरे आ! खौला आज तुम्हारा खून/तो क्या आज उठा ही दोगे न्याय धर्म-सम्मत कानून?'[4]

कवि का अभिप्राय इस ओर प्रतीत होता है कि इससे पहले तरह-तरह के उत्पीडन और अभिघात चुपचाप सहन करते रहने वाले भारतीयों को कदाचित आंग्ल शासकों ने ईंट का जवाब पत्थर से देने को भड़का दिया है जो किन्हीं अंशों में असत्य भी नहीं कहा जा सकता। हाँ हिन्दुओं द्वारा प्रत्याक्रमण की नीति अपनाने की मनोवृत्ति का श्रेय-प्रेय आंग्ल शासन के मत्थे मढ़ना वस्तुस्थिति का अत्यधिक सरलीकरण तथा परिवर्तित युगीन परिस्थितियों की सर्वथा उपेक्षा कर देना ही कहा जायगा। हिन्दू मुस्लिम एकता का बढ़-चढ़कर समर्थन करने वाले नरेन्द्र नामा के उन उद्गारों के सन्दर्भ में भी ऐसी ही स्थिति घटित हुई है जिनमें उन्होंने गांधीजी की हत्या के लिए कट्टर हिन्दूवाद की निन्दा की है, क्योंकि उनमें हिन्दुओं द्वारा मुस्लिम आक्रांताओं से सोमनाथ और विश्वनाथ के मंदिरों की रक्षा न कर पाने तथा पानीपत के मैदान में उनके हाथों पेशवाओं की पराजय के दुखद प्रसंगों का भी उल्लेख किया गया है।[5] कहा जा सकता है कि मुसलमानों के वहाबी तथा हिन्दुओं के आर्यसमाज जैसे शुद्धिपरक आंदोलनों आंग्ल शासकों की हिन्दू-

---

1 4 आत्मोत्सर्ग, पृ० 37 38, 38 39 40
5 रूप चंदन पृ० 31

मुस्लिम विद्वेष भाव को बढ़ाने की कूटनीति, मुसलमानों की आंग्ल शासन के दासता काल में भी स्वयं को विजेता जाति का समझने की दर्प भावना, हिन्दुओं में उन्नीसवीं शती में धार्मिक-सामाजिक आंदोलनों से आयी नवीन जागति तथा सबसे बढ़कर राजनीतिज्ञों की स्वार्थ-साधना ने मिलकर, हिंदू मुसलमानों के क्रमशः निकट आते जाने की प्रक्रिया को विपरीत दिशा में मोड़ दिया था। इसके फलस्वरूप भारत का टुकड़ा में तो विभक्त हो ही चुका है उसके सांस्कृतिक वातावरण में अब भी साम्प्रदायिक विद्वेष के शोले भड़कते रहते हैं। इस साम्प्रदायिक विद्वेष के सन्दर्भ में व्यक्त हुई कुछ अन्य कवियों की चेतना पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

कवि नीरस ने हिंदू मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों में आंग्ल शासन की कूटनीति के कारण आने वाले उतार चढ़ावों के सन्दर्भ में कुछ तथ्य विवादास्पद होते हुए भी उचित ही कहा है कि इस पार्थक्य को बढ़ाने की दिशा में 'सर सयद ही अकेले नहीं थे अपितु कितने ही भाड़े के टट्टू/चाटुकार पिछलग्गू पामर/अवसरवादी/पकड़ रखे थे अंग्रेजों ने। सर सयद अहमद खाँ के इन साथियों में अंग्रेजों ने *'जौनपुरी मौलवी करामत/और अमीर अली पटना से/ढाका से सलीम* उल्ला को/लाभ दिखाकर/कर्ज दिलाकर/मुस्लिम लीग गठित करवा दी/सर आगा खाँ को लंदन से बुलवाकर। कवि ने आगे दिखाया है कि मुस्लिम लीग के प्रधान बने आगा खां की लेडी मिंटो ने इस दृष्टि से भूरि भूरि प्रशंसा की थी कि उन्होंने सात करोड़ मुसलमानों को विद्रोही होने से रोका था। यह विद्रोही होना और कुछ नहीं अपितु आंग्ल सरकार की दृष्टि से 'कांग्रेस में शामिल होना ही राजद्रोह था' और आगा खाँ ने मुसलमानों को इस तथाकथित राजद्रोह अर्थात् कांग्रेस में शामिल होने से रोकने की चेष्टा की थी। दक्षिणी भारत में हैदराबाद के निजाम का लीग की शाखा का प्रधान बनाया गया और इस सरकारी प्रोत्साहन के कारण ही अंग्रेजों की पूरी पिट्ठू लीग हो गयी'।[1] आंग्ल शासन के प्रति इस अंध भक्ति के कारण ही 'उन्नीस सौ सात में लीग ने/कांग्रेस के/स्वराज स्वदेशी *आंदोलन की/घोर भर्त्सना और निन्दा की थी। किचलू जिन्ना और मौलाना* आजाद आदि नेताओं ने मुस्लिम लीग के रवैये में कुछ परिवर्तन भी किया था 'किंतु बाद में/कांग्रेस में/गांधीजी का उदय नहीं जिन्ना को भाया और कांग्रेसी आंदोलन को लेकर भी अली मुहम्मद और जिन्ना के मध्य में तू-तू मैं मैं' होती रहने लगी थी।[2] कवि ने इस तथ्य का भी पर्दाफाश किया है कि राष्ट्रभक्त मुस्लिम नेता जो/अंग्रेजों की चाल समझते/भारत माँ के बँटवारे का/डट करके/विरोध करते थे/उन पर ये आरोप लगे रहे/गद्दारी के दुरभि संधि के।[3] एक

---

1 बागलोदय पृ० 34 2 वही पृ० 35 3 वही, पृ० 7

अन्य कवि ने भी दिखाया है कि हिन्दू मुसलमानों में जो द्वेष-अग्नि भड़की थी उसमें परदेशी शासकों ने ऐसी घृताहुति दी थी कि उनके मध्य हुए साम्प्रदायिक दंगों के कारण एकता का मुंह काला हो उठा था। अंग्रेजों की शह पाकर ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि 'मजहब के दीवाने धर्मांध और जाहिल लोग एक-दूसरे की जानें लेने लगे। ब्रह्म स्वरूप दीक्षित सलाम ने उचित ही कहा है कि—

'छल ही बल हो पारस्परिक फूट जिस शासन का आधार रहे।
उस प्रस्तर में रहती कैसे एकता जाह्नवी धार बहे।'[1]

एक अन्य कवि के उद्गार हैं "उन धर्म प्रचारकों के बीच/उन पुरोहितों पादरियों और मौलवियों/के पीछे/अत्यन्त चतुरता सूक्ष्मता और दक्षता के साथ/धन कुबेरों राजनेताओं और सत्ताधारियों के/कुछ कापुरुष पुत्रों को छिपा' देखा जा सकता है।[2] भगवतीचरण वर्मा ने इस दृष्टि से उचित ही चिन्ता व्यक्त की थी कि 'मुख्य प्रश्न रोटी का है उसे तो हिन्दू सभा और मुस्लिम लीग' भूल गयी हैं जबकि उन्होंने दाढ़ी और चोटी का निरर्थक प्रश्न उठा लिया है।[3] सियारामशरण गुप्त ने नोआखाली में भड़के साम्प्रदायिक दंगों के सन्दर्भ में ऐसे लोगों की हुक्काम कहकर भर्त्सना की है जो 'यह कहते हैं—इनकी चोटी कर देंगे हम साफ/यह कहते हैं—उनकी दाढ़ी हम न करेंगे माफ।[4] साम्प्रदायिक दंगा के भड़कने से पूर्व वातावरण में ऐसी बातें सुनायी देने लगती थीं, 'इस मंडी में मुसलमान हैं नमक दाल में ही जस'[5] अथवा 'हम हिन्दू हैं हम लोगों के अपने तुम कम होंगे/गला घोटकर दफना कर फिर मुस्लिम हम बना लाएं।[6] हाँ गाँवों में ऐसे लोग ही अधिक थे जो यह आशा रखते थे कि बाहरी तत्त्वों के कारण यदि साम्प्रदायिकता की आग भड़केगी भी तो दूसरे धर्मावलम्बी उन्हें अपने यहाँ बुला लेंगे तथा 'हम सबके-सब अपने ही हैं बुरा न कुछ होने देंगे। नोआखाली के साम्प्रदायिक दंगों की प्रतिक्रिया स्वरूप बिहार में भड़के दंगों की निन्दा करते हुए सि० श० गुप्त ने 'बुरा अमल ही हो तो अच्छा होगा क्या नतीजा' तथा 'गुंडे गुंडे ही हैं केवल नहीं धर्म के कुल के'[8] के रूप में घृणा व्यक्त की है।

उदयशंकर भट्ट ने 'लाहौर आग की लपटों में' शीर्षक कविता में वहाँ के साम्प्रदायिक दंगों का भुक्तभोगी के रूप में चित्रण करते हुए दिखाया है कि चार तारीख की संध्या में ही नगर के वातावरण में शोक, भय, कम्पन और निरीह जड़ता परिव्याप्त थी। तरह-तरह की अफवाहों के झोंके उठ रहे थे और 'काँपते

---

1 'जयमानव' पृ० 47
2 दीपाराधना', आ० श० माथुर, पृ० 101
3 एक दिन' पृ० 70 71
4 8 नोआखाली में, पृ० 12, 15, 18, 21, 31

थे लोग मानो मागते हो प्राण भीख।[1] शीघ्र ही ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी कि चारो ओर अल्ला हो अक्बर' और 'जयहिंद हरहर के प्राणघाती स्वर' उठने लगे। 'मार डाला, लूट लिया/दौडियो रे वह मारा/इसके ही साथ-साथ/धाये जा रहे थे छुर/गिर रही ईटें बरसात-सी/तडातड फोडती कपाडो को बार-बार/ × × × भागे जा रहे थे सब/धाय धायँ सन-सन/गोलियो का मार मे। रेडियो से मधुर गान आ रहे थे कि इतने म सुन पडा—/आ गये आ गये, भाले लिए/छुरे लिए/लाठी बदूक लिए प्राणो की भूख लिए/पागलो के दलबल।[3] बाद म इसी बीच जल उठी होलिया दुकानो की। कवि ने इन दगो के अवसर पर गुडे दगाइयो द्वारा इस प्रकार के जघन्य एव शमनाक कृत्यो म लिप्त होने का चित्रण किया है कि उन्हे पढकर आत्मा थर्रा उठती है— अल्लाह के नाम पर यह नर-सहार/धम की रक्षा के लिए होता है अधम यह/जाति की रक्षा के लिए जाति का विनाश यह/ × × × निबल नारी, सुकुमार बालिकाओ पर/व्यभिचार बलात्कार/नगा कर भाक देना गुप्त अगो म भी अस्त्र/स्तन नाक, कान काट/ फोड देना आँख भी।[4] भट्टजी ने मजहब के नाम पर होने वाले इन कुकृत्यो के विषय म घृणापूवक उचित ही कहा है— 'कसा यह मजहब ? कैसा यह अल्लाह ? कसी यह आत्मा/ किसने सिखाया सब ? क्या यही है उपदेश पाक कुरआन का ? शातिदूत पाक-पूत/निमद मुहम्मद का ?'[5] उनकी यह अतव्यथा भी उचित ही है कि शाति-दूत पाक पूत/निमद मुहम्मद ने इस प्रकार के अमानवीय कृत्यो मे लिप्त होने की शिक्षा नही दी है अपितु यह तो अल्लाह के कधे पर तलवार रखकर/मजहब की ओट मे शिकार खेलने वाले धूत और स्वार्थी लोगो का षडयन्त्र है।[6] ब्र० स्व० दी० ललाम ने इन शमनाक साम्प्रदायिक दगो के अवसर पर भी ऐसे अधिसख्य हिन्दू मुसलमानो का उल्लेख किया है साम्प्रदायिक द्वेष का मन म न जिनके लेश था और जिन्होने एक-दूसरे को सरक्षण प्रदान किया था।[7] कवि द्वारा व्यक्त की गयी यह चेतना हम भी उचित प्रतीत होती है कि दानवीय विचार ही था हेतु उस सग्राम का/था नहा कुछ दोष हिन्दू धम या इस्लाम का।[8]

(ज) पर्वो, त्योहारो सम्बन्धी नवीन चेतना

आधुनिक काल से पूववर्ती काव्य मे होली दिवाली दशहरा आदि त्योहारो का प्राय यथातथ्य रूप म विस्तृत वणन किया गया है जबकि आधुनिक काव्य प्रणेताओ ने इन त्योहारो के *माध्यम से* राष्ट्रीय चेतना के जागरण का प्रयास किया है। उनका रुझान इस तथ्य को उभारने की ओर भी रहा है कि दासता

1 6 पूर्वापर पृ० 131 132 133 134 135 135
7 8 जयमानव पृ० 284 285

पाश म निबद्ध भारतीयो का पर्वोल्लास म निमग्न होना अनुचित है,[1] अथवा महँगाई के कारण देशवासियो की ऐसी दुरवस्था है कि वे त्योहार भी नही मना सकते।[2] सम्प्रति विभिन्न त्योहारो को सदसद् घटनाओ—तथ्यो के प्रतीक समझने की चेतना बल पकडती जा रही है, अत इन त्योहारो को मनाने की इस दृष्टि से भत्सना भी की गयी है कि भारतवासी परम्परागत त्योहारो को मनाते तो हैं किन्तु उनसे उन तथ्यो की प्रेरणा ग्रहण नही करते, जिस उद्देश्य से इन पर्वो का मनाना आरम्भ किया गया था। स्वातन्त्र्योत्तर काल मे प्रचलित हुए स्वाधीनता दिवस गणतन्त्र दिवस और गाधी जयन्ती आदि पर्वों के सम्बन्ध मे भी कवियो की इसी प्रकार की आलोचनात्मक दृष्टि रही है।

होली—होली के पर्व पर 'बुरा मत मानो होली है' की लोकोक्ति का आश्रय लेकर अवाछित बातो की निन्दा-आलोचना करने की प्रवृत्ति दिखाते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने देशवासियो का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि विदेशियो ने हमारा स्वाधीनपनो धन-बुधि-बल फगुआ माँहि लयौ री। देश के युवक वर्ग को भारत को स्वाधीन कराने के लिए अनुप्रेरित करते हुए उन्होंने एक ओर तो उन्हे यह कहकर धिक्कारा है 'धिग् वह मात पिता जिन तुमसो कायर पुत जयौ री, जबकि दूसरी ओर उन्हे सशस्त्र क्रान्ति का सन्देश देते हुए कहा है, 'उठो उठो सब कमान बाधो शस्त्रन सान धरो री/विजय निसान बजाइ बावरे आगेइ पाँव धरो री। इसी क्रम म उन्होंने आगे कहा है कि भारत मे यह कैसा होली का पूजन किया जाता है जिसमे हम अपना तेज, बुद्धि, बल धन, साहस, शूरता आदि सभी फूककर स्वाहा कर चुके हैं और मुझे चैती के माध्यम से यह रुदन करना पडा है।[3] निस्सन्देह यह चैती देशोद्धार की उत्तेजक भावनाओ स अनुप्राणित है, और न जाने कैसे आग्ल शासन के जासूस-तन्त्र की आँखो मे बची रह गयी है। प्रतापनारायण मिश्र के होली सम्बन्धी उदगारो म देशवासियो के आलस्य और गालियाँ बकने की प्रवृत्ति की भत्सना की गयी है। उन्होंने भी सबसु खोय परे हो पवस तहू न जात डिठाई[4], के रूप मे देशवासियो का ध्यान उनके गुलाम होने के तथ्य की ओर आकृष्ट किया है। मिश्रजी ने हिन्दू राजकन्याओ के डोले तुर्को के

---

1 स्वतन्त्रता दुल्हन भारत हित, जब वर कर लायेंगे वन्दी।'
तभी दीवाली तभी दशहरा तभी मनायेंगे नववन्दी।' परतन्त्र' र०श०मिश्र, पृ० 130

2 'वस्त्र देश म नही गरीब का न अन्न है/क्या जलायें दीप-पक्ति सृष्टि अप्रसन्न है। 'अनुक्षण' प्रभाकर माचवे, पृ० 79

3 'भारतेन्दु ग्रन्थावली', भाग 2, पृ० 406 7

4 'प्रतापनारायण मिश्र ग्रथावली, प्र० खड, पृ० 67

यहाँ जाने के तथ्य का उल्लेख करते हुए हिन्दुओं को यह लानत भी दी है 'भरा इन हिजरन से कुछ होना है।[1]

द्विवेदी-युगीन हरिऔध और नाथूराम शर्मा शंकर आदि कवियों की दृष्टि होली के स्वरूप को सुधारने की ओर केंद्रित रही है। हरिऔध ने मर्म-स्पर्श में होली के अवसर पर धूल फेंकने, भाँग पीने, बड़े बूढ़ों को अनुचित उपाधियाँ देने, लुच्चापन की प्रतीक तालियाँ बजाने और गन्दी गालियाँ गाने की कुवृत्तियों की निन्दा करते हुए कहा है कि 'ऐसा करके नर-नारी जाति पर धूल फेंकते हैं क्या धर्म को धूल में मिलाते हैं।'[2] चुभते चौपदे में उन्होंने खेदपूर्वक कहा है कि हमारी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा नष्ट हो चुकी है तथा हम भांड भडवे जैसे बन चुके हैं। ऐसा क्या नहीं होता, "जबकि गाने लगे हैं भडौवे हम।[3] उन्होंने नारियों से भी कहा है मौं बहन, बेटियाँ निलज न बनें इस तरह से हम न लजावें।[4] शंकर ने होली के हुडदंग में सलग्न लोगों की ऊलें उजबक कृत्य पर कटाक्ष करते हुए कहा है कि एक ओर तो भारत भूखा मर रहा है जबकि दूसरी ओर लोग होली की खुशियों में निमग्न हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि 'भूखे भारत पे चश्म भक्षक भ्रम का भूत।'[5] म० श० गुप्त ने होली की अग्नि में अविश्वास ईर्ष्या और अन्याय के जल जाने के साथ ही फल सत्याग्रह की राख' तथा हो जाय अवनति का अन्त[6] की कामना व्यक्त की है। क्रान्तिकारियों के सदर्भ में खून की होली खेलना आधुनिक काल का वह प्रचलित मुहावरा बन गया है जिसका निराला ने सन 1946 के स्वाधीनता-संघर्ष में युवकजनों की है जान, खून की होली जो खेली[7] के रूप में सार्थक प्रयोग किया है। सोहनलाल द्विवेदी ने होली को सम्बोधित करते हुए कहा है कि तुम सतयुग त्रेता और द्वापर युगों में आते हुए भी अत्याचार और पापों को नहीं जला सकी हो। कलियुग में तो बस हो चतुर्दिक अग्नि धधक रही है अतः क्या न अभी पर्याप्त अग्नि है, तुम्हें पड़ी जो ज्वाल जगानी? कवि ने आक्रोशपूर्वक कहा है कि सम्प्रति भारत में 'घर घर में दर-दर में क्षण क्षण तुम्हारे जलन से भी अधिक आग भड़की हुई है अतः उत्तम यही है कि तुम भी जला हालिके उसमें आज काल का नूतन भीषण।[8] स्पष्ट है कि द्विवेदीजी को होली का पर्व मनाने के प्रति रंचमात्र भी लगाव नहीं है क्योंकि वे इस तथ्य से विक्षुब्ध हैं कि आंग्ल शासन के क्रूर दमन चक्र के कारण देश में पहले ही ज्वाला

---

1 प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली प्र० खंड, पृ० 67
2 मर्मस्पर्श, पृ० 67
3 4 'चुभते चौपदे', पृ० 134, 35
5 'अनुराग रत्न', पृ० 226
6 हिंदू पृ० 68 69
7 नये पत्ते पृ० 104
8 प्रभाती, 50 51

भड़की हुई है। रघुवीरशरण मित्र ने फाँसी की सजा पाये किसी क्रांतिकारी से कहलाया है, कैसी होली ? किसकी होली ? क्या कहलाती हो कल होली !' भारत माता के दासता-पाश का विच्छिन्न कर देने पर ही सच्ची होली खेलने का भाव व्यक्त करते हुए वह आगे कहता है 'फाँसी के तख्ते का देखो, जलती है देवर की हाली। [1] उसकी यह श्लाघ्य अभिलाषा भी अवलोकनीय है 'कल जब फाँसी चढ़ जाऊँ मैं तुम राख इकट्ठी कर लेना' तथा मेरी चिता-भस्म के गुलाल और भरकर शोणित से पिचकारी कल खेला जी भरकर होली।'[2] शमशेर बहादुर सिंह ने चाहे होली हो या दिवाली ईद हो या मुहर्रम, इन अवसरों पर छिड़ने वाले साम्प्रदायिक दंगों के प्रति विषाद व्यक्त करते हुए कहा है 'पर्व के दिन और ऐसे भयानक/छलनी-छलनी रे देश की छाती। [3]

दिवाली—दिवाली के सम्बन्ध में आधुनिक काव्य में अपेक्षाकृत कम ही उद्गार व्यक्त किये गये हैं। जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने अपनी वाम-पक्षी विचार-धारा के अनुरूप दीपावली की ज्योतिमाला के विषय में कहा है 'सम्पन्नों तो श्रमिकों के शोणित का संचय है/यदि उसके स्वामियों को/श्रेय ज्योतिर्मालिका का/तो यह है अंधकार/नहीं दीपमाला है/ज्योति वहाँ जहाँ सत्य।' [4] शिवमंगल सिंह सुमन ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सन 1947 की दीपावली के सन्दर्भ में उचित ही कहा है कि इससे पूर्व तो हम मिट्टी के दीप जलाकर अंधकार से लोहा लिया करते थे किन्तु 'इस साल जब उठे आहुतियों के ज्योति दीप/घनघोर अमा के तार-तार थर्राये हैं। [5] प्रभाकर माचवे ने समाज के निर्धन कृषक मजदूर वर्ग के प्रति ध्यान आकृष्ट करते हुए प्रश्न किया है भूखों की कैसी दीवाली ? खेत में निरन्न, दुर्भिक्षावसन्न/खड़ा अप्रसन्न सृजक-कृषक जिसका है/थाल आज खाली/मिलों में अशांत पिस रहे अशांत/मनुज यन्त्र भ्रांत/सृजक-श्रमिक हक जिनके, मिफ हैं हम्माली।' [6] रघुवीर शरण मित्र ने आजाद हिन्द सेना के बन्दियों के मुक्त होने पर मुक्त बन्दियों के स्वागत में, भारत भर में दीप जलाये'[7] के रूप में उस नवीन प्रवृत्ति का चित्रण किया है जो स्वातन्त्र्योत्तर काल में पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी आदि राष्ट्रीय पर्वों के अवसर पर भी परिलक्षित होती है। श्रीमन्नारायण ने इस पर्व पर जलने वाले दीपकों में याचना की है दीपको ! धन-तम मिटाओ ! भूख तृष्णा से करोड़ों देशवासी मर रहे हैं/प्रज्वलित हो दीप उनमें ज्योति जीवन की

---

1 2 'परतन्त्र' पृ० 100 105
3 चुका भी नहीं हूँ मैं पृ० 28
4 नयी किरण पृ० 43
5 शंखनाद' सक०, पृ० 225
6 'अनुरूप', पृ० 56
7 'जननायक', पृ० 474

जगाओ।"[1] इन सभी उदगारो मे स्पष्ट है कि कवियो ने लक्ष्मी पूजन से सम्बन्धित इस पर्व का सम्बन्ध निर्धनो की गरीबी दूर करने से जोडा है। महेन्द्र भटनागर का स्वर कुछ भिन्न है जिन्होने दीपावली के सन्दर्भ मे वर्ग-वैषम्य की भावना को उभारने के स्थान पर यह भाव व्यक्त किया है कि अट्टालिकाओ और कुटियो म जलने वाले दीपक और रग बिरंगे बल्बो की ज्योति शिखाएँ हिलमिल, निकट मिल कर अमा के सघन तम से संघर्ष कर रही है।[2]

रक्षा बन्धन—परम्परागत त्योहार चतुष्टय म होली, दिवाली रक्षाबन्धन और दशहरा परिगणित किये जाते है। रक्षाबन्धन को भारत सरकार द्वारा महत्त्व न दिये जाने के अनुरूप ही (इस दिन सरकारी कार्यालय बन्द नही रहते) आधुनिक कवियो ने भी बहुत कम महत्त्व दिया है। माखनलाल चतुर्वेदी आदि दो-एक कवियो ने रक्षाबन्धन के विषय मे यह टिप्पणियाँ की है कि इस पर्व के दिन भाई के जेल मे होने के कारण बहन उसके राखी नही बाँध सकती। रघुवीर शरण मित्र के इस पर्व सम्बन्धी उदगार पर्याप्त क्रान्तिकारी है जिनम कोई भाई अपनी बहन से कहता है कि पारतन्त्र्य की काल कोठरियाँ आग लगाकर बन्दीघर मे/ क्या साहस है ? बाँध सकोगी राखी तुम भैया के कर मे ?[3] रक्षाबन्धन का सम्बन्ध देश की स्वाधीनता प्राप्ति से जोडते हुए आगे कहा गया है बाँध किसी दानव न माँ को बन्दीगृह म डाल दिया है/लाल बिखेर डाल जजीरें इस दुनिया का रुधिर पिया है।[4] अत जब तक भारतमाता परतन्त्र है तब तक भाइयो का बहनो को रुपया देने के स्थान पर उसके प्रतिदान म अपना शीश अर्पित करने चाहिए।[5] सु० कु० चौहान ने मैं हू बहिन किन्तु भाई नही है/है राखी सजी पर कलाई नही है' के रूप मे स्वाधीनता आन्दोलन मे भाग लेकर जेल चले जाने की ओर इंगित किया है। उन्होंने देशवासियो का आह्वान करते हुए कहा है कि वे भारत-माता की रक्षा हेतु राखी बँधवाए अरे बन्दी बनो, देखो बन्धन है कैसा,/चुनौती यह राखी की है आज तुमको।[6]

विजयदशमी या दशहरा—आधुनिक काव्य म परम्परागत त्योहारो म से सर्वाधिक उल्लेख विजयदशमी या दशहरा का हुआ है। राम को सत तथा रावण को असत का प्रतीक स्वीकार करते हुए कवियो ने इस दृष्टि से तीव्र व्यग्याक्षेप किये हैं कि आजकल रामो की अपेक्षा रावणो का ही बाहुल्य क्यो है! विजयदशमी का सम्बन्ध चूंकि आर्य जाति और भारतवासियो की लका की रक्ष-संस्कृति पर विजय से जुडा है अत इस विजय-पर्व की स्मृति दिलाकर भारतीयो के हृदय म

---

1 रजनी म प्रभात का अकुर पृ० 76
2 चयनिका, पृ० 208
3 परतन्त्र', पृ० 70
4 5 'परतन्त्र' पृ० 76, 79
6 'मुकुल', पृ० 76 77

आत्म गौरव तथा देशोत्थान की भावनाएँ जाग्रत करने का भी प्रयास किया गया है। दिनकर ने देश के नवयुवकों की इस दृष्टि से भर्त्सना की है कि वे विजया-दशमी को भूलकर मात्र विजया (भाँग) को याद रखते हैं, जिससे भारत रूपी साकेत जलता रहता है जबकि आंग्ल शासन रूपी लंका फल-फूल रही है।[1] बलदेव प्रसाद मिश्र ने दशहरे को 'अपने मन का रावण मारो हृदय-हृदय साकेत धाम हो राम राज्य वभव विस्तारो'[2] के तथ्य का प्रतीक बताते हुए इस दृष्टि से विषाद व्यक्त किया है कि 'रावण है प्रतिवर्ष तभी से मारा जाता/किन्तु खेद है मरकर भी वह फिर जी जाता।[3] ज० प्र० मिलिन्द ने सन 1995 की विजयदशमी को है प्रणम्य अभिनव और वास्तविक/विजयदशमी भारत के विजयोत्सुक सनिकों की के रूप में प्रशंसा की है क्योंकि इस वर्ष भारतीय सनिकों ने भारतीय-सीमा का अतिक्रमण करने वाली पाकिस्तानी सेनाओं का मुंह-तोड़ उत्तर दिया था।[4] प्रभाकर माचवे ने हैदराबाद रियासत के भारत में विलय की घटना के परिप्रेक्ष्य में यह विजयादशमी आयी है नव वर्ष लिए जनता के हित' का भाव व्यक्त किया है।[5] शि० म० सुमन ने राघव के द्वारा दक्षिण में सिन्धु पार करके दिखाये शौर्य पर गर्वानुभूति करते हुए रावण का भीमकाय पुतला जलाने की रूढियाँ सगव दुहराने' का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस बार चीनी आक्रमण के रूप में उत्तर की ओर सकट के बादल गहरा रहे हैं अतः देखना यह है कि 'उत्तर में विजय पताका फहरावे कौन ?[6]

असत के प्रतीक रावण का पुतला जलाकर भी अधिकांश लोगों द्वारा नाना प्रकार के दुष्कर्मों में लिप्त रहने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए रामदरश मिश्र ने जलते हुए रावण के पुतले से कहलाया है, 'अलविदा-अलविदा ! वानरो भालुओ / अफसोस है/तुम भाल भर मेरा तमाशा नहीं देख पाओगे/और न कर पाओगे, क्योंकि अब, 'मैं राजा राम की आत्मा में समा रहा हूँ/वे लड़ते-लड़ते बहुत थक गये हैं/साल भर सोयेंगे, जबकि 'मैं जागूँगा राजधानी के हर तहखाने में।'[7] बहुत कुछ इसी प्रकार की स्थिति का चित्रण करते हुए अचल राजपूत ने दिखाया है ' रावण ने/स्वयं ही/राम का अभिनय किया/कागजी रावण को फंका/अपने हाथों ॥।' यही नहीं राम का अभिनय करने वाले धूर्त भ्रष्ट लोग रावण के पुतले के साथ ही 'रामायण के पन्ने' अर्थात् चारित्रिक मर्यादाएँ भी जला देते हैं और दानों की

---

1 जला करे साकेत, दशानन की लंका आबाद रहे,
विजय दूर जा बसे, इन्हें लेकिन विजया की याद रहे। हुंकार', पृ० 52

3 'रामराज्य' पृ० 11, 118 4 'नयी किरण' पृ० 115 16

5 'अनुगान' पृ० 76 77 6 मिट्टी की बारात' पृ० 125-26

7 'कंधे पर सूरज', पृ० 62 63

चिताओं की राख पर' विजय का जश्न मनाते हुए जनता का रक्त पीते रहते हैं।'[1] माधव मधुकर की यह टिप्पणी भी उचित ही है वैसे जलने को तो/हर साल दशहरे के दिन रामलीला मैदान में/रावण का पुतला जलता है/मगर इस देश की मिश्रित अर्थव्यवस्था के दस मुंहा/वाला असली रावण हर बार साफ बच निकलता है/जिसके मायाजाल से/सत्ता चुनाव-फंड, तस्कर-व्यापार और बाजार भाव के/मिले-जुले चमत्कारी कारोबार/साल-दर-साल चला करते हैं।'[2]

क्रिसमस—आधुनिक कालीन भारतीय संस्कृति में ईसाइयों के सम्पर्क के कारण क्रिसमस और नव वर्ष नामक दो नये त्योहारों का मनाया जाना भी आरम्भ हुआ है। नव वर्ष को ईसाइयों के साथ-साथ न्यूनाधिक रूप में हिंदू भी मनाते हैं जबकि क्रिसमस का विधि विधानपूर्वक मात्र ईसाइयों द्वारा मनाया जाता है। नरेन्द्र शर्मा ने क्रिसमस के अवसर पर ईसामसीह का उल्लसित स्वरों में स्मरण करते हुए कहा है कि आपके जन्म की तिथि आ पहुँचने पर सारा संसार हर्षोल्लसित है। हे क्षमा के देव ! आप भू पर स्वर्ग के आधार थे। कवि ने ईसा को 'दिव्य आदम पूत ह अतिशय सहिष्णु उदार/× × ×है न कोई और पगम्बर तुम्हारी भांति'[3] जैसे उदार उद्गारों द्वारा श्रद्धांजलि अर्पित की है। जहाँ तक क्रिसमस के बाह्य रूप का सम्बन्ध है वह बहुत कुछ अंशों में होली के हुड़दंग-जैसा रूप धारण कर चुका है। दिल्ली के कनाट-प्लेस में तो उसको इसी रूप में मनाये जाने के कई बार समाचार छप चुके हैं। अतुल भारद्वाज ने क्रिसमस के होली-जैसे रूप को काव्य निबद्ध करते हुए दिखाया है कि इस अवसर पर नर-नारी सुरा-पान करके सड़कों पर गीत गाते हुए घूमने लगते हैं। उनके द्वारा गाया जाने वाला गीत ईसा के जन्म का होता है अथवा मृत्यु का—कुछ पता नहीं चलता। उस समय तो उनके पेट में बजती शराब/आंखों में कटे नितम्ब-कांपते कूल्हे नाचते रहते हैं तथा कमर में लिपटा मरा साँप/जिस्म में धँसा जाता है। मदिरोन्मत नर-नारियों के इस जुलूस के समक्ष उस आराध्य-पुरुष की दुर्गति भी अवलोकनीय है जिसके जन्म की खुशी में इस त्योहार को मनाया जाता है "शराब के खाली पीपों के पीछे से/झाँकता है ईसा का पथरीला चेहरा/सटा हुआ जमीन में।'[4]

नूतन राष्ट्रीय पर्व—स्वातंत्र्योत्तर काल में स्वाधीनता दिवस और गणतन्त्र दिवस बड़ी धूमधाम से राष्ट्रीय पर्वों के रूप में मनाये जाते हैं जबकि गांधी जयन्ती बाल दिवस और शिक्षक दिवस भी एक प्रकार से पर्व ही हैं। इनमें से प्रथम दो पर्वों के सम्बन्ध में कवियों ने यह आलोचनात्मक चेतना व्यक्त की है कि

---

1 क्षितिज की खोज, पृ० 26
2 'अंधेरे से लड़ते हुए, पृ० 33 34
3 हंसमाला, पृ० 70 71 4 'कविताएं, 1964, सं०, पृ० 9

इनके मनाने में फिजूलखर्ची तो बहुत की जाती है किन्तु हमारे नेतागण आत्म परिष्कार की चेष्टा नहीं करते। सत्यपाल चुघ (जो दिल्ली नगरनिगम के पार्षद भी रह चुके हैं) के उद्गार हैं 'पर इस दिन के जाते-जाते/स्वाय लोरियाँ गाते-गाते/मेरी स्मृतियाँ लगता सान/फिर भी अन्तर लगता रोने/बहता-सा या कहता-सा है/ × × मेरे बिछुड़े बन्धुओं की उज्ज्वल स्मृतियों तुम भी सो जाओ/क्योंकि मैं पूरा नमक हराम हूँ/कुत्ता से गया-बीता इन्सान हूँ।'[1] बच्चन ने सन् 1963 के गणतन्त्र दिवस को धूम धाम से मनाये जाते देखकर यह खेद व्यक्त किया है कि आक्रान्ता चीन द्वारा हमारी हजारों वर्ग-मील भूमि पर अधिकार कर लेने की दशा में भी अन्य वर्षों की भाँति ही गणतन्त्र दिवस पर सैनिक टुकड़ियों और युद्धोपकरणों का जुलूस निकालना एक प्रकार से राष्ट्रीय निर्लज्जता का प्रदर्शन मात्र ही है। उन्होंने विद्रूप पूर्वक लिखा है कि जुलूस में निकलने वाले "ये सेना के नौजवान हैं/जो दुश्मन के मुकाबले में नहीं टिक सके/ये बन्दूकें जिनके घोड़े/अरि की बन्दूकों की गोली की वर्षा में नहीं दब सके/ये ट्रक-ट्रक चढ़ाई पाकर/कॉख-कॉखकर बैठ गये जो/और ये तोपें, जो मुँह बाये खड़ी रह गयीं/शत्रु सैकड़ों मील देश की सीमा के अन्दर घुस आया/और अन्त में ये जहाज हैं/ऊपर के साक्षी/नीचे के सैन्य-व्यूह विघटन विमर्दन के/और हार के।'[2] बच्चन के आगे दिये उद्गारों के साथ देश के अधिकांश समझदार लोगों की सहमति कही जा सकती है—एक वेहया, बेगरत, बेशर्म जाति के लाखों मर्द, औरतें बच्चे/रंग बिरंगी पोशाकों में/राजमार्ग पर भीड़ लगाकर/उन्हें देखकर शोर मचाकर/अपनी खुशियाँ का जाहिर कर रहे हैं, जबकि शब्द हमारे आह भर रहे हैं।[3] चंचल चौहान के शब्दों में 'राष्ट्रीय त्योहारों पर/महापुरुषों की जयन्तियों पर/मनाया जाता है जश्न/धूम से × × × रात के कालेपन को घटाने के लिए जलायी जाती है रोशनी/इमारतों पर जबकि 'गंगू चमार की झोपड़ी अब भी अँधेरी' बनी हुई है। इसी प्रकार इन पर्वों पर राष्ट्रीय नेता जो भाषण देते हैं उनके द्वारा वे हमारे देश की आत्मनिर्भरता की मीठी लोरी सुनाकर सुला देते हैं किन्तु उनका मूलोद्देश्य 'पूंजीपतियों को आत्म निर्भर बनाना तथा देशवासियों को 'कागजी समाजवाद की अफीम खिलाना' होता है।[4] स्पष्ट है कि आधुनिक काव्य प्रणेताओं की अभिरुचि पर्व-त्योहारों का वर्णनात्मक चित्रण करने की ओर नहीं अपितु उनकी आलोचनात्मक मीमांसा करने की ओर रही है।

---

1 'भोरकंठ', पृ०

2 3 दो चट्टानें, पृ० 24, 25

4 प्रहार स्याह रात पर', पृ० 18

(झ) नैतिक धार्मिक मान्यताओं सम्बन्धी संक्रातिमयी चेतना

भौतिकतावादी पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के सम्पर्क, दलित शोषित वर्ग एवं नारी जाति के जागरण तथा स्वातंत्र्योत्तरकाल में नयी जनतंत्रात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना के कारण हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन के सभी क्षेत्रों की नैतिक मान्यताओं में प्रबल व्यतिक्रम हुआ है। देशी विदेशी विद्वानों द्वारा हमारे कतिपय परम्परागत नैतिक धार्मिक मूल्यों की इस दृष्टि से आलोचना भी की गयी है कि छल छद्म एवं हिंसापरक संस्कृतियों वाली जातियों से टक्कर होने पर हमारे परम्परागत उदात्त नैतिक मूल्यों ने हमें पराधीनता की शृंखलाओं में जकड़वाने की ही भूमिका अदा की है। हमारे अध्यात्म प्रधान निवृत्तिपरक नैतिक मूल्य आधुनिक काल की भौतिकतावादी चमक-दमक में फीके प्रतीत होने लगे हैं जबकि पिछड़ी जातियों एवं स्त्रियों सम्बन्धी मध्ययुगीन सांस्कृतिक मूल्यों या दृष्टिकोण की चूलें हिल गयी हैं। इन सभी कारणों ने मिलकर आधुनिक काल में नैतिक धार्मिक मूल्यों के क्षेत्र में एक सांस्कृतिक संकट अथवा संक्रान्तिमयी स्थिति उत्पन्न कर दी है। इस संक्रान्तिमयी स्थिति के कारण ही आधुनिक काव्य प्रणेताओं ने एक ओर तो परम्परागत नैतिक धार्मिक मान्यताओं और आध्यात्मिक आदर्शों में युगानुकूल परिवर्तन कर लेने की चेतना व्यक्त की है जबकि उन्होंने भौतिकतावादी पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव-स्वरूप भारतवासियों द्वारा नैतिकता विहीन शिथिल विशृंखलित जीवन-दृष्टि अपनाने की भी तीव्र भर्त्सना की है। पंडित नेहरू ने इस सांस्कृतिक संकट या संक्रातिमयी स्थिति के सम्बन्ध में सन 1953 में उचित ही लिखा था 'पाश्चात्य विचारों से भारत का जो विश्वास जमा था अब तो वह भी हिल रहा है। नतीजा यह है कि हमारे पास न तो पुराने आदर्श हैं न नवीन और हम बिना यह जाने हुए बहते जा रहे हैं कि हम किधर को या कहाँ जा रहे हैं? नयी पीढ़ी के पास न तो कोई मानदण्ड हैं न कोई दूसरी ऐसी चीज जिससे वह अपने चिन्तन या कर्म को नियंत्रित कर सके। यह खतरे की स्थिति है। अगर इसका अवरोध और सुधार नहीं हुआ तो इसके भयंकर परिणाम निकल सकते हैं। हम आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में संक्रान्ति की स्थिति से गुजर रहे हैं। सम्भव है यह उसी स्थिति का अनिवार्य परिणाम हो। लेकिन आणविक युग में किसी भी देश को अपना सुधार करने के लिए ज्यादा मौके नहीं दिये जायेंगे और इस युग में मौका चूकने का अर्थ सर्वनाश हो सकता है।'[1]

आधुनिक काल में नैतिक धार्मिक मूल्यों की दृष्टि से सांस्कृतिक संकट की स्थिति विद्यमान होने के तथ्य को सर्वाधिक मात्रा में पंत की रचनाओं में अभिव्यक्ति मिली है। सौवर्ण में उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि सम्प्रति विश्व

1 द्र० 'संस्कृति के चार अध्याय' भूमिका, पृ० 9 10

समाज का वहदश 'रीत चुक कर मध्ययुग की जीवन जजर' तथा पुरानी परम्पराओं की सीमाएँ छिन्न भिन्न कर विषमता की अमानुषिक कारा स मुक्त हो चुका है। जन जीवन म विचारा के नये-नये ज्वारा के कारण सम्प्रति पुरातन 'मानव सस्कृति यान डूबन का अब निस्तार जिसम घोर भयकर सकट की स्थिति उत्पन्न हो गयी है। उन्होंने कहा है कि यह सकट आर्थिक राजनीतिक कलागत या साहित्यिक सकट नहीं है अपितु "जीवन म मौलिक प्रतिमाना का सकट यह/आज उपस्थित जो मानव इतिहास म विकट।"[1] उन्होंने इस दृष्टि म भी सास्कृतिक सक्रांति की स्थिति प्रदर्शित की है कि एक ओर तो भारत की नितात आध्यात्मिकतावादी मान्यताएँ मानव जाति का कठोर वतमान का सामना करन की शिक्षा देन के स्थान पर शून्याकाश म पख पसारकर ऊपर-ही ऊपर उड़त रहने की प्रेरणा देती हैं दूसरी समाजवादी मान्यताएँ इस धरा को ही स्वग बना देन का आश्वासन देकर लोगा को डरा धमका और यातनाएँ देकर, बुद्धिहीन बन रहन को विवश करती रहती हैं।[2] रजतशिखर म उन्होंने उन कवियों को कायर कहा है जो इस युग-सकट की स्थिति म भी भूखे प्यास लागा को अध्यात्मवाद का उपदेश दते रहत हैं।[3] अतिमा म उन्होंने नवयुग मर्म/बदलता करवट अब भू जीवन/नयी चेतना का युग लाना होगा भू पर [4] की धारणा व्यक्त की है। रामप्रसाद मिश्र न भारत के धम, दशन कला साहित्य वेशभूषा और भाषादि क्षेत्रों म सास्कृतिक सकट की स्थिति स खीझकर कहा है, "हम वह राष्ट्र ह जिसका भविष्य नहीं/ × × × कुछ दिना बाद भारत/अपनी वयक्तिकता नष्ट खो सकता है क्योंकि/नहीं है/कोई धम, दशन कला/साहित्य वेशभूषा/भाषा आदि के/प्रति निश्चित दृष्टिकोण/हमारा आज आह ![5]

अन्य कवियों मे आशुतोष प्रसाद शुक्ल के उदगार हैं "वतमान काल तो सभ्यता धम का सक्रातिकाल है/अभी तो मानव इसी सघष म उलझा है/विज्ञान पर क्या धम की प्रतिष्ठा है? अथवा धम के ऊपर क्या विज्ञान की प्रतिष्ठा है? उसन अभी अच्छी तरह समझा नहीं/धम, राजनीति, दशन और विज्ञान को/एक दूसरे के पूरक-स्वरूप म माना नहीं।[6] धमवीर भारती-कृत अधायुग के प्रहरी भी एक औसत भारतीय की जीवन-मूल्य शून्यता और दिशाहीनता की स्थिति का साकेतिक रूप में उभारते हैं जब वे हम यह कहत दृष्टिगत होत हैं कि हमने किसी मर्यादा का अतिक्रमण नहीं किया क्योंकि हमारी कोई मर्यादा थी ही नहीं। इसी

1 2 सौवण', पृ० 21-23 2 3 'रजतशिखर', पृ० 64
4 'अतिमा, पृ० 56 57
5 देश दिल्ली और अहम पृ० 19
6 युगयात्रा', पृ० 100

प्रकार जब हम किसी प्रकार की आस्था ही नहीं है तो फिर हम अनास्था कैसे झकझोर सकती है ? हमारा जीवन तो उन वीरान-सुनसान गलियों की तरह है जिनमे किसी प्रकार के शोक दर्द निजी मत अथवा निर्णय के लिए अवकाश ही नहीं है। इसीलिए 'सूने गलियारे में/निरुद्देश्य/चलते रहे हम सदा/दाएँ से बाएँ/और बाएँ से दाएँ।'[1] भारती ने अन्यत्र भी मूल्य सक्रमण की इस सक्रांतिमयी स्थिति को उभारते हुए कहा है कि हमें अपने दामन पर दाग आत्मा में झूठ, माथे पर शर्म की अनुभूति होती रहती है ओ प्रभु ! तुमने कब ऐसी सक्रान्ति अत 'तुम क्या समझोगे इन गत्यावरोधों का दर्द , तथा यह विडम्बनामयी स्थिति कि कैसे तरुणाई में ही/घुटकर मर जाते हैं विश्वास/प्राणों की समिधाएँ जमकर हो जाती हैं सर्द।[2] स्वातत्र्योत्तर-भारत में इस मूल्य हीनता की स्थिति द्वारा नयावह रूप धारण कर लेने के तथ्य की व्यजना करते हुए उन्होंने पराजितों की पीढ़ी से यह प्रार्थना कराई है कि कम-से-कम 'दो हमको फिर झूठे नक्ष्य तथा झूठे युद्धों का झूठा मदान क्योंकि संघर्षों में जीने के अभ्यासी नग्न तब व्याकुल हो उठते हैं जब उनमें शस्त्र और ईमान छिन जाते हैं।[3] दुष्यन्त कुमार ने भी अब तो वह चक्र व्यूह भी बिखर गया है जिसमे घिरकर अभिमन्यु समझता था खुद को/बस मैं ही दुर्निवार तम की चादर जमा/अपने निष्क्रिय जीवन के ऊपर फैला हूँ जिससे उस युद्धस्थल से भी ज्यादा भयप्रद रौरव हो गया है मेरा हृदय प्रदेश'[4] के रूप में इस तथ्य की ओर सकेत किया है कि दासता-काल में भारतीयों के सम्मुख स्वतन्त्रता प्राप्ति का भव्य लक्ष्य विद्यमान था अत उन्हें सांस्कृतिक अथवा जीवन मूल्यों का विघटन सत्रस्त नहीं कर पाता था किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त हो जाने के पश्चात हमारे समक्ष कोई महान लक्ष्य ही नहीं रहा[5] और हम बिना यह समझे-बूझे कि हमारा लक्ष्य क्या है या हम कहाँ जाना है अँधेरे में भटक रहे हैं। निरंजन महावर के ये उद्गार बहुत कुछ अंशों में उचित ही हैं कि हमारी स्थापनाओं के शिखर धुएँ में डूब गये हैं/और हमारे मूल्यों पर कालिख पुत गयी है'[5] तथा हमारे हाथों में अनास्था सफेदी की तरह बढ़ती जा रही है/हमारे नाखून अकर्मण्यता के कुण्ठ से गल-गलकर गिर रहे हैं[6] और हर तरफ अभाव है अनिश्चय है कटुता है अनास्था है/सागर वाष्प बनकर उड़ गया है।[7] एक अन्य कवि के भी उद्गार हैं 'युग बदल रहा है/युग के साथ बदलता है जीवन दर्शन/ / परम्परा रूपी सास/नवल धारणा की बहुआ द्वारा हो रही उपेक्षित।[8]

---

1 अन्धायुग पृ० 28 29
2 3 बारहवीं सक०, पृ० 120 21 4 'आवाजों के घेरे पृ० 10
5 7 प्रतिश्रुत पीढ़ी सक० पृ० 40 41 47
8 कालजयी' विनयकुमार आलोक पृ० 39

केशवचन्द्र वर्मा के अनुसार तो सम्प्रति ऐसी विषम स्थिति विद्यमान है कि 'मानव मूल्य युग धर्म अध्यात्म, शान्ति/और प्रगति आदि शब्दों का कोई अर्थ ही नहीं रह गया' है अतः हम 'उन्हें साथ-साथ इस्तेमाल कर सकते हैं।[1] पन्त ने इस विडम्बना के प्रति खेद व्यक्त किया है कि सम्प्रति वे लोग ही सभ्य समझे जाते हैं जिन्हें भारत की आत्मा की धड़कनों का रच मात्र भी भान नहीं होता और जो पाश्चात्य सभ्यता की नकल करते हुए उनके दास बने रहते हैं।[2] इसी प्रकार उदयशंकर भट्ट ने भी अपने काव्य सकलन पूर्वापर की भूमिका में पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण का विरोध करते हुए कहा है, 'क्या हमारी परम्परा का इतिहास भी पश्चिम के जङ्गली देशों की तरह हत्या, मारकाट सभ्यता की विषमता का इतिहास ही है? फिर क्या नहीं हम एक बार अपने घर की तरफ देखते? एक बार पश्चिम की चकाचौंध में अपने को भूलकर हिप्नाटाइज्ड रोगी की तरह सब कुछ लूट लेने का उद्यत उस विवेक की दवाओं में विश्वास करने लगते हैं जो चार्वाक, बृहस्पति की बातें गाई और कोट-पतलून पहनकर कह रहा है?[3] कवियों ने पाश्चात्य सभ्यता में अपनाये गये खान-पान और वेश भूषा आदि सांस्कृतिक तथ्यों का जो विरोध और भर्त्सना की है, उस पर द्वितीय अध्याय में प्रकाश डाला ही जा चुका है।

जहाँ तक परम्परागत नैतिक धार्मिक मूल्यों में युगानुकूल परिवर्तन करने की चेतना जाग्रत करने का सम्बन्ध है आधुनिक काल के कवियों में प्रायः सर्वाधिक आस्थावान मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'नित्य और नैमित्तिक कर्म, रखते नहीं एकी ही मर्म/रक्खो अवसर के अनुसार अपने साधारण व्यवहार'[4] तथा 'लो पहले इह लौकिक मोक्ष पीछे है परलोक परोक्ष' के रूप में यह धारणा व्यक्त की है कि हमें अपनी परम्परागत नैतिक धार्मिक मान्यताओं में युगानुकूल परिवर्तन की आवश्यकता है। आधुनिकता की माँग है कि हम परलोक सुधारने की चिन्ता करने से पूर्व इस लोक को सँवारने का प्रयास करना चाहिए। उन्होंने परिणत युग-बोध के अनुसार आदर्श सन्यासी भी ऐसे लोगों को ही बताया है जो स्वतन्त्रता-सघ में निवास करते हों और पुराने साधुओं की तरह स्वामीजी मात्र न होकर "रक्खें राजनीति का भान और समाज धर्म का ज्ञान।"[5] प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा के

---

1 वीणापाणि के कम्पाउंड में, पृ० 100

2 विपुल विदेशों के वैभव से/बौद्धिक वर्ग स्तब्ध आतंकित।
अपनी भाषा अपनी संस्कृति/अपना सब कुछ यहाँ तिरस्कृत
वही सभ्य भू-आत्मा से अनभिज्ञ/सभ्य पश्चिम की कोरी अनुकृति अनुचर।"
सत्यकाम पृ० 153 54

3 पूर्वापर, भूमिका पृ० च

4 5 हिन्दू, पृ० 367, 141

मुख स तप नही केवल जीवन सत्य [1] की धारणा व्यक्त कराने के साथ ही नान लोक का जो यह चित्रण किया है 'प्रियतम यह तो नान लोक है/सुख-दुःख म है उदासीनता वह वस्तुत परम्परागत निवृत्तिमार्गी वैरागिया नानिया के लाक का प्रतीक है। आनन्दवादी प्रसाद ने इस लोक के निवासी 'तपो को मृषा' तथा जीवन रस के प्रति 'छूओ मत संचित हान दो का विसगत दृष्टिकोण रखन वाले चित्रित किये है तथा आधुनिक काल की भौतिकतावादी मान्यताओं मे आस्था व्यक्त करते हुए उनका इन शब्दो मे उपहास किया है, मूल स्वत्व कुछ और बताते/ इच्छाओ को झुठलाते है/सामजस्य चल करने थे/किन्तु विषमता फैलाते हैं। पत न भी मध्यकालीन साधना को 'गिर के वन पर चलते बताकर गीता के कर्मण्येव अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' सिद्धान्त का प्रहसन भर होगा वह दशन कम प्रेरणा फल से वंचित के रूप मे विरोध किया है। उन्होने भारत की परम्परागत संस्कृति म वैराग्य नियति दैव पाप-पुण्य आदि पर बल देने की प्रवृत्ति को परिणत युगीन परिस्थितियो मे सवथा अव्यावहारिक और अमानवीय घोषित किया है पाप-पुण्य सत्रस्त अभावात्मक विराग-हत दृष्टि/नियति विधि पूवजन्म म व्यस्त/अमात्यवादी दवाधीन व्यावहारिक न रहा वह रथ/व्यक्ति केन्द्रिक वह मुडविभक्त/शुष्क निष्क्रिय विराग का मच। [3] यही नहीं उन्होंने भारत के पतन का मूल कारण यहां के निवासियों की आत्मवादी और विरक्तिपरक दाशनिक मान्यताओ म आस्था को बताते हुए यह परिणत चेतना व्यक्त की है कि मृत आत्मवाद के ही तम स/भारत का पतन हुआ निश्चय/जन जगदात्मा को भूल गये/आत्मा के गोष्पद मे हो लय [4] तथा कहते व धिक मध्ययुगी मन को/जिसने भू को दी विरक्ति वजन/दिया पारलौकिक का आकषण/कम प्रेरणा म वंचित कर मन। [5]

मध्ययुगीन आत्मवादी वैराग्यप्रधान नैतिक-दाशनिक मूल्यो को अव्याव हारिक बताकर भत्सना करते हुए भी पंत को पाश्चात्य संस्कृति के नितान्त भौतिकतावादी जीवन-मूल्य भी अस्वीकाय रहे हैं। इसीलिए नैतिकता विहीन भौतिक जीवन-दृष्टि की निदा करते हुए उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि भौतिकतावादी उपलब्धियो के मद म चूर मानव दानव बनता जा रहा है। उसके अनाचारो के कारण धरा नरक म परिणत हो गयी है। मानव मन का विगत संगठन चूर्ण हो गया है जिसम, नैतिकता चीत्कार कर रही सदाचार अन्ध/ दृष्टिहीन धन अधकार म राह टोहता फिरता है। स्थिति यह है कि 'बबर युग की ओर जा रहा फिर मानव-पशु/धम नीति आदश निखिल म्रियमाण हैं पडे। [6]

1-2 कामायनी, पृ० 64, 268

3 6 लोकायतन' पृ० 58, 317 670 484

लोक-सेवा तथा भौतिक आध्यात्मिक मूल्यो के समन्वय पर बल देते हुए उन्होने आत्म शुद्धि और पर-सेवा को ही वास्तविक 'तप' तथा 'मुक्ति के लक्षण' बताते हुए इस नयी धारणा को मुखरित किया है कि 'वह मुक्ति नही जो आत्मिक, नैतिक उन्नति हित बन्धन' होती है तथा 'भौतिक आध्यात्मिक बँटकर, रह सकते खंड न जीवित।'[1] युगवाणी म भी उन्होने 'धम, नीति और सदाचार का मूल्यांकन है जन हित की धारणा व्यक्त की है।'[2] प्रभाकर माचवे ने भी सत्यमेव जयते' की परम्परागत धारणा के विरुद्ध अपने मन को कभी सच न बोलने के लिए प्रबोधित किया है क्योकि आजकल के नैतिकताविहीन युग मे 'जाओ दिन को रात कहते, चाहिए गर बढना/दुनिया मे सत्य नही तिकडम ही जयते/सच्चाई को पडता है सहना' तथा 'कामयाबी इसम कि सच म भी जनाब झूठ के परसेंट हैं',[3] की विडम्बनामयी अनैतिक स्थिति विद्यमान है। दुष्यन्तकुमार ने भविष्यत् से अनुरोध किया है कि वह मानवजाति को ऐसी आस्था प्रदान करने की कृपा करे 'कि हम अपनी विश्री से डरें/बल दो-दूसरो की रक्षा करें/अपहरण न करें/दृष्टि दो/जो हम सबकी वेदना पहचानें'।[4] मुकुल न आधुनिक कालीन जीवन मे चतुर्दिक नैतिक मूल्या का ह्रास हो जाने के प्रति गहन विषाद व्यक्त करते हुए कहा है—"ईमान मिट रहा है/कथनी के आग देखो करनी लाज से मरी' जा रही है और नैतिकता की आधार शिला' खिसकती जा रही है। उन्होने खेदपूवक पूछा है, 'पर्याय धूतता का क्या है अब देशभक्ति/गद्दारी क्या पा लेती इतनी प्रशस्ति ?' अब किसी के सामने आसू बहाओ ता वे हँसी के पत्थर मारत हैं', विनीत बनो तो व धणा की कीचड उछालते हैं।' इससे बडी विडम्बना और क्या होगी कि स्वाथ गद्दारी स हँसकर हाथ मिलाता है/विवेकशीलता जाग्रत किन्तु अपग है/नैतरव हथकडा और झांसो का सहारा लेता है/भ्रष्टाचार, ईमानदारी को सजा देता है/कुटुम्बपरस्ती और पक्षपात, योग्यता की खिल्ली उडात हैं और 'इसाफ को भट्टी म झाक दिया जाता है।[5] विनयकुमार आलोक ने नैतिकता की मृत्यु हो जाने की स्थिति का चित्रण करत हुए दिखाया है कि उसका जनाजा उठाने वाला म हैं/ बगुला मुखी राजनेता/जिनकी कथनी व करनी मे विशाल अतर है/नैतिकता के जनाजे को/कधा द रहे हैं व लाग/जो धम की उज्ज्वल चादर ओढ/हीन-से-हीन अधार्मिक कृत्य/करन स नहीं चूकत और/जनाजे के आग और पीछे/उन लोगो की भीड है/जो कोटा और परमिट का/लिबास ओढे हैं/जो स्वकेन्द्रित हैं/और जिनकी आंखो पर/शुद्ध स्वार्थों की मूजन चढी हुई है'।[6] धूमिल न आधुनिक मानव के कुटिल

---

1 'लोकायतन' पृ० 142
2 'युगवाणी', पृ० 41
3 'स्वप्नभग', पृ० 73
4 'आवाजो के घेरे', पृ० 34 35
5 पथ के पुनीत पाँव', पृ० 83 87
6 'कालजयी', पृ० 3

व्यवहार को उस धूत मोची की तरह दिखाया है 'जो चौक स गुजरत हुए देहाती (शहरियो को भी !—शोधक) को प्यार से बुलाता है और मरम्मत के नाम पर/ रबर के तल्ले म लोह की तीन दजन फुल्लियाँ/ठोक देता है और उसके नही-नही के बावजूद/डटकर पसा वसूलता है। इस मीठी छुरी के भाकने के परिप्रेक्ष्य मे उनका यह मत सवथा उचित है 'गरज यह कि अपराध/अपन यहाँ एक सदाबहार फूल है/जो आत्मीयता की खाद पर/लाल भडक फूलता है।'[1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने दिखाया है कि उदात्त नतिक मूल्यो म आस्था रखन वाले ऐसे लोगो को, जिनकी दप्टि मे किसी को धक्का देकर आगे बढना पाप महत्वाकाक्षाए दु खो का मूल तथा सन्तोप ही परम धन होता है आधुनिक काल के परिणत नतिक मूल्यो म अनेक प्रकार की दुगति भोगनी पडती है।[2] उन्होने आधुनिक लोगो के विसगत आचरण की दशा यह बतायी है कि वे देखने को आगे दखते है किन्तु 'चलने पर पीछे चलत हैं। सामाजिक अनाचारा-दुराचारो म लिप्त लोगो की हत्या के लिए वे घुनी लकडियो के धनुप बनाते हैं जबकि घुनी लकडियो क जजर धनुपो पर भी वे 'विवेक के नाम पर प्रत्यचा चढान स मना कर देते हैं।[3] भूपण वनमाली ने लोगो द्वारा अपनी आत्मा को बेचन उसका व्यापार करने अथवा उसे सीढी बनाकर ऊपर चढने की दूपित मनोवृत्ति की ओर इगित किया है।[4] आनन्द शकर माधावन ने आधुनिक युग को चोर सस्कृति का युग बताते हुए कहा है कि साधु-वृत्ति के नतिकतावादी लोग तो 'बेचारे अगला म पदल ही फिरते रहने, को विवश हैं जबकि चोरो के शिप्य राजा बनते हैं/उनके बडे-बडे मकान हैं/स्कूल कालेज हैं/अस्पताल हैं, न्यायालय हैं। [5] रविनाथ सिंह ने आधुनिक समाज म वधकता के उपदेश देने क्रूरता के मुस्कराने, न्याय के रोन और सत्य के सोने की स्थिति दिखाई है।[6] केशवचन्द्र वर्मा के शब्दो म आजकल मानव-मूल्य युग धम अध-सत्य शान्ति आदि शब्दो के कोई अथ ही नही रह गय हैं।[7] नरेन्द्र शर्मा के उदगार हैं कि नतिक मूल्या के विघटन के कारण ही 'अथपति हैं अनथपति आज/छत्रधर क्षात्र धम से हीन और 'मनीपी करें दास का काज।[8] देश म भ्रप्टाचारमयी कचहरिया की सख्या बढत जाने के साथ ही रोज गीता/और गगाजल/कचहरी के काटते चक्कर' तथा जब से झूठ वकील बन गया है/चढ रहा/ईमान सूली पर।[9] सास्कृतिक योग-क्षेम की दप्टि से यह स्थिति

---

1 ससद स सडक तक', पृ० 119 2 3 'बाँस का पुल', पृ० 70 71, 78
4 'शब्दो का वक्ष' पृ० 75 5 दीपाराधना पृ० 98
6 पख कटा मेघदूत, पृ० 75 7 वीणापाणि के कम्पाउड म', पृ० 100
8 'प्यासा निझर', नरेन्द्र शर्मा, पृ० 25
9 अजुरी भर धूप', ह० च० पाठक पृ० 66

चिन्तनीय ही है कि इस 'कीरो, कीटो और दादुरो के अधे व्यवसायी युग म बलिदानो के रक्त-लेख या तो अनपढे रह जाते हैं, या बिना मूल्य बिक जात हैं अथवा उन्ह दीमक चाट जाती है।[1] बच्चन ने आधुनिक कालीन सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन से गुण-ग्राहकता के विलुप्त हो जान का चित्रण करते हुए किसी नतिकतावादी व्यक्ति से उचित ही कहा है, 'यह पद/यह पुरस्कार/यह अलकार/तुम अपना गुण/अपनी योग्यता? अपने अधिकारी होने का अहकार लिए बठे रहोगे, जबकि और कोई अपनी खुशामद बरामद/पहुँच प्रभाव, दबाव/प्रचार, बिलरिया दडवत के बल पर/चट ले जायेगा।'[2]

आधुनिक काव्य म लागा की कथनी और करनी मे आकाश-पाताल का अन्तर होने के फलस्वरूप जनित दो मुँहेपन या नैतिकता विहीन जीवन के विषय मे भी पर्याप्त उद्गार व्यक्त किए गये हैं। रणजीत के अनुसार उनके 'आस-पास बडे सभ्य लाग रहते हैं।' उनकी सभ्यता का नमूना यह है कि वे पानी तो कई बार छानते हैं, पर जहरीली परम्पराओ को आँख मीचकर पी जाते हैं/जो रोटी की पवित्रता का पूरा ध्यान रखते हैं/पर सिद्धान्त झूठे ही खा लेते हैं।" इसी प्रकार एस लाग रेडीमेड विचार खरीदते, विश्वास किराये पर लेकर काम चलाते तथा माँ-बाप की पसद से शादी करते बताये गय हैं।[3] एक अन्य कवि न भी आधुनिक काल के लोगो म माँगा हुआ अन्न खाने, झूठे विचार चाटने और स्वार्थों म पके कीट-युक्त आसव पीने का प्रचलन तथा वातावरण मे नारकीय लिप्साआ की दुर्गन्ध की परिव्याप्ति दिखाते हुए कहा है कि ऐसे वातावरण में 'मेरी तपस्या कैसे सम्भव है? अब/मेरे मत्र/प्रभावहीन हो चुके हैं/मैं उन्हें सिद्ध नही कर पाता।"[4] विनयन ने इस प्रकार किसी व्यक्ति के मुह से कहलाया है 'मैं अश्लील पोस्टरो के विरुद्ध लेख लिखता हूँ/भाषण भी देता हूँ/किन्तु (घर पर न्यूड फिगर आदि पढता हू।)/ साहित्य म प्लेटोनिक प्रेम का हामी (जीवन मे न्यू फिल्मो का शौकीन हूँ)।[5] कवि न किसी जी-हजूर व्यक्ति को अपनी जी-हजूरी का यह सु परिणाम भोगते दिखाया है कि 'आप बहद पोपूलर हैं/अनेक सस्थाआ के प्रधान' हैं, 'कवि सम्मेलनो के स्वयसिद्ध सभापति" हैं "विधान सभा के सफल उम्मीदवार' तथा 'सौम्यता के इश्तहार' हाने के साथ ही युवक, नेता, राजनीतिक, साहित्यकार

---

1 भारती का खडहर, जगदीश कुमार, पृ० 35
2 'उभरत प्रतिमाना के रूप', पृ० 121 22
3 'प्रतिश्रुत पीढी सक०, पृ० 212
4 क्षितिज की खोज, अचल राजपूत पृ० 48
5 'जग लगे सपने', पृ० 63

और 'सफलता के सड़े अचार बन हुए हैं।'[1] रामदरश मिश्र न भी आधुनिक जीवन के नतिकताशू य पक्ष का उभारते हुए कहा है ' हिजडा के हाथो में कामशास्त्र की पोथियां हैं/ भेडिया के गले म टँगा है/वष्णव सगीत/बदूका पर पचशील की मुहर है।'[2]

परम्परागत नतिक धार्मिक मा यताओ म युगानुकूल परिवतन करने पर बल देते हुए पत ने शिल्पी मे कहा है कि कोई भी आदश नही जो पूण चिरतन/इस परिवतनशील जगत म जहा निरन्तर/मनुज चेतना विकसित वद्धित होती रहती/प्रतियुग म अपने गत जीवन को अतिक्रम कर।'[3] ग्राम्या' म भी उन्होंने खोलो जीण विश्वासो, सस्कारो के जीण वसन/रुढियो रीतियो आचारो के अवगुठन/छिन्न करो प्राचीन सस्कृतियो के दढ बधन"[4] की धारणा व्यक्त की है। प्रस्तुत सदभ म दिनकर द्वारा भाग्यवाद की परम्परागत धारणा को नकारकर पुरुषाथ और कमठता की चेतना जाग्रत करने वाले यह उदगार भी द्रष्टव्य हैं ब्रह्मा स कुछ लिखा भाग्य म मनुज नही लाया है/अपना सुख उसने अपने भुजबल से ही पाया है"[5] तथा ' भाग्यवाद आवरण पाप का, और शस्त्र शोषण का/जिससे रखता दबा एक जन, भाग दूसरे जन का।'[6] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने भी युग-युग स ज्ञानी ध्यानियो द्वारा प्रतिपादित इन परम्परागत नतिक मूल्यो का तीव्र भत्सना की है कि विनत रहो श्रद्धारत मानव/शात साधना से/धीरज से/सयम से सतोष मौन स/जीवन की लघु कुटी सजाओ/वालो मत/प्रतिरोध करो मत/शोषण को ललकारो मत तुम/स्वार्थी से सघष करो मत/सपद स विद्रोह करो मत/सहते जाओ, सहते जाओ। मिलिन्द का मत है कि घोर गरीबी की चक्की मे पिसने को ईश्वर की इच्छा का प्रतिफलन समझकर शातिपूवक सहन करने का उपदेश ऐस 'वचक मुनि तथा ज्ञानी ध्यानी और विज्ञानियो, द्वारा दिया जाता रहा है जो 'धन सत्ता के क्रीतदास हैं/केवल तन मन नही/हृदय तक आत्मा तक सिद्धान्त सत्य तक/सब कुछ बेच चुके पाखडी। इन पाखडियो द्वारा सदियो स श्रमिक जनो को 'भ्रम का भक्ष्य बनाकर उलटी दिशा दिखाने के लिए कोसते हुए कवि ने अतत शोषितो-पीडितो के इस विद्रोह भाव का उल्लेख किया है ' इनकी बात न मानूगा अब।'[7] कहना न होगा कि धम प्राण भारत मे वास्तव मे ही ऐसी स्थिति आने मे ता समय लगेगा किन्तु समाज न एक अल्पाश की धर्माचार्यों की नतिक

---

1 जग लगे सपने पृ॰ 73
2 'कधे पर सूरज पृ॰ 17
3 'शिल्पी, पृ॰ 31
4 ग्राम्या, पृ॰ 99
5 6 कुरुक्षेत्र, पृ॰ 114 115
7 'नई किरण', पृ॰ 57 58

शिक्षाओ के सबध म ऐसी धारणा अनुदिन प्रबल होती जा रही है। दिनकर ने भी कुरुक्षेत्र मे इस नवीन धारणा का मडन किया है कि 'पातकी न होता है प्रबुद्ध दलितो का खडग/पातकी बताना उसे दशन की भ्राति है' तथा ' शोषण की श्रृखला के हेतु बनती जो शाति/ × × × सहना उस हो मौन हार मनुजत्व की है/ईश की अवना घोर, पौरुष की भ्राति है।"[1] गोपालसिंह नेपाली द्वारा अभिव्यक्त यह दृष्टि मध्यकालीन भारतीयो की भी रही होती तो देश कदाचित गुलाम न हो पाता, कि 'आजाद रहा देश तो फिर उम्र बडी है/मदिर भी है, गिरजा भी है, मस्जिद भी खडी है।'[2] भारतीय सस्कृति मे पत्नी के लिए वधव्य से बडा कोई दुख नही माना गया है किन्तु एक आधुनिक कवि की कैकेयी भारत को रक्ष सस्कृति के आधिपत्य से बचाकर, आय सभ्यता के प्रसार और राष्ट्र-कल्याण की बलिवेदी पर अपना सुहाग न्योछावर करने का उद्यत मिलती है।[3]

अन्य कवियो म दुष्यतकुमार ने यह आश्चय व्यक्त किया है कि सास्कृतिक दृष्टि स चाहे शिव हो अथवा सामान्य जन, "क्या इनम से अधिकाश लोग लाशें ढोते है/लाशें मरी मान्यताओ की/मर विचारो की/भावो की।"[4] स्पष्ट है कि वे युगानुकूल नये भावो, नये विचारो और नयी मान्यताओ के विकास पर बल देना चाहते हैं। केदारनाथ अग्रवाल इस स्थिति मे क्षुब्ध हैं कि दलित शोषित मानव-समूह वग-सघष स कतराने के कारण रक्त-वमन करत हुए मरता जा रहा है और "वह पुरानी सभ्यता के राजपथ पर/पेट के बल मद गति से '[5] रेंगना नही छोड पाता। कुवर नारायण के नयी पीढ़ी के प्रतिनिधि नचिकेता को पुरानी पीढ़ी से यह शिकायत है कि मुझे मात्र इस कारण विद्रोही क्या मान लिया गया है क्याकि मेरे सवाल तुम्हारी मान्यताओ का उल्लघन करत हैं/नया जीवन-बोध सतुष्ट नही होता/एस जवाबो स जिनका सम्बध/आज से नही अतीत से है/तर्क से नही रीति से है।'[6] इसी प्रकार मलयज का नचिकेता यह वरदान प्राप्त करने का अभिलाषी है कि उसके रूढिवादी परम्परा म पले-बढे पूवज "अपने आपको देखें/उन निर्वीय नपुसक मूर्तियो को ताडें/जिनके आराधन म तत्र उनके मुदे हैं—/तोडने को जिन्हें ही मैंने बाँह उठाई थी।"[7] स्पष्ट है कि ये मूर्तिया पुरातन सस्कृति की मान्यताओ की प्रतीक हैं। रमेशकुमार शर्मा न यह छटपटाहट व्यक्त की है

---

1 'कुरुक्षेत्र', पृ० 41 2 'शखनाद', सकलन पृ० 86

3 "वधव्य मुझे स्वीकार राष्ट्र की जय हो/दासत्व न अगीकार राष्ट्र की जय हो।' 'कैकेयी', के० ना० मि० प्रभात, पृ० 59

4 'एक कठ विषपायी, पृ० 121 5 'फूल नही रग बोलते है', पृ० 81

6 'आत्मजयी', पृ० 10

7 'नयी कविता', अक 4, पृ० 53

कि परम्परावादी भ्रष्ट-लोलुप वृद्धों ने नवीन आस्था विश्वासों के नवजात शिशुओं को रूढ़ियों की चट्टानों पर दे मारकर उनकी खोपड़ियाँ चूर-चूर कर डाली है।[1] श्यामसिंह शशि ने दिखाया है कि मरणासन्न पुरातन संस्कृति को हार्ट अटैक का तीसरा दौरा पड़ चुका है जिससे उससे सम्बन्धित अंग भंग संस्थाएँ-मान्यताएँ आँसू बहा रही हैं। पुरानी परम्पराएँ सम्प्रति टी० बी० के अस्पताल में भरती हैं। आस्थाओं को दमे ने घेर लिया है श्रद्धा को चेचक निकल आई है जबकि समाज को अत्याधुनिकता का कैंसर हो गया है।[2] अभिप्राय यह है कि कतिपय कवियों ने पुरातन नैतिक धार्मिक मान्यताओं में युगानुकूल परिवर्तन करने के तथ्य पर बल दिया है तो कुछ ने साम्प्रतिक जीवन-मूल्यों में उनकी दुर्गति को उभारकर प्रकारान्तर से इसी चेतना की व्यंजना की है।

प्रस्तुत अध्याय में धार्मिक आध्यात्मिक आस्था विश्वास तथा नैतिक-मान्यताओं के सम्बन्ध में अभिव्यंजित कवियों की चेतना से स्पष्ट होता है कि समाज का प्रबुद्ध वर्ग ईश्वर के अस्तित्व-अनस्तित्व की उलझन में ग्रस्त है। नीत्शे की ईश्वर की मृत्यु हो जाने विषयक घोषणा में अधिसंख्य कवियों ने आस्था व्यक्त की है। पडे-पुजारी, साधु-संतों, मठ-मन्दिर-मस्जिद गिरिजाघरों के सम्बन्ध में भी कवियों ने भर्त्सनापरक दृष्टिकोण व्यक्त किया है। मार्क्सवादी रुझान के कवियों ने जहाँ शासकों धनिकों और मठ मन्दिरों के कुटिल गठ-बन्धन द्वारा जन-सामान्य का शोषण किए जाने की निन्दा की है वहीं मैथिलीशरण गुप्त जैसे आस्तिक कवियों ने भी साधु-संत और पडे-पुजारियों के दुराचरण तथा मठ-मन्दिरों में परिव्याप्त भ्रष्टाचार की तीव्र निन्दा की है। कुछ अधिक ही प्रगतिशील कवियों ने मूर्तियों को गलाकर क्रान्ति के औजार बनाने तथा मठ-मन्दिरों में विज्ञानशालाएँ चलाने का भी विचार व्यक्त किया है, जबकि कीर्तन, दान, प्रसाद वितरण आदि पूजोपासना के उपकरणों के विरुद्ध भी विषवमन किया है। 'सम्भोग से समाधि' जैसे सिद्धान्त में आस्थावान लोगों की यह कामना भी व्यंजित हुई है कि भोग विलास में लिप्त व्यक्ति किसी ऐसे ईश्वर की खोज में हैं जिसे शराब के प्यालों और

---

1 लोलुप भ्रष्ट बुढ़ापों ने/उम्मीदों के/नवजात शिशुओं की खोपड़ियाँ/रूढ़ियों की खुरदरी चट्टान पर दे मारी।' 'एक अपरिचित आकाश', पृ० 57

2 प्रचण्ड संस्थाएँ/बहा रही हैं आँसू/आरथोपिड वार्ड में लेटी/दी जा रही है आक्सीजन/पुरातन संस्कृति को/हार्ट अटैक के तीसरे दौर में गिन रही है अन्तिम साँसें/टी० बी० के अस्पताल में पड़ी/परम्पराएँ/घेर लिया है आस्थाओं को दमे ने/निकल आई है चेचक श्रद्धा को/समाज पीड़ित है/अल्ट्रा आधुनिकता के/कैंसर से/कोढ़ उगल रहा है/नग्नता का फैशन। 'शिलानगर में', पृ० 94

वेश्यालयो म प्राप्त किया जा सके। इसी प्रकार व एसा आध्यात्मिक दशन चाहते हैं जिसका रासायनिक तत्वा की भाँति निरीक्षण-परीक्षण किया जा सके, जबकि मोक्ष को गुलदस्ते की भाँति मेज पर सजाया जा सके। आधुनिक काव्य म एक ओर तो ईश्वर धम, अध्यात्म, अवतार, पूजोपासना, कीतन आदि धार्मिक तत्वा की घोर विरोधी चेतना व्यक्त हुई है, जबकि इस तथ्य का दूसरा पहलू यह है कि गाधीजी आदि नताआ पर देवत्व का अध्यारोप करते हुए उनसे सम्बधित स्थलो, चित्तौड तथा क्रातिकारिया के स्मारका की नवीन तीथस्थला के रूप मे प्रतिष्ठा की गई है। यही नही 'लनिन' की समाधि के दशका का जिस रूप म वणन किया गया है वह कामरेड लनिन के भी देवत्व का ही उदघाटक है। नर म नारायणत्व की धारणा के बीज चाहे पुराकाल मे भी विद्यमान रह हा, किन्तु निधना-दलितो शोपिता-श्रमिको म ईश्वरत्व की चेतना आधुनिक काव्य मे ही राशि राशि अभिव्यजित हुई है। बलदवप्रसाद मिश्र जसे अपेक्षाकृत परम्परावादी कवि द्वारा भी 'लोक-सवा ईश-सेवा एक पथ दो काम' जसे उद्गार व्यक्त करना स्पष्ट करता है कि व्याव हारिक स्तर पर नही ता बौद्धिक स्तर पर तो निधन दलित-वग की सेवा करना, प्रभु पूजा जसा ही पुण्यप्रद समझा जाने लगा है। धरा पर ही स्वग की विद्यमानता तथा मानवत्व की सुरत्व स बढकर महत्ता हाने सम्बन्धी चेतना भी इसी नव चिन्तन की कडी है।

धार्मिक सौमनस्य-वमनस्य दोना ही स्थितिया के अभि यजक उद्गार मिलने पर भी अधिसख्य कविया ने सौमनस्य की चेतना को बढान का प्रयास किया है और इस दिशा म उदारचेता मुस्लिम कवि भी पीछे नही रहे हैं। हा इतिहास साक्षी है कि कट्टर-पथी धार्मिक भावनाआ के कारण भारत को विभाजन की नियति भोगनी पडी है। कविया न हिदू-मुसलमान धार्मिक उन्मादियो तथा उन्हें भिडाने वाले कुचक्री आग्ल शासका की तीव्र निन्दा करके अपनी जागरूकता का परिचय दिया है। पारम्परिक त्यौहारो के सम्बन्ध म कवियो न आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए, उनसे वाछित शिक्षा न ग्रहण करन के तथ्य की भत्सना की है। रावण को एक दिन के लिए मृत और पूरे वष राम की आत्मा म प्रवेश करके जीवित बताना इसी प्रकार की नूतन चेतना है। राष्ट्रीय पर्वों म से सन् 1963 के गणतत्र दिवस को पूववत शान शौकत स मनाने के तथ्य को भारतीया की बेहयाई का प्रतीक बताना (क्योंकि हमे 1962 म चीन से मुह की खानी पडी थी) कविया की जागरूक चेतना का ही प्रतीक है।

परम्परागत धार्मिक-नतिक और आध्यात्मिक मान मूल्या मे युगानुकूल वाछित परिवतन कर लेने के तथ्य की कवि-वग की ओर से जोरदार वकालत की गई है। स्थिति यह है कि एक ओर तो भारतीय दशन की निवत्तिपरक, वराग्य प्रधान, सात्विकतामयी परलोकोन्मुखी जीवन-दृष्टि की यहा तक देकर अवमानना

की गई है कि उसी के फलस्वरूप हमे गुलामी की जजीरो मे जकडना पडा था जबकि पाश्चात्य सस्कृति की नैतिकताविहीन, भोगवादी जीवन-दृष्टि को भी पतनमूलक अतएव अग्राह्य घोषित किया गया है। अभिप्राय यह है कि कवियो ने इस चेतना को उभारने का प्रयास किया है कि भारत की निवृत्ति और अध्यात्म } प्रधान जीवन-दृष्टि मे कतिपय भौतिकतावादी मूल्यो को स्थान देने की तो नितात आवश्यकता है किन्तु हमे भौतिकतावादी जीवन-मूल्यो का ही अधा पुजारी नही होना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय

अर्थोपार्जन के माध्यमों तथा देश की आर्थिक दशा सुधारने सम्बन्धी चेतना

भारतीय संस्कृति के मूल लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के अन्तर्गत धर्म को अर्थ से पहले स्थान प्रदान करने से ही स्पष्ट है कि भारतीय संस्कृति धर्म प्रधान रही है। धर्म के इस प्रामुख्य के फलस्वरूप ही चातुर्वर्ण्य के कर्तव्य-कर्म एवं जीविकाजन के साधनों में किसी वर्ण या जाति विशेष के लिए निर्धारित धर्माचरण की अवहेलना न करने पर विशेष बल दिया गया था। अर्थोपार्जन करते हुए भी कतिपय नैतिक मूल्यों के निर्वाह पर बल देने का तथ्य स्वाभाविक रूप में ही ऐसा मानसिक एवं संस्कारगत प्रतिबन्ध था, जो धर्म भीरु लोगों को अनैतिक अधार्मिक माध्यमों द्वारा धनार्जन करने से हटकता रहता था। काल प्रवाह की सुदीर्घ परम्परा में भारत में अनेक विदेशी जातियां भी अपने भिन्न जीवन-मूल्यों के साथ पचती-खपती रही हैं, किन्तु स्थूल रूप में यह कहा जा सकता है कि आधुनिक काल से पूर्व भारतीय संस्कृति की अपनी निजी विशेषताएँ ही, जैसे—पर-द्रव्य को लोष्ठवत् समझना, सांसारिक ऐश्वर्य विलास और भोगोपकरणों को मिथ्या स्वीकार करना, इहलौकिक भोगों की अपेक्षा पारलौकिक भोगों पर दृष्टि केन्द्रित रखना आदि हावी रही थीं। आधुनिक काल में आकर भौतिकतावादी पाश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप, भारतीय संस्कृति के पुरातन मूल्य बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो उठे हैं, और यह प्रभाव विशेषतया भारतीयों के खान-पान, वस्त्राभरण और अर्थोपार्जन सम्बन्धी दृष्टिकोण पर अधिक पड़ा है।

अर्थ की महत्ता के सम्बन्ध में 'सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्त' की पारम्परिक उक्ति भी यद्यपि धन की महत्ता को रेखांकित करती है, किन्तु दिनकर द्वारा 'टका सत्य है अरु सब माया'[1] के रूप में जिस टका धर्म को अभिव्यक्ति प्रदान की गयी है, वह प्राचीन कालीन संस्कृति का सामान्य स्वीकृत तथ्य नहीं थी। इस

---

1 "प्रासादों से घिरी कुटी में, चिन्ता मग्न खड़ी कवि जाया।
कोस रही वाणी के गुन को, टका सत्य है अरु सब माया।" 'रसवती', पृ० 53

टका धर्म के कारण ही सम्प्रति समाज के बहुलांश को अर्थोपार्जन के क्षेत्र में अधमाधम साधनों का आश्रय लेते हुए पाप-बोध नहीं होता। आधुनिक जीवन में धन की अत्यधिक महत्ता स्वीकार किए जाने के तथ्य को अन्य कवियों ने भी मुखरित किया है। रामेश्वर करुण के उद्गार हैं, कि सम्प्रति धनवानों को ही धर्मात्मा और विद्वान तथा निर्धनों को पापी समझा जाता है जिससे जगवासी वित्ताराधना में लीन रहते हैं। उन्होंने रुपये को पिता और भाइयों से भी बढ़कर समझने की मनोवृत्ति का भी व्यापक प्रसार दिखाया है।[1] रामविलास शर्मा की यह टिप्पणी भी पूर्णतः उचित है 'पैसा ही नेता यहाँ पैसा ही सरकार'[2] क्योंकि भारत की अत्यधिक खर्चीली चुनाव प्रणाली ही उक्त तथ्य का ज्वलंत प्रमाण नहीं है अपितु धन के बल पर विधायकों की खरीद फरोख्त से भी पैसा ही नेता यहाँ पैसा ही सरकार की उक्ति चरितार्थ होती है। रांगेय राघव ने भी, 'आह! यहाँ तो अर्थ स्वामि है यह सब मानव स्वयं दास है'[3] की धारणा व्यक्त की है। इस संदर्भ में बच्चन के 'बेटी न प्यारी है, बेटा न प्यारा है/प्यारा है सैयां रुपैया/ × × × गांधी नेता/जवाहर नेता/नेता है सैयां रुपैया'[4] के रूप में रुपये को ही सर्वस्व सिद्ध करने सम्बन्धी उद्गार भी अवलोकनीय हैं। शमशेर बहादुर सिंह का यह कथन भी उचित ही है कि सम्प्रति चीज यानी थिंग है पैसा और वे स्वयं भी थिंग, चीज, या माल बन चुके हैं[5] अर्थात उन्हें और उनकी आत्मा को सहज ही खरीदा जा सकता है। कहना न होगा कि व्यक्ति की आत्मा तक की खरीद-फरोख्त होने लगने के तथ्य का अर्थोपार्जन की दृष्टि से अपनाए जाने वाले माध्यमों पर बड़ा ही विघातक प्रभाव पड़ा है।

(क) अर्थोपार्जन के विभिन्न माध्यमों सम्बन्धी चेतना

आधुनिक कालीन जीवन के भौतिकतावादी रुझान के कारण परम्परा-स्वीकृत जीविकोपार्जन के माध्यमों में पर्याप्त व्यतिक्रम हुआ है। यह सत्य है कि छिटपुट रूप में लोग आधुनिक काल से पूर्व भी वर्ण या जाति विशेष के लिए स्वीकृत जीविकोपार्जन के माध्यमों से भिन्न माध्यम अपनाकर अर्थोपार्जन करने लगे थे,

---

1 'वित्तवान धर्मी सुधी, पापी वित्त विहीन
वित्ताराधन में सदा देख्यो विश्वविलीन।
× × × बड़ो रुपया विश्व मँह, नहिं भैया नहिं बाप।
'करुण सतसई', पृ० 107

2 उद० 'हि० का० में सांस्० चेतना' डॉ० जनेश्वर वर्मा, पृ० 422

3 'मेधावी' पृ० 242   4 'चार खेमे चौंसठ खूंटे' पृ० 91 92

5 'चुका भी हूँ नहीं मैं', पृ० 44

किन्तु यह तथ्य आधुनिक काल की ही देन कहा जाएगा कि सम्प्रति बहुत-से ब्राह्मणो ने शूद्र-वर्ण की जीविका के माध्यम जूते बनाने-बेचन मे म, कम-से-कम जूते बेचन की दुकानें खोल रखी हैं। चूंकि इन वर्ण या जाति विरोधी व्यवसायो को अपनाने का एक मात्र लक्ष्य धनार्जन होता है अत इस तथ्य की सहज ही कल्पना की जा सकती है कि आधुनिक काल से पूर्व जीविकोपाजन के विभिन्न माध्यमो के साथ, जो जातीय अथवा सास्कृतिक मूल्य जुडे हुए थे सम्प्रति उनकी रचमात्र भी चिन्ता नही की जाती। हमारी पारम्परिक सस्कृति नतिकता एव धर्म प्रधान रही है, उसम धन-वभव की अपेक्षा व्यक्ति क उदात्त आचरण का अधिक मूल्य रहा है किन्तु सम्प्रति पसा ही माई बाप तथा पसा ही नेता और सरकार बन जान की धारणा बलवती होते जान के कारण, हमारे जीविकोपाजन क माध्यमो से जुडे परम्परागत मूल्य भी छिन्न भिन्न होत जा रहे हैं। भारतीय जन-समाज म 'उत्तम खेती मध्यम बान, अधम चाकरी भीख निदान' की लोकोक्ति प्रचलित रही है किन्तु सम्प्रति अर्थोपाजन की दृष्टि से बान अर्थात वाणिज्य ने प्रथम चाकरी अर्थात् सरकारी सवाओ ने द्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया है, जबकि कभी जीविकोपाजन का सर्वोत्तम माध्यम समझी जाने वाली कृषि एक प्रकार से निकृष्ट माध्यम समझी जाने लगी है। आधुनिक काव्य म अभिव्यजित हुई अर्थोपाजन के माध्यमों स सम्बन्धित चेतना पर इसी अनुक्रम मे आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

(ख) वाणिज्य व्यापार और उद्योगो मे परिव्याप्त भ्रष्टाचार सम्बन्धी चेतना

उच्चकोटि की सरकारी सेवाओ तथा वाणिज्य-व्यापार के मध्य सामाजिक महत्ता की दृष्टि से पारस्परिक स्पर्धा या कशमकश की स्थिति अवश्य विद्यमान है, किन्तु देश म चतुर्दिक फले भ्रष्टाचार के कारण अतत वाणिज्य-व्यापार तथा व्यवसायो म लग लोगो की स्थिति ही इक्कीस सिद्ध होता है। कारण यह है कि उद्योगपतियो तथा बडे व्यापारियो द्वारा उच्चाधिकारियो को ही नही अपितु मत्रियो पुलिस और कानून तक को खरीद लिया जाता है, जबकि यदि कोई अधिकारी सच्चरित्र हुआ भी तो अधिक सम्भावना यही रहती है कि उसे किसी मिथ्या मामले म फँसाकर उसकी अकड ढीली कर दी जाएगी। कहा जा सकता है कि स्वातत्र्योत्तर कालीन भारत म 'मत्री-अधिकारी और व्यापारियो की ऐसी तिकडी या आधुनिक कालीन देवत्रयी पनपी है जो देश के आर्थिक ससाधनो की सर्वेसर्वा बनी हुई है। जिस देश मे पसा ही नता यहाँ, पसा ही सरकार' की स्थिति हो, उसके व्यापारियों का सिरमौर बन बैठना तथा अर्थोपाजन की दिशा म निश्शक होकर अधमाधम माध्यमो को अपनाना स्वाभाविक ही प्रतीत होता है।

किन्तु रामदरश मिश्र ने 'बड़े-बड़े तहखाना म/धूप बद कर ली जाती है/जाली नोट छापने के लिए/और बाहर तोरण/× × × चीखत रहते हैं/तमसो मा ज्योतिगमय'[1] के रूप म तहखान म जमाखोरी के माध्यम से चलने वाले काले बाजार की ओर ही इंगित किया है। शम्भुदयाल शर्मा ने तस्करी को 'छलमाया' की सज्ञा प्रदान करते हुए उसकी क्या दिन दूनी रात चौगुनी' वद्धि होती जा रही है का मूल कारण यह दिखाया है कि क्लब, होटल और महलो म बठे हुए धन कुबेरा अधिकारियो के इशारे पर ही तस्करी की छलमाया चलती है।[2] नीरज ने भी महानगरो म अनवानेक वस्तुआ की बडे ही सभ्रात दिखने वाले युवक-युवतियो द्वारा तस्करी किए जाने का पर्दाफाश करत हुए कहा है यहाँ कारा म/छोटी-बडी कारा म/काले बाजार का/तस्कर व्यापार का/माना चला करता है/या फिर बदशक्ल ठेना म/गाँजा अफीम, चरस/× × × या फिर आवारा बुश शर्टों म/नाइलानी साड़ी म/ऊची हील पर/लचकती थिरकती स्कट म/बेशम ब्लाउजा के अधनगे फैशन म/अग्रेजी शराब का नशा/रूप का गव/और पसे का दप चला करता है।[3]

(ii) सरकारी, गर सरकारी नौकरियाँ तथा कार्यालयादि मे परिव्याप्त भ्रष्टाचार सम्बन्धी चेतना

कृषि-कम के अतिरिक्त भारतीय समाज का बहुलाश सरकारी गैर-सरकारी नौकरियाँ द्वारा जीविकाजन करता है। इस वग म ऊँचे वेतन के साथ ही सरकारी बँगला कार और चपरासी आदि सुविधाएँ पाने वाले उच्चाधिकारियो से लकर उसके निचले स्तर पर दफ्तर के चपरासी तथा मिलो-कारखाना और घरो मे काम-काज करने वाले मजदूर भी सम्मिलित हैं। इन दोना स्तरभेदा क मध्य कम चारियों की अनेक श्रेणियाँ हैं, जिनके पदो के अनुकूल ही उनके वेतना मे तथा विभिन्न विभागो क अनुकूल ऊपरी कमाई या रिश्वत की आय म भी भेद रहता है। नाथूराम शर्मा शकर न आग्ल शासन-काल म चाकरी या नौकरी को अधम की कमाई का ऐसा माध्यम बताया था जिसम वेतन के अतिरिक्त उससे दुगनी तिगुनी ऊपरी आय के द्वारा मौज मस्ती उडाई जाती थी।[4] शकर के इन उदगारो

---

1 'कधे पर सूरज पृ० 5

2 क्रातिवादिनी, पृ० 82

3 आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नीरज स० क्षे० सुमन, पृ० 105

4 पाप चाकरी धम कमा लो, खाकर घूस पचा लो।
मौज उडा लो मासिक से भी तिगुना वित्त बचा लो।
'अनुराग रत्न पृ० 312

की सामान्य जन धारणा का प्रतीक कहा जा सकता है, क्योंकि चाहे छोटी हो या बडी सरकारी नौकरी और रिश्वत मे प्राय चोली-दामन का साथ स्थापित हो गया है। यदि परम्परा की दृष्टि से देखा जाये तो बाणभट्ट ने राजकर्मचारियों की 'चापलूसी का कुत्ता है दूसरे के लिए शरीर को तोडने माडने म वेश्या की भाँति है। वह जीविता म फूस है सिर मटकान वाला गिरगिट है, कराभिघात सहन मे कंदुक है' के रूप मे तीव्र निन्दा करत हुए कहा है, 'अवश्य ही वह दुष्कृती है, जो राजकुल मे प्रवेश करन का विचार मन म करता है।[1] किन्तु आजकल की स्थिति यह है कि राजकीय सवा क पुलिस न्यायालय चुगी आयकर या बिक्रीकर जसे विभागा तथा जीवन-बीमा निगम और बका की सेवाओ म स्थान पान वाले भाग्यहीन नही अपितु परम सौभाग्यवान समझे जात हैं।

आधुनिक काव्य म अधिकारियों की टालू नीति के सम्बन्ध म आक्षेप किया गया है कि वे कोई भी निणय लने के स्थान पर विविध तथ्यो के विषय म फाइलो को इधर स उधर टालत रहत है।[2] दफ्तर के चपरासियो म वे प्राय अपने घरो के काम करात हैं "चपरासी भी चला गया है/कुत्ते को नहलाने/मोटर पोछने/बाई साहब के पान लगाने।'[3] उदयशकर भटट ने क्लर्कों की दयनीय आर्थिक स्थिति और उनके परिवार क सदस्यो की मरियल सी स्थिति के सवथा विपरीत साहब वग का चित्रण करते हुए कहा है और उसी के (क्लक के) कधे पर सौ/दो सहस्र का, ढाई का भी/और तीन का/स्मश्रुमुडित/टाई, कालर कोट, बूट, पतलून/चुरुट युत /गव युक्त/अधिकार मिश्र/साहब बठा है।' साहबो का वग चरित्र यह है कि वह मिल सकता नही किसी स/साधारण मानव से जिसको/हँसना करना बात मना है/पदल चलना जिसे मना है/केवल उसका निज समाज है/अमलतास-स लम्बा सुन्दर।'[4] बलदेव प्रसाद मिश्र ने शासन के आदेशो और नीतियो के क्रियान्वयन का दायित्व अफसरो के कधो पर बताते हुए कहा है कि उनका निमल चरित्र होना अत्यावश्यक है अन्यथा "जिन नालो सेआप बहायें गगा का जल/उसमे मिश्रित होगा सहज रूप से उनका भी मल।' इसीलिए शासक कितना भी अच्छा क्यो न हो किन्तु जब तक उसके आदेशो का अधिकारियो द्वारा सु क्रियान्वन नहीं होता तब तक सरकार द्वारा कल्पित स्वग राज चित्र लिखित-सा ही रह जाता है।[5]

---

1 'हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन, डा० वा० श० अग्र० पृ० 176-77
2 देहात स हटकर' कलाश वाज०, पृ० 27
3 दो टूक बाल कवि बरागी, पृ० 33
4 पूर्वापर, पृ० 130
5 'रामराज्य' पृ० 113

सरकारी या निजी कार्यालयों में क्रियाशील क्लर्कों जिन्हें लोक भाषा में 'बाबू' कहा जाता है, की दयनीय दशा के सम्बन्ध में अपेक्षाकृत अधिक उद्गार व्यक्त किये गये हैं और कारण कुछ भी रहा हो उनकी जिस शोचनीय दशा को उभारा गया है उससे उनके वास्तविक जीवन की कम ही संगति बैठ पाती है। रामकुमार कृषक ने किसी क्लर्क को 'चाय चीनी के बिना भी/चाय होना' की स्थिति भोगकर बिना तेल के ही 'जल छिडक/कंघा फिराते खोपडी में फटी चप्पलें पहनकर दफ्तर जाते दिखाया है।[1] उदय शंकर भट्ट के अनुसार क्लर्क नौ बजते आधा-पौना पेट भरकर दफ्तर की ओर चल पड़ता है। उसकी पहचान यह है कि वह 'छतरी खोले, पायल भूषित' होता है। उसकी वेशभूषा में क्रीज हीन पतलून/निकर या/ढीला ढाला चुस्त पाजामा' प्रमुख स्थान रखते हैं। उसके स्वप्नों को 'केवल पहली तिथि को हँसने का अवसर मिलता है। उसकी पत्नी प्राय प्रति नव मास सृजन कारम्भायिनि होती है जिसमें उसके घर में बच्चों की ऐसी भीड़ भाड़ रहती है कि 'चार कोष्ठ में/दो कंधा पर/एक उदर में। वह बेचारा 'दस से पाँच बजे तक बैठा/अरबों जमा खर्च करता है/ × × × साहब के हँसने पर हँसता/सहमा सहमा डरता डरता। उसे खाने को केवल चेतावनी झिडकी और धमकी तथा पीने को अपमान मिला करता है। वह अक्सर ही कहता रहता है बच्चों का कपड़े खाने हैं/बीवी भी बीमार पड़ी है/ बडा तंग हूँ/कोयला है तो आग नहीं/चावल गहूँ शक्कर नहीं है/वेतन पन्द्रह दिन चलता है/धोती हर महिने फट जाती/बच्चे हैं कि मुसीबत/कपड़े प्रतिदिन नये फाड देते हैं। उसके पूरे जीवन में अधूरेपन का आधिपत्य रहता है उसका ज्ञान अधूरा, वेश अधूरा/क्रिया अधूरी होती है। वह अँगरेज राज का खडहर और केवल सरकारी पुर्जा मात्र है तो भी सरकारी काम-तन्त्र का वह आधार-स्तम्भ है और उसके ही कंधों पर यह सरकार खड़ी है तथा न्याय पताका लहरित शोभित हो रही है।[3]

सफेद-पोश बाबू वर्ग के विषय में अभिव्यक्त हुए कुछ अन्य तथ्य इस प्रकार हैं, कि उनकी वेतन-वृद्धि की जानी चाहिए क्योंकि वे महँगाई की चक्की में पिसे जा रहे हैं।[3] सुरेश किसलय ने इस चिन्ताजनक स्थिति की ओर इंगित किया है बास को अपनी बीवी सौंप/जोरू की कमाई खा/कालर सँवार रहे हैं कुछ क्लर्क/बटाढार-बेडा गर्क।[4]

---

1 मुखियों के स्याह चेहरे पृ० 20 2 'पूर्वापर', पृ० 124 29
3 बाबूजी के अच्छे कपडे, बीवीजी का वर परिधान।
कैसे दो सौ में चल सकते, जब सौ में तो मिले मकान।"
'क्रांतिवादिनी', श० श० भाति', पृ० 65
4 हलफनामा', पृ० 95

आधुनिककालीन सास्कृतिक जीवन म 'मक्खन-बाजी' और 'चमचागीरी' की धारणाएं नौकरी-पेशा वग से ही प्रचलित हुई हैं। राजेन्द्र धस्माना ने तो दफ्तरी-जीवन का छोटे-बडे चमचा और चम्मचियो का अड्डा बताते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि 'लालफीताशाही का तन्त्र' वास्तव म 'चमचे बनाने का यन्त्र' समझा जाना चाहिए। चमचो की इस फौज म 'पुराने चावलो की तरह/सबसे ज्यादा महँगे/जग लगे चमचे' अर्थात पुराने चापलूस या मक्खनबाज कर्मचारी होते हैं। जो स्वाभिमानी कर्मचारी चापलूस नही होते वे 'प्रतिभा बनाम/जग' की नियति भोगते रहते हैं,[1] अर्थात् उनकी तरक्की नही हो पाती। मदन वात्स्यायन ने अफसरों द्वारा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की गोपनीय रिपोर्ट लिखने का प्रभाव ब्रह्मा के लेख से भी बढ़कर दिखाते हुए कहा है कि 'ब्रह्मा का लिखा मिट सकता है किन्तु 'अफसर का काटा पानी नही माँगता' और उसकी इस बुरी रिपोर्ट से कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक का कोई भी कार्यालय रक्षा नही कर सकता। वह 'कानून की दरार में से गोली' चलाता है और फाइलो के जगल म ले जाकर कर्मचारी का कत्ल कर देता' है अर्थात उसकी उन्नति का मार्ग सदैव के लिए बन्द कर देता है।[2]

धनार्जन की दृष्टि से आधुनिक काव्य म वकालत और डाक्टरी के व्यवसायो को सर्वोपरि दिखाते हुए वकीलो और डाक्टरो की स्वार्थ-वृत्ति की तीव्र भर्त्सना की गयी है। गुप्तजी ने बीसवी शती के द्वितीय दशक म 'व्यवसाय है बरिस्टरी या डाक्टरी दूकान म'[3] के उल्लेख द्वारा यही दो महत्वपूर्ण व्यवसाय दिखाये हैं जो आजकल भी धनार्जन की दृष्टि से सर्वाधिक कमाई वाले धधे हैं। ऊँची फीस तथा मजिस्ट्रेट और आयकर विभागीय अधिकारियो आदि को दी जाने वाली मोटी रिश्वतो म से हिस्सेदारी के द्वारा सचित काले धन के बल पर बहुत से वकील चुनाव जीतकर स्वतन्त्र भारत की सरकार म मन्त्री आदि बन चुके हैं। इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए एक कवि ने लिखा है—'पहले ये बहुत बडे प्लीडर थे रिश्वत के आधार पर सबको कत्ल छुडवाते थे/अब तो बरसो से कांग्रेस के लीडर हैं एक दिन केन्द्र मे खीच लिए जायेंगे।'[4] बरसाने लाल चतुर्वेदी की भी एक मुकरी वकीलो सम्बन्धी जन धारणा का मुखरण करती है, झूठ बोलकर माल कमावे/षट्‌रस व्यजन नित्य उडावे/जल्दी ही बन जावे लीडर/ए सखि पडा ना

---

1 परवलय पृ० 69

2 उद० समसामयिक हिन्दी कविता विविध परिदृश्य, डॉ० गोविन्द रजनीश, पृ० 68

3 'भारत भारती' पृ० 149 292

4 युगयात्रा, आशुतोष प्रसाद शुक्ल, पृ० 111

सखि प्लीडर।[1] र० श० मित्र ने इस लोकधारणा को व्यक्त किया है कि—'व्यय वकीलो के चक्कर मे अपने को बर्बाद करो मत/लडवाना ही इनका पेशा भेद भाव से हृदय भरो मत।'[2] मुक्तिबोध ने यह उद्गार भी उचित ही है कि 'चुगी के नोकदार, भ्रष्टाचारी मजिस्ट्रेट और रिश्वतखोर थानेदार को धनोपाजन और सुख-सुविधाओ की दृष्टि से स्वर्ण के पुल पर विराजमान समझना चाहिए।'[3] स्वतत्रता-सेनानियो की ओर से वकालत करने के लिए वकील खोजते हुए जवाहरलाल नेहरू ने भी लिखा था, 'हर मौके पर मुझे अपने पेशे के लालचीपन को देखकर हैरत हुई है।'"[4] जहाँ तक ऊँची फीस का सम्बन्ध है सन 1930 के लगभग कलकत्ता के वकीलो के नेता नृपेन्द्र जेम्स की फीस उस मन्दी के जमाने म भी सत्तरह सौ रुपये प्रतिदिन थी।[5]

वकालत के समान ही न्यायालयो और पुलिस विभाग मे व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण इन विभागो के कर्मचारी अनैतिक धनार्जन की दृष्टि से समाज म पर्याप्त कुख्यात समझे जाते हैं। गुप्तजी ने दिखाया है कि पुलिस की शनि-दृष्टि उस व्यक्ति पर तुरन्त ही पड जाती है 'जो रहे गाँव मे और पेट भरकर खाता हो/माथा ऊँचा किये हुए आता जाता हो।'[6] ऐसा व्यक्ति किसी-न किसी केस म फँसाकर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया जाता है। उस व्यक्ति का यह सोचना कि पुलिस पकड ले मुझे न्याय से मैं छूटूँगा' सर्वथा बेकार है क्योकि उस झख मारकर दारोगा के इस कथन पर विश्वास करना ही पडता है कि मैं जो कुछ भी कर दू वही न्याय है तथा मैं अपने सामने जज कप्तान और कलक्टर का भी कुछ नही समझता।[7] भारत भारती म उन्होने इसी धारणा को अवशिष्ट दारोगागिरी मे सत्व और महत्व है'[8] के रूप मे व्यक्त किया है, तो सन 1956 म प्रकाशित 'राजा प्रजा' शीर्षक कृति मे भी स्वतन्त्र्योत्तर कालीन पुलिस म व्याप्त भ्रष्टाचार के सम्बन्ध मे यह भाव व्यक्त किया है कि पुलिस का मुह बन्द करने के लिए चादी की जूती ही नही अपितु चादी का मात्र नाल ही पर्याप्त है। उन्होने खेदपूर्वक यह जिज्ञासा भी व्यक्त की है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल मे गुप्तचर विभाग के वे कर्मचारी कहाँ मर गये हैं जो दासता-काल म तो देश भक्तो को तुरन्त पकड

---

1 'रग और व्यग पृ० 8
2 जननायक' रघुवीरशरण मित्र, पृ० 106
3 'चाद का मुह टेढा है पृ० 123
4 मेरी कहानी पृ० 304
5 'कुछ स्मरणीय मुकदमे अनु० कैलाश नाथ काटजू पृ० 3
6 7 'अजित', पृ० 9/9
8 भारत भारती पृ० 149/294

लेते थे, किन्तु अब इन भ्रष्टाचारी पुलिस-कर्मियो को नही पकडते, जिससे भ्रष्टाचार का नगा नाच हो रहा है।[1] रघुवीरशरण मित्र ने इस सम्बन्ध मे उचित ही कहा है, 'कतव्य-पथ से विमुख हो अब काम ऐसे ये करें/करते लुटेरे भी नही अन्याय जसे य करें/लेकर किसी से विपुल धन ये, झूठ कर दें सत्य को। × × × यदि द्यूत हाता हो कही उत्कोच लेकर छोड दें।[2]

न्यायालया मे व्याप्त रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार की भी कुछ कवियो ने तीव्र भत्सना की है। रामदरश मिश्र ने विद्रूपपूवक कहा है, 'कचहरियाँ बाजार सी बज-बजा रही है।' बमे तो न्यायालयो की दीवारो पर 'त्रास पर पर टँगी हैं/सत्य अहिंसा और न्याय की ऋचाएँ किन्तु उनको 'कुरसिया पर, तख्तो पर' मुरदे जसे भाव शून्य लोग बठे रहते है। इन मुरदा के हाथ फले रहते हैं' जिनमे 'चुपचाप नोट ठूसकर/अभ्यस्त लोग आगे सरक जाते हैं' जबकि बिना भेंट चढाये आगे बढ्ने वाले लोगो को 'ये हाथ पकड लेते हैं/और ठेल देत है पीछे।' यह स्थिति कितनी शमनाक है कि 'मुरदो के हाथो मे सडते/नोटो के कफन मे ढँके/न्याय की दुग ध टकराती' रहती है। जसे ही शाम होती है, नोटा के ढेर बटोर कर/मुरदे उठ खडे होते हैं/और चल देते हैं/अपन रगीन मकबरा की ओर।'[3] सरकारी कार्यालयो म परिव्याप्त भ्रष्टाचार के कतिपय अन्य नमूने भी अवलोकनीय हैं। कृत्रिम बाढ दिखाकर धन-लूटने की दशा यह है कि, 'पानी बरसता है फाइलो म/और सूखी सडकें, सूखे पुल देखते देखते/बह जाते हैं/लेकिन कुरसिया और भी गहरे जम जाती हैं।'[4] इसी प्रकार 'चपरासी बोला बडे अधिकार से/बचना चाह यदि आप/भ्रष्टाचार से/तो पदाधिकारी के पास जाकर/काम करवा लें/कुछ दे दिलाकर।'[5] काका हाथरसी द्वारा भी रिश्वत लेते हुए पकडे गये किसी व्यक्ति को यह पूणत उपयुक्त परामश दिया गया है कि अरे बावले तू राता क्यो है क्योंकि 'छटि जा तू भी रिश्वत देकर।'

(iii) कृषि कम तथा कृषको की दशा सुधारने सम्बन्धी चेतना

आधुनिक काल के काव्य प्रणेताओ के मानवतावादी रुझान के फलस्वरूप कृषका की दयनीय दशा को सुधारने के सम्बन्ध मे इतने अधिक उदगार व्यक्त हुए हैं कि *परिमाण की दृष्टि से इतनी अधिक उक्तियाँ* इससे पूववर्ती हिन्दी और सस्कृत की समग्र काव्यकृतियो म भी नही मिल पायेंगी। कविया ने

---

1 राजा प्रजा', पृ० 19 2 'परतत्र', पृ० 41
3 पक गयी है धूप', पृ० 8 9
4 'निषेध' सक०, रमेश गौड पृ० 1[illegible]
5 'हँसिकाए, सरोजिनी प्रीतम पृ० 36

समाज का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया है कि जमींदारों-महाजनों द्वारा कृषकों को उनके खेतों से बेदखल किया जाता रहता है लगान और ऋण की वसूली के लिए उनके घर-बार और पशु तक भी कुर्क करा लिए जाते हैं उनसे बेगार ली जाती है, उन पर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं और बहुत से किसान किसान से मजदूर बन जाने की विडम्बनामयी नियति भोग रहे हैं।

कृषकों के ऋणग्रस्त रहने के कारणों में नाथूराम शर्मा शंकर ने जम कर बीज, ब्याज और पोता[1] (लगान) का उल्लेख करते हुए कहा है कि इनके पन स्वरूप बंगाली कृषकों का जी जलाती रहती है और उन पर महँगाई की बरछी चलती रहती है।[2] हरिऔध ने 'फूलें फलें किसान सब पा मनमानी सपदा[3] की अभिलाषा व्यक्त की है जबकि मैथिलीशरण गुप्त ने भारत शासन-काल में उत्पादन के अनुसार ही किसानों का लगान भी बढ़ा दिए जाने की अल्पकालीन बन्दोबस्त व्यवस्था की ओर इंगित करते हुए उचित ही यह भाव व्यक्त किया है कि जब उनके बढ़े हुए उत्पादन को अतत सरकार द्वारा ही हड़प लिया जाता है तो फिर उनको इस तथ्य के लिए दोष देना व्यर्थ है कि कृषक जी-तोड़ मेहनत क्यों नहीं करते ?[4] गुप्तजी ने किसान शीर्षक कृति में भी आर्त-कृषकों की दयनीय दशा को उभारते हुए उनसे यह प्रार्थना करायी है कि हे प्रभु ! यदि हम कृषक वश में ही उत्पन्न करना था, तो आप हम बल बनाते जिसमें हम सारे दिन काम करने के पश्चात शाम को चारा तो मिल जाता[5]। हम ऐसी स्थिति तो नहीं भोगनी पड़ती कि, बनता है दिन रात हमारा रुधिर पसीना/जाता है सवस्व सूद में फिर भी छीना।[6]

यह एक अनुभूत तथ्य है कि भारतीय किसानों की दुदशा और उनके खेत बार बिकने के मूल में उनके द्वारा पुत्र-जन्म विवाह और मृतक भोज के अवसरों पर सामर्थ्य से परे व्यय करने के तथ्यों का प्रमुख हाथ रहता है। गुप्तजी ने इस दिशा में भी उचित ही यह युग चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया था कि कृषकों को इन अवसरों पर एक दिन की वाह-वाह सुनने के पीछे ऋणग्रस्त होकर चिर काल तक आहें भरते रहने की भूल नहीं करनी चाहिए।[7] केदारनाथ अग्रवाल का यह उल्लेख सामान्य कृषकों के सन्दर्भ में यथार्थ ही है कि भूखे कृषकों के पुत्रों को विरासत में मलबे के ढेर जैसा घर, टूटी खाटें और कुछ परती जमीन, तथा बनिया के रुपयों का कर्ज/जो नहीं चुकाने पर चुकता मिला करता है अत वे इस तथ्य से अनभिज्ञ रहते हुए कि आजादी क्या होती है अपनी उदर-पूर्ति के लिए

---

1 2 'शंकर सवस्व पृ० 150 152 3 मम-स्पर्श पृ० 166
4 भारती भारती पृ० 91/29 5 किसान, पृ० 6
6 'किसान', पृ० 9 7 हिंदू, पृ० 149

मुह बाये फिरते हैं।[1] किसानों को महाजनों के चगुल से बचाने के लिए निराला ने सन् 1943 में लिखी एक कविता म 'बक किसानो का खुलवाओ' के रूप मे 'सरकारी कृषि बैंक' खोले जाने की आवश्यकता का प्रतिपादन किया था। उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया था कि 'सारी सम्पत्ति देश की' होनी चाहिए अर्थात बैंकों का राष्ट्रीयकरण करके, उनसे कृषकों को सस्ती ब्याज पर ऋण दिये जाने चाहिए।[2] पंत ने किसी खेत से बेदखल हुए किसान की दयनीय दशा का चित्रण करते हुए दिखाया है कि बलात् लगान वसूल करने आये जमीदार के कारकुनो का प्रतिरोध करते हुए उसका इकलौता पुत्र मारा जाता है जबकि महाजन द्वारा ब्याज की कौडी तक न छोडते हुए उसका घर-बार ही नहीं अपितु बैलों की जोडी भी कुर्क करा ली जाती है।[3] युगवाणी म उनके आक्रोश का शिकार स्वय किसान का ही दकियानूसी चरित्र रहा है और उन्होंने कृषक-वर्ग की 'वज्र मूढ, हठी, बछिया का ताऊ रूढिवादी, अपरिवर्तनशील दीर्घसूत्री, दुराग्रही, शकालु सकीर्ण, स्व केन्द्रित, जिसम और कूप मडूक' बताकर भर्त्सना करते हुए उसकी दशा सुधारने का समाधान मार्क्सवादी देशों जैसी सामूहिक खेती बतायी है।[4] सो० ला० द्विवेदी ने तो किसानो को शोषण के प्रति विद्रोह करने के लिए प्रेरित करते हुए यह उद्गार व्यक्त किये है— यदि हिल उठा तू ओ शेषनाग/हो ध्वस्त पलक म राज्य भाग' क्योंकि वे धर्म-कर्म, दीनो ईमान/पोथी पुराण कलमा कुरान/वह तेरी हड्डी पर किसान, वह तेरी पसली पर किसान।'[5]

सियाराम शरण गुप्त ने किसी मोहन नामक किसान की बडी ही दयनीय दशा का चित्रण करते हुए जमीदारो द्वारा किसानो से बेगार करायी जाने की कुप्रथा का भी विरोध किया है। वह इस दृष्टि से गहन विषाद व्यक्त करता है कि हमारी खून पसीने की कमायी को 'कुछ तो हडप जाते हमारे सेठ साहूकार हैं/बाकी बचे को छीन लेते हाय मालगुजार हैं।'[6] इसी प्रकार की विषम स्थितियो से गुजरते हुए मोहन इतना अधिक निर्धन हो जाता है कि उसके पुत्र की पथ्याभाव मे मृत्यु हो जाती है, जबकि उसकी पत्नी को ऋणदाता पठान ले जाता है। यही नहीं कई दिनो से भूखा मरते मोहन को थानदार और जमीदार के आदमी जबरदस्ती बेगार करने के लिए पकड ले जाते हैं। पूरे दिन भूखा-प्यासा रहकर बेगार करके मोहन जब घर लौट रहा होता है तो थकावट और बुभुक्षा-जनित शारीरिक अशक्तता के कारण उसे ऐसी ठोकर लगती है कि उसके प्राण-पखेरू उड जाते हैं।[7]

---

1 'फूल नही रग बोलते हैं', पृ० 74
2 'बेला' पृ० 78
3 'ग्राम्या', पृ० 25
4 'युगवाणी', पृ० 51
5 'गाध्ययन', पृ० 38-39
6 7 'मृण्मयी', पृ० 30, 33

उक्त तथ्यों के परिप्रेक्ष्य मे कवि ने कृषक की दशा कुत्ता से भी बदतर बताकर क्षोभ व्यक्त किया है[1] जबकि मोहन के मुख से बेगार की कुप्रथा विरोधी मार्मिक उद्गार व्यक्त कराये हैं।[2] नीरज ने भी इसी प्रकार के एक काल्पनिक काव्य-वृत्त के माध्यम से खेत और बैल के कुडक हो जाने की दशा मे किसी किसान को मजदूर बनने की नियति भोगते दिखाया है। यही नहीं अत्यधिक भूख के कारण काम न कर पाने की दशा मे उसको मालिक द्वारा ऐसी ठोकर मारी जाती है कि उसकी मृत्यु हो जाती है।[3] कहना न होगा कि दोनों ही कवियों की इन करुणा प्लावित कृतियों का मूलोद्देश्य किसानों की दशा सुधारे जाने की चेतना जाग्रत करना ही है। तोताराम शर्मा[4], ज० प्र० मिलिन्द[5] श्रीकृष्ण सरल[6] भगवती चरण वर्मा[7], रामविलास शर्मा[8], शील[9], धूमिल[10] और गोपाल शरण सिंह[11] आदि कवियों ने भी तरह-तरह के तथ्य-तर्क प्रस्तुत करके किसानों की दशा सुधारे जाने की आवश्यकता को रेखांकित किया है।

(ख) उच्च, मध्यम और निम्न वर्ग सम्बन्धी चेतना

आधुनिक काल के अर्थ प्रधान वातावरण में समाज के सदस्यों को उनकी आर्थिक स्थिति की दृष्टि से उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों में विभक्त किया जाने लगा है और इन वर्गों से सम्बन्धित लोगों के कतिपय चारित्रिक गुण-दोष भी रूढ हो गए हैं। आधुनिक काव्य में इन वर्गों के गुण-दोषों, उपलब्धियों और अभावों के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में उद्गार व्यक्त किये गये हैं। स्थूल रूप में कहा जा सकता है कि उच्च वर्ग के प्रति कवियों की दृष्टि व्यंग्य विद्रूपात्मक रही है मध्य वर्ग की उन्होंने उसके विगत आचरण की दृष्टि से निन्दा भी की है और उनके सामाजिक योगदान की सराहना भी जबकि श्रमिक तथा निर्धन कृषक वर्ग के प्रति उनका दृष्टिकोण सहानुभूति-परक ही रहा है।

(1) उच्च वर्ग सम्बन्धी चेतना

उच्च-वर्ग के अंतर्गत बड़े-बड़े सेठ-साहूकार व्यापारी उद्योगपति, भूतपूर्व राजे महाराजे और जमींदार तथा स्वातंत्र्योत्तर काल के मन्त्रियों की गणना की जा सकती है। स्वातंत्र्योत्तर काल में विशेषत तस्करी और चोर-बाजारी के

---

1 2 मृण्मयी, पृ० 16, 29 3 'लहर पुकारे, पृ० 46 52
4 'ताज की छाया मे सक० पृ० 57 5 भूमि की अनुभूति' पृ० 34
6 सरदार भगतसिंह, पृ० 56 7 उमंग' पृ० 108
[redacted] 'रूपतरंग', पृ० 8 9 'गांधी की चर्खाशाला पृ० 38
10 संसद से सडक तक', पृ० 22 11 ग्रामिका, पृ० 70

वाले धंधों के फलस्वरूप एक नव धनाढ्य वर्ग भी उठ खड़ा हुआ है, जो शान शौकत और ऐयाशी में पूर्ववत लोगों के भी कान काट रहा है। आधुनिक काव्य में जहाँ कहीं भी सेठ-साहूकार पूंजीपति या जमींदारों आदि का प्रसंग आया है, कवियों ने उनके प्रति व्यंग्य विद्रूपात्मक उदगार ही व्यक्त किये हैं। ना० शर्मा शंकर ने किसी सेठ के विषय में यह व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है कि वह माला सटकाने (राम राम जपना, पराया माल अपना) के सदुद्यम द्वारा प्रतिमास छः आने सकड़ा ब्याज खाने का पुण्यार्जन करता रहता है।[1] इसी प्रकार उन्होंने 'राजा' या 'रायसाहब' की सरकारी उपाधि प्राप्त किसी श्रीमंत व्यक्ति के दिवा लिया होने के तथ्य का उल्लसित स्वर में चित्रण किया है।[2] मुक्तिबोध ने इस वर्ग के जीवन को विद्रूपतापूर्वक रेफ्रिजरेटरों, विटेमिनों, रेडियोग्रामों का जीवन बताया है।[3]

भगवती चरण वर्मा द्वारा किसी महल में एकत्र हुए 'गर्वोन्नत उच्छृंखल श्रीमानों' के सम्बन्ध में व्यक्त किये गये इन उदगारों से उनके वर्ग चरित्र पर अच्छा प्रकाश पड़ता है कि चूंकि वे 'भूपति थे' अतः 'मानी थे, वे पूंजीपति थे', अतः 'दानी थे', संक्षेप में, वे यश श्रद्धा के पात्र अरे/वे थे समर्थ अभिमानी थे।' उनके प्यालों के साथ-साथ जग की न जाने कितनी आहें नाचती रहती हैं। उनमें से एक की उचित ही यह गर्वोक्ति थी, 'हम जो कह दें/वह न्याय, वही है बुरा भला जबकि दूसरे के उद्‌गार हैं हमसे ही/जीवित है सब साहित्य कला। कवि ने दीन-दलित लोगों से इन भूपति-पूंजीपति श्रीमन्तों का अस्तित्व मिटा डालने का आह्वान किया है।[4]

पंत ने युगवाणी की धनपति शीर्षक कविता में पूंजीपतियों को आड़े हाथों लेते हुए उन्हें नृशंस तथा आर्थिक शोषण में अनुरक्त बताया है। श्रम द्वारा जीविकोपार्जन न करने वाले धनिकों को नैतिकता से शून्य बताते हुए उन्होंने कहा है कि 'अहम्मन्य वे, मूढ़, अर्थबल के व्यभिचारी' हैं। वे 'सुरांगना सम्पदा और सुरा से ससेवित' रहने वाले नर-पशु तथा पृथ्वी के भार-स्वरूप ऐसे अवांछित लोग हैं जिनसे मानवता लज्जित होती रहती है। उनको 'दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित कुत्सित' तथा 'लोक-जीवन का विनाशक विगत संस्कृति का गरल' बताते हुए पंत के अंतिम उद्‌गार हैं—'जग जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन
अब न प्रयोजन उनका अंतिम है, क्षण।[5]

1-2 'अनुराग रत्न', पृ० 305, 285
3 'चाँद का मुंह टेढ़ा है' पृ० 105
4 'विस्मृति के फूल' पृ० 39-42
5 'युगवाणी पृ० 49

प्रभाकर माचवे ने 'बड़े आदमी का बजट' शीर्षक कविता में उच्च वर्ग के जीवन का विद्रूपात्मक अंकन करते हुए दिखाया है कि उनके जीवित रहने की अपेक्षा उनकी मृत्यु पर अधिक व्यय होता है। जीवित रहते हुए तो वे मात्र एक वक्त लंच में उबली तरकारियाँ, सूप भर और टोस्ट खाते हैं, चाय भी ऐसी पीते हैं जिसमें 'दूध कम और चीनी (भी) कम' होती है। उनका स्वास्थ्य ही ऐसा होता है कि उनकी दूसरे प्रकार की बुरी आदतें सब खतम' हो जाती हैं किन्तु उनके मरने पर ढेर सारे बाँस/ठेले भर लकड़ियाँ/कीमती कफन/ऊपर से घी कपूर, चन्दन' के अतिरिक्त रोने वाले, ढोने वाले, रिश्तदारों को तार देने' के साथ ही अखबारों में उनकी मृत्यु की खबर और फोटो छपवाने पर भी व्यय करना पड़ता है।[1] एक अन्य कवि ने नव धनाढ्य वर्ग का विद्रूपात्मक चित्रण करते हुए दिखाया है कि उनकी मोटी और मांसल गर्दनें तलाक्त रहती हैं जबकि उनकी तोंद का विस्तार उनके छोटे या बड़े शोषक होने का भेद खोलता रहता है।[2] जयनाथ नलिन ने भी किसी चोरबाजारिये तोंदिल सेठ और उसकी थुलथुल पत्नी के सम्बन्ध में घृणापूर्वक लिखा है 'निज तोंदिल सेठ की ▮ गदगद/अपनी तोंद फुला जाते हैं।' कवि ने सेठ के पेट को मानवता का मरघट' बताते हुए उसकी स्वर्णाभरणों से लदी पत्नी के सम्बन्ध में लिखा है कि वह बिना पेटीकोट के साड़ी पहन कर नंगे पैरों गलियों में घूमती है तथा उसकी चिर सखियाँ हैं भगिन भटियारिन पनिहारिन।[3] कवि ने सेठ की पगड़ी के पेंचों को कलियुगी 'नाग फाँस या ब्रह्म फाँस घोषित करते हुए कहा है कि उनमें बंध जाते हैं टक्स कमिश्नर और कलक्टर/आडीटर हनुमान दबा लेते अपनी दुम/पर न दहन होती सोने की लंका/ निशि दिन आठों याम धरा पर, बजता इनके कानूनी शोषण का डंका।[4] एक अन्य कवि के भी घृणापरक उद्गार हैं कि पूंजी वालों का है राज/उनके हैं संसद सरकार/ न्यायालय औ कोषागार।[5] अज्ञेय ने भी इस वर्ग के लोगों द्वारा क्षुद्र जनों के साथ श्रम और सुखों का अनोखा बटवारा करने का विद्रूपात्मक अंकन करते हुए दिखाया है कि ये लोग श्रम करते तो हैं किन्तु वह मात्र सुरति-श्रम होता है जबकि उन्होंने क्षुद्र-जनों के लिए जो सुख बाकी छोड़ रखा है वह एक मात्र सुख है—मैथुन सुख।[6]

(ii) मध्यम वर्ग सम्बन्धी चेतना

मार्क्सवाद की यह धारणा सच सिद्ध नहीं हुई है कि धीरे धीरे मध्य वर्गों का

1 स्वप्न भंग, पृ० 46 2 स्फुलिंग महेन्द्र प्रताप, पृ० 94 97
3 4 'धरती के बोल पृ० 52 54 5 'दीवारों के पार मल० सि० शीशो० पृ० 102
6 'पूर्वा, पृ० 142

लोप हो जाएगा—किन्तु मध्यवर्गों का लोप ही नहीं हुआ, अपितु उनकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है विशेषतया जनतन्त्रात्मक देशों में।'[1] गटे की मध्यवर्ग की ओर सहानुभूति थी और उन्होंने कहा था कि 'व्यक्तित्व के विकास के लिए मध्यस्थिति ज्यादा अनुकूल पड़ती है। हम पाते हैं कि समस्त बड़े कलाकार और कवि मध्य वर्ग में हुए हैं।'[2] इसी प्रकार "गैसेट पूछते हैं कि आज वह कौन है जिसके हाथों में सामाजिक शक्ति है? कौन अपनी बुद्धि तथा मस्तिष्क के रूपों को युग के ऊपर आरोपित करता है? उनका उत्तर है कि निस्सन्देह मध्यवर्ग का मनुष्य इंजीनियर, डॉक्टर, पूंजी जुटाने वाला, शिक्षक आदि।'[3] मध्यवर्ग की इस प्रशंसा के साथ ही इस वर्ग की इस दृष्टि से पर्याप्त निन्दा भी की गई है कि उसके सदस्य अधिकांशतः सुविधाजीवी होते हैं, और सुविधाओं के पीछे वे अपना तन मन कुछ भी बेच सकते हैं। कवि पंत ने भी मध्य वर्ग को 'निखिल ज्ञान, विज्ञान नीतियों का उन्नायक' तथा 'विविध विश्वास विधायक' स्वीकार करते हुए भी उसको 'गत संस्कृति का दास' बताया है। उन्होंने आरोप लगाया है कि मध्यवर्ग 'उच्च वर्ग की सुविधाओं' का लोभी तथा शास्त्रोक्त मान्यताओं का प्रचारक होता है। उनके सदस्य सामान्य लोगों के साथ ही अपने वर्ग के साथ भी धोखे धड़ी का आचरण करते हुए 'स्वामि-सेवा' में तल्लीन तथा धनिकों जैसा विलासमय जीवन-यापन करने की स्पर्धा में ग्रस्त रहते हैं। इस वर्ग के लोग 'आत्म-बद्ध, संकीर्ण हृदय, तार्किक', तथा 'व्यापक मति' के होते हैं। वस्तुतः वे 'वाक्-कुशल' और अपने बुद्धि चातुर्य के अभिमानी होते हैं किन्तु 'अति विवेक' के कारण वे निरन्तर खिन्न हो जाते हैं और पाप-पुण्य की भावनाओं से सन्त्रस्त रहते हैं। मध्यमवर्ग के लोगों की अन्य चारित्रिक विशेषताएँ उनका 'परिजन और पत्नी प्रेमी होना,' उनका यश कामी तथा निजी व्यक्तित्व के प्रसार की कामना में लिप्त रहना है जबकि पर कल्याण के प्रति वे 'निष्क्रिय' बने रहते हैं। मध्यमवर्ग के लोग अपनी जीविका का उपार्जन मानसिक श्रम द्वारा करते हैं, अतः यदि वे श्रमिकों के अभिभावक बनना चाहें, तो 'नवयुग के वाहक' और 'प्रभावशाली लोक-नेता' बन सकते हैं।[4] 'शिल्पी' काव्यरूपक में पंत ने मध्यवर्ग के सम्बन्ध में यह धारणा व्यक्त की है कि 'युग कल्मष से पंकिल धरणी के प्रांगण में/नवीन सौंदर्य-चेतना का अवतरण नहीं हो रहा' है इसलिए 'मध्यवर्ग के सृजनप्राण युगजीवन शिल्पी के कंधों पर' ही सम्प्रति यह दायित्व भार आ पड़ा है कि वह सौंदर्य-चेतना के अवतरण का मार्ग प्रशस्त करे, क्योंकि वस्तुतः वही 'धरती की सौंदर्य चेतना का प्रतिनिधि' होता है।[5] पंत ने यौवन में पश्चिम के मध्यवित्त बौद्धिकों को मानवतावादी परम्परा के मन

1-3 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन', डॉ० देवराज, पृ० 391, 150, 150 . . .
4 'युगवाणी', पृ० 50
5 'शिल्पी', पृ० 101 . . .

अधिनायक' बताते हुए भी उनके द्वारा समष्टि मुक्ति के स्थान पर 'व्यक्ति मुक्ति के कामी' होने की दशा को उनके 'मोह निशा में निद्रित' रहने की अवस्था बताया है।[1] नरेन्द्र शर्मा ने मध्यमवर्ग के मुख से जन-सामान्य के प्रति यह उद्गार व्यक्त कराए हैं कि हम लोग क्रांति नहीं कर सकते अतः सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाने के लिए आप लोग ही कुछ क्रान्तिकारी कदम उठाइए।[2]

समाज के मध्यवर्ग के भी स्थूलतः दो उपवर्ग किए जाते हैं। सरकारी अफसर, वकील, प्रोफेसर डॉक्टर, इंजीनियर आदि की गणना उच्च मध्यवर्ग में की जा सकती है जबकि क्लर्क, अध्यापक छोटे दूकानदार आदि की गणना निम्न मध्यम वर्ग में। वास्तव में देखा जाये तो समाज का निम्न मध्यवर्ग ही उसका सर्वाधिक दुःखी-पीड़ित वर्ग है। निम्न वर्ग भी दुखी है किन्तु उसको व्यर्थ की महत्वाकांक्षाओं का अवांछित मानसिक सन्त्रास तो नहीं भोगना पड़ता, जबकि मुख्यतः 'सफेद-पोश' बाबुओं का यह वर्ग उच्च मध्यवर्ग में स्थान पाने या उस-जैसा जीवन जीने की अभिलाषा में ही जीवन की बाजी में जूझ मरता है। सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी सामाजिक जीवन में परिव्याप्त वस्तुवादिता का परिवर्तित स्वरूप माल गल आदि का अवैध धंधा विशेषतः इसी वर्ग की ठाठ-बाट का जीवन जीने की अभिलाषा के दुष्परिणाम कहे जा सकते हैं। आधुनिक काव्य में इस निम्न मध्य वर्ग की जीवन-दशा के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मात्रा में उद्गार व्यक्त हुए हैं।

प्रभाकर माचवे के अनुसार निम्न मध्यवर्ग के लोग उच्च-मध्य-वर्ग की नकल करते रहते हैं, चाल-चाल रहन-सहन, कपड़ों में रस्मों में। ये लोग नोन-तेल-लकड़ी की फिक्र में घुन से/मकड़ी के जालों से, कोल्हू के बैल से' लगे रहते हैं। इनके मकान गंदे, अंधकारपूर्ण और बदबू से युक्त होते हैं फिर भी इन दड़बों में ही ये लोग बच्चों पर बच्चे जनते रहते हैं। इस वर्ग के लोगों की नपुंसकता को रेखांकित करते हुए कवि ने कहा है लहू नहीं, गोमूत्र बहता इन जिस्मों में'। यही कारण है कि वे 'सदा डरते क्रांति से नवीनता से घबड़ाते पीटते लकीर।' इस वर्ग की 'दासत्व जर्जरित' मानसिकता के कारण ही उनके मुहल्ले में भिक्षाटन के लिए आने वाला 'फकीर कहता है—काम में तरक्की हो/ओहदा बढ़े/कमाने वालों की खैर रहे/औलाद बढ़ती रहे।'[3] उन्होंने मध्य वर्ग के लोगों को बेपेंदी का लोटा या

---

1 'सौवर्ण', पृ० 21

2 'हम मध्यवर्ग के लोगों ने हार मान ली भारत जन।
अब तुम्हीं सम्भालो बागडोर फिर करो, क्रांति आवाहन॥ प्यासा निर्झर',
पृ० 153

3 'तारसप्तक', पृ० 145

थाली का बगन तथा परम्परावादी बताते हुए अन्यत्र भी कहा है, 'इनके मन मे सदी-सदी के/बोदेपन के, वदी और नेकी के निश्चित रढ नियम हैं बद्धमूल, घुघले, अनदिखे/हैं सस्कार और विश्वास, सोचते हैं बस हम ही हम हैं/जग म इनका नहीं भरोसा/जिधर चल दिए सभी लोग/ये भी चलने उस दिशि मे डगमग हैं।'[1] सफेद-पोश वग जो एक प्रकार से निम्न मध्यम वग के कमचारियो का पर्याय बन चुका है, उसके विषय मे एक अन्य कवि ने कहा है कि उनकी दुनिया 'दगा, बेवफाई और मक्कारी से भरी रहती है। ये लोग देखने मे तो 'सफेदपोश हैं किन्तु 'दया और हया से दूर/बहुत दूर/स्वाथ के वशीभूत होकर भूतो की तरह अघकूप की ओर बढे' जा रहे हैं।[2] चिरजीत ने इस वग के लोगा द्वारा 'घर आन स पहले ही हो जाती खतम पगार' की नियति भोगने का चित्रण किया है। पति पत्नी म घर के खच घटाने क लिए कलह भी चलता रहता है, जैसे 'टी सिगरेट की बान बुरी है, दोनो से मुह मोडो/चलने स सेहत बनती है बस पर चढना छोडो।'[3] कहना न होगा कि इन तीना ही बुरी वस्तुओं के त्याग का परामश घरेलू खर्चों के लिए घन बचाने के तथ्य स ही अनप्रेरित है। इस वग के जीवन म आता है हर मास सुहाना पहली का त्योहार' की क्षणिक खुशी इस तथ्य के कारण शीघ्र ही समाप्त हो जाती है कि अधिकाश लोग पहली की तनखा पहले से किए हुए हम पार[4] की स्थिति म होते हैं, अत उनका वेतन पिछले महीने के उधार-खातो को चुकाने म ही समाप्त हो जाता है।

निम्न-वग—कवियो द्वारा निधन कृषक-मजदूर-मजदूरनियो की दशा सुधारे जान के तथ्य पर बल देना प्रकारान्तर से निम्न-वग की दशा सुधारने की चेतना जाग्रत करना ही है। नर को ही नारायण समझन की पिछले अध्याय मे प्रदर्शित चेतना इसी वग के प्राणिया के सम्बन्ध म व्यक्त की गई है। इसी प्रकार आधुनिक काव्य प्रणेताओ न श्रम की महत्ता को भी बखूबी उभारने को चेष्टा की है। हरिऔध ने विश्व के समृद्ध देशा की समृद्धि का मूलाधार वहा के कमवीर सपूतो का परिश्रम बताया है।[5] गुप्तजी ने परिश्रम से जी चुराने वाले भारतीय युवका को फटकारते हुए कहा था कि हमारे आग्ल शासको के तो राजपुत्रो तक को कुलीगीरी करने मे लज्जानुभव नही होता, जबकि हम उनके गुलाम होकर भी शारीरिक श्रम को हेय समझते हैं।[6] पत ने श्रमशील रहने वाली चीटी की प्रशसा उसे सुनागरिक

---

1 'अनुक्षण', पृ० 57
2 'उद्गम', सम०, आशुतोष कुमार चौधरी पृ० 22
3 4 'कहे परुडीदास', पृ० 41 19 21
5 पद्य प्रमोद', पृ० 44
6 'भारत भारती', पृ० 7

बताते हुए[1] श्रमिकों को सामाजिक जीवन का शिल्पी घोषित किया है।" रामेश्वर करुण ने यह धारणा व्यक्त की है कि 'श्रमकारी भंगी भला, बिन श्रम विप्र अछूत।[3] धूमिल ने घृणापूर्वक कहा है कि उस वर्तमान समाज में इस ससुरी कविता को जंगल से जनता तक/ढोने से क्या होगा ?' जिसमें 'श्रमजीवियों का पसीना पाप से अधिक बदबू' देता है।[4] इसी प्रकार ज० प्र० मिलिन्द ने 'श्रम का हो मूल्य उच्चतम[5] की अभिलाषा व्यक्त की है तो श्रीमन्नारायण ने श्रम तो अब लघुता का द्योतक' की स्थिति की भर्त्सना करते हुए कहा है 'यह तो है उपहास मनुज का शोषण है विध्वंस पाप है।'[6]

श्रम की महिमा को उभारने के साथ ही श्रमजीवियों की दशा सुधारने के प्रति संवेदना जाग्रत करने की दृष्टि से पंत ने यह भाव व्यक्त किया है कि उनका जीवन 'जग के कर्दम से पोषित' होने पर भी पवित्र होता है, वे शिक्षितों से अधिक सभ्य तथा स्नेह साम्य सौहार्दपूर्ण तप' से ओतप्रोत होते हैं।" उन्होंने कवि-कलाकारों का यह दायित्व बताया है कि वे अपनी कृतियों द्वारा कृषक-मजदूर वर्ग के सम्बन्ध में ऐसे वातावरण का निर्माण करें, जिसमें उन्हें अन्न-वस्त्रादि प्राप्त हो सकें।[8] पंत ने इस मार्मिक प्रश्न को भी उठवाया है कि हम ही अपने भुजबल से उत्पादन करते/श्रांति स्वेद में लथपथ पालन करते जग का तो भी हम ही अन्न वस्त्रादि उपलब्ध नहीं हो पाते हैं।[9] दिनकर ने दिल्ली को शासन-सत्ता और पूंजीपति वर्ग का प्रतीक मानते हुए आक्रोशपूर्वक कहा है 'अरी! गरीबों के लोहू पर खड़ी हुई तेरी दीवारें।[10] ज० प्र० मिलिन्द ने अपनी अनेक कविताओं में स्वातन्त्र्योत्तरकालीन श्रमिक वर्ग की दयनीय दशा को उभारा है। उनमें से एक में कहा गया है कि धनाढ्य या पूंजीपति वर्ग शोषण कर अदृष्ट दाँतों जीभों से हमारा रक्त-पान करता रहता है। यह अदृष्ट शोषण चक्र इस रूप में चल रहा है कि भीतर भीतर एक पुष्ट' और दूसरा कंकाल मात्र होता जा रहा है। मधुप से भी अधिक उन्मत्त हुए शोषक गण मानवता के क्षत विक्षत वक्षस्थल पर ताण्डव नृत्य करते हुए रौरव नरक की सृष्टि करने की ओर प्रयत्नशील हैं अतः विकट प्रश्न यह है कि 'कौन बचावे जग को/इनसे कौन करे अब मानवता का त्राण।'[11] एक अन्य कविता में श्रमिक वर्ग को नोन-तेल लकड़ी जुटाने की चिन्ता में फंसकर 'सूखी आँखें, कंकाल देह है रुद्ध कंठ/हम जीवित लाशें ताका करती आसमान' के

1 2 युगवाणी पृ० 28 31 3 करुण सतसई, पृ० 14
4 संसद से सड़क तक' पृ० 66 5 'नई किरण पृ० 25
6 'रजनी में प्रभात का अंकुर, पृ० 67 7 'युगवाणी, पृ० 52
8 9 शिल्पी 40, 41 10 हुंकार' पृ० 47
11 भूमि की अनुभूति' पृ० 11

रूप में चित्रित किया है तथा उनसे कहलाया गया है कि हमारे दल-के-दल अपना रक्त चुसवाते आए हैं, जिससे 'मनुजत्व हमारा गया रक्त के साथ साथ।' सम्प्रति स्थिति यह है कि 'हम पशु हैं दानव हैं जड नीरव पत्थर हैं' क्योंकि 'इतना सह-कर भी नहीं हमारे उठे हाथ।'[1] भारत के श्रमिक वर्ग में शोषण के विरुद्ध चेतना जाग्रत होने का चित्रण करते हुए सन 1950 में लिखी एक कविता में उन्होंने हुँकार उठी अब जन गण से/गूँजे भू-अम्बर, गिरि पयोधि/पीड़ित शोषित दलितों ने अब/जाना निज बल पौरुष अपार[2] की स्थिति चित्रित की थी, जबकि इसके सात माह पश्चात लिखी एक अन्य कविता में उन्होंने श्रमिक वर्ग को 'हम अब जाग्रत सगठित और उद्यत होकर/शोषक वर्गों से लेंगे अपने स्वप्न छीन'[3] का सकल्प व्यक्त करते दिखाया है। अपनी एक अन्य कृति में भी उन्होंने भू-श्रमिकों के प्रतिनिधि किसी ग्रामीण मजदूर से कहलाया है कि यद्यपि मैं अनिकेतन भूमिहीन निस्सबल, निःसाधन और निर्धन भूमि-पुत्र हूँ फिर भी समाज को यह नहीं भूलना चाहिए कि उसकी व्यवस्था का 'मैं पहला पत्थर हूँ नींव का' और 'मुझी पर खड़ा हुआ/सधा हुआ है, 'यह ज्योतित उच्च भवन/जीवन का सस्कृति और सभ्यता, समृद्धि का/मानवता विश्व का।[4] सामाजिक व्यवस्था के लिए सस्कृति और सभ्यता के लिए इतना अधिक उपयोगी होते हुए भी मैं अभी तक लाछित, अपमानित, शोषित और वचित रखा गया हूँ किन्तु अब 'और अधिक सह्य नहीं/होगी यह विषम दशा, यह शोषण/वचकता। कारण यह है कि मेरे अन्तमन में समत्व-भाव का आत्म-बोध धधक उठा है अब मेरी उचित सामाजिक न्याय पाने की पिपासा भी भड़क उठी है और मैं 'चाहता हूँ/सर्वहारा विश्व के हों सगठित समस्त अब/आहुतियाँ प्राणों की दे-देकर धधका दें/क्रांति-यज्ञ-ज्वाला वह/जिसमें हो भस्म सकल शोषण प्रपीड़न यह/भेद भाव वचकता/असत्य/विषमता कल्मष, अन्याय।[5] वह भू-श्रमिक इस तथ्य के प्रति पूर्णत आशान्वित भी है कि सर्वहारा वर्ग के सगठित प्रयासों द्वारा क्रांति-यज्ञ की ज्वाला धधकाने के फलस्वरूप शीघ्र ही ऐसी स्थिति आ जाएगी जब हम 'पावेंगे सर्वोपरि शीर्ष स्थान तथा विश्व जीवन से शोषण का विष मिटकर 'समता का अमृत व्याप्त होगा कण-कण में।[6] सोहनलाल द्विवेदी ने भी कृषक और मजदूर वर्ग की शोचनीय दशा को इस रूप में उभारा है कि वे रात दिन कठोरतम श्रम करते हुए भी जीवन-यापन की सामान्य सुविधाएँ भी प्राप्त नहीं कर पाते। उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि विभिन्न राज्यों के उत्थान-पतन, सभी प्रकार के नव निर्माण और गीता पुराणादि के मूल में भी उन्हीं का श्रम सन्निहित रहता है। ऐसी दशा में श्रद्धा

1-3 भूमि की अनुभूति, पृ० 51 52, 24 53
4 6 'नई किरण' पृ० 27 34 35

और विष्णु के रूप में सामाजिक जीवन के निर्माण और भरण-पोषण का भार सम्हालने वाले कृषक-मजदूर-वर्ग के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह शम्भु की तरह ताण्डव नृत्य करके पहले इस समाज-व्यवस्था को ध्वस्त कर दें और तदनन्तर उसका मंगलमय नव निर्माण करें।[1] रघुवीरशरण मित्र[2] रामविलास शर्मा,[3] शिवमंगलसिंह सुमन[4] महेन्द्र भटनागर[5] और नीरज[6] आदि कवियों ने भी विभिन्न प्रकार के मजदूरों घसियारों, रस्सी बँटने वाला आदि निम्न वर्गीय लोगों की दयनीय जीवन-दशा को उभारते हुए एक ओर तो सरकार और पूँजीपतियों का ध्यान उनकी दशा सुधारने की ओर आकृष्ट किया है जबकि दूसरी ओर इस प्रकार की चेतावनी भी दी है— हो सावधान ! सम्भलो ओ ताज तख्त वाला/ भूखी धरती अब भूख मिटाने आती है।[7]

(ग) ग्राम एवं नगर जीवन विषयक चेतना

आधुनिक काव्य में ग्रामीण एवं नगर जीवन के गुण-दोषों के सम्बन्ध में प्रचुर मात्रा में उद्‌गार व्यक्त किए गए हैं जिसमें अभिव्यंजित हुई चेतना के आधार पर ग्राम और नगर-जीवन विषयक धारणाओं पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

(1) ग्राम-जीवन

भारत का ग्राम-जीवन ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। सांस्कृतिक परिवर्तनों की दृष्टि से ग्रामवासियों के जीवन मूल्यों में बहुत कम अन्तर आया है जबकि भारतीय राजनीति के अन्तर्गत विगत हजारों वर्षों में अनेकानेक राज-वंशों का उत्थान-पतन होता रहा है। ग्राम-वासी स्वभावतः ही परम्परा प्रिय होते हैं, जबकि आवागमन के द्रुत साधनों के विकास से पूर्व, वे बाहरी जगत से कटे भी रहते थे। उन पर राजनीतिक उथल-पुथल तथा बाहरी सभ्यता और संस्कृति का विशेष प्रभाव नहीं पड़ पाता था। सम्प्रति स्थिति बदल तो गई है किन्तु महानगरीय जीवन की तुलना में अब भी भारतीय गाँव ही यहाँ की परम्परागत संस्कृति की वास्तविक बानगी प्रस्तुत करते हैं। आधुनिक काव्य में ग्रामजीवन की कवियों ने इस दृष्टि से तो प्रशंसा की है कि उसमें ही सच्ची मानवीयता मिलती है जबकि उसमें शिक्षा चिकित्सा आदिक

---

1 'गाध्ययन' पृ० 35 40 — 2 'परतंत्र', पृ० 61-65
3 'तारसप्तक' सं० रामविलास शर्मा पृ० 263
4 मिट्टी की बारात, पृ० 11
5 चयनिका, पृ० 107, 110 160
6 7 'प्राणगीत' नीरज पृ० 64 61 62

सुविधा गो का अभाव होने के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। भारत के गाँव ही भारतीयता के प्रतीक हैं, इस तथ्य की व्यजना पत न भारतमाता ग्रामवासिनी/ खेता म फला है श्यामल/धूल भरा मला-सा आँचल/ × × × गगा-यमुना मे आँसू जल/मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी,' के रूप मे की है।[1] सोहनलाल द्विवेदी ने है अपना हिन्दुस्तान कहा ?' के प्रश्न का उचित ही यह उत्तर दिया है वह बसा हमारे गाँवा मे ।[2] नरेन्द्र शर्मा ने इसी चेतना का 'सारा भारत है एक ग्राम, सच्चा भारतवासी किसान'[3] क रूप मे व्यजित किया है तो डॉ॰ बेचन ने भारत किसका है ? यह जो कि हल लेकर खेता म जा रहा है'[4] के रूप मे इसी तथ्य की ओर सकेत किया है। रघुवीर शरण मित्र न भी गाँधी जी की इस धारणा का उल्लेख करत हुए कि 'मूर्तिमान तस्वीर देश की, सात लाख ग्रामा म देखो उनकी इस अभिलाषा का भी चित्रण किया है कि मैं किसी गाँव मे डेरा डालकर उसके जीवन-सागर से सद्भावना रत्न निकालना चाहता हूँ ।[5]

बीसवी शती का एक प्रमुख नारा गाँवा की ओर लौटने या चलने का रहा है जिसके अनुकूल कतिपय कवियो ने भी ग्रामीण जीवन का रोमाटिक चित्र प्रस्तुत किया है। मथिलीशरण गुप्त न यह भाव व्यक्त करत हुए कि अधम चाकरी (सरकारी नौकरी) करते हुए कसे तुम होगे स्वाधीन ?' युवका को यह परामश दिया था 'उत्तम खेती करो सहष, पाओ आर्योचित उत्कष ।' यही नही सन 1911 की सरस्वती म प्रकाशित एक कविता मे उन्होने अहा ग्रामजीवन भी क्या है ?' क रूप म ग्रामीण जीवन को सुख-सुविधाओ का निधान घोषित किया था। हाँ बाद म हिन्दू क रचनाकाल (सन 1928) तक उनका दृष्टिकोण बदल गया है और उन्होंने शिक्षित युवका को इस तथ्य की प्रेरणा दी है कि ग्रामीणा म परिव्याप्त अशिक्षा और भूत प्रेतादि सम्बन्धी अधविश्वासा को मिटाएँ, उन्हे शिशु प्रजनन के समय स्वच्छता रखने, गदे छुरे से नार न काटने आदि क तथ्यो की जानकारी दें, जिससे नव-जात शिशुओ को अकाल-मत्यु का शिकार न बनना पडे ।[6]

पत ने ग्राम्या म भारतीय ग्रामो की दयनीय दशा को उभारत हुए 'यहाँ घरा का मुख कुरूप है कुत्सित गर्हित जीवन/सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या, जहाँ उदर है क्षुब्ध नग्न तन'[7] का भाव व्यक्त किया है। उन्होंने आगे कहा है कि हिंस्र विजेताओ के आक्रमण रहे हा या नशस गृह-सघष, उनका परिणाम अतत ग्रामा को ही भोगना पडा है। गाँवा म 'धर्मों क उत्पात जातिया और वर्गों क उत्पीडन' के चक्र

1 विम्बरा', पृ॰ 79
2 गाध्ययन', पृ॰ 22
3 हसमाला पृ॰ 29
4 शहादत की शाम', पृ॰ 17
5 'जननायक', पृ॰ 332
6 हिन्दू', पृ॰ 83 85
7 'ग्राम्या', पृ॰ 13

चलते रहते हैं जिससे भारत के ग्राम्य 'चिर मर्कलित मनि विश्वास और सनातन विचारो के पुज' बन गये है।[1] ग्रामीणा की नारकीय दशा को देखकर कवि कह उठता है कि यह भारत का ग्राम-सभ्यता सस्कृति से निर्वासित होन के कारण मानव-लोक नही कहा जा सकता अपितु यह है नरक अपरिचित। झाड-फूस से बने घरो म ग्रामीण नर-नारी कीडो स रेंगते रहते है। उनके जीवन म अकथनीय क्षुद्रता और विवशता भरी रहती है और कोढ म खाज यह है कि गाँवा मे 'गह गह म है कलह चित्त म कलह, कलह है मग म'[2] का वातावरण परिव्याप्त रहता है। लोकायतन मे उन्होने नित सात लाख गाँवा म रहता आया जन भारत के तथ्य का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि इन सात लाख गाँवो म रहने वाले ग्रामीण जना द्वारा सत्याग्रह आन्दोलन म तन मन धन से भाग लिया गया था। सत्याग्रह आदालन म सम्मिलित होकर सरकार को लगान देना बन्द कर दने के कारण ग्रामीणो को लिये खेत पुर द्वार, जले घर, लुटे बहू माँ-बहिनो के तन[3] की नियति भागनी पडी थी और प्राय ही ऐसे दृश्य दीख पडते थे, त्रस्त सत्य अत्याचारा म ऊँटो-वला पर लाद घर/लीक बाँध रेंगत डगर पर नग भूखे बाल वृद्ध नर' जिससे गाँव उजडकर 'निजन वन जसे हो जाते थे।[4]

ग्रामवासिया को नगरवासिया स श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए पत ने कहा है कि वे निरक्षर हाते हुए भी प्रबुद्ध है और यद्यपि उनका रहन सहन सीधा-सादा होता है तथापि उनके अतमन का सन्त्व आदर्शों के प्रति आकषण बना रहता है[5]। उन्होने नगरा की पश्चिम क अनुकरण मृत/ये नगर हम अब लगते बासी के रूप म निन्दा करते हुए उनके आर्थिक स्पर्धा स पीडित मन' वाले निवासियो से जो उन्ही क शब्दो म कृत्रिम उपकरणो से वेष्ठित रोगी वभव भोगविलासी होते है यह आग्रह किया है कि वे ग्राम-वासिया से सहज-सरल जीवन-यापन की शिक्षा ग्रहण करें।[6] नवीन ने भारत के सात लाख ग्रामो के सहज और सरल ग्रामवासियो की दयनीय दशा पर आसू बहाते हुए कहा था ग्राम नही य सदियो की आहे पूँजीभूत हुई है/मानव की वदना व्यथाएँ बनकर ग्राम प्रसूत हुई हैं।'[7]

कुछ कवियो ने नगरो द्वारा ग्रामा के शोषण क विरुद्ध भी आवाज उठाइ है। बलदेव प्रसाद मिश्र ने वन को जाते हुए राम के हृदय म यह भावना परिव्याप्त दिखाई है कि नगरा को अपने साथ-साथ गाँवो को भी विकसित करना चाहिए अन्यथा नगर बढ गये गाव सुखाकर तो उस बस्ती को धिक्कार योग्य ही समझना चाहिए।[9] इस सदभ म बच्चन का स्वर बडा प्रखर है पद-कथाओ को

1 2 'ग्राम्या पृ० 14 16 3 5 लोकायतन' पृ० 128, 98 99
6 7 सक्राति, पृ० 16 30 8 हम विषपायी जनम के, पृ० 470
9 रामराज्य, पृ० 24 25

तो तुमने ब्याह दिया/किन्तु ग्रामा सुभगा को/नगर-वधू दुभगा बनाकर छोड़ दिया है। 'नगर भोगते उसे/लूटते उसके/नित नव-यौवन को/पर बदले में क्या दे जाते?' नगरों द्वारा उपभोगित ग्रामों की दुर्दशा दिखाते हुए कवि ने कहा है, 'चूल्हा रोज नहीं उसके घर में जलता है/अलंकार शोभा-परिधानों की न चलाओ/लज्जा रक्षक वसन/वदन पर धारण करना उसको दुष्कर।' अतत कवि ने नगर को चेतावनी भी दी है 'किन्तु याद रख/उसे भोगते और भोगते, और भोगते हुए/स्वयं तू भुग जायेगा।'[1] रामप्रसाद मिश्र का आक्षेप है कि भारत के गाँव तो 'बुद्धि, धन बल से हीन' होकर 'सड़ रहे प्रतिक्रिया में/रस निचोड़े हुए फल के/उपेक्षित छिलके' से जबकि 'विपुलतम ऐश्वर्य सारी शक्ति/सारा सुख/लुटाया जा रहा/थोड़े से नगरों के/मुट्ठी भर लोगों में/नरपशु महानों पर।'[2] सोहनलाल द्विवेदी ने इस दृष्टि से आक्रोश व्यक्त किया है कि गाँवों से, दधि, दूध और घृत की नदियाँ ये नगर पिए ही जाते हैं जबकि 'भूखे रहकर, नंगे रहकर, ये गाँव जिए ही जाते हैं।'[3] दिनकर सोनवलकर ने ग्रामवासियों को नगरवासियों की अपेक्षा मानवीय गुणों की दृष्टि से उत्तम बताते हुए[4] भी इस दृष्टि से खेद व्यक्त किया है कि गांधी जी की अभिलाषा के सर्वथा विपरीत 'प्रगति ओ निर्माण शहरों में' तथा अगति ओ अपमान गाँवों में' की स्थिति विद्यमान है और निरन्तर शहरों का ही विकास करने की नीति अपनाई जा रही है।[5] ग्रामों के विकास के नाम पर जो कुछ हुआ भी है, उसकी भी कवि ने यह कहकर भर्त्सना की है कि ग्रामीण जीवन में डालडा के डिब्बे रिश्वत का आटा दूषित राजनीति आदि तथ्यों के समावेश के कारण गाँव अब न तो रहा सहज गाँव/और न बन सका/चालाक शहर' की सक्रांतिमयी दशा से गुजर रहे हैं।[6] किसी महानगर के समीपवर्ती गाँव में रहने वाले व्यक्ति का मनस्ताप यह है कि उसके गाँव में नगर-जीवन के दोष समाविष्ट हो गये हैं और उसमें पक्के मकान बनने के साथ ही 'रोड, नालियाँ, नेता, सिनेमा, सट्टा बाजार, घोर गुंडागर्दी लड़ाई-झगड़ा दफा 107 फकाला की शक्ल में उभर आए हैं। गाँवों के चौपाल पनघट, दूध-दही दाल भात आदि परम्परागत सांस्कृतिक तथ्य उठ गये हैं जबकि 'चाय चम्मच डालडा, पावडर दूध सिगरट और लाल तिकोन का डेरा जम गया है। कवि ने उस शहरनुमा गाव में 'कैंसर के मस्सों की तरह, उभर आए हैं कन्ट्र और कैंटीन' के उल्लेख द्वारा ऐसे गाँवों की वाय-परिणति के

1 उभरते प्रतिमानों के रूप' पृ० 113 15
2 देश दिल्ली और वहम पृ० 19 20 3 सेवाग्राम', पृ० 145
4 'गाँव वाले गरीब हैं/अनपढ़ हैं गँवार हैं/पर शहर वालों से ज्यादा इमानदार हैं।' अंकुर की कृतज्ञता पृ० 83
5 6 वही पृ० 82, 79

प्रति घृणा व्यक्त की है और मो० लाल द्विवेदी के उदगारों का प्रतिवाद करते हुए कहा है कि मुझमें 'भारत बसा हमारे गाँवों में कहना नहीं आता' क्योंकि लोगो ! मेरा गाँव शहर हो गया है।[1]

स्वातंत्र्योत्तर काल में हुए ग्रामीण विकास कार्यों के संदर्भ में म० शरण गुप्त के यह उदगार उल्लेखनीय हैं कि कृषकों को 'भूमिधर' होने का हक मिल गया है सिंचाई की सुविधाएँ बन गयी हैं खाद के कारखाने खोले गये हैं और उन्हें नगरों में जाने के लिए पुल और सड़कों का भी निर्माण किया जा रहा है जिससे 'अपने दिन फिर रहे कृषक भी मान रहे हैं।' गाँवों में खोले गये स्कूलों के कारण अब शीघ्र ही ग्राम रहेंगे ग्राम्य भाव अब नहीं रहने की स्थिति आने वाली है। उन लोगों के आक्षेपों का उत्तर देते हुए जो स्वातंत्र्योत्तर-काल की उपलब्धियों के सम्बन्ध में यह प्रश्न करते हैं हमने स्वराज्य पाकर क्या पाया ? गुप्त जी ने कहा है कि स्वराज्य कोई स्वप्न न था पलक मूंद मिलती जो माया। उन्होंने इस जन चेतना का भी उचित ही मुखरण किया है हम न रहे तो भोग करेगी अगली पीढ़ी इसलिये बढ़े चलो हाँ बढ़े चलो सीढ़ी सीढ़ी।[2]

(ii) नगर जीवन

नगर जीवन के सम्बन्ध में आधुनिक काव्य में प्रचुर मात्रा में उद्गार व्यक्त किये गये हैं जिनमें नगर वासियों की धूर्तता असामाजिकता भीड़ धूप रुग्ण पर्यावरण दिखावटीपन होटलों तथा क्लबों के अनतिक-स विलासमय जीवन आदि तथ्यों को विशेषत उभारा गया है। इन उद्गारों में जो तस्वीर उभरती है वह नगरों में निवास को सर्वथा अवांछनीय सिद्ध करती है।

प्रभाकर माचवे ने नगरों के जन जीवन से भारतीय सभ्यता के विलुप्तीकरण की ओर इंगित हुए कहा है कि उनके बाजारों में कपड़े गहने जूतों से लेकर विलायत-लौटे नापितों का मजा उजागर विज्ञापन किया जाता रहता है अत उनमें सभ्यता छिप जा बैठी कहाँ लजाकर[3] की स्थिति रहती है। शम्भु शंकर नागर का कथन है, 'मैं नहीं चाहता शहर में रहूं/वहाँ सुंदर सुंदर पोशाक में/ बीमारियाँ लगी हैं/मधुर मधुर शब्दों में हलाहल भरे हैं/मदुल कोमल प्यार में स्वार्थ छिपा है/बाबा मैं नहीं शहर में रहूं/वहाँ धर्म की कब्र पर राजनीति का/ झंडा लगा है/× × × खुले आम सैकड़ों द्रोपदियों का वस्त्रापहरण हो रहा है।[4] नगर जीवन के इन रूपों में नागर जी ने आगे दिखाया है कि वहाँ बहुत से वेद

---

1 नये स्वर सं० पुरुषोत्तम अनासक्त पृ० 59 62

2 राजा प्रजा पृ० 35 40 3 स्वप्न भंग पृ० 82

4 'दीपाराधना पृ० 111

व्याम जम प्रतिभाशाली कवि शासन की चाटुकारिता म गीत लिखने रहत है पत्र-सम्पादक-रूपी शिल्पी सूत्र का साधु और साधु को मूख सिद्ध करत रहत हैं। वहाँ ज्ञान नहीं, क्षन्द्र का ही प्रभुत्व है/वहाँ धूत स्वाथ ही न्याय है/कविता है धम है/पसा ही परमश्वर है/प्रयसी हा स्वग है/मदिरा ही अमृत है/नाइट-क्लब ही अलका पुरी है। [1] नचिकेता न शब्दा म नगर-जीवन का इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है टेबिल पर दवा, रक पर शराब/सिरहान काँच का टूटा गिलास/इन्ही विसंगतियो के बीच जी रहा नगर। [2] रविनाथ सिंह न महानगर क सम्बन्ध म विस्तृतपूवक कहा है कि महानगर "रहमदिल इतना है कि/जात क साथ ही/अस्पताल लाता है/श्मशान बनवाता है/लावारिस किसी का नही मरन देता/जिन्दगी स ज्यादा/मौत का ख्याल रखता है। [3] नरेन्द्र शर्मा न बडे नगरा की शान सनुजता का 'अचिन्ता की चेरी' बताते हुए कहा है, शहर नहीं, यह तस्वीरें हैं मानव की अस्थिरता की तथा नगरा म दास अथ का बनकर मानव व्यथ गवाता है जीवन।' नगरा क खर्चीले जीवन म स्थिति यह है कि व्यक्ति ऋण-पर ऋण लेता रहता है जिसम वल का आज निगलन वाला/कज, शहर का राजा है। उनम जा न हिलाने हाथ उन्ही के/हाथ लगी जीवन पजी [4] की विचित्र स्थिति भी विद्यमान रहती है। पन्नालाल अग्रवाल न शहरी युवका द्वारा ग्रामीण जीवन म भी प्रदूषणा का अभिनिवश करन पर चिन्ता व्यक्त की है जूठी जली बीडिया का बीनकर/धूमन निकलते हैं पीत हुए/माला और बहना को/पाप की दृष्टि स ताकत [5]/शहर क छोकरे/गन्दा धुआ छोडते हैं समाज मे। [3]

महानगरीय जीवन क प्रदूषित वातावरण की समस्या का उभारत हुए शम्भुनाथ सिंह न यह भाव व्यक्त किया है कि नगरवासिया की घ्राणेंद्रिय ही मना शून्य हो जाती है। [6] इसीलिए मैं शहर की दूषित हवाओ के बीच अपना आक्सीजन का थला साथ लेकर चला करता हूँ। [7] नन्दकिशोर तिवारी के उद्गार है 'मैंने अपने शहर पर सीमेंट पलस्तर लगा लिए हैं/ताकि झेल सकू लोहे के

---

1 नीलाराधना पृ० 112 2 आदमकद खबरें' पृ० 23

3 पत्र कटा मेघदूत पृ० 93 4 प्यासा निर्झर', पृ० 74

5 नयी कविता सपा० विश्वम्भर पृ० 36

6 तार तुम्हारे शहर म व्याप्त/उस विषाक्त गंध का है/जो पटोल और डीजल की टकिया/शराबखाना और सडक की नालिया/कारखाना के गन्दे पानी क पनाला/अस्पताल क चोर फाड घरा/और दवा की दूकाना स दिन रात उठा करता है/इस मिली जुली गसीली गंध न/तुम्हारी सूघन की शक्ति नष्ट कर दी है।' खंडित सतु पृ० 117

7 वही पृ० 82

थप्पड ।'[1] देवराज दिनेश ने महानगर की सीमाओ म बन्दी जीवन की विविध अनुभूतियो का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि उनम रहते हुए ऐसा लगता है मानो हमको विवशताएँ अजगर की तरह कसती जा रही हैं कदम-कदम पर विच्छुओ के डक लग रहे हैं जीवन मे गति लय और गान किनारा कर गये हैं और वहाँ की भीड भाड म अपना की पहचान खो गयी है । अपनत्व भाव की शिथिलता क फलस्वरूप 'पुरजन परिजन एक भीड है और नही कुछ' की अनुभूति होती रहती है तथा घर भी लगता है मानो सान क लिए नीड है और नही कुछ । व्यक्ति को 'कुटिल परिस्थिया के घेरे कसत जात हैं और चक्रव्यूह जस गर्वीले महानगर के कोलाहल म उसका स्वर डूब जाता है । नगरा क दिन रहत व्यस्त श्वास स भरे भरे' जबकि रात्रि का भी आराम नही मिल पाता क्योकि नीद रात म गोली खान पर ही आ पाती' है ।[2] श्यामसिंह शशि का भी यह अनुभूति होती रहती है मानो 'नगर ठूठा का जगल है/इसम मरी चोच तोड दी गयी है/पख काट दिये गये हैं/पाँवो को बाँध दिया गया गया है/जिह्वा मरोड दी गयी है' तथा 'महानगर के गले म रहा हूँ जलस/बन गया हूँ धुआँ/ × × × हो गया है लगता

यहाँ के सामाजिक जीवन म, 'आडम्बर उपचार, दिखावा/ऊपर-ऊपर होता रहता है जबकि नीचे-नीचे चाक चलता, कची चलती' की स्थिति विद्यमान रहती है। यहाँ मानवता छोडनी नही पडती अपितु खुद-ब-खद छट जाती है।[1] चूकि 'दया हृदय की दुबलता को द्योतित करती' है अत 'लोग यहाँ के उस छिपाते' रहते हैं। आत्म-दमन करना इसलिए निस्सार होता है कि वह औगे को मुह माँगा अवसर देना सिद्ध होता है। यहा आत्मदमन की पूछ नही होती, अत लाग 'आत्म प्रस्फुटन, आत्म प्रकाशन और आत्म विज्ञापन' म लिप्त रहते है। मानवता की भावना की मौत को सफल नगर जीवन की कुजी बताते हुए बच्चन न यह धारणा व्यक्त की है कि जो अभागे इस मानवता की व्याधि से नही बच पाते, वे महानगर म अजनबियो से घूमा करते/वे कुठित सत्रस्त विखडित पस्त/निराश, हताश, परास्त, पिटे अलगाये' रहा करत ह। नगर म रहने वालो का यह नियति भोगनी ही पडती है कि व महानगर के महायन्त्र के/ उपकरणो कल-काँटो पहिया म/परिवर्तित होकर—जीवित जड स चलत फिरत, हिलत डुलते' रहते हैं। नगर जीवन की सफलता का एक मन्त्र यह भी है कि 'केवल अपना नगर/नगर की सडक/सडक की गली—गली का फ्लट/फ्लट का नम्बर बस अपना पहचानो।' कवि का नगर जीवन की विडम्बना के सम्बन्ध म अन्तिम निष्कर्ष यह है कि यद्यपि यहाँ 'समक्ष रहा हर एक दूसरे को है वह खाता किन्तु 'अन्त भ पचा हुआ/अपन का पाता है।'[2] कहना न होगा कि देश क चारो ही महानगरो बम्बई, कलकत्ता दिल्ली और मद्रास के निवासियो के जीवन पर उपयुक्त तथ्य यूनाधिक रूप मे वास्तव मे ही चरितार्थ होत है।

(घ) देश की आर्थिक दुरवस्था

भारतवासियो की आर्थिक दुरवस्था को मिटाने क लिए आधुनिक काव्य म उसके कला-कौशलो के पुनरुत्थान, मशीनी उद्योगो के विकास विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार बैंको और कारखानो की पूजी क राष्ट्रीयकरण, स्वर्ण का राजकीय कोषागार म जमा करान आदि तथ्यो पर बल दिया गया है। इस चेतना का स्फुरण भारतेन्दु काल म ही हो चुका था, जब उन्होने 'डूबत भारत नाथ वेगि जागो अब जागो के रूप म भारत के उद्धाराय ईश्वर स प्रार्थना करत हुए यह भाव व्यक्त किया था कि सम्प्रति भारतीय लोग आलसी, कायर, निरुद्यमी और मूढ हो चुके है, वे कला-कौशलो का ज्ञान प्राप्त नही करत और पशुओ क समान उदर-पूर्ति म सलग्न रहत हैं। देश का धन विदेशो की ओर खिचा जा रहा है किन्तु इस तथ्य क कारण उनके हृदय म व्यग्रता का उद्रेक नही होता। यही नही उन्ह

---

1 'उभरते प्रतिमानो के रूप', पृ० 100 101 2 वही, पृ० 101 103

खण्ड ।[1] देवराज दिनेश ने महानगर की सीमाओं में बन्दी जीवन की विचित्र अनुभूतियों का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि उनमें रहते हुए ऐसा लगता है मानो हमको विवशताएँ अजगर की तरह कसती जा रही हैं कदम-कदम पर बिच्छुओं के डंक लग रहे हैं जीवन में गति, लय और गान विनाश कर गए हैं और वहाँ की भीड़ भाड़ में अपना की पहचान खो गयी है। अपनत्व भाव की शिथिलता के फलस्वरूप 'पुरजन परिजन, एक भीड़ है और नहीं कुछ' की अनुभूति होती रहती है तथा घर भी लगता है मानो 'सोने के लिए नीड़ है और नहीं कुछ'। व्यक्ति का कुटिल परिस्थितियों के घेरे कसते जाते हैं और चक्रव्यूह जैसे गर्वीले महानगर के कोलाहल में उसका स्वर डूब जाता है। नगरों के दिन रहते व्यस्त त्रास से भरे भरे' जबकि रात्रि का भी आराम नहीं मिल पाता क्योंकि 'नींद रात में गोली खाने पर ही आ पाती' है।[2] श्यामसिंह शशि को भी यह अनुभूति होती रहती है मानो 'नगर ठूठा का जंगल है/इसमें मेरी चोंच तोड़ दी गयी है/पंख काट दिये गये हैं/पाँवों को बाँध दिया गया गया है/जिह्वा मरोड़ दी गयी है तथा महानगर के धुएँ में रहा हूँ सुलग/बन गया हूँ धुआँ/ × × × हो गया है लगड़ा मेरा दिमाग।'[3] महानगरीय जीवन के दौड़ धूप और खतरा से भरे जीवन को नन्दन ने 'हम सब/महानगर के वासी/रोज सुबह/मौत को/जेब में डालकर/ *निकलते हैं*'[4] के रूप में मुखरित किया है तो कीर्ति चौधरी के उद्गार हैं 'बड़ी तेज चाल है समय की यहाँ/जिन्दगी के चारों ओर/यत्रों का बिछा हुआ एक ऐसा जाल है/जो ठहरने नहीं देता/ × × \ धीरे धीरे सब भूल गये/सिवा इसके कि एक दौड़ है/और देखें उसमें कौन आगे निकलता है।'[5] प्रतिभा देवरस ने भी बड़ा शहर/जिसमें जिन्दगी दौड़ती है सड़क की तरह[6] के रूप में नागरिक जीवन को बेतहाशा भाग-दौड़ का पर्याय दिखाया है।

महानगरीय जीवन की विडम्बनाओं को कम्पन ने एक पर्याप्त लम्बी कविता के माध्यम से उभारते हुए दिखाया है कि ग्रामों अथवा छोटे कस्बों से आये लोगों को महानगरों में किस प्रकार की विचित्र अनुभूतियों का भोगना पड़ता है और कालान्तर में वे स्वयं भी महानगरीय मशीन का एक निस्संग, निर्विकार पुर्जा मात्र बनकर रह जाते हैं। उनके अनुसार महानगरों के प्रवेश के द्वार पर ही मानवता को छोड़ो का सूत्र लिखा रहता है। सहकर्मियों-समकक्षियों से नगर में एकमात्र सम्बन्ध यह रहता है कि 'यहाँ एक-दूसरे का प्रतिद्वन्द्वी है।

---

1 'नये स्वर' सक० पृ० 19
2 गध और पराग', पृ० 90 92
3 'शिलानगर में' पृ० 72
4 'मुझे मालूम है', पृ० 24
5 'खुले आसमान के नीचे' पृ० 64 65
6 'नये स्वर' सक० पृ० 33

यहाँ के सामाजिक जीवन म, आडम्बर उपचार, दिखावा/ऊपर-ऊपर होता रहता' है जबकि नीचे-नीचे चाकू चलता कैंची चलती' की स्थिति विद्यमान रहती है। यहाँ मानवता छोडनी नहीं पडती' अपितु 'खुद-ब-खुद छूट जाती है।'[1] चूंकि 'दया हृदय की दुबलता को ज्ञापित करती है अत लोग यहाँ के उसे छिपाते' रहत हैं। आत्म-दमन करना इसलिए निस्सार होता है कि वह 'औरो को मुह मागा अवसर देना सिद्ध होता है। यहाँ आत्मदमन को पूछ नहीं होती, अत लोग आत्म प्रस्फुटन आत्म प्रकाशन और आत्म विज्ञापन' म लिप्त रहत हैं। मानवता की भावना की मौत को सफल नगर जीवन की कुजी बताते हुए बच्चन ने यह धारणा व्यक्त की है कि जो अभागे इस मानवता की व्याधि से नहीं बच पाते, वे 'महानगर म अजनबियो स घूमा करत/वे कुठित सत्रस्त, विखडित पस्त/निराश हताश, परास्त, पिटे अलगाये रहा करत है। नगर म रहने वालो की यह नियति भोगनी हो पडती है कि वे महानगर के महायन्त्र के/ उपकरणो कल-कांटो पहिया म/परिवर्तित होकर—जीवित जड से चलते फिरत हिलत डुलत' रहत है। नगर जीवन की सफलता का एक मन्त्र यह भी है कि केवल अपना नगर/नगर की सडक/सडक की गली—गली का फ्लैट/फ्लैट का नम्बर बस अपना पहचानो। कवि का नगर जीवन की विडम्बना के सम्बन्ध म अन्तिम निष्कर्ष यह है कि यद्यपि यहा 'समझ रहा हर एक दूसरे को है वह खाता' किन्तु अन्त म पचा हुआ/अपने को पाता है।[2] कहना न होगा कि देश के चारो ही महानगरो बम्बई, कलकत्ता दिल्ली और मद्रास के निवासियो के जीवन पर उपर्युक्त तथ्य न्यूनाधिक रूप म वास्तव म ही चरितार्थ होते हैं।

(घ) देश की आर्थिक दुरवस्था

भारतवासियो की आर्थिक दुरवस्था को मिटाने के लिए आधुनिक काव्य म उसके कला-कौशलों के पुनरुत्थान, मशीनी उद्योगो के विकास, विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार, बैको और कारखानो की पूजी क राष्ट्रीयकरण, स्वर्ण का राजकीय कोषागार म जमा कराने आदि तथ्यो पर बल दिया गया है। इस चेतना का स्फुरण भारतेन्दु काल म ही हो चुका था जब उन्होने 'डूबत भारत नाथ बेगि जागो अब जागो के रूप म भारत के उद्धारार्थ ईश्वर स प्रार्थना करते हुए यह भाव व्यक्त किया था कि सम्प्रति भारतीय लोग आलसी, कायर निरुद्यमी और मूढ हो चुके हैं, वे कला-कौशलो का ज्ञान प्राप्त नहो करत और पशुओ के समान उदर पूर्ति म सलग्न रहते हैं। देश का धन विदेशो की ओर खिचा जा रहा है किन्तु इस तथ्य के कारण उनके हृदय म व्यग्रता का उद्रेक नहीं होता। यही नहीं उन्ह

1 'उभरते प्रतिमानो के रूप, पृ० 100 101 2 वही, पृ० 101-103

विदेशी वस्तुएँ खरीदने की भी कवि ने बुरी मनोवृत्ति कहा है।[1] जिससे भारतीय माल निज निज धनगण मध्य हैं पड़ा है व्यर्थ माल। भारतीय वस्तुओं का मान घट गया और लगा है माल्य य पर ही कुटाराघात सुपाम यह व्यर्थ। यहीं नहीं वस्त्र कोष कागज कलम चित्र खिलौने आदि/आवत सब परदेश सो नित्हि जहाज से आदि।[2] विदेशी माल हमारी ही रुई, चमड़ा और माल आदि कच्ची वस्तुओं को ले जाकर उनसे वस्त्र, जूते, बर्तन, खिलौने आदि अनेक मूल्यवान वस्तुएँ बनाकर भेजते हैं इस उनको खरीद किया जाता है या नहीं मिलता। दुष्परिणाम यह निकला है कि निर्धन दिन दिन होते हैं भारत सब गए गिर।[3] भारत की आर्थिक स्थिति को सुधारने की दृष्टि से ही भारतेन्दु ने पाश्चात्य ढंग के उद्योग धंधों और कला-कौशल से सम्बन्धित संस्थाओं को अपनाकर उनके निर्माण हेतु भारतीय युवकों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए अथवा पढ़ने तथा विलायत जाने का परामर्श दिया था।[4] स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात करते हुए भारतेन्दु ने एक प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कराकर हिन्दू मुसलमानों से यह प्रतिज्ञा भी कराई थी कि वे पुराने विलायती कपड़े को, जब तक हैं तब तो पहनेंगे किन्तु भविष्य में फिर न खरीदेंगे।[5] प्रेमघन ने भी कहा था कि यद्यपि अन्य तथ्यों की दृष्टि से तो अंग्रेजी शासन पिछले मुगल शासन से उत्तम है तथा सब भाँति सब बिधि सुख पावन, किन्तु आर्थिक दृष्टि से बुरा है क्योंकि भारत में सम्पत्ति की दिन दिन होती क्षीणता।[6]

भारतेन्दु तथा उनके मण्डल के कवियों द्वारा देश के आर्थिक उद्धार के सम्बन्ध में मुखरित की गई यह चेतना आधुनिक काल के काव्य में अनेक रूपों में व्यंजित हुई है। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने तो यहाँ तक कहा है कि भारत भिखारी क्यों हुआ है हाथ तेरी बुद्धिमानी के कारण। देशवासियों को प्रबोधित करते हुए स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग पर बल दिया था—शपथ करके विदेशी वस्त्र त्यागो।[7] राय देवीप्रसाद पूर्ण ने

---

1 सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल/पशु समान सब अन्न खात पीअत गंगा जल/धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल। × × × जावत विदेश की वस्तु सब तो बिनु कछु नहिं कर सकत। भार० ग्रंथा० भाग 2 पृ० 735

2 3 वही पृ० 735 736

4 अंगरेजी पढ़ि कै पुनि विलायतहि जाय/या विद्या को भेद सब तो कछ ताहि लगाय। × × × जानि सकै सब तन कछु सकहि विविध कला के भेद/बन वस्तु कल की इत मिटै दीनता भेद। वही पृ० 736

5 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र डा० रामविलास शर्मा पृ० 33

6 'प्रेमघन सर्वस्व' प्र० भा० पृ० 285 7 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० 369 70

खेदपूर्वक कहा है "मारा है दारिद्र का भारत खड़ अधीन/कारीगर बिन जीविका हैं दुखित अति दीन/हैं दुखित अति दीन वस्त्र के बुनने वाले/धीरे धीरे हुनर समय के हुआ हवाले।[1] हरिऔध ने भारतीयों की आर्थिक दुरवस्था के सम्बन्ध में कहा है कि उनके बाल-बाल बिके हुए हैं और वे 'बेहाल रहते हैं सदा।[2] नाथूराम शर्मा शंकर ने भारत की सम्पत्ति के सागर पार जा पहुंचने के प्रति गहरा विक्षोभ व्यक्त किया है।[3] उन्होंने 'परदेशी माल आ रहे हैं/बलन्दर जा रहे हैं' के रूप में विदेशी वस्त्रों के आयात का विरोध करते हुए तदर्थ भारत के व्यापारी-वर्ग की स्वार्थ-वृत्ति की तीव्र भर्त्सना की है।[4] मैथिलीशरण गुप्त ने 'पर दीन भारत हाय तेरे भाग्य में क्या है बदा ?' के रूप में भारत की आर्थिक दुरवस्था की ओर इंगित करते हुए, तदर्थ भारतीयों की विदेशी वस्तुओं के प्रयोग की ललक का उत्तरदायी ठहराकर उसकी घोर निन्दा की है। उन्होंने विक्षोभपूर्वक कहा है कि भारत के बाजारों पर दृष्टिपात कीजिए तो उनमें जो वस्तु देखो मेड इन इंगलैण्ड, इटली जर्मनी/जापान फ्रांस अमरिका या अन्य देशों की बनी'[5] दिखाई पड़ती है। इससे अधिक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति और क्या हो सकती है कि भारतीय नारियों का सौभाग्य-चिह्न समझी जाने वाली चूड़ियाँ तक विदेशों से आती हैं जिनसे भारत स्वकीय सुहाग भी परकीय करके खो चुका है। इसी क्रम में उन्होंने आगे कहा था कि तुच्छ सुइयाँ माचिसें और घड़ियाँ तो विदेशों से आती ही हैं[6] अब हम विदेशी लवेंडर की गंध ऐसी भा गयी है कि केवड़ा, खस बेला चमेली की स्वदेशी गंधें रंचमात्र भी नहीं भाती। हमारे इन शौकों की पूर्ति में देश उजड़ता जा रहा है और धन धाय जाता है यहाँ से', है यह दशा व्यापार की। उनका प्रश्न था कि ऐसी दशा में 'क्यों न फिर दीनता बस न हम भूखों मरेंगे जबकि हम जिस वस्तु को दूसरों को कच्चे माल के रूप में एक रुपये की बेचते हैं लेते उसी को बीस में हैं, डूबकर अविवेक में। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की थी कि जो भी देश कच्चा माल उत्पन्न करके शांत बैठा रहता है उसका पतन एकान्त है सिद्धान्त यह निर्भ्रांत है[7] रूई प्रदेश को बेचे जाने वाले कच्चे माल का दृष्टान्त देते हुए उन्होंने कहा था कि हम लेते वही पन्द्रह गुने तक मूल्य में तत्काल हैं। हमारे देश

1 'पूर्ण पराग', पृ० 189 2 'ममस्पर्श', पृ० 164

3 'रंग रंग सम्पति की मना पहुँचा सागर पार/रोता हुआ हाय ! भारत का अब अक्षय भण्डार।' 'अनुराग रत्न', पृ० 217

4 'काम स्वदेशी से न चलाते, ठग लालच के मारे।
माल विदेशी बेच रहे हैं, खोले कपट पिटारे।' 'शंकर सर्वस्व', पृ० 235 36

5 7 भारत भारती', पृ० 98, 103, 104

में रुई की अच्छी उपज होते हुए भी उसकी कताई-बुनाई की उत्तम व्यवस्था न होने का दुष्परिणाम यह निकलता है कि जिस रुई को हम पाँच सौ रुपये में बेच कर प्रमुदित होने लगते हैं वही हमें विलायत से कपड़े के रूप में आने पर पाँच हजार की क्रय करनी पड़ती है। हमारे देश की आर्थिक दशा अनुदिन क्यों न बिगड़ेगी जब हम विदेशी टीन के बदले में अपनी चाँदी बाहर भेजते रहते हैं सोने के बदले में गिलट खरीदते हैं, काँच के प्रतिदान में विन्ध्या को खरे हीरे भेज रहे हैं और रक्त के बदले अर्थात खून पसीना बहाकर अर्जित धन के बदले विलायती शराबें खरीदते हैं।[1] उन्होंने बंगाल की ढाका की उस मलमल के बुनने की कला के विलुप्तीकरण पर भी गहन विषाद व्यक्त किया है जिसके सौ हाथ लम्बे सूत की बस आध रत्ती तोल हुआ करती थी और वह इतना महीन होता था कि बाँस की नली में रखे थान से अम्बारी सहित हाथी' ढक जाया करता था।[2] उन्होंने समस्त देशवासियों और विशेषतः व्यापारी वर्ग को सचेत करते हुए कहा था हाँ! आप लोग दौड़कर हम दीनता को ले रहे/लेकर खिलौने काँच आदिक अन्न धन हैं दे रहे/आवश्यकीय पदार्थ अपने, यदि बनाते हम यहीं/तो हानि होकर यों हमारी दुर्दशा होती नहीं।[3] देश प्रेम के नाते हमें इतना तो करना ही चाहिए कि यदि हम विदेशी माल से सर्वथा मुँह नहीं मोड़ सकते तो कम से कम उसका मोह त्याग दें।[4] माखनलाल चतुर्वेदी ने आंग्ल शासन-काल में भारत की सर्वांगीण अधोगति का चित्रण करते हुए कहा है शिल्प गया वाणिज्य गया, शुभ शिक्षा का है मान नहीं/कृषि डूबी हुई दरिद्र में पर इसका कुछ ज्ञान नहीं।'[5] भारतीयों के विदेशी वस्तुओं के शौक के सन्दर्भ में कवि अकबर का यह मार्मिक व्यंग्य भी अवलोकनीय है कि यदि हम विदेशी छतरियाँ, रूमाल, मफलर, आदि वस्तुएँ खरीदने की इसी प्रकार की गफलत में रहे तो वह दिन दूर नहीं है, जब 'आएँगे गस्साल काबुल से कफन जापान से।[6] दिनकर ने सटिन पर बह जाय नहीं पानी-सा चाँदी-सोना के रूप में विलायती सटिन के आयात का विरोध किया था तो नरेन्द्र शर्मा ने इस विडम्बना की ओर इंगित किया है कि वह स्वेज नहर जो साम्राज्यवादियों द्वारा एशियाई अफ्रीकी देशों के आर्थिक शोषण की धमनी रही है, उसका उद्घाटन गांधीजी के जन्म वर्ष अर्थात सन 1869 में ही हुआ था।[8] कहना न होगा कि स्वेज नहर बन जाने से योरोपीय देशों द्वारा भारत से कच्चा माल ले जाना सुगम और सस्ता हो गया था।

---

1 4 भारत भारती पृ० 105 108, 105, 97

5 माता पृ० 45

6 'शेर ओ शायरी, सभा० अयो० प्र० गोयलीय, पृ० 331

7 रसवती पृ० 80 8 बहुत रात गए, पृ० 112

आयातित विदेशी माल की स्वातन्त्र्योत्तर-काल मे फिर से भूख बढ़ी है और विदेशा के वस्त्र, साडियाँ, घडिया, पेन, छात, लाइटर, ट्राजिस्टर, टू इन-वन आदिक सामग्रियाँ तस्करी द्वारा लायी जाकर चोर बाजार म बेची-खरीदी जाती हैं। विदेशी वस्तुओ की इस अटूट लालसा का एक परिणाम यह निकला है कि उनकी अनुकृतियाँ भारत म ही बनी हान पर भी विदेशो के लेबल लगाकर काले बाजार म धडल्ल स बेची जाने लगी है। जगदीश कुमार ने माल यहाँ आयातित या उसकी अनुकृति है' क रूप म इस दुहरे काल धधे की ओर इगित करत हुए दिखाया है, कुछ पत्तो के लेबल वनत/कुशल वैद्य उनको चिपकाकर/× × × करते उपचार कि जिनको बड़ी एलर्जी/और स्वदेशी नाममात्र से गश आता है[1] व उन्ह विदेशी समझकर खरीद लें। व्यापारी-वग की भ्रष्टता का इसस बढकर प्रमाण क्या हो सकता है कि जसे अब विदशी माल के नाम पर स्वदेशी वस्तुए ही विदेशी लेबल लगाकर बेची जाती हैं वसे ही स्वदशी आन्दोलन के समय विदशी वस्तुओ का स्वदेशी रूप रग दकर बेचा जाता था। मथिलीशरण गुप्त न बीसवी शती के द्वितीय दशक के व्यापारी विदेशी खाड म गुड मिलाकर उसको स्वदशी खाँड बनाकर बेचत हुए 'देश के धन धम खोना' का हानि पहुचात दिखाए हैं। उनका प्रश्न था कि जब या ही स्वदशी म विदेशी माल बिकता है यहाँ/होगा कहो स्वार्थाग्नि म या सत्य का स्वाहा क्यों ?' गुप्तजी का यह कथन कितना उप युक्त था कि जसी हवा चल रही हो तदनुरूप ही विदेशी माल को स्वदेशी और स्वदेशी माल का विन्शी बता बताकर बेचन की कला म विलक्षण भारतीय व्यापारियो जसे भ्रष्ट व्यापारी, विश्व के अन्य किस देश म मिल सकत हैं।[2]

(ञ) स्वातन्त्र्योत्तर काल मे देश का समुचित आर्थिक विकास न हो पाना

दासता-काल म इस सम्बध म बहुत बढा-चढाकर बातें की जाती थी कि देश के सर्वांगीण अधोपतन का मूल कारण विदेशी विधर्मी आग्ल शासका द्वारा निर्मित-व्यवहृत स्वार्थांध नीतियाँ है अत जस ही भारत को स्वाधीनता मिलगी, देश म एसे रामराज्य की—परवर्ती शब्दावली म समाजवादी समाज की—स्थापना की जायगी कि जन-सामान्य के सभी प्रकार के सकट और अभाव छूमतर हो जाएँगे। निश्चय ही दासता-काल म सजायी गयी इस प्रकार की आशा-अकाक्षाएँ एक प्रकार का दिवा-स्वप्न देखना ही थी, किन्तु समस्या यह भी है कि किसी स्वाधीन देश द्वारा तीस-पैंतीस वष क अतराल म जितनी आर्थिक प्रगति करनी चाहिए थी, सरकार द्वारा जन सामान्य की आर्थिक दशा एव जीवन-स्तर को

---

1 'भारती का खडहर', पृ० 44 45

2 'भारत भारती', पृ० 141

स्वातन्त्र्योत्तर काल म घर घर म दय अभी कुटा-कुटी म अभाव' होने का भाव व्यक्त कहते हुए कहा है कि अभी मानवता क्षुधित तृषित, वसनहीन अनिकेतन है और वास्तविक स्वतत्रता तथा समता और समृद्धि स वचित है।[1] स्थिति यह है कि जनता रूपी मूल की उपेक्षा करके नेताओ-अधिकारिया रूपी पत्ता को सीचा जा रहा है।[2] भारतीय जनता को भुखमरी, महगाई भ्रष्टाचार और अभावो की चक्की के भीषण पाटा म पिसत देखकर कवि ने राष्ट्रपिता गाधी को सम्बोधित करते हुए कहा है कि आजादी मिल सत्तरह वष व्यतीत हो जाने पर भी बापू तुम्हारी प्यारी जनता/औसतन तीन आन रोज/पाती है और/रोजाना चार छटाक/अन्न पर निर्वाह करन को लाचार है।[3] इसक विपरीत अन्यायी अत्याचारी शोषक, पीडक/पापी धनिका की/सुख-सुविधाए/असीम हैं, अनत ह और न्याय का खरीदन का/दुस्साहस भी, मन म वे रखत ह।[4] देश क नता और अधिकारी वग की स्थिति यह है कि वे पोषक पूजीपतिया के/सम्मुख/नपुसक अहिंसा की/दुम सी हिलात रहत हैं।[5] वे उन पूजीपतिया से जूझन म सकोच करत है जिन्होन हर तरह के मार्गों स/वभव सम्पत्ति पर/भौतिक साधना पर/विज्ञान पर न्याय पर/सस्कृति पर, कला पर' अपनी मजबूत पकड जमात हुए जन-सामान्य का अर्थोपाजन एव ऐश्वर्योपभोग के ससाधनो से सवथा वचित कर रखा है।[6] कतिपय नेताआ के विदेशी बका मे खात खुले होन का तथ्य कई बार ससद म भी चर्चा का विषय बन चुका है। इस सदभ म एक कवि द्वारा निरीह भारतमाता से यह उद्गार व्यक्त कराना सवथा समुचित लगता है मेरे अगरक्षक/मेरे बेटे चाँद और सूरज/मेरे गहने उतार-उतार कर/विदेशी बको म जमा करा रहे हैं[7] जबकि दूसरी ओर इन सपूता की नीतियो के फलस्वरूप खलिहानो मे/आजकल भूख के पौधे लगाये जा रह ह/खेत-खलिहानो म भूखे किसान/भूख ही बो सकत है/और जब फसल पकती है ता/भूखे मजदूरा की फसल पकती है।[8] दश के आर्थिक उत्थान की दृष्टि से एक कवि ने मदिर मस्जिद स लेकर पत्रिकाओ, आयात, निर्यात, सिनमाघर, मदिरालय, बक, कारखाने, होटल आदि सभी वस्तुआ का राष्ट्रीयकरण कर लना आवश्यक घोषित किया है।[9] कहना न होगा कि देशवासियो का अपेक्षित चारित्रिक सुधार न हो पान के कारण, जिन किन्ही भी मिलो, कारखाना, कोयलाखाना और बक आदि का राष्ट्रीयकरण किया गया है उसका दुष्परिणाम यह निकला है कि इन राष्ट्रीयकृत सस्थाना ने देश की अथ-व्यवस्था को

---

1 2 'बलिपथ क गीत', पृ० 118 119
3 6 'नई किरण', पृ० 88 91 92 93
7 8 'कलम स कटा हुआ सूरज', शिशु रश्मि, पृ० 23 25
9 'क्रांतिवादिनी', शभू० शर्मा, पृ० 103 4

अरबो का घाटा ही पहुचाया है।[1]

देश की आर्थिक प्रगति की ओर स कुछ कवियो न सरकार की स्वर्ण-बॉण्ड योजना का समर्थन किया है। गणेशचन्द्र जोशी न तो सोन को सरकारी कोष म जमा करान के तथ्य को युगीन सदाचार या नतिकता का मानदण्ड घोषित कर दिया है।[2] कवि न इस तथ्य का उल्लेख करत हुए कि स्वर्ण भण्डार के आधार पर हमारी सरकार को मात्र वर्षो तथा स्वर्ण भण्डार के अनुपात म अधिक नोट छाप लेन पर हम उस अमरिका स ऋण लेने की आवश्यकता नही रहगी जो हमारी कश्मीर नीति का विरोधी है यह चेतना जाग्रत करन का भी प्रयास किया है कि यदि हमारी गणना पिछडे देशो म ही की जाती रही, तो वह हमार लिए शम म डूब मरन की बात होगी।[3] एक अन्य कवि न भी 'सोना ही विनिमय मुद्रा है' इसम भर राष्ट्र भण्डार की चेतना जाग्रत करत हुए यह भाव व्यक्त किया है 'दस तोले स अधिक नहा हो प्रति गृहिणी पर अब सोना।[4] दस तोल स अधिक सोना रखने वाला को सजाएँ देन का प्रस्ताव रखत हुए उसन सोन को राष्ट्रीय स्वर्णागार म जमा करन का यह तक देकर समर्थन किया है 'राष्ट्र मुक्त हो अथ नीति म पनप सके उन्नति का सार।[5]

पचवर्षीय योजनाए

भारत क आर्थिक विकास की दृष्टि स चलायी गयी पचवर्षीय योजनाओ की एक कवि न तपशाला म पाँचशाला ये यन चल रह[6] के रूप म यश बताकर प्रशसा अवश्य की है किन्तु अन्य कवियो न प्राय इस चेतना का ही मुखरण किया है कि इन योजनाओ क उचित क्रियान्वयन से देश की जितनी प्रगति होनी चाहिए थी वह नही हुई है और सरकार द्वारा ससद म या भाषणो म मिथ्या आँकडे दकर देश की काल्पनिक खुशहाली का मिथ्या ढिंढोरा पीटा जाता रहता है। एक कवि न

1 10 नवम्बर 1980 के नवभारत टाइम्स के सम्पादकीय म उद्योग राज्य मत्री द्वारा देश क सरकारी औद्योगिक प्रतिष्ठानो म देश को अब तक सोलह अरब रुपये का सकल घाटा हो चुकने का आँकडा प्रस्तुत करन पर गहन चिन्ता व्यक्त की गयी थी।

2 "घर मे रखा स्वर्ण बडी स बडी बदी है/सोने को बैंको म दे पाय सो नेकी।' 'रणजागरण' पृ० 156

3 भारत का भी नाम रहे कल भी पिछडो म/डूब मरेगी क्या न शर्म से खुद आजादी ?"—वही, पृ० 158

4 5 क्रांतिवादिनी, प्रभूदयाल शर्मा, पृ० 89, 90

6 'रण जागरण', ग० च० जोशी, पृ० 67

उन्हें ऐसी कागजी नावें बताया है जो फाइलों रूपी समुद्र पर तेजी से दौड़ती हुई सफलताओं रूपी झाग उगलती रहती हैं किन्तु उनका धरती व ठोस यथार्थ से कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता।[1] शील के अनुसार कागज के पुनर्गठ/कानून लदे/ योजनाओं के गधे' गुजरते रहते हैं तथा अखबारी कालमों में उत्पादन बढ़ने के समाचार भी प्रकाशित होते रहते हैं जबकि वस्तुतः एक पजीवादी है व्यापार में। अज्ञेय की व्यग्योक्ति है कि बेचारे योजना आयोग वाले करें तो क्या करें? यदि योजनाएँ विफल रह जाती हैं तो उनका कोई दोष नहीं है क्योंकि वे बेचारे तो आयातित रासायनिक खाद से विचारों के अंतर्राष्ट्रीय करमकल्ले उगाने का प्रयास करते हैं।[3] राजेन्द्र धस्माना ने भारत सरकार के योजना-मंत्रालय और उसकी योजनाओं को वनानिक तकनीक द्वारा आविष्कृत कम्प्यूटरों से उपमित किया है जो खान-पीने नहाने धोने कमाने और पन्न करने के अलावा/सारे काम !!! कर देता है। कम्प्यूटरों की तरह योजना मंत्रालय द्वारा भी आँकड़ों पर आँकड़े प्रस्तुत किये जाते रहते हैं। होता यह है कि एक ओर तो उत्पादन बढ़ाने का अभिलाषी व्यक्ति सुधरी किस्म के बीज रासायनिक खाद और सहकारी समितियों से ऋण प्राप्त करने के लिए पटवारी की जेब/नाक अधिकारी के थन/मंडलाधीश का अलमारी और शासन-तंत्र की फाइलों को देखता चक्कर काटता रहता है जबकि दूसरी ओर बीज तक तब सब बिक चुके थे की घोषणा कर दी जाती है। संसद में विपक्षी विधायकों को दिये जाने वाले उत्तर पहले से ही तैयार कर लिए जाते हैं और काल्पनिक आँकड़ों के आधार पर ही ऐसी घोषणाएं की जाती रहती है कि देश में तरह-तरह की क्रांतियाँ हो रही हैं।[4] कवि के इस आरोप में भी आंशिक सत्यांश अवश्य है कि उत्पादन-वृद्धि के काल्पनिक आँकड़े ही प्रस्तुत नहीं किये जाते अपितु तन्त्र कुछ लोगों को पद्मभूषण आदि उपाधियों द्वारा पुरस्कृत करके इस

---

1 'योजनाएं/योजनाएँ/योजनाएँ/देश में बन रही हैं/नित नयी योजनाएं/वे सब कागज की नावें हैं/जो फाइलों के समुद्र पर/तेजी से दौड़ा करती हैं/ × × पीछे छूटता हुआ फेनिल पानी/धरती के यथार्थ से/इन कागजी नावों का/ नाता नहीं जुड़ता। कागजयी वि० कु० आलोक पृ० 33

2 सावा और फूल' पृ० 90

3 क्योंकि मैं उसे जानता हूँ पृ० 28

4 सुना है पूरी फसलें पहले ही उग जाती है फाइलों पर/और काट ली जाती हैं संसद भवन में/कागज पर एकत्र तरह-तरह के आँकड़ों का गणित/पाँच साल आगे का/फलित ज्योतिष तैयार कर लेता है। तथा जेट क्रांति/हरित क्रांति/श्वेत क्रांति/भरित क्रांति/श्वेत क्रांति/त्वरित क्रांति' होती रहती है। —परवलय, पृ० 21 22

हवाई सफलताओं पर सचाई की मुहर भी लगा दी जाती है।[1] लीलाधर जगूड़ी ने भी इसी तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा है 'सूचना विभाग के हर पोस्टर पर खुशहाली है/कंगाली के पास आटा नहीं गीला है।'[2] हमारी योजनाओं के निर्माण और उनके क्रियान्वयन के असामंजस्य को उभारते हुए धूमिल ने 'योजनाएँ चलती रहीं/बन्दूकों के कारखानों में जूते बनते रहे'[3] की जिस स्थिति की ओर इंगित किया है वह चीन द्वारा किये गये आक्रमण के समय हमारे सैनिकों के पास शस्त्रास्त्रों का अभाव होने के संदर्भ में वास्तव में ही प्रकाश में आयी थी। रामदरश मिश्र ने यह आश्चर्य व्यक्त किया है कि 'यह गुत्थी क्यों नहीं सुलझ पाती कि सचिवालयों और फैक्टरियों में/ले जाने हुए इतने सपने कहाँ जाते हैं'[4] चंचल चौहान के इन उद्गारों से सहमति रखने वालों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है कि पंचवर्षीय योजनाओं की मोटी लोरियों के माध्यम से हमें आत्म निर्भर बनाने के मिथ्या आश्वासनों द्वारा भुलाने सुलाने का प्रयास किया जाता रहता है जबकि इन योजनाओं का मूल उद्देश्य 'पूंजीपतियों को आत्म निर्भर बनाना तथा बाकियों को कागजी समाजवाद की अफीम खिलाना' है। इस तथ्य का प्रमाण देशवासियों के चेहरों को देखने से मिल सकता है जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है जैसे 'पंचवर्षीय योजनाओं से/योजनाबद्ध पिटे हैं वे'। कवि का यह भी आरोप है कि हमारी आँखें देश की वास्तविक स्थिति को देख समझ ही नहीं पाती क्योंकि देश की प्रगति सम्बन्धी हमारे दृष्टिकोण के मूलाधार सरकारी प्रचारतन्त्र के अंग अखबार, रेडियो और टेलीविजन होते हैं। 'वास्तव में किसी ने तुम्हारी मौलिक आँखें/फाड़ दी हैं' सरे बाजार की स्थिति विद्यमान है।[5] श्यामसिंह शशि के भी उद्गार हैं 'अर्थशास्त्री यत्न के बड़े तेज हैं/ ... अभाव मिटा देते हैं शोध ग्रंथों में/आंकड़ों की कुतुब मीनार में।'[6] देश के आर्थिक विकास के प्रति कवियों द्वारा इस प्रकार की असंतोषमयी चेतना व्यक्त किये जाने पर भी वस्तुस्थिति यह है कि भारत ने स्वतन्त्र्योत्तर काल में निश्चय ही उद्योग धंधों, कृषि, विदेशी व्यापार आदि क्षेत्रों में प्रगति की है। श्रीकृष्ण सरल ने इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए गांधीजी की स्वर्गस्थ आत्मा को यह विश्वास दिलाया है कि देश में योजनाओं का आश्रय लेकर बांध बनाये जा रहे हैं नहरों और सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है तथा नये उद्योगों का विस्तार किया जा रहा है।

---

1 परवतय पृ० 22
2 'नाटक जारी है' पृ० 61
3 'संसद से सड़क तक', पृ० 112
4 'कंधे पर सूरज', पृ० 26
5 'प्रहार स्याह रात पर', सं० पृ० 21
6 'शिनागर में', पृ० 54
7 राष्ट्रभारती पृ० 248 49

महँगाई, बेकारी प्रदर्शन तथा हड़ताल

महँगाई का चीन और रूस जैसे कुछ समाजवादी देशों के अतिरिक्त विश्व व्यापी दौर चल रहा है। अपनी समृद्ध आर्थिक स्थिति के कारण अमेरिका जापान इंगलण्ड और फ्रांस आदि देशों पर इस महँगाई का विघातक प्रभाव नहीं पड़ता जबकि अविकसित और भारत जैसे अर्द्ध विकसित देशों की अर्थव्यवस्था वस्तुओं के दिन-दूना रात चौगुना मूल्यों के कारण अस्त-व्यस्त हो उठती है। महँगाई के साथ जब बेकारी और जमाखोरी जैसी समस्यायें भी जुड़ जाती हैं तो किसी भी देश में अराजकता सी स्थिति उत्पन्न हो सकती है। इन सभी समस्याओं से ग्रस्त भारत की दशा भी अव्यवस्था के कगार पर पहुँचती जा रही है। महँगाई को रोकने की दिशा में भारत सरकार द्वारा उठाया गया एक कदम यह है कि कतिपय वस्तुओं को सस्ते मूल्य पर राशन की दूकानों से राशन कार्डों पर बेचा जाता है। यह सत्य है कि राशनिंग व्यवस्था से अप्राप्य अथवा अत्यधिक ऊँचे मूल्य पर मिलने वाली वस्तुएँ अपेक्षाकृत सस्ते मूल्य पर प्राप्त हो जाती हैं किन्तु इन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए कभी-कभी तो फर्लांगों लम्बी लाइनों में खड़े रहने की जो कठोर साधना करनी पड़ती है तदर्थ इस व्यवस्था की भी आधुनिक काव्य में तीखी भर्त्सना की गयी है।

(1) महँगाई—भारत में परिव्याप्त महँगाई और भारत सरकार का चोली दामन का साथ दिखाते हुए मा० प्र० व्यास की टिप्पणी है जो सस्ती है मिल हर ओर उसका नाम महँगाई/न महँगाई मिटा पाये उसे सरकार कहते हैं।[1] भारत में अनदिन बढ़ती हुई महँगाई को रोकने में असमर्थ या कहिये सूझ-बूझ विहीन कर-वृद्धि तथा घाटे की अर्थ-व्यवस्था द्वारा उसको फलने फूलने का अवसर प्रदान करने वाली भारत सरकार की यह बड़ी सटीक परिभाषा कही जा सकती है। रमेश रजक के शब्दों में महँगाई बाढ़ की नदी-सी/निगल गयी सारी खुशहाली जिसके फलस्वरूप अब जन-सामान्य की दशा यह है कि 'हँसा उडान लगा दम हरा डक मारती है दीवानी।' कवि ने आगे कहा है कि महँगाई के कारण ईद रमजान आदि पर्वों की खुशी छिन गयी है प्रात काल होते ही कमर तोड़ खर्चों की सूची पूरे घर में फैल जाती है। वयस्क लोग तो आँसू पीकर और चबेना खाकर गुजारा कर भी सकते हैं लेकिन कम देखें हम गीला आखें सन्तान की ?[2] महेश उपाध्याय ने तो सन 1974 की आकाश चुम्बी महँगाई के परिप्रेक्ष्य में यह भविष्यवाणी-सी की थी कि चीलें उतर रही हैं/शायद आँधी आयगी/आखिर कब तक हाड़-मास महँगाई खायेगी।[3] कहना न होगा कि सन् 1975 के आपातकाल

1 रंग जंग और व्यंग्य पृ० 92 2 किरन के पाँव पृ० 47

3 'आँधी आयेगी' पृ० 61

की घोषणा के मूल म वस्तुआ के बढ़ते मूल्यो का भी पर्याप्त हाथ था, जो निकट भविष्य में कोई कठोर कार्यवाही किये जाने का माग प्रशस्त कर रहे थे। विशाल त्रिपाठी का यह कथन उचित ही है कि महँगाई माई की आई हैं लाइनें/राशन की लाइनें/दूध, तेल, कोयले की लाइनें।[1]

राशन-व्यवस्था के अन्तगत अनेक लोगो द्वारा नौकरी स भी छुट्टी ले-लेकर लम्बी लाइना मे अपनी बारी आन की प्रतीक्षा करते रहने की विवशता पर यह कहकर व्यग्य किया गया है कि दशवासियो का 'चीनी, राशन, टायर, मिट्टी का तेल' आदि वस्तुआ की लम्बी लाइनो मे व्यथ ही खडा नही रखा जाता, अपितु ऐसा करके उनको नियम धय तथा अनुशासन मे रहने की शिक्षा प्रदान करने के लिए लाइना रूपी ये पृथक-पृथक कक्षाएँ बना दी गयी हैं।" राशन-व्यवस्था की एक विडम्बना यह भी है कि अनेक बार लाइना मे लगे रहने पर भी किसी व्यक्ति की बारी आन तक वह वस्तु समाप्त हो जाती है अथवा राशन की दूकाना पर पहले से ही स्टाक मे वस्तु न होने की सूचना लिखी रहती है। वस्तुस्थिति इसके विपरीत यह होती है कि राशन की वस्तुओं का या तो चोर-बाजार म ऊँचे मूल्य पर बेचा जाता रहता है अथवा वे पिछले दरवाजे से प्रभावशाली या 'दादा' कहे जाने वाले लोगा को दी जाती रहती हैं, जबकि जन-सामान्य उन्ह पाने के लिए घटो दिनो की साधना करता रहता है। इस स्थिति का उदघाटन करते हुए ज० प्र० मिलिन्द न क्षोभपूवक कहा है कि शस्य श्यामला और अन्नपूर्णा के रूप मे विख्यात भारत-वसुन्धरा के पुत्र-पुत्रिया अब 'पडे रहते हैं मौन/लम्बी प्रत्याशा म/इसलिए कि सुबह पा सकें हम/अन्न के कुछ दान/सस्ती दूकाना से' जबकि होता यह है कि 'किन्तु नही पाते हैं/नब्बे फीसदी से अधिक लौट जात हैं निराश।' जिन्ह राशन मिल भी जाता है उन्हें भी 'सडे-गले मिट्टी मिले/कक्डा स भरे हुए थाडे स ही गेहू मिल पाते हैं। देश क अन्नोत्पादन की शोचनीय दशा यह है कि हम मिट्टी-कक्ड मिले गहूँओ की जो थोडी-सी मात्रा राशन मे मिलती है 'इसके लिए भी ऋणी/होती चली जा रही है/अन्य कई देशा की/आगामी पीढ़ियाँ हमारे इस देश की।[3] सन 1964 की एक अन्य कविता म भी कवि न बडे क्षोभपूवक कहा है कि हम चीन द्वारा भूमि छीन लेने के राष्ट्रीय अपमान पर तो 'विष का-सा घूट पीकर रह ही गये हैं उसके साथ ही जनता 'भुखमरी महँगाई की/भ्रष्टाचार अभाव की/चक्की के इन भीषण पाटो म/बुरी तरह पिस पिसकर/त्राहि-त्राहि कर उठी है आज। जनता की दशा यह है कि वह 'सडे-गले अन्न के भी/एक एक दान

1 'साँस की अधारी' पृ० 22
2 पग्वलय राजेन्द्र घसमाना पृ० 20
3 नई किरण, पृ० 74, 88

को/तरसती है तड़पती है' और अगली दोपहर को निराश लौट आने के लिए 'पिछली अधरात्रि से/बाद ही से/लम्बी पंक्ति में' लगा करने जाती रहती है। कवि के इन शब्दों में युग ही बोल रहा है कि यह कठिन प्रतीक्षा है/यह अग्नि परीक्षा है/बापू ! क्या यही तुम्हारे स्वप्नों की/सत्य का बल को स्वराज्य है ?''[1]
दिनकर गोनवलकर ने ऐसे भारत का व्यंग्यपूर्वक जय जयकार किया है जिसमें पल-पल बढ़ती है महंगाई दिन दिन बढ़ता क्लेश। जिसमें कुर्सी हथियाने के लिए झगड़े चलते रहते हैं और 'भाषण भ्रष्टाचार, भूख/ये ब्रह्मा विष्णु महेश बन चुके हैं। उन्होंने चेतावनी दी है कि, 'घर में कायर बाहर याचक/सब गौरव निःशेष करने वाले नेताओं से विद्रोही तरुणाई क्योंकर/सहे लगी उपदेश ?[2]
जयरनाथ पुरोहित ने करोड़ों बच्चों के भूखे अधनंगे फिरने की स्थिति के सम्बन्ध में देश के नेताओं से प्रश्न किया है कि तुम्हारे कागजी निर्माणों और खुशहाली के मिथ्या प्रचारों और खोखले नारों में देश की दयनीय आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता है अतः भावी पीढ़ियों और इतिहास द्वारा तुम्हें क्षमा नहीं किया जायेगा।[3] अपनी प्रगतिशील धारणाओं के अनुरूप मिलिन्दजी ने यह भविष्य वाणी भी की है कि भूखों की वाहिनी शीघ्र ही जनता की इस दशा के लिए उत्तरदायी पापी शोषकों को दण्डित करके ऐसी नयी व्यवस्था करेगी जिसमें न भुखमरी अकाल होगा/लज्जा अपमान और शोषण का/होगा अस्तित्व नहीं। इस दिशा में कवि इतना अधिक आश्वस्त है कि उसने चुनौतीपूर्ण स्वर में कहा है कि 'इन हमारे क्रान्तिकारी आदर्शों स्वप्नों पर/पूंजी के क्रीतदास/अर्थशास्त्री अर्थशास्त्री जो हमारी दुर्दशा की लाशों पर अपनी रोटियाँ सेकते रहते हैं, मात्र कुछ दिनों तक ही और हँस[4] सकते हैं।

बेकारी—बेकारी की समस्या बीसवीं शताब्दी के सामाजिक जीवन का अभिशाप कही जा सकती है। इसकी बढ़ोतरी का एक कारण तो यह है कि चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में हुई आधुनिकतम खोजों के कारण उन महामारियों पर विजय प्राप्त कर ली गयी है जो लाखों-करोड़ों लोगों को मौत का शिकार बनाकर विश्व की जनसंख्या को परिसीमित करती रहती थीं। इसका दूसरा कारण यह है कि औद्योगिक क्षेत्र में नित-नवीन स्वचालित मशीनों का आविष्कार होते जाने के कारण मानव-श्रम की महत्ता घटती जा रही है जिस काम के द्वारा हजारों लोगों की आजीविका चल सकती थी उस एक ही मशीन पूरा कर लेती है। पाश्चात्य देशों की अपेक्षा बेकारी की समस्या एशियाई देशों में अधिक है और अपनी विशाल जनसंख्या के कारण स्वतन्त्र भारत की तो यह प्रमुखतम

---

1 नई किरण पृ० 74 88
2 अ से असभ्यता, पृ० 51
3 'समर्पण, पृ० 82
4 'नई किरण', पृ० 76 77

समस्या कही जा सकती है। इस समस्या के सन्दर्भ मे आधुनिक काव्य मे तरह-तरह के उद्गार व्यक्त किये गये हैं। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि इन उद्गारों के प्रणेता छायावादोत्तरकाल के ही कवि रहे हैं, जिससे यह विशेषत स्वातन्त्र्योत्तर काल की समस्या सिद्ध होती है।

सुरेश किसलय के शब्दों म आजकल 'त्योहार मिफ नौकरी मिलने का समाचार' हो गया है[1] जबकि युवक रोजगार ढूढता दफ्तर है/या फिर राशन की कतार म लगा बनस्तर है।[2] उन्होने इस सम्बन्ध म यह भाव भी व्यक्त किया है कि बेरोजगार युवको की सख्या निरथक कुकुरमुत्तो की तरह रोजगार दफ्तरो के आसपास बढती जा रही है रोजगार-दफ्तर की/धक्कम धक्का भीडो से लेकर/लाल किले के पन्द्रह अगस्तीय मजमे तक/भटकते हैं धीरोगत्त/बीमार कुत्तो की तरह/और उग आया है/कचरे पर एक नया वग/बे-मौसम कुकुरमुत्ता की तरह।'[3] केवल गोस्वामी न बेरोजगार युवको के एक ओर तो एम० ए० के उन सर्टीफिकेटो की निरथकता घोषित की है जिनके प्राप्त करने म अपने जीवन के सोलह वष बरबाद करके वे उनको नौकरी पाने के लिए मूख और वाहियात से लोगो को दिखाते फिरते है तो दूसरी ओर उन्हाने बेरोजगार युवको के हारकर डाकू या तस्कर बन जाने की विडम्बना को उभारा है।[4] शिवमगलसिंह सुमन ने किसी कमठ किन्तु बेरोजगार युवक के मुख से कहलवाया है, 'मैं मजदूर का बेटा/मुमे काम दो/बिना मजदूरी किये रहा नही जाता/× × ×तुम मुझे बिना काम के/रखना चाहते हो/भूखा हूँ/जीना चाहता हूँ/पर हराम की खाकर नही/तुमसे निकम्मो के/गीत गाकर नही।[5] एक अन्य कवि के शब्दो म, 'बेकार हाथ प्रलय को लाते हैं/विक्षोभों के सौ ज्वार उठाते हैं/विस्थापित कर देते हैं स्थापित को।[6] आजकल प्रतिभा-पलायन के तथ्य पर देश के कणधारो द्वारा मगरमच्छी आँसू तो बहाये जाते हैं किन्तु इन प्रतिभाओ का भारत म उचित रोजगार देने की व्यवस्था नही की जाती। प्रभाकर माचवे ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा है देश विदेश फिर मारा, नो वैकेन्सी का शिकार वेदिल।'[7] लीलाधर

1 3 'हलफनामा सुरेश किसलय, पृ० 43, 44 29

4 जिन्दगी के सोलह वष कम हैं उसम/वाहियात आदमियो से मूख आदमियो तक/अपना सबूत देने के लिए/ दरजा कोई भी हो—नौकरी नही मिलेगी/रोजगार दफ्तर के बाहर बिताय पाँच साल/वह पेशाब म बहा देता है/और एक भद्दी गाली देकर सरकार को/वह सोचता है बैंक लूटने या मूर्तियाँ चुराने की बात। 'बन्द कमरो की सस्कृति', पृ० 100

5 मिट्टी की बारात, पृ० 73 74

6 'दीवारो के पार', मलखानसिंह सिसोदिया, पृ० 42

7 स्वप्न भग, पृ० 48

जगूड़ी न तो नौकरी न मिल पाने से परेशान हो किसी युवक द्वारा अपने प्रमाण पत्र ही फाड़ डालने की स्थिति का चित्रण किया है।[1]

रोजगार दफ्तर बेरोजगार-युवकों के तीर्थ-स्थल बन गये हैं किन्तु बेकार युवक-युवतियों की नियति यह है कि भर्ती है हर समय हर रोज जारी/रोजगार दफ्तरों की खुली हुई खिड़कियाँ/खिड़कियों पर खड़ी-खड़ी/सुबह से शाम तक/थक-थककर लौट-लौट जाती/है युवा पीढ़ी/भूखी लाचार असंतुष्ट।[2] एक अन्य कवि ने उम्मीदवारों के चयन में भाई भतीजावाद और रिश्वतखोरी का साम्राज्य दिखाते हुए आक्रोशपूर्वक कहा है कि न जाने उन भ्रष्ट अधिकारियों पर कब गाज गिरेगी जिनकी अनुकम्पा के कारण वांछित अर्हताओं की पूर्ति करने वाले युवक युवतियाँ तो मुँह ताकते रह जाते हैं जबकि नौकरी के लिए अयोग्य होते हुए भी वह रिश्वत देने वाले या सिफारिशी युवकों को मिल जाती है।[3]

पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारों को काम देने के लम्बे-चौड़े वायदे किये जाते हैं और चुनावों के समय प्रत्येक राजनीतिक पार्टी के चुनाव घोषणा-पत्र में भी इस तथ्य पर बल दिया जाता है, किन्तु अन्ततः ये वायदे और घोषणाएँ मृग तृष्णा ही बनकर रह जाते हैं। धूमिल ने इस स्थिति को उभारते हुए कहा है, युवकों को आत्महत्या के लिए रोजगार दफ्तर भेजकर/पंचवर्षीय योजनाओं की सख्त चट्टान को/कागज से काट रहा हूँ।[4] किरण जैन ने दिखाया है कि प्रत्येक पाँच वर्ष के उपरान्त अर्थात पंचवर्षीय योजनाओं में या चुनाव के अवसर पर बेरोजगारी दूर करने के आश्वासन दिये तो जाते हैं किन्तु वस्तुस्थिति यह रहती है कि, 'एक बार तो सड़कों पर बेकारों का जुलूस गुजरता/अभावों के मुँह तमतमाते/कुंठाओं के झंडे फहराते/भूख गलाफाड़ नारा लगाती' है जबकि दूसरी ओर सत्ताधारियों की 'हर पाँच साल पर बिल्डिंग की एक मंजिल उठती/हर साल एक गुब्बारे की संख्या बढ़ती जाती है।'[5]

बेरोजगार युवकों द्वारा आक्रोशपूर्वक की गयी तोड़ फोड़ की कार्यवाहियों को यद्यपि पंत ने अनुचित बताया है तो भी उन्होंने उनके आक्रोश का यह तक देकर समर्थन किया है किन्तु निराशा कुंठा का अथाह सागर जो/उनके हृदयों में अदम्य उद्वेलित अनुक्षण/बस उसके शतफण दंशन युवक भरा दें।[6]

---

1 वह मेरा छोटा भाई है/आगामी संसार का/इस भीड़ में/ललपाता हुआ/अपने प्रमाण पत्र फाड़ता हुआ।' इस यात्रा में, पृ० 9

2 प्रहार स्याह रात पर, सं० राजकुमार सैनी पृ० 47

3 क्रांतिवादिनी शम्भू० शर्मा पृ० 94

4 'संसद से सड़क तक' पृ० 26 5 स्वर परिवेश के' पृ० 25

6 किरण वीणा पृ० 222

प्रदर्शन, हड़ताल, घेराव और तालेबन्दी का समर्थन और विरोध

आर्थिक मामलों से सम्बन्धित माँगों को बलात या दबाव द्वारा मनवाने के लिए श्रमिकों तथा सरकारी कर्मचारियों द्वारा संगठित रूप में प्रदर्शन और हड़तालों या मालिकों अधिकारियों के घेराव का आश्रय लेना मुख्यतया आधुनिक काल की औद्योगिक एवं सेवा प्रधान सभ्यता की ही देन कहे जा सकते हैं। ये माँगें कभी तो उचित होती हैं और कभी अनुचित, कभी हड़तालें कर्मचारियों की माँगों की पूर्ति में समाप्त होती हैं जबकि कभी विफल हो जाती हैं किन्तु उनका सामान्य जन-जीवन पर यह अनिवार्य प्रभाव अवश्य पड़ता है कि रेल या बैंकों की हड़तालों के कारण जन-जीवन विशृंखलित हो उठता है। हड़ताल के दिनों में हुई उत्पादन की क्षति तथा कर्मचारियों का बढ़ा हुआ वेतन, बोनस अथवा महँगाई भत्ता देने के अनुपात में ही उद्योगपतियों द्वारा वस्तुओं की मूल्य-वृद्धि कर जाती है, जबकि सरकार भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि करके अपनी आय की क्षतिपूर्ति करती है। अभिप्राय यह है कि एक सामान्य नागरिक की दृष्टि से तो हड़तालें सर्वथा अवांछनीय ही होती हैं हाँ हड़ताली कर्मचारियों को विभिन्न यूनियनों और विपक्षी राजनीतिक दलों की ओर से समर्थन अवश्य किया जाता रहता है। चूँकि आधुनिक काल के बहुत से कवि किसी राजनीतिक दल विशेष से प्रतिबद्ध रहते हैं अतः उन्होंने इन हड़तालों के सम्बन्ध में अपने दल की राजनीतिक दृष्टि को ही मुखरित किया है। यही कारण है कि प्रगतिशील काव्यधारा से सम्बद्ध कवियों ने श्रमिक-हड़तालों का मुक्त कण्ठ से समर्थन किया है। कुछ कवियों ने सामान्य नागरिकों की दृष्टि से इन हड़तालों का विरोध किया है जबकि ऐसे लोगों की तो पर्याप्त भर्त्सना की गयी है जो भाड़े के टट्टू बनकर हड़ताल, प्रदर्शन और घेरावों का आयोजन करते रहते हैं और प्रदर्शनकारियों को पुलिस की लाठियों की मार खाते छोड़ जाते हैं। स्वाधीनता संग्राम के दिनों में भी अनेक बार राजनेताओं के आह्वान पर बाजार बन्द करके आंग्ल शासन के कुकृत्यों का विरोध किया गया था। आधुनिक काव्य में इन हड़तालों के भी औचित्य-अनौचित्य को अभिव्यक्ति मिली है।

मिल मजदूरों की हड़ताल का प्रारम्भ सन 1921 के प्रताप में छपी 'मजदूरों की होली' शीर्षक कविता में गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' द्वारा मिल मिल के मिल में मल से हड़तालें बोल दीं/बातें जो स्वत्व की थीं, वो काँटे पे ताल दीं[1] के रूप में (कदाचित प्रथम बार) समर्थन किया गया है। पत्र न सन 1942 के 'अंगरेजो भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय श्रमिकों को भी हड़ताल द्वारा इस आन्दोलन

---

1 उद्० 'आ० का० में जन० चेतना', डा० जनेश्वर वर्मा, पृ० 237

का समथन करते चित्रित किया है।[1] श्रमिक हडतालो के सन्दभ म सिने गीतकार शकर शैलेन्द्र की यह पक्ति तो, श्रमिकों का गलहार ही रही है 'हर जोर जुल्म की टक्कर मे हडताल हमारा नारा है। इसी क्रम म उन्होंने आगे कहा है 'तुमने माँगें ठुकरायी हैं तुमने तोडा है हर वादा/छीना हमसे सस्ता अनाज, तुम छँटनी पर हो आमादा/तो अपनी भी तयारी है, तो हमने भी ललकारा है।'[2] मुक्तिबोध ने श्रमिक-हडतालो का नारेबाजी के रूप मे नही अपितु खण्ड बिम्बो के माध्यम से गहन-आन्तरिक रूप म समथन करते हुए कहा है कि यद्यपि कफ्यू लगे वातावरण मे पूजीपतियो और उनकी सरपरस्त सरकार के जासूस, हडताली पोस्टर लगाने वालो को सूघते फिरते हैं, फिर भी जीवट वाले श्रमिक नता मकानो, अहाता और कक्षा पर पोस्टर लगा ही जाते हैं। हडताल का आह्वान करने वाले पोस्टरो को उन्होंने वेदना रक्त स लिखा हुआ श्रमिक जीवन का एसा करुण-काव्य (पोस्टर ही कविता है) बताया है जिसम श्रमिको के वाष्प बने आँसू ही लाल अक्षरो के रूप मे धधक उठते हैं।[3] शील का यह कथन उचित ही है कि चूकि व्यग्र पूजीपति मुनाफे के लिए तथा 'जुद्ध महनतकश इजाफे के लिए अत आज दोना ओर ही हडताल है, अर्थात मालिको द्वारा भी अपनी ओर से तालाबन्दी की घोषणा कर दी जाती है।[4] राजकुमार सनी न वेतन-वृद्धि के लिए कमचारियो द्वारा आवाजें सीत्कार, चीत्कार और हडतालो का आश्रय लिए जाने का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि हडताली कमचारियो को अधिकारियो द्वारा एक-झलक बर्खास्त करके, रिक्त स्थानो का रोजी मे भूखे बेकार लोगो द्वारा भर दिया जाता है। इस प्रकार एक ओर तो बन्दा ही गया उद्योगपति का दुस्साहस की स्थिति को बढावा मिलता है जबकि दूसरी ओर हडतालो और नव नियुक्त कमचारियो म भी सिरफुटौवल होने लगता है।[5]

स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारत म आये दिन होने वाले प्रदशन, घेराव हडताल और इन अवसरो पर पत्थरबाजी, आगजनी लाठी-वर्षा और गोलीकाण्ड सामाजिक जीवन के एस कोढ बन चुके हैं कि उनके सम्बन्ध मे सामान्य जनमत को मुखरित करते हुए अनेक कवियो ने उनकी तीव्र भत्सना की है। सुधा गुप्ता की यह उक्ति जनमत का पर्याप्त प्रतिनिधित्व करती है कि 'देश को अब एटम बम

---

1 मिलें बन्द, निस्पद हाट फड, श्रमिको ने हथियार उठाकर,
क्रिया प्रचण्ड विरोध दमन का, पौरो ने पद त्याग निरतर।'
—'लोकायतन' पृ० 109

2 जीवन के गीत, पृ० 9 3 'चाँद का मुह टेढा है, पृ० 29 45

4 लावा और फूल' पृ० 90

5 'प्रहार स्याह रात पर', सक०, पृ० 49

से इतना भय नही/जितना नारो और हडतालो से है।' सम्प्रति गाँवा म भी भ्राति व वायरस पहुँच गये हैं जिसमे जन मानस इस भय म सत्रस्त रहता है कि न जान कब, किस तथ्य को लेकर प्रदशना और हडताल का ऐसा चक्र आरम्भ हो जायेगा जो हमारे जीवन को अस्त-व्यस्त कर देगा।[1] बगाल म पहले से ही होत रहन वाले हिंसक प्रदशन वहाँ के नक्सलवादी आन्दोलन के कारण और भी जोर पकडते रहे है, जिनके परिप्रेक्ष्य म बच्चन की उक्ति है कि बगाल म आदमी महाकाल के गाल म जाने के लिए जन्म लेता है जबकि बसें जलाने के लिए बनायी जाती हैं। उन्होंने इन तोड फोड की कायवाहिया के सम्बन्ध म व्यग्य किया है कि बगाली बाबुओ का धोबी पर बस नही चलता/गधे के कान उमेठते हैं।'[2] राम दरश मिश्र ने खेदपूवक कहा है कि आये दिन के प्रदशना और हडताला मे होन वाली तोड फोड तथा लाठी चाज और गोली-वर्षा के कारण सामाजिक व्यवस्था ऐसी अस्त-व्यस्त हो गयी है कि 'हम सब भीड म समाज समाज चिल्लाते हुए घूमत हैं/और अकेले मे/अपन म पूछत हैं/समाज ? कहाँ है समाज।[3] एक गभस्य शिशु तो इस भय स सत्रस्त हाकर जन्म ही नही लेना चाहता कि मरी मुट्ठियाँ भी नही खुल पायेंगी कि 'कुछ बदतमीज मेरे हाथा म/एक आध झडा दे देंगे/इट या कि पत्थर दे देंगे/मुझे कहगे/खिडकी तोडो, शीशे तोडो/आग लगाओ/क्राति जगाओ अथवा म लाग मेरे रतनारे होठा पर/सडे गल, गन्दे नारे जड देंगे/और मुझे लाचार करेंगे/कण्ठ खोलकर उनका चीखो।' इन प्रदशना-आन्दोलनो मे न चाहते हुए भी किस प्रकार लोगा को ही नही अपितु बच्चा को भी मन मसासकर भाग लेना पडता है इस तथ्य की व्यजना उस गभस्य शिशु क इन उदगारो मे हुई है, 'और अगर मैंने 'ना' की तो/तुम खुद सोचो क्या गुजरेगी।'[4]

इन प्रदशनो-हडतालो क खोखलेपन को उभारत हुए कलाश वाजपेयी के उद्गार हैं कि 'बिना यह समझे हुए/कि क्या करना चाहिए/अन्याय के खिलाफ नारा लगाते' हैं 'नपुसक हडताली', जबकि दूसरा ओर स 'लगातार झूठे आश्वासन' दिये जाते रहते हैं।[5] सर्वेश्वर न स्पष्ट किया है कि जब श्रमिक हडताल का मालिको पर कोई प्रभाव नही पडता और वे भी अपनी आर से तालाबन्दी कर दते हैं तो मजदूरो की भीड का क्रोध थोडी-सी उत्तेजना पाकर ही भडक उठता है। एसी दशा मे जब कोई मजदूर नेता उन्हे, उनके महीनो स रुके वेतन का हवाला दत हुए,

---

1 'राशनी की शहतीर', पृ० 20 21
2 'उभरते प्रतिमाना के रूप, पृ० 138
3 'पक गयी है धूप', पृ० 40-41
4 'दो टूक', बालकवि बरागी, पृ० 106 07
5 'देहान्त से हटकर', पृ० 27

मालिकों की कोठियों का घेराव करने के सम्बन्ध में उनकी राय जानना चाहता है तो अवसर ही वे चिल्ला उठते हैं घेराव ! आज लगा देंगे आग ।[1] कहना न होगा कि यह स्थिति वास्तव में ही आगजनी और उसके प्रतिरोध में हुए गोली काण्ड का रूप धारण कर लेती है। इसके विपरीत किरण जैन ने उस स्थिति का चित्रण किया है जिसमें मजदूरों की विद्रोहाग्नि शनै शनै धीमी होती जाती है अर्थात् आर्थिक कठिनाइयों के कारण मजदूर अथवा कर्मचारी वर्ग समझौता कर लेने को विवश हो जाता है। उन्होंने दिखाया है कि कल के प्रदर्शनकारियों के हाथों में ऊँचे झण्डे, जबान पर गगनभेदी नारे, चाल में अदम्य उत्साह, आँखों में सफलता की आशा और मुट्ठियों में भविष्य के सपने थे। इसके विपरीत वही प्रदर्शनकारी जब आज इधर से गुजरे तो उनके हाथों में फटे बाँस थे, पेट में भूख की ऐंठन थी, चाल में क्रोध की उद्दंडता थी, आँखों में हिंसा का ताण्डव था दृष्टि में अनास्था झाँकती थी, जबां में लाचारियाँ और जबान पर विद्रोह की गालियाँ थी। इस परिवर्तन के आधार पर कवयित्री का यह अनुमान—कि जब ये प्रदर्शनकारी कल जाएँगे तो वे न जीत में हँसेंगे/न हार में रोयेंगे/और कतार की भीड़ में खोकर/एक सरीखे/मिट्टी के माडल बन जाएँगे'[2] उस दशा में ही सत्य सिद्ध हो सकता है जब उन्हें किसी स्वार्थलिप्सु जोशीले नेता द्वारा आगजनी और लूट-पाट के लिए न भड़काया जाये। वस्तुस्थिति प्राय यह देखने में आती है कि कहीं से/एक नारा उछलता है/और भीड़ भाड़ जुट जाती है/पत्थर फेंकने लगती है। इस प्रदर्शनकारी भीड़ को नियन्त्रित करने के लिए पुलिस के रूप में दूसरी ओर से/आती है एक और भीड़ कुछ ज्यादा अनुशासित/जो अफसर के आदेश पर/लाठियाँ चलाने लगती है।' कुछ देर पश्चात् अक्सर ही यह देखने में आता है कि नारा उछालने वाले/चुपचाप चल गये हैं/समझौते करने/और आदेश देने वाले जीप कार में बैठे हैं सुरक्षित। इस दृश्य को देखकर सहज ही यह प्रश्न उभरता है, अरक्षित भीड़/टकरा रही है अंधों की तरह/जाने किन मूल्यों की रक्षा के लिए।'[3]

नाना प्रकार के आन्दोलनों और प्रदर्शनों के इस युग में स्वयं को निर्धन दलित शोषित-वर्ग का हिमायती प्रदर्शित करके निजी उल्लू सीधा कर लेना बीसवीं शती के सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन का एक नया व्यवसाय ही बन गया है। नगरों के हर गली मोहल्ले में आपको ऐसे लोग मिल जायेंगे जो सुबह रूसी दूतावास पर और शाम को अमेरिकी दूतावास पर प्रदर्शन करने वालों में सबसे आगे रहकर उनके विरोध में धुआँधार भाषण झाड़ रहे होंगे। ऐसे खोखले क्रान्तिकारी

---

1 'जंगल का दर्द', पृ० 17
2 'स्वर परिवेश के', पृ० 22
3 'ज से असभ्यता', दिनकर सोनवलकर, पृ० 50

या दलितो के मसीहाओ को या तो बडे घरानो द्वारा खरीद लिया जाता है अथवा बीवी-बच्चो के चक्कर मे फँसकर उन्हे मसीहाई के स्थान पर नोन-तेल लकडी याद रह जाते है। आधुनिक काव्य म कतिपय कवियो ने ऐसे पुरुषो के ढोग का अच्छा पर्दाफाश किया है। किसी ऐसे ही तथाकथित विद्रोही को 'कुत्ता' की सज्ञा देते हुए रामदरश मिश्र न कहा है कि वह लोगो के साथ जाते हुए 'सबसे बडे और परस्पर विरोधी दो मकानो (सम्भवत रूसी और अमेरिकी दूतावासो) के आगे रुककर भूक दिया करता था। परिणाम यह निकला कि उसे दोनो ही मकानो ने पालतू बना लिया और अब वह एक सुरग से दोनो म ही आता जाता हुआ दूसरो को यह महान सन्देश दे रहा है दोस्तो ! आदमी के पास दिमाग है ! तो/वह जो चाहे पा सकता है।[1] उन्होने एक अन्य कविता म खोखले प्रदर्शनकारियो के कारनामो का चित्रण करते हुए दिखाया है कि जब वे कल एक हमलावर दस्ते के पीछे जा रहे थे तो उनकी मुट्ठियाँ तनी हुई थी, आखो से आग बरस रही थी और मुह से झाग उगल रहे थे। कवि उन्हे देखकर ही पहचान गया था कि "इनकी तनी हुई मुट्ठियो मे सधि-पत्र बन्द है/और झाग और आग के नीचे शराब बह रही है। उसका यह सन्देह निराधार नही था क्योकि शीघ्र ही यह दृश्य दिखायी पडता है कि वे लोग लौटकर अँधेरे बन्द कमरे मे गुम होकर/अपने अपने हिस्से का बँटवारा कर रहे हैं।'[2] दिनकर सोनवलकर ने भी किसी ऐसे ही व्यक्ति के विद्यार्थी जीवन का चित्रण करते हुए दिखाया है कि वह जब तक विश्वविद्यालय म रहा/भूखी और नगी पीढी का/बना रहा मसीहा/क्योकि हर महीने/भेज देते थे पिता/सौ रुपये मनीआडर।[3] जब इस जन्मजात विद्रोही को नौकरी के लिए काफी धक्के खाने के पश्चात क्लर्की मिल गयी और उसकी भूख मिटने लगी तो उसकी विद्रोही प्रवृत्ति का यह हश्र हुआ कि भूखी नगी पीढी का/वही मसीहा/बालकनी म/बैठा था सपरिवार/पालतू पशु की तरह/मूक आज्ञाकारी/रोती हुई बच्ची को/चुप कराता हुआ।'[4]

प्रस्तुत अध्याय म अर्थोपार्जन के माध्यमो के सम्बन्ध म व्यजित हुई चेतना से स्पष्ट होता है कि 'परद्रव्येषु लोष्ठवत्' की उदात्त परम्परा वाले भारत म सम्प्रति 'टका मय है अरु सब माया' की धारणा जोर पकडती आ रही है। इस 'बडो रुपया जगत म नहि भया नहि बाप' की धारणा का नसर्गिक दुष्परिणाम यह निकला है कि चाहे व्यापारी हो अथवा सरकारी कर्मचारी चाहे राजनेता हो अथवा सामान्य व्यक्ति सभी के हृदय म उचित अनुचित हथकडे अपनाकर अधिकाधिक धनार्जन करने की लालसा बनी रहती है। आधुनिक काव्य प्रणेताओ ने

1 2 'कधे पर सूरज', पृ० 67, 40
3 4 'अ से असभ्यता', पृ० 32, 33

भ्रष्ट मंत्री, व्यापारी और अधिकारियों की ऐसी नयी देवत्रयी का प्रादुर्भाव दिखाया है जो देश की अर्थ-व्यवस्था का सदोहन करके अपनी तिजोरियाँ भरती हुई जन-सामान्य को भुखमरी के कगार की ओर ढकेलती रहती है। इस तिगडडे की छत्रछाया में ही चोरबाजारी, तस्करी और सट्टा जैसे रातोरात धनकुबेर बना देने वाले काले धंधे फल फूल रहे हैं। विडम्बनामयी स्थिति यह है कि बाढ़, भूकम्प, अकाल और युद्ध जैसी अवांछित और अमानवीय स्थितियाँ इस वर्ग के लिए ऐसे त्यौहार हैं, जब इनकी चाँदी ही चाँदी होती है। कवियों ने इस लज्जाजनक स्थिति के प्रति तीव्र विगह्यात्मक चेतना व्यक्त की है। नौकरी पेशा लोगों में से कवियों ने श्रमिकों और लिपिकों की दयनीय आर्थिक स्थिति को सुधारे जाने के प्रति सवेदनापरक उद्गार व्यक्त किये हैं। इसी प्रकार दलित शोषित श्रमिकों तथा निर्धन किसानों की दशा सुधारे जाने की प्रबल चेतना व्यक्त की गयी है। सरकारी कार्यालयों में परिव्याप्त भ्रष्टाचार को कवियों ने जी भरकर कोसते हुए, उसको अनेक अनर्थों की जड़ सिद्ध किया है।

ग्रामीण और नगर जीवन का तुलनात्मक वर्णन करते हुए कवियों ने ग्राम वासियों को मानवीय गुणों की दृष्टि से श्रेष्ठ तो प्रदर्शित किया है, किन्तु ग्रामों की दशा सुधारे जाने की आवश्यकता पर बल दिया है। नगरों के दौड़ धूप और प्रतियोगिता भरे जीवन में नागरिकों में सवेदना शून्य और धूर्त हो जाने आदि दुर्गुणों को उभारा गया है। आर्थिक दृष्टि से भारत का स्वातंत्र्योत्तर काल में भी समुचित विकास न हो पाने तथा रामराज्य और समाजवाद की घोषणाओं के मिथ्या सिद्ध होने के सम्बन्ध में कवियों ने बड़े ही व्यग्य विद्रूपात्मक उद्गार व्यक्त करते हुए यह चेतना उभारी है कि भ्रष्ट मंत्रियों-व्यापारियों और सरकारी अधिकारियों के कारण ही पंचवर्षीय योजनाएं भी देश का आर्थिक विकास करने में असफल सिद्ध हो रही है। यही नहीं देश में चतुर्दिक महगाई और बेकारी सुरसा के मुंह की तरह बढ़ती जा रही हैं। बेरोजगारी के कारण ही शिक्षित युवक चोरी-डकैती जैसे आपराधिक कृत्यों की ओर उन्मुख होते जा रहे हैं। प्रदर्शनों और हड़तालों के सम्बन्ध में मिश्रित चेतना व्यक्त हुई है। एक ओर तो मजदूरों-कर्मचारियों द्वारा अपनी उचित मांगों के लिए हड़तालें करने का समर्थन किया गया है जबकि जन सामान्य पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को दिखाते हुए उनका विरोध भी किया गया है। इस विडम्बनामयी स्थिति की ओर भी संकेत किया गया है कि किस प्रकार हड़तालें कराने वाले पेशेवर नेता हड़तालियों को डंडे गोलियाँ खाते छोड़कर अपना उल्लू सीधा करने के लिए पूंजीपतियों अधिकारियों से जा मिलते हैं।

पाँचवाँ अध्याय

स्वाधीनता, देशभक्ति, गणतन्त्र आदि राजनीतिक तथ्यों सम्बन्धी चेतना

राजनीतिक दृष्टि से बीसवी शती का इतिहास दो स्पष्ट काल-खण्डों में विभक्त है। सन् 1947 तक का दासता-काल भारतवासियों द्वारा हिंसक-अहिंसक संघर्षों द्वारा देश की स्वाधीनता की प्राप्ति से सम्बन्धित गतिविधियों तथा आंग्ल शासन के क्रूर दमन-चक्र की घटनाओं से ओत प्रोत रहा है, जिनकी आधुनिक काव्य में प्रचुर मात्रा में अभिव्यंजना हुई है। इसी प्रकार 15 अगस्त सन् 1947 की परवर्ती कालावधि का इतिहास भारत द्वारा सहस्राब्दियों के पश्चात् स्वतन्त्र गगन मण्डल में साँस लेने का युग रहा है। स्वाधीनता आंदोलन के दिनों में कहा जाता था कि अंग्रेजों द्वारा भारत छोड़ते ही हमारी निजी सरकार द्वारा ऐसी जन हितकारी नीतियाँ बनायी जायेंगी जिनके फलस्वरूप भारत में त्रेता-युगीन राम राज्य जैसी सुखद स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। कहना न होगा कि गांधीजी का यह स्वप्न स्वातन्त्र्योत्तर-काल में पूरा नहीं हो सका है और इस तथ्य को लेकर कवियों ने तीखे व्यंग्य किये हैं कि भ्रष्ट माध्यमों तथा पूँजीपतियों के धन से चुनाव जीतने वाले हमारे नेता-गण अपने भ्रष्ट आचरण द्वारा राष्ट्र को उत्थान की अपेक्षा अधोगति की ओर ले जा रहे हैं। इस कालावधि में सम्प्रदायवाद, प्रांतवाद, भाषावाद आदि विघटनकारी प्रवृत्तियों ने भी सिर उठाया है तथा पाकिस्तान और चीन से युद्ध भी हो चुके हैं। आक्रांता पाकिस्तान को मुँहतोड़ उत्तर देने के सम्बन्ध में जहाँ कवियों ने भारतीय शौर्य पर गर्व व्यक्त किया है वहाँ चीन से मुँह की खाने पर उन्होंने देश के नेताओं और देश की विदेश-नीति पर करारी चोटें भी की हैं। द्वितीय विश्व युद्ध के सम्बन्ध में कुछ कवियों ने तो राष्ट्रीय कांग्रेस के इस निर्णय का समर्थन किया है कि आंग्ल शासन द्वारा गुलाम भारत को धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए, जबकि मार्क्सवादी रुझान के कवियों ने आंग्ल शासन को युद्ध में सहयोग दिए जाने के तथ्य का प्रबल समर्थन किया है। इस दृष्टिभेद के अनुरूप ही द्वितीय वर्ग के कुछ कवियों ने आजाद हिन्द सेना और उसके नायक

सुभाषचन्द्र बोस की निन्दा की है तो अनेक कवियों ने उनका मुक्त कंठ से स्तवन किया है। युद्ध-समस्या से छुटकारा पाने के समाधानों के विषय में भी कवियों ने पर्याप्त मात्रा में उद्‌गार व्यक्त किये हैं।

सांस्कृतिक दृष्टि से भारतीयों के लिए यह तथ्य कम शमनाक नहीं है कि पहले मात्र दस हजार तुर्क मनिक भारत को पेशावर से बंगाल तक जीतते चले गए थे, जबकि बाद में मुट्ठी भर अँगरेजों ने भारतीय सैनिकों की ही तलवारों से भारतीयों के गले कटवाकर अपने विशाल साम्राज्य की स्थापना कर ली थी। ऐसी दशा में हमारी धारणा है कि गोस्वामीजी द्वारा मंथरा से कहलायी गयी यह उक्ति 'कोउ नृप होउ हमहिं का हानी चेरी छाड़ि न होउब रानी'—आधुनिक काल से पूर्ववर्ती कम से-कम 99% भारतवासियों की राजनीतिक उदासीनता का प्रतिनिधित्व करती है। हाँ आधुनिक काल में रची गयी काव्यकृतियों में इस चिन्तन सरणि में यह परिवर्तन लक्षित होते हैं कि एक ओर तो सम्पूर्ण भारत को ही अपनी मातृभूमि या भारतमाता समझने की चेतना को उभारा गया है जबकि दूसरी ओर स्वाधीनता का अभिप्राय राजनीतिक गुलामी से छुटकारा प्राप्त करना ग्रहण किया गया है। इसके साथ ही यह नवीन चेतना भी जाग्रत विकसित हुई है कि महाराणा प्रताप, शिवाजी और लक्ष्मीबाई आदि वीरात्माओं का सम्बन्ध मात्र चित्तौड़ महाराष्ट्र या झाँसी की स्वाधीनता से नहीं था, और न उनके द्वारा छेड़े गये युद्धों का प्रयोजन निजी स्वार्थ सिद्धि मात्र था अपितु वे समग्र राष्ट्र की स्वातन्त्र्य-कामना का प्रतिनिधित्व करते थे। इसी क्रम में राम कृष्ण भीम अर्जुन आदि पौराणिक तथा अशोक, चन्द्रगुप्त पृथ्वीराज अकबर आदि ऐतिहासिक पुरुषों को भारतीय शौर्य का प्रतीक मानते हुए भारतीयों के हृदय में इन महान पूर्वजों के अनुरूप ही महान् वंशज होने की चेतना जाग्रत करने की चेष्टा की गयी है।

(क) स्वदेश गौरव और मातृभूमि की गरिमा-महिमा

स्वदेश गौरव तथा मातृभूमि की महिमा सम्बन्धी चेतना शनैः शनैः विकसित हुई है क्योंकि सन् 1857 के सांस्कृतिक विप्लव का आंग्ल शासन ने ऐसी क्रूरता पूर्वक दमन किया था कि उसके पश्चात लगभग तीस-पैंतीस वर्षों तक कविगण हीनता ग्रंथि से संपीडित मिलते हैं। इस हीनतापरक दैन्य और विषाद को भारतेन्दु-युगीन काव्य में भलीभाँति परिलक्षित किया जा सकता है। भारतेन्दु ने 'कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जलबल नासी/जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहुँ भारतवासी'[1] के रूप में आंग्ल शासन के उस आतंक की ओर ही स्पष्ट संकेत किया है। हाँ आंग्ल शासन की ओर से मिस्र में युद्ध करने वाली भारतीय सेना की विजय

---

1 'भारतेन्दु ग्रंथावली', भा० 2, पृ० 808

क तथ्य न भारतेन्दु को आर्यों के वीरत्व पर गर्व करने का भी अवसर प्रदान कर दिया था[1] और उन्होंने रघु अज परशुराम, हनुमान भीष्म द्रोणाचार्य के साथ ही चद्रगुप्त शकारि विक्रमादित्य, पृथ्वीराज हम्मीर आदि प्राचीनकालीन पौराणिक एतिहासिक वीरो को सम्बोधित करते हुए यह आह्लाद व्यक्त किया है कि दखो तुम्हारे वशज तुम्हारी कुल-कीर्ति की रक्षा कर रहे है।[2] इस विजय के माध्यम से भारतीयो के आत्म गौरव को जाग्रत करते हुए उन्होंने देश की तत्कालीन अधोगति पर जापान और स्याम का उदाहरण देते हुए यह अश्रुपात भी किया है अति निरबलो स्याम जापाना हाय न भारत तिनहुँ समाना।'[3] उन्होंने पानीपत चित्तौड, बनारस आदि स्थानो को भारतीय गुलामी के कलक चिह्न मानते हुए रोषपूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है 'जा दिन तुव अधिकार नसायो/ताही दिन किन धरनि समायो।[4] कहना न होगा कि विदेशी शासन के प्रति ऐसा तीव्र आक्रोश एव आत्म ग्लानि का भाव तो बाद मे मथिलीशरण गुप्त, दिनकर और नवीन जसे राष्ट्रीय भावो स ओत प्रोत कवियो ने भी व्यक्त नही किया है जबकि भारतेन्दु परवर्तीकाल म अतीत काल के गौरवपूर्ण प्रसगो-पुरुषो का स्मरण दिला कर देशवासियो के हृदय म स्वदेश प्रेम आत्म गौरव एव स्वाधीनता की भावना जाग्रत करने सम्बन्धी काव्योदगारो की बाढ-सी आ गयी थी।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने देशवासियो को उद्बोधित करते हुए कहा है कि तुम्हारे पूर्वज प्रणम्य और कीर्तिवान थे, वे 'विज्ञान और बल विक्रम के निधान' थ। ऐसी दशा म यह तथ्य बडे खेद का विषय है कि 'सम्पत्ति, शक्ति निज खोकर आज सारी/हा हा ! हुए तुम वही सहसा भिखारी।' देशवासियो के आत्म-गौरव को जाग्रत करने के लिए उन्होंने यहाँ तक कह दिया है, 'खोया सभी कुछ, न हाय, तुम्हे हुआ है/हे देश ! शेष तुम मे रह क्या गया है ?'[5] हरिऔध ने 'यह भारतभूमि हमारी/है तीन लाक स न्यारी का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि इसकी 'जग न आरती उतारी थी और यह 'जन तीस कोटि की जननी, जगवंदिता वीर प्रसविनी' रही है।[6] प्राचीन भारत को विश्व का ज्ञान-गुरु सिद्ध करते हुए उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि जब विश्व म चतुर्दिक अज्ञानान्धकार छाया हुआ

1 आरजगन को नाम आजु सव ही रखि लीना।
पुनि भारत को सीस जगत मह उन्नत कीना।' 'भा० ग्र०' भा०2 पृ० 801

2 तुमरी कीरति कुल-कथा साँची करबे हेतु।
लहहू-लखहू नप-गन मव फहरावत जय-केतु।'

वही, पृ० 801

3 वही, पृ० 803

4 वही, पृ० 804

5 'द्विवेदी काव्यमाला', पृ० 422

6 'पद्य प्रमोद', पृ० 8-9

था, तब जिन्होंने ज्ञान किरणें विकीर्ण की थीं वे ही सारे लोक के दिव्य विलोचन वेद हैं।'[1] मैथिलीशरण गुप्त ने 'नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है/सूर्य चंद्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है/ × × हे मातभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की' के रूप में भारत भू का स्तवन किया है। अन्य कवियों में दिनकर ने भारत के उस अतीत गौरव का स्मरण कराया है जब जगत में धर्म तिलक दीपित भारत का भाल गर्व से उठा रहता था और 'फिलस्तीन ईरान, मिस्र, तिब्बत सिंहल, जापान/चीन श्याम सबने भारत के पद परस (थे) गुरु—मान।[3] गोपाल शरणसिंह ने है *भारत की भव्य सभ्यता सबसे अधिक पुरानी की पुष्टि-हेतु यह* तक प्रस्तुत किये हैं कि, 'अन्य देश जब तम सागर में थे सबथा निमज्जित/तभी ज्ञान की दिव्य ज्योति में था यह देश प्रकाशित[4] तथा आदि ग्रंथ सम्पूर्ण देश का, था ऋग्वेद पुरातन।[5] भारत भूमि सम्बन्धी इन पूज्य भावनाओं के सर्वथा विपरीत स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारत में भ्रष्टाचार का बोलबाला देखकर इसको एक कवि ने कुंभीपाक से भी भयकर बताते हुए कहा है कि हम स्वयं को धोखे में रखने के लिए ही इस आर्यावर्त में दूध घी की नदियाँ प्रवाहित होने की मिथ्या कहानियों में विश्वास करते हैं।[6]

(ख) देशवासियों में स्वाधीनता प्राप्ति की ललक जगाने का प्रयास

यह तथ्य अधिक विवादास्पद नहीं है कि भारत को स्वाधीन कराने की राजनीतिक चेतना का उदभव उसके सर्वांगीण अभ्युत्थान की चेतना की ही आनुषंगिक उपज था। देश के सर्वांगीण सामाजिक सांस्कृतिक विकास की दृष्टि से यह तथ्य आवश्यक समझा गया कि तदर्थ देश को स्वाधीन होना चाहिए क्योंकि विदेशियों के शासन से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वह भारत के लिए हितकर नीतियों का निर्धारण करेगा। प्रतापनारायण मिश्र ने इस चेतना को व्यक्त भी किया है कि परदेशी और विधर्मी शासकों से इस तथ्य की आशा करना दुराशा मात्र है कि वे भारत के उत्थान की दिशा में हितकारी कदम उठायेंगे।[7] भारतवासियों के हृदय

———

1 'पद्य प्रमोद' पृ० 19

2 उद० आधु० हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना', डा० मोहरि दामोदर पृ० 164 65

3 इतिहास के आँसू', पृ० 23 4 5 जयदालोक', पृ० 7

6 साठोत्तरी कविता', सक० सुरेश सलिल पृ० 14 15

7 अपने काम अपने ही हाथन भल हाई/परदसिन परधर्मिन से आशा नहिं कोई/धन धरती निज हरि सु करिहै कौन भलाई/जोगी काके मीत कलदर कहि के भाई। 'प्रताप पीयूष', पृ० 217

म स्वतन्त्रता प्राप्ति की ललक जाग्रत करने के उद्देश्य मे महावीरप्रसाद द्विवेदी ने स्वतन्त्रता को अमूल्य रत्न बताते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि 'स्वातन्त्र्य म नरक बीच विशेषता है' जबकि न स्वग भी सुखद जो परतन्त्रता है।[1] हरिऔध ने आँखें खोलो भारत के रहने वाला/घर देखो भालो सँभलो और सभालो' के रूप म देशोत्थान की प्रेरणा प्रदान की है, तो म० श० गुप्त न यद्यपि इस दृष्टि से ईश्वर को धन्यवाद दिया है कि 'भेजा प्रसिद्ध उदार उसने ब्रिटिश राज्य यहाँ नया' जिसके फलस्वरूप भारत मे सुव्यवस्था के साथ ही सडकें, रेलें, तार-व्यवस्था, डाकघरों स्कूलों और चिकित्सालयों की स्थापना हुई है तथापि इसके साथ ही उन्होंने यह परिताप भी व्यक्त कर दिया है कि पर-जाति का शासन कितना भी उत्तम क्यों न हो उसे सर्वांशेन इष्ट नहीं कहा जा सकता।[3] रामनरेश त्रिपाठी न देशवासियों क हृदय म स्वातन्त्र्य-कामना जाग्रत करते हुए कहा है 'अपना शासन आप करो तुम यही शांति है सुख है/पराधीनता से बढ जग म नहीं दूसरा दुःख है।[4] नाथूराम शर्मा शंकर ने देशवासियों को उद्बोधित करते हुए कहा था कि तुम देशोन्नति की प्रतिज्ञा करके उठ खडे हो और लो स्वराज्य-स्वातन्त्र्य का, दो जीवन बलिदान।[5] अन्य कवियों म सनेही के उद्गार हैं 'मान, लज्जा, कोप ये रहते न उसके पास हैं/है पडे जिसके गले म दासता के पाश हैं।[6] निराला ने मातृ-भू की वंदना करते हुए 'नर जीवन के स्वार्थ सकल/बलि हो तेरे चरणो पर/माँ! मेरे श्रम-संचित सब फल' की उदात्त भावना व्यक्त की है[7] तो माखनलाल चतुर्वेदी न इस दृष्टि मे गहन विषाद व्यक्त किया है, कि भारतमाता के 'क्या पडी परतन्त्रता की बेडियाँ? दासता की हाय! हथकडियाँ पडी।'[8] उन्होंने किसी पुष्प की इस अभिलाषा द्वारा कि मुझे सुरबालाओं के हारों म गूथे जाने अथवा देवों के शीश पर चढाये जाने की इच्छा नहीं है अपितु मैं तो यह चाहता हूँ कि मुझे तोड-कर उस माग पर डाल दिया जाये मातृभूमि पर शीश चढाने जिस पथ जावें वीर अनेक[9] देश प्रेम सम्बन्धी अत्यधिक उदात्त भावना को मुखरित किया है।

---

1 'द्विवेदी काव्यमाला, पृ० 301 2 पद्य प्रसून, पृ० 158

3 'शासन किसी पर जाति का चाहे विवेक विशिष्ट हो।
सम्भव नहीं है किन्तु जो सर्वांश म वह इष्ट हो।'
भारत भारती', पृ० 80/245

4 'पथिक', पृ० 48 5 शंकर सर्वस्व', पृ० 248

6 उद्० हिन्दी कविता मे युगान्तर डा० सुधीन्द्र, पृ० 90

7 गीतिका', पृ० 22

8 'राष्ट्रीय वीणा सक० प्र० भा०, पृ० 6

9 त्रिधारा', पृ० 15

सोहनलाल द्विवेदी ने जागरण का शंख फूंकते हुए देशवासियों से कहा था, 'जननी की जंजीरें बजती, जगा रहे कड़ियों के छाल/सुना रहा हूं तुम्हें भैरवी जागो मेरे सोने वाले।'[1] उन्होंने वंदिनी मातृभूमि की मुक्ति-हेतु अपना शीश न्यौछावर करने का उदात्त संकल्प भी व्यक्त किया है।[2] हरिकृष्ण प्रेमी ने इस दृष्टि से आक्रोशमयी छटपटाहट व्यक्त की है कि हमारे घर-बार पर किसी अन्य का नाम क्या अंकित है ? हमारी साँसें और गान क्यों बिक हुए हैं तथा ऐसी स्थिति क्या है कि 'हाथ पर अपने हैं पर ये करते रहते काम किसी के ?' नीरज ने हिटलर की आत्मा से स्वयं को यह उपालंभ दिलाया है कि ओ गुलाम कवि ! मृत तू है जो खोल नहीं सकता मुख भी तथा 'वह जीवित पशु है जिसका अधिकार न निज जीवन पर हो।'[3]

(ग) स्वाधीनता की प्राप्ति पर हर्षोल्लास

स्वाधीनता की प्राप्ति के स्वर्णावसर पर कवियों द्वारा बड़े ही हर्षोल्लास परक उद्गार व्यक्त किये गये हैं। बच्चन ने गांधीजी को एक हजार वर्ष की गुलामी को मिटाने के उपलक्ष्य में एक हजार सलामियां प्रदान की हैं।'[4] शमशेर ने इस अवसर पर 'भारत की आरती/देश-देश की स्वतंत्रता देवी/आज अमित प्रेम से उतारती' का भाव व्यक्त करते हुए इस तथ्य का भी उल्लेख किया है कि सम्प्रति भारत पर 'गर्व करता है एशिया/अरब, चीन मिस्र, हिन्द एशिया/उत्तर की लोक संघ शक्तियां/युग-युग की आशाएं वारती।'[5] जगन्नाथ पुरोहित ने नयी पीढ़ी को यह संदेश दिया है कि दो वचन देश के नन्हे राजकुमारो तुम/मेहनत करके बंजर पर फल खिलाओगे तथा ऐसा प्रयत्न करोगे कि जब तक चन्द्र और सूर्य का अस्तित्व शेष है 'तब तक हिम गिरि पर रहे राष्ट्रध्वज लहराता।'[6] गणेशचन्द्र जोशी ने स्वतंत्रता की रक्षार्थ युद्ध करने वाले प्रत्येक सैनिक को उचित ही यह समझाया है कि अब वे किसी नरेश विशेष के नौकर नहीं हैं अपितु 'एक वर्ग चालीस कोटि राजा तुम खुद हो/अपनी है यह भारत भूमि और हम खुद ही स्वामी हैं।'[7] उदयशंकर भट्ट ने भारत की स्वाधीनता को दो शतियों तक चल आंग्ल शासन की जेल से मुक्ति बताते हुए कहा है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के रूप में हम 'दासता विषाद की/दुख दैन्य त्रास की होली जला चुके हैं।'[8] श्रीकृष्ण सरल ने स्वाधीनता प्राप्ति को नव-युग की संज्ञा प्रदान करते हुए देश के नवयुवक वर्ग से यह याचना की है कि 'अपने प्राणों से कहीं अधिक वे इस धरती का प्यार करें।'[9]

1 2 भैरवी' पृ० 113, 2
3 'लहर पुकारे', पृ० 87
4 खादी के फूल' पृ० 107
5 दूसरा सप्तक', सं०, पृ० 98
6 समर्पण पृ० 73 74
7 रण जागरण, पृ० 59
8 'पूर्वापर, पृ० 116
9 'राष्ट्रभारती', पृ० 202

महाराणा प्रताप का चरित्रांकन जिस उद्देश्य से किया है तथा इस दिशा मे उनके सम्मुख जो बाधाएँ रही हैं उसकी झलक उनके इन उदगारो से मिल जाती है

"जग मे जागति पदा कर दू वह मत्र नही वह तत्र नही,
कैसे वाछित कविता कर दू, मेरी यह कलम स्वतत्र नही।"[1]

उन्होने राणाप्रताप को 'निकल रही जिसकी समाधि स स्वतत्रता की आगी/यही कही पर छिपा हुआ है वह स्वतत्र वैरागी' के रूप मे श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि उन्होने अपने बलिदान द्वारा भारतमाता के मुख की लाली अर्थात उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा की थी[3]—अर्थात् उसे यह कलक नही लगने दिया था कि उसके करोडो पुत्रो म से एक भी पुत्र ऐसा नही है, जो उसकी और अपनी स्वतत्रता के लिए आत्म बलिदान कर सके। दिनकर न देशवासियो स यह प्रश्न करके कि समय मागता मूल्य मुक्ति का देगा कौन मास की बोटी? —इसके समाधान के लिए राणाप्रताप की ओर इगित करते हुए कहा है पवत पर आदश मिलेगा खायें चलो घास की रोटी।[4] सोहनलाल द्विवेदी ने महाराणा प्रताप का कोई स्मारक न बनाये जाने के प्रति गहन विषाद व्यक्त करते हुए भारतमाता से उचित ही यह प्रश्न किया है, कहाँ तुम्हारे आँगन म उसके पवित्र चरणो की छाप?[5] उन्होने महाराणा को स्वतत्रता-युद्ध का प्रथम सनानी घोषित करते हुए[6] आजादी के लिए अपना सवस्व न्योछावर कर देने वाला वीर बताकर श्रद्धाजलि अर्पित की है और भारतमाता से यह याचना भी की है एक बार फिर भरो हमारे, हृदयो मे माँ वही उमग।[7] उन्होने जागो! प्रताप माँ-बहिनो के अपमान छेद हैं जगा रहे तथा 'मेरे प्रताप तुम गूज उठो मेरी सतप्त पुकारो से'[8] के रूप म भारत धरा म अगणित प्रतापो क जन्म की अभिलाषा भी व्यक्त की है। असहयोग आदोलन के दिनो मे स्थापित राष्ट्रीय विद्यालयो म भी छात्रो को यह उपालम्भ दिया जाता प्रदर्शित किया गया है कि वे स्वाधीनता प्रेमी महाराणा प्रताप और शिवाजी के वशज होत हुए भी पराधीन रहकर उनके नामो को क्यो कलकित कर रहे हैं?[9] एक अन्य कवि ने भी दिखाया है कि राष्ट्रीय विद्यालयो म 'वीर शिवाजी की गाथाएँ, श्री प्रताप का त्याग' की कहानियाँ सुनाकर नवयुवको के हृदय मे यह चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया जाता था जो जीता है पराधीन हो उस नर को धिक्कार।[10] नीरज न भी इस तथ्य का खेदपूवक उल्लेख

---

1 3 'हल्दीघाटी, पृ० 119, 8, 7
4 हुकार', पृ० 71
5 8 सेवाग्राम', पृ० 27 30, 28, 31
9 'राष्ट्रभारती, श्रीकृष्ण सरल, पृ० 477
10 'कुटिया का राजपुरुष वि० प्र० दी० बटुक, पृ० 25

किया है कि भारतवासी 'काँटों पर सोने वाले मेवाड़ सिंह को भूल गये' हैं।[1] पूर्ववर्ती साहित्य में महाराणा प्रताप के विस्मृत से चरित्र को आधुनिक काल के इतने अधिक कवियों द्वारा स्वाधीनता के प्रतीक रूप में उभारते हुए श्रद्धांजलियाँ अर्पित करना निश्चय ही नवीन युग चिन्तन से अनुप्रेरित तथ्य है।

(आ) छत्रपति शिवाजी—महाराणा प्रताप की अपेक्षा छत्रपति शिवाजी को आधुनिक काल से पूर्ववर्ती काव्य में तो अधिक महत्त्व मिला था, किन्तु आधुनिक काव्य में उनके सम्बन्ध में महाराणा प्रताप की अपेक्षा कम ही काव्योद्गार व्यक्त हुए हैं। इस तथ्य का एक संभावित कारण यह हो सकता है कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की दृष्टि से शिवाजी का चरित्र किंचित् विवादास्पद विषय था और इसीलिए सन 1935 के लगभग भूषण की रचनाओं को गांधीजी की प्रेरणा से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की परीक्षाओं के पाठ्यक्रम से हटा दिया गया था। आधुनिक कवियों में से कामताप्रसाद गुरु ने भूषण के 'शिवाजी न होत तो सुनत होति सबकी' जैसा ही भाव व्यक्त करते हुए लिखा भी था कि उनके अभाव में देश, नाम कुल धर्म हिन्दुओं का मिट जाता/अपना शब्द पुनीत न कोई कहने पाता।'[2] अन्य कवियों में गो० श० सिंह ने शिवाजी को देशवासियों में नये राष्ट्र का स्वप्न देखने की चेतना जाग्रत करने का श्रेय प्रदान किया है,[3] जबकि रामकुमार वर्मा ने उन्हें भारतीयों की ओर से यह समाश्वासन दिलाया है कि आपने 'जो स्वतन्त्रता की पावन परम्परा चलायी थी उसे हम सदैव प्रवहमान रखेंगे।[4]

(ग) प्रथम स्वाधीनता संग्राम और उसके वीर नायक

अधिकांश आंग्ल अफसरों इतिहासकारों ने सन् 1957 के संघर्ष को सिपाही विद्रोह बताया था जिसकी अनुगूंज भारतेन्दु के 'कठिन सिपाही द्रोह अनल जा जल-थल नासी/जिन भय सिर न हिलाइ सकत कहूँ भारतवासी'[5] जैसे उद्गारों में सुनायी पड़ती है। इसके विपरीत कतिपय आंग्ल लेखकों जैसे 'सर जॉन विलियम के', कर्नल मलेसन पादरी अलेक्जेंडर डफ, पत्रकार 'रसल' आदि की दृष्टि में यह संघर्ष सिपाही विद्रोह मात्र न होकर, व्यापक विद्रोह (रिबेलियन) था क्योंकि इसमें अवध, रुहेलखंड बुंदेलखंड, नर्मदा और सागर इन चार प्रान्तों की जनता

---

1 'लहर पुकारें', पृ० 76
2 उद्० 'प्रगतिवादी काव्य-साहित्य', डा० कृष्णलाल हंस, पृ० 92
3 'की राष्ट्रीय भावना मन में, शीघ्र उन्होंने जाग्रत।
स्वप्न देखने लगा मनोरम, नये राष्ट्र का भारत।" 'जगन्नालोक', पृ० 20
4 'आकाश गंगा', पृ० 89

भी आंग्ल शासन के विरुद्ध उठ खड़ी हुई थी।[1] डा० अलेक्जेंडर डफ न इसको सामान्य विद्रोह (रिबेलियन) तथा जनक्रांति (रिवोल्यूशन)[2], चार्ल्स वाल ने 'जन विप्लव' (रिबेलियन ऑव द होल पीपल)[3] तथा लदन टाइम्स के सम्वाददाता रसल ने 'जातीय युद्ध' (वार आव रस)[4], बताया था किंतु इस संघर्ष की विफलता के कारण ऐसे विद्वानों के अभिमतों की उपेक्षा करते हुए, उसको आंग्ल लेखकों द्वारा अधिकारच्युत नरेशों-नवाबों के साथ-साथ गुण्डागर्दी और अराजकता प्रिय गूजर आदि जातियों का विप्लव[5] बताकर उपेक्षित-अनादृत किया जाता रहा। हाँ शनै शनै जब देशवासियों के हृदय मे स्वतन्त्रता प्रेम भड़का, तो इस संघर्ष को भारत का प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम मानने की चेतना जोर पकड़ती गयी। इस चेतना के विकास म वी० डी० सावरकृत 'द इंडियन वार आव इंडिपेंडेंस 1857' (सन् 1909 ई०) का अप्रतिम हाथ रहा है क्योंकि सर्वप्रथम उन्होंने ही अनेक आंग्ल लेखकों के मत प्रमाण देकर यह सिद्ध किया था कि यह संघर्ष सिपाही विद्रोह न होकर भारत का आंग्ल शासन के विरुद्ध स्वतन्त्रता-संग्राम था। चूंकि इस जन विप्लव के भड़कने के मूल म भारतीय जनता की इस आशंका का प्रमुख हाथ था कि ईसाई पादरी और सैन्य अधिकारी प्रकट-परोक्ष हथकंडे अपनाकर हिंदू मुसलमानों को ईसाई बनाना चाहते हैं — हुआ घोष सब रामकृष्ण का तज मसीह को मानो/रामायण गीता म क्या है श्रेष्ठ बाइबिल मानो[6] अत हमारी दृष्टि म इस संघर्ष को 'सांस्कृतिक विद्रोह' कहना भी सर्वथा समीचीन है। इस परिणत चेतना के अनुरूप ही बीसवी शती के अधिकांश कवियों ने इस संघर्ष को स्वाधीनता का प्रथम संघर्ष अथवा समर घोषित किया है। उदाहरणार्थ सुभद्राकुमारी चौहान ने इस संघर्ष को 'स्वतन्त्रता का महायज्ञ' घोषित करते हुए उसमे महलो से लेकर झोपड़ी तक अर्थात् राजा से लेकर रक तक सभी वर्गों के भारतीयों को सम्मिलित दिखाया है।[7] पंत ने इस संघर्ष को एक ओर तो सांप्रदायिक द्वेष से प्रेरित विप्लव बताया है जबकि उन्होंने उसके सम्बन्ध म आंग्ल इतिहासकारों के मत म प्रभावित होकर यह हीन-सी धारणा भी व्यक्त की है कि वह राष्ट्रीय आदर्शों से

---

1 3 हिस्ट्री आव द इंडियन म्यूटिनी', खंड 1, पृ० 487, 462

2 उद० 'द इंडियन वार आव इंडिपेंडेंस वी० डी० सावरकर पृ० 414

4 'थ्योरीज आव द इंडियन म्यूटिनी डा० एस० बी० चौधरी पृ० 22

5 द आफ्टरमथ आव रिवोल्ट' टी० आर० मटकाफ पृ० 57 58

6 'झाँसी की रानी' आनन्द मिश्र, पृ० 78

7 ' इस स्वतन्त्रता महायज्ञ में कई वीरवर आये काम/दूर फिरंगी को करने की सबने मन म ठानी थी/महलो ने दी आग झोपड़ो ने ज्वाला सुलगायी थी/ यह स्वतन्त्रता की चिनगारी, अन्तरतम से आयी थी।' मुकुल' पृ० 70

शून्य 'सामन्तो-उच्छवास' या नरेशो नवाबो का क्षणिक विद्रोह मात्र था।[1] गो० प्र० व्यास ने इस संघर्ष को आजादी के परवानों द्वारा किया गया 'गदर' घोषित किया है[2] जबकि ब्रह्मस्वरूप दीक्षित ललाम ने उसको प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की संज्ञा प्रदान करते हुए यह विषाद भी व्यक्त किया है कि उसके विफल हो जाने के कारण भारत से परदेशी शासन का अन्त नहीं हो सका था।[3] मुख्तार सिंह दीक्षित ने इस संघर्ष के सम्बन्ध में पनपी राष्ट्रीयतावादी धारणाओं को मुखरित करते हुए उन लेखकों को भी आड़े हाथों लिया है, जो 'इस संगठित संग्राम' को 'पुलिस की क्रांति' मान बताते रहे हैं— संगठित संग्राम को तो, बस पुलिस की क्रांति माना/जन स्वाराज्यिय भावना को मूढ़ मन की भ्रांति माना/चाहते अधिकार थे हम, वह दिया विद्रोह है यह।'[4] इस स्वाधीनता संग्राम के संदर्भ में व्यक्त हुई अन्य धारणाएँ इस प्रकार है कि मैथिलीशरण गुप्त ने इस संग्राम की विफलता को भारत के त्रिफल अर्थात् धर्म अर्थ और काम की पराजय बताया है।[5] पंत ने 'अपने ही पुत्रों की असि से/भारतमाता तब हुई पराजित' की विसंगति का उद्घाटन करते हुए भारतमाता के उर को पद मर्दित करने वाले कपूतों के विषय में घृणापूर्वक कहा है कि उन्होंने अपने आंग्ल प्रभुओं के जूते शिरस्त्राण के रूप में अपने शीशों पर धारण कर रखे थे।[6] श्रीकृष्ण सरल ने इस संघर्ष की सौवीं वर्षगाठ पर यह भाव व्यक्त किया है कि हम इस संग्राम की विफलता से यह प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए कि हम देश के गद्दार-तत्त्वों के प्रति सजग रहें, जिससे हमारी स्वतन्त्रता पर आँच न आ सके।[7] उन्होंने इस जन विप्लव की पृष्ठभूमि की ओर इंगित करते हुए दिखाया है कि 'लाल कमल और रोटी' के संकेत

---

1 'सन सत्तावन का विप्लव था, लोक द्रोह से प्रेरित निश्चित/वन-दावा-सा फल बुझा जो, जन भू-चल था तब न संगठित/सामन्तो उच्छवास रहा वह, राष्ट्रीय आदर्शों से विगर्हित।" लोकायतन', पृ० 91

2 'कर सत्तावन का गदर याद, मत भूल गदर की बातों को/आजादी के परवानों ने जब खून से होली खेली थी।' 'रंग जंग और व्यंग्य, पृ० 61

3 "सन सत्तावन का गदर हुआ आजादी का पहला प्रयास/हो सका न अपनी धरणी से, परदेशी शासन का सर्वनाश।' 'जयभारत', पृ० 74

4 जयभारत, पृ० 31

5 "और त्रिफल-सा दबा देश में, सन सत्तावन का विद्रोह।' 'गुरुकुल' पृ० 264

6 'भारत ही के क्रीतदास सुत, मां का उर करते पद मर्दित/नत सिर पर प्रभु पद त्राण थे, शिरस्त्राण से जिनके शोभित।' लोकायतन', पृ० 94

7, 'सन सत्तावन की भूल नहीं फिर हमें कभी दुहरानी है/आज देश की आजादी पर करनी हर कुर्बानी है।" 'राष्ट्रभारती', श्रीकृष्ण 'सरल', पृ० 438

चिह्नों द्वारा 'विप्लव का संगठन किया' गया था। भारतीयों ने कुरान और गीता की शपथें लेकर, देश को आंग्ल शासकों के चंगुल से मुक्त कराने की प्रतिज्ञाएँ की थी तथा जनता में साधु-संत-फकीर क्रांति संदेश लिए घूमे थे जिससे 'सुनकर शुभ सन्देश देश के दीवाने' झूम उठे थे। इसी क्रम में उन्होंने सावरकर तथा कतिपय आंग्ल इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत इन तथ्यों का भी उल्लेख किया है कि 'तीर्थ-यात्रा के मिस नाना साहब जा निकले/भारत भ्रमण किया जाकर लोगों के दिल बदले/ अहमद शाह मौलवी ने लोगों को भड़काया/वीर जवाँ खाँ ने विप्लव हर दिल में भड़काया' तथा 'पहुँच विदेशों में रंगोजी और अजीमुल्ला/करने लगे प्रचार क्रांति का वे खुल्लमखुल्ला।'[1] आनन्द मिश्र ने भी इस विप्लव के मूल में भारत की स्वतन्त्रता और धन की लूट के साथ ही आंग्ल शासन के द्वारा 'धर्म में बाकी छोड़ा' के तथ्य का भी हाथ दिखाते हुए कहा है, 'शीश कफन बाँधे बढ़ी है, घर घर में तरुणाई/धर्म युद्ध की बलिदानी सेना अब आयी।' ईसाई मिशनरियों और सेना के अँगरेज अधिकारियों द्वारा भारतीयों को धर्म भ्रष्ट करके ईसाई बनाने के विरुद्ध धीरे धीरे सुलगती रही यह विद्रोहाग्नि अन्तत तब भड़क उठी थी, जब 'चरबी मिले कारतूसों को कौन दाँत से खोले ?/धर्म परायण भारतीय वीरों के आसन डोले', की विस्फोटक स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। सेना के साथ ही जन-सामान्य के हृदयों में भी 'रोटी और कमल विप्लव के पूत प्रतीक बनाये/गाँव-गाँव में क्रांति पथ के नियत सन्देश आये'[2] के रूप में विप्लव का सदेश पहुँचा दिया गया था। इस विप्लव की विफलता के कारणों को उद्घाटित करते हुए एक अन्य कवि ने इतिहासकारों द्वारा प्रतिपादित इन तथ्यों का अनुकरण किया है कि 'फूट डालकर अंग्रेजों ने/कुछ सिक्खों को साथ ले लिया' था और 'देशद्रोही कुछ मुस्लिम/स्वामि भक्ति का चोगा पहने/अपने ही शोणित को पीकर/नाच रहे थे।' परिणाम यह निकला कि 'चाल सफल हो गयी अंग्रेजों की/पूर्णतया परतन्त्र देश हो गया ब्रिटिश का।' भावी विद्रोह की आशंका के निवारणार्थ आंग्ल शासकों ने सेना में गोरे सैनिकों की संख्या तो बढ़ा ही दी थी, वे भारतवासियों में 'घृणा-द्वेष विद्वेष जगा दो/जाति-पाँति मजहब उकसाकर/फूट डाल दो' की कूटनीति का भी आश्रय लेने लगे थे।[3] इस संग्राम की विफलता के पश्चात आंग्ल शासन ने समग्र उत्तरी भारत में जिस क्रूर दमन-चक्र का नग्न-नाच दिखाया था, उसकी ओर एक कवि ने 'तोपों पर पीठ बँधायी थी, पेड़ों पर फाँसी खायी थी'[4] के रूप में इंगित किया

---

1 'सरदार भगतसिंह', श्रीकृष्ण 'सरल', पृ० 341
2 'झाँसी की रानी', पृ० 78
3 'बागलोदय', नीरस, पृ० 2
4 'रंग जंग और व्यंग्य', गो० प्र० व्यास, पृ० 61

है। अंग्रेज अधिकारियो की क्रूरता की जीती जागती निशानी 'कानपुर मेमोरियल वेल' तो अब तक विद्यमान है जिसको भगवतीचरण वर्मा ने उचित ही 'तुम प्रतिहिंसा से प्रतिपालित पापो के आख्यान/तुम पददलित देश की छाती पर उसके अपमान', तुम पशुता की स्मृति' 'तुम बदले की हृदयहीनता के निष्ठुर अभिशाप', × × × 'गदर का भीषण उपसहार' तथा 'यहाँ गुलामो का प्रतिपल है आहो का अम्बार' का प्रतीक बताकर निंदा की है।[1]

रानी लक्ष्मीबाई—सन् 1857 के स्वाधीनता-सग्राम मे सम्मिलित सेनानायको म से कवियो को रानी लक्ष्मीबाई का शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व विशेष प्रिय रहा है और उनके उदगारो पर निश्चय ही वी० डी० सावरकर की 'द इडियन वार आव इनडिपेंडेंस 1857' शीर्षक कृति मे व्यक्त किये गये लक्ष्मीबाई सम्बन्धी उदात्त विचारो का प्रभाव रहा है। सावरकर न रानी को सन 1857 के स्वतन्त्रता-सग्राम का 'केन्द्रीय विचार तथा स्वराज्य का चमकता हुआ प्रतिरूप, स्वतन्त्रता का प्रेरणा-स्रोत' और अवतार' बताकर श्रद्धाजलि अर्पित की है।[2] यही नही इस कृति म भारत को इस दृष्टि स भी परम सौभाग्यशाली बताया गया है कि उसको लक्ष्मीबाई जसी अप्रतिम देश भक्त, स्वदेश-गौरव की अनुरागिनी तथा देवदूता जसे व्यक्तित्व वाली पुत्री और रानी को जन्म देन का सुअवसर मिला है। सावरकर ने इस तथ्य का गर्वपूर्वक उल्लख किया है कि एसे महान व्यक्तित्व की पुत्री उत्पन्न करने का सौभाग्य इगलण्ड का तो मिला ही नही है, और यद्यपि, इटली म उदात्त चरित्र के उत्कृष्टतम देशभक्त हुए हैं किन्तु लक्ष्मीबाई जसी उत्कट देशभक्त और वीर पुत्री उत्पन्न करने का सौभाग्य तो इटली को भी नही मिला है।[3] ज्ञात नही कि सावरकर की इस आग्ल शासनकाल मे प्रतिबन्धित

---

1 'विस्मृति के फूल, भगवतीचरण वर्मा, पृ० 81-83

2 Aye she is the central idea the flashing impersonation of Swaraj She is the inspiration, she is the incarnation of Liberty

The Indian war of Independence 1857

V D Savarkar p 463

3 The flame of Patriotism was always burning in her heart And she was proud of her country s honour and pre eminent in war It is very rarely that a nation is so fortunate as to be able to claim such an anglic person as a daughter and a queen That honour has not yet fellen to the lot of England × × × Italy could not give birth to a Lakshmi' Ibid, p 492

पुस्तक के सन्दर्भगत उदगारों को कितने कवियों ने पढा होगा, किन्तु रानी के अमित शौर्य के साथ-साथ उनकी अप्रतिम देशभक्ति की भावना भी आधुनिक काव्य में भलीभाँति अभिव्यंजित हुई है। रानी लक्ष्मीबाई से सम्बन्धित सर्वाधिक लोकप्रिय कविता सुभद्राकुमारी चौहान की रही है जिसकी बुन्देले हरबोलो के मुह हमने सुनी कहानी थी/खूब लडी मरदानी वह तो झासी वाली रानी थी पक्तियाँ किसी समय शिक्षित नवयुवक वर्ग की जुबान पर चढी रहती थी। इस कविता मे उनके विषय मे यथा प्रसग अभी उम्र कुल तेइस की थी मनुज नहीं अवतारी थी तथा जाओ रानी याद करेंगे, ये कृतज्ञ भारतवासी [1] जसे श्रद्धा परक उदगार भी व्यक्त किये गये हैं। हाँ रानी लक्ष्मीबाई का सर्वाधिक चारित्रिक उत्कर्ष आनन्द मिश्र कृत झासी की रानी शीर्षक खण्ड काव्य में हुआ है जिसमे उनके अँग्रेजो से हुए युद्धो का मूल कारण स्वराज्य रक्षा के स्थान पर मातभूमि को आग्ल शासन से मुक्त कराना दिखाया गया है। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि रानी लक्ष्मीबाई इस युद्ध मे अपक्षाकृत बाद म अर्थात विद्रोह भडकने के लगभग एक वर्ष पश्चात सम्मिलित हुई थी। इसी प्रकार यह भी ऐतिहासिक तथ्य है कि रानी द्वारा विद्रोह में भाग लेने से पूर्व झासी की जनता में विद्रोह भडक उठा था और विद्रोहियो ने अग्रेज जाति के स्त्री-पुरुषो और बच्चो का कत्ल करके झाँसी पर अधिकार कर लिया था। आनन्द मिश्र ने इन तथ्यो का उल्लेख किया तो है,[2] किन्तु उन्होंने रानी की इस चुप्पी या उदासीनता को कूटनीति से प्रेरित दिखाकर उसका इस रूप में प्रक्षालन भी कर दिया है कि, कहीं विवेकहीनता बल को शाप नहा बन जाये/यह प्रमाद की आधी धधकी ज्वाला बुझा न जाये। [3] मात्र एक ही प्रसग और है जब राजा गगाधर राव की मृत्यु के चार महीने बाद (मृत्यु सन 1853 में हुई थी) अग्रेजो द्वारा झासी पर अधिकार करने के समय रानी लक्ष्मीबाई यह सोचकर खून का घूट पीकर रह जाती हैं सोच रही थी अभी द्रोह का समय नहीं आया है,[4] अन्यथा उनका समग्र जीवन क्रांति की ऐसी चिनगारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो मातभूमि की रक्षार्थ तत्कालीन कम्पनी शासन को भस्म करने हेतु व्यग्र है। उदाहरणार्थ लक्ष्मीबाई का गगाधर राव से विवाह होता है तो वे वैवाहिक जीवन की रँगरेलियो में निमग्न होने के स्थान पर इस चिन्ता में डूबी दिखायी गयी हैं, चार विदेशी आकर मेरी धरती के स्वामी हो/

---

1 'मुकुल', पृ० 74

2 'धधक उठा सम्पूर्ण देश है, किन्तु मौन है झाँसी/किये नियत्रण बैठी रानी सयम की अभिलाषी।' 'झाँसी की रानी', पृ० 79 80

3 4 वही, पृ० 79, 76

उससे पहले मृत्यु पथ के हम सब अनुगामी हों।'[1] वे अपनी सखियों के साथ मिल कर 'आओ हम सब आज शपथ लें धरती दास न होगी/बोलो कौन साथ करेंगी धर्म-युद्ध संचालन'[2] के रूप में मातृभूमि की दासता का पाश काटने के लिए धर्म-युद्ध छेड़ने की प्रतिज्ञा कर लेती हैं और देशोद्धार की भावना से अनुप्रेरित होने के कारण ही नाट्याभिनय देखकर लौटे पति की भर्त्सना करते हुए पत्नियोचित मर्यादा का भी अतिक्रमण कर जाती हैं।[3] वैधव्य को प्राप्त होने पर रानी का मातृभूमि के उद्धार का संकल्प और भी अधिक सुदृढ़ हो जाता है, 'तन-मन से मैं अब स्वतन्त्रता का शृंगार करूँगी/दग्ध देश में नयी चेतना का संचार करूँगी/मिटकर भी पीड़ित स्वदेश का जन-बल मुझे जगाना' तथा 'झाँसी पावन कर्म क्षेत्र है देश लक्ष्य है मेरा।'[4] रानी की देशभक्ति एवं स्वातन्त्र्य भावना से ओत प्रोत यह उक्ति भी अवलोकनीय है कि 'जब तक अकेली मैं जीवित हूँ तब तक यह रण होगा/सांस-सांस न्यौछावर मेरी पूरा यह प्रण होगा।'[5] युद्ध में लगे करारे घावों के फलस्वरूप प्राण त्यागते हुए भी रानी देश को स्वाधीन कराने के प्रति व्यग्र चित्रित की गयी हैं, 'जा रही हूँ मगर याद इतना रहे/मुक्ति का पूत सपना न सपना रहे/शूल दासत्व का छाँटना है तुम्हें/देश की बेड़ियाँ काटनी हैं तुम्हें।'[6] कवि के रानी विषयक यह श्रद्धास्पद उद्गार हमें पूर्णतः उचित प्रतीत होते हैं कि 'तुम गयी दे गयी पर नया बल हमें/चेतना का सुदृढ़ एक सम्बल हमें।'[7] उसने रानी की समाधि को भी 'अपौरुषेय सुधर्म-कर्म की प्रतीक'[8] तथा 'मन्दिर है पुण्य तीर्थ राज महा वंदनीय'[9] बताकर श्रद्धांजलि अर्पित की है। कवि मुकुल ने भी महारानी के शौर्य की 'आख बाहर आ पड़ी, सिर कट गया, पर झुक न पाया' के रूप में प्रशंसा करते हुए उनकी इस हार्दिक अभिलाषा का उल्लेख किया है कि मैं भावी स्वाधीनता सेनानियों के प्रयासों का 'नींव का पत्थर बनूंगी।'[10]

सन् 1857 के सांस्कृतिक विद्रोह या स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित कतिपय अन्य वीरात्माओं में से मंगल पांडे का इस दृष्टि से महत्व है कि 29 मार्च 1857 के दिन सर्वप्रथम उन्होंने ही, सार्जेंट मेजर ह्यूसन का वध करके, इस विप्लव का श्रीगणेश किया था। उनको उचित ही 'भारतीय प्रतिष्ठा का रक्षक', 'शहीदों में शिरोमणि' तथा भारतीय यौवन के अभिमान की जीवित गौरव-गाथा बताकर श्रद्धांजलि अर्पित की गई है।[11] तातिया टोपे को रण-कौशल की दृष्टि से सावरकर ने एशिया के महानतम सेनानायकों में से एक बताया है।[12] पंत ने भी उन्हें 'टोपे था

1 से 9 'झाँसी की रानी', पृ० 25, 25, 40, 40, 74, 113, 117, 119, 4

10 "मौत भी तब तिलमिलाई, किन्तु रानी मुस्कराई/नींव का पत्थर बनूंगी, यही मन में बात आयी।' पथ के पुनीत पाँव, मुकुल पृ० 44

11 'रंग-जंग और व्यंग्य', गो० प्र० व्यास, पृ० 61

12 दे० 'द इंडियन वार आव इनडिपेंडेंस 1857', पृ० 384

वीरो की टोपी' के रूप म ऐसा ही गौरव प्रदान किया है जबकि एक अन्य कवि ने उनको यह कहकर श्रद्धांजलि अर्पित की है 'पदा हो तो फिर ऐसा हो जसा तांत्या बलवान हुआ।'[1] कहा जाता है कि दिल्ली के बादशाह जफर को इस विप्लव के दमन-काल मे, 'अय जफर ठडी हुई शमशेर हिन्दुस्तान की', का तक प्रस्तुत करते हुए अँग्रेजो से सन्धि कर लेने का परामश दिया गया था। इस परामश का मुँहतोड उत्तर देते हुए शाह जफर ने कहा था, 'गाजियो म बू रहेगी जब तलक ईमान की/ तब तो लदन तक चलेगी तेग हिन्दुस्तान की।'[2] श्रीकृष्ण सरल ने शाह जफर के इन गौरवमय उद्गारो को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए[3] दिखाया है कि उन्होंने अपने पुत्रो के प्राणो के मूल्य पर भी सन्धि करना स्वीकार नही किया था।

(च) स्वतत्रता-सग्राम मे क्रातिकारी देशभक्तो का योगदान

आग्ल शासन-काल मे किसी क्रातिकारी देशभक्त की प्रशसा तथा देश प्रेम और स्वातन्त्र्य भाव को उद्बुद्ध करने से सम्बन्धित रचनाओ को तुरत जब्त कर लिया जाता था और उनके रचयिता भी सरकार के कोप भाजन हो जाते थे। वी० डी० सावरकर-कृत द इडियन वार आव इनडिपेंडेंस 1857', प्रेमचन्द-कृत सोजे वतन सुभद्राकुमारी चौहान-कृत झाँसी की रानी' इन्ही कारणो से जब्त कर ली गयी थी और गुप्तजी कृत भारत भारती' भी जब्त होने से मात्र इसलिए बच गयी थी कि सरकारी जासूस-तत्र न उसका अभिप्राय 'जनाना हिन्दुस्तान समझा था।[4] ऐसी विषम परिस्थितियो म भी क्रातिकारियो के गुप्त सगठनो ने उत्तजक या विद्रोही कृतियो के प्रकाशन और वितरण की गतिविधियाँ जारी रखी थी जिनम स बहुत-सी रचनाएँ कदाचित् काल-कवलित हो चुकी हैं। यही कारण है कि मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए प्राण न्योछावर करने वाले क्रातिकारी वीरो के सम्बन्ध मे आग्ल शासन-काल मे रचित कृतियो मे से पुस्तकालयो मे मात्र रघुवीर शरण मित्र, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर और नवीन जसे कुछ गिने चुने ही कवियो की कृतियाँ उपलब्ध हैं।

अग्रेजो के अतमन मे आतक उत्पन्न करते हुए उन्ह सशस्त्र सघप द्वारा शीघ्रातिशीघ्र भारत छोडने को विवश करने के उद्देश्य स भिन्न भिन्न नामो से

---

1 रग जग और व्यग्य', गो० प्र० व्यास, पृ० 61

2 दे द इडियन वार आव इनडिपेंडेंस 1857', पृ० 545

3 "ललकार उठा था वृद्ध सिंह तब शाह जफर/तलवार हिन्द की अब लदन तक जायेगी/जम कर रहता है खून हिन्दियो का न कभी/तलवार हमारी इसकी याद दिलायगी।' सर० भगतसिंह', पृ 545

4 'सृजन की मनोभूमि', डा० रणवीर राग्रा, पृ० 3

गठित क्रांतिकारी दलो की स्थापना का श्रीगणेश सन 1876-77 मे बम्बई प्रात के वासुदेव बलवन्त फडके द्वारा गठित क्रातिकारी दल से स्वीकार किया जा सकता है। फडके ने अग्रेजो से सशस्त्र सघर्ष करने के लिए रोमासी जाति और रुहेला का एक दल बनाया था, किन्तु इस दल को कोई उल्लेखनीय सफलता नही मिली और सन् 1879 मे फडके को गिरफ्तार करके अदन भेज दिया गया था।[1] तदनन्तर पन्द्रह-बीस वर्षों के पश्चात महाराष्ट्र के चापेकर बधुओ (बालकृष्ण और दामोदर) द्वारा जनवरी 1897 म प्लेग-कमिश्नर रेंड और उसके साथ बग्घी म सवार लेफ्टिनेंट एयहर्स्ट की गोली मारकर हत्या कर देने की जो आतकवादी गतिविधि आरम्भ हुई थी, उसकी परम्परा बीसवी शती के चतुर्थ दशक के आरम्भिक वर्षों तक अबाध रूप म चलती मिलती है। इस सदर्भ म यह तथ्य उल्लेखनीय है कि जनता मे राष्ट्रीय भावो के जागरण हेतु ही लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र मे गणेश उत्सव और 'शिवाजी उत्सव मनाने की परम्परा का सूत्रपात करते हुए इन उत्सवो के अवसर पर राष्ट्रीय जागरण से सम्बन्धित कविताओ और भाषणो के आयोजन की भी परम्परा प्रारम्भ की थी। उन्होंने युवको के शारीरिक बल विक्रम के प्रदर्शनार्थ 'लाठी क्लब' की भी स्थापना कराई थी। इसके साथ ही उनके द्वारा सम्पादित 'मरहठा' और केसरी नामक साप्ताहिको म आग्ल-शासन विरोधी भावनाओ को उभारते हुए, जिस स्वदेश प्रेम की रागिनी की झकार सुनाई पडती थी, उसके परिप्रेक्ष्य म हम इस तथ्य म रचमात्र भी सन्देह नही है, कि यद्यपि तिलक स्वय आतकवादी नहा थे, किन्तु सन 1890 स 1910 की मध्यवर्ती कालावधि के तो प्राय सभी प्रातो के क्रातिकारी एक प्रकार से उन्ही के मानस-पुत्र थे। प्लेग-कमिश्नर रेंड की हत्या करने वाले चापेकर बधु, तिलक द्वारा प्रवर्तित शिवाजी उत्सव के अवसर पर देशभक्तिपूर्ण श्लोक सुनाया करते थे, जबकि तिलक ने रेंड और उसके सहकर्मी अंग्रेज डाक्टरो के सम्बन्ध म मरहठा मे यह टिप्पणी लिखकर कि 'हमारे लिए प्लेग भी अपने उन मानवीय प्रतिरूपो की अपेक्षा अधिक मेहरबान है, जो इस समय हम पर शासन कर रहे है'[2]—उसकी हत्या की पृष्ठभूमि निर्मित कर दी थी। डा० एम० एम० अहलूवालिया के अनुसार 'तिलक' ने महाराज शिवाजी द्वारा अफजल खाँ की हत्या के प्रसग के माध्यम से इस नवीन नैतिकता का बीज वपन किया था कि अपनी तथा देश की स्वाधीनता-रक्षा के लिए भारतीयो द्वारा छल-बल का आश्रय लिया जाना भी पूर्णत नैतिक

1 'आधुनिक भारत', डॉ० वी० पी० सिंह, पृ० 437

2 Plague is more merciful to us than its, prototypes now reigning the city'
उद्० वही, पृ० 432

है।[1] तिलक जसे उग्रवादी विचारो को देश क अन्य भागो मे वकिम, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द विपिनचन्द्र पाल, लाला लाजपतराय प्रभृति महानुभाव भी प्रसारित प्रचारित कर रहे थे। विवेकानन्द ने तो अपने एक भाषण म आरामकुर्सियो पर पडे रहने वाले निष्क्रिय युवको की अपेक्षा क्रियाशील डाकुओ को उत्तम बताते हुए यह भाव भी व्यक्त किया था कि मैं एस युवक चाहता हूँ जिनकी मासपेशियाँ लोहे जसी, नाडियाँ इस्पात-सदृश तथा मस्तिष्क वज्र-तुल्य सुदृढ हो, जो क्षत्रियो जसी विजय शक्ति ब्राह्मणो जसे तेज तथा मानवता की भावनाओ स ओतप्रोत हो।[2] कहना न होगा कि उन्नीसवी शती के अतिम दशक म देश के नवयुवको को कुछ कर गुजरने के लिए अनेक ओर से प्रेरित किया जा रहा था जबकि इस दिशा मे सर्वाधिक उग्र एव सक्रिय विचार तिलक के ही थे। चापेकर बधुओ को फाँसी दिये जाने के साथ ही जब सन 1897 म तिलक को भी आग्ल शासन ने राजद्रोह भडकाने के अभियोग म अठारह महीने के कठोर कारावास का दण्ड दिया, तो सम्पूर्ण भारत विक्षुब्ध हो उठा था। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कॉंग्रेस अधिवेशन म भाषण देते हुए इस घटना के सम्बन्ध म कहा था 'मेरा हृदय तिलक के लिए सहानुभूति स भरा हुआ है राष्ट्र की आँखो म आँसू भर आये हैं। इस घटना की प्रतिक्रिया-स्वरूप युवको के आतकवादी सगठनो की गतिविधियाँ तेज होती गयी और पूना की चापेकर-समिति क अनुरूप ही (रैंड की हत्या इसी समिति क सदस्यो ने की थी) सन् 1904 मे नासिक म सावरकर-बधुओ द्वारा अभिनव भारत-दल या अभिनव भारत-समिति की स्थापना की गयी। बगाल म 'अनुशीलन', युगान्तर, 'जनमगल' या स्वदेश बाधव' नामक समितियाँ सन 1901 के लगभग से ही स्थापित की जाने लगी थी, जबकि मध्य प्रदेश के ग्वालियर नगर म नवभारत समिति', सयुक्त प्रात मे 'मात-दल' तथा पजाब म 'भारत

---

1 तिलक ने शिवाजी द्वारा अफजल खाँ की धोखे स हत्या करने के सन्दभ म कहा था कि यदि चोर हमारे घर म घुस आएँ और हमारे अन्दर उन्ह बाहर निकालने की सामर्थ्य न हो तो क्या यह उचित नही है कि हम उन्हे घर मे बन्द करके जीवित जला दें। ईश्वर ने म्लेच्छो या विदेशियो को भारत पर शासन करने का स्थायी पटटा नही द दिया है।
दे० 'फ्रीडम स्ट्रगल इन इडिया, डा० एम० एम० अहलूवालिया, पृ० 326

2 I Would prefer an active dacoit to a lazy lollipop wasting his time in easy chairs And 'My child what I want is muscles of the iron and nerves of steel inside which dwells a mind of the same material as that of which the thunderbolt is made ' Quoted, Ibid, p 225

माता और 'नौजवान भारत आदि क्रातिकारी सस्थाओ का गठन किया गया था। यही नही विदेशो मे भी क्रातिकारी सगठन स्थापित किये गये जस लदन म श्यामजी कृष्ण वर्मा द्वारा स्थापित फ्री इडिया या 'होमरूल सोसायटी' तथा अमेरिका म लाला हरदयाल द्वारा स्थापित गदर पार्टी।' अतत उत्तरी भारत क प्राय सभी प्राता के क्रातिकारी युवको के समन्वय म बने 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातात्रिक सघ का नाम उल्लेखनीय है जिसके भगतसिंह' और आजाद' आदि क्रातिकारी सदस्यों की गतिविधियो स ततीय दशक के उत्तरार्द्ध मे आग्ल शासन थर्रा उठा था। विभिन्न प्रातो की क्रातिकारी सस्थाओ के सदस्यो क मध्य प्राय सम्पक सूत्र भी बना रहता था। श्यामजी कृष्ण वर्मा के सम्बन्ध मे अनुमान है कि आरम्भ मे वे पूना की चापेकर समिति से सम्बन्धित थे और गिरफ्तारी के भय से ही पहले इगलण्ड और तदनन्तर जमनी चले गये थे। नासिक के 'अभिनव भारत' दल के सक्रिय सदस्य वी० डी० सावरकर न श्यामजी कृष्ण वर्मा के जमनी चले जाने की दशा मे लदन की 'फ्री इडिया' या 'होमरूल सोसायटी' का काय भार सम्हाला था और उनकी गिरफ्तारी भी, 'अभिनव भारत दल' के लिए इगलण्ड से भारत को गुप्त रीति से पिस्तौलें भेजने का भडाफोड हो जाने के कारण हुई थी। इसी प्रकार लाला हरदयाल भी उक्त दोनो ही दलो के सक्रिय सदस्य थ और उन्होंने लदन स्थित फ्री इडिया सोसायटी की गतिविधियो का रहस्योदघाटन हो जाने पर ही अमेरिका मे शरण लेकर वहाँ पर गदर-पार्टी की स्थापना की थी। प्रथम महायुद्ध के दौरान अनेक क्रातिकारी जमनी आ गये थे और जमन-सरकार की सहायता स भारत को आग्ल शासन के शिकजे से छुडान की योजनाएँ बनान लगे थे। यही नही गदर-पार्टी की हागकाग मनीला, वैकाक सघाई और पनामा म स्थापित शाखाओ के बहुत स सदस्य भारत आ गये थे और भारतीय सनिको म आग्ल शासन विरोधी प्रचार करने लगे थे। उन्ह ग्रामीणो और विद्यार्थियो क सहयोग स कुछ शस्त्रागारो को लूटन म भी सफलता मिल गयी थी किन्तु अतत उनके षडयन्त्र का रहस्योद्घाटन हो जान के कारण, उनम से 145 क्रातिकारियो को या तो फाँसी दे दी गयी थी, या वे पुलिस से हुए सघष म मारे गये थे, 306 को आजीवन देश निष्कासन का दण्ड दिया गया था, जबकि 77 अन्य व्यक्ति भी दण्डित किये गये थे।[1] आधुनिक काव्य प्रणताओ मे स श्रीकृष्ण सरल ने दिखाया है कि प्रथम विश्व-युद्ध के दिनो म अमेरिका कनाडा, चीन, जापान और मलाया से भारत आने वाले देशभक्त भारतीय 'बीज क्राति के नये-नये वे साथ ला रहे (थ) सत्यानाशी।[2] ये लोग पजाब आदि प्रातो के गाँवो म घर घर जाकर लोगो को

1 द० एनसाइक्लोपीडिया ऑव इडियाज स्ट्रगल फार फ्रीडम, जे० पी० शर्मा पृ० 76

2 सरदार भगतसिंह', पृ० 85

समझ रहे थे कि हमे महासमर की चपेट म फँसे फिरंगियो मे स्वय भी धक्का लगाकर, उनके चगुल से मुक्त हो जाना चाहिए। उनक प्रचार का साराश था कि यदि हम सन 1857 के सग्राम मे की गयी भूला से बचे रहे तो 'आजादी की मजिल हमसे समझो फिर कुछ दूर नही है' तथा खून देकर हम अपना पायेंगे अपनी आजादी।[1]

आधुनिक काव्य मे क्रातिकारियो की कतिपय गतिविधियो की यद्यपि निन्दा भी की गयी है, किन्तु अधिकाशत देश की स्वाधीनता की प्राप्ति की दिशा मे उनके योगदान की सराहना करते हुए इस तथ्य क प्रति खेद व्यक्त किया गया है कि देश के स्वतन्त्र हो जाने की दशा म उन्हें उनका वाछित महत्व नही प्रदान किया गया है।[2] मातृभूमि की बलि-वेदी पर शहीद हो जाने वाले न जाने कितने क्रातिकारी वन पुष्पो की तरह अनदेखे-अनजाने झड गये है और 'आजादी की मजिल के नीचे दबे पडे हैं।[3] रघुवीरशरण मित्र के उद्गार हैं कि सिर से कफन बाँधकर मात भूमि की स्वाधीनता क लिए प्राण न्योछावर कर देने वाले इन वीरो को अमर समझना चाहिए।[4] उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि ऐसे शहीदो का इतिहास ही 'फाँसी के तख्तो पर चित्रित हैं जिनके चित्र/हमारा काबा है काशी है/मंदिर है मस्जिद है/धम है रोजा है' और उनकी जवानी ही देश की जवानी है।[5] दिनकर ने आग्ल शासन को क्रातिकारियो को फाँसी देने के लिए धिक्कारते हुए कहा था 'ओ मदहोश! बुरा फल है शूरा का शोणित पीने का/देना होगा तुम्हे एक दिन गिन गिन मोल पसीने का।'[6] उन्होने क्रातिकारी युवको की गतिविधियो की प्रशसा करते हुए यह भाव भी व्यक्त किया था अभी नीद से जाग रहा युग यह पहली अँगडाई है।'[7] ज० प्र० मिलिन्द ने दिखाया है कि क्रातिकारी दल मे सम्मिलित किये जाने से पूव युवको क धय, शौय साहस और बल की कठिन परीक्षा ली जाती थी।[8] क्रातिकारियो को अक्सर ही वस्त्र और भोजन का

---

1 'सरदार भगतसिंह', पृ० 86

2 जिन लोगो की लाशो पर चलकर आजादी आयी।
उनकी याद बहुत ही गहरी, हमने दफनायी।'
—'सरदारभगत सिंह' 'श्रीकृष्ण सरल', समपण

3 वही, पृ० 539

4 "शीश हथेली पर धर अपना, सर मे कसकर चले कफन।
वीर सदा मरकर जीते हैं मत्यु नही है यह जीवन।'
'शहीद, र० श० मित्र पृ० 8

5 'फासी', र० श० मित्र, पृ० 9 6 7 'हुकार, पृ० 28

8 'स्वतत्रता की बलिवेदी', पृ० 63

अभाव झेलना पड़ता था। भगतसिंह और उनके साथियों की सर्पीली रात मे अखबारों पर सोते चित्रित किया गया है।[1] कवि के यह उद्गार उचित ही हैं कि वे लोग जो देश भक्ति को अपना व्यापार बनाकर, अपने सुख-सुविधामय घरों मे बैठकर, देश भक्ति की लम्बी-चौड़ी बातें करते हैं वे उन क्रान्तिकारी-हीरों का उचित मूल्य आंक ही नहीं सकते, जिन्होंने स्वतन्त्रता रूपी महल के कंगूरे नहीं अपितु नींव के अनाम पत्थर बनने की अभिलाषा करते हुए अपने प्राण न्यौछावर किये थे।[2] उदयशंकर भट्ट ने क्रान्तिकारी युवकों के बलिदानों की सराहना करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि उनसे यह भूमि पवित्र हुई है जबकि उनकी जननियों का स्तन्य भी पवित्र-आनन्द सिद्ध हुआ है।[3] माखनलाल चतुर्वेदी ने उन्हें इस दृष्टि से धन्य बताया है कि उनके लिए फाँसी का दिन ही त्यौहार-तुल्य आनन्दप्रद होता था।[4] उन्होंने क्रान्तिकारियों की इस विचार-सरणि का भी उल्लेख किया है कि उन्हें गांधीजी की सुधार-समझौते वाली नीति पसन्द नहीं थी। वे राष्ट्र को उद्दण्ड और उन्मुक्त देखना चाहते थे अतः वे अपने सरों से कफन बाँधकर आंग्ल शासन का तख्ता पलटने के लिए घरों से निकल पड़े थे।[5] गोपालसिंह नेपाली ने क्रान्तिकारियों को 'चढ़ टिकटी पर चूम रस्सियाँ वे मतवाले उधर चले/× × × माँ की थाली भरने को वे बन रुधिरों की बूंद चले' के रूप में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा है कि वे 'दे अपना जीवन बदले में माँ का स्नेह बटोर चले'[6] हैं अर्थात भारतमाता के स्नेह-दुलार के वे ही सर्वाधिक अधिकारी पात्र हैं। जेलों में सुधार किये जाने के तथ्य को लेकर किये गये बासठ दिन के लम्बे अनशन के कारण शहीद हुए यतीन्द्रनाथ दास को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए दिनकर ने उचित ही 'उपल सरीखे पिघल पिघल तुम किधर चले मेरे बागी ?'—जैसे भावभीने उद्गार व्यक्त किये हैं।[7] काकोरी काण्ड के अभियुक्त रामप्रसाद बिस्मिल की यह पंक्तियाँ

---

1 सर० भगतसिंह' पृ० 470

2 'क्या मूल्य आंक सकते वे इन हीरों का/घर-बार छोड़ जो बने वतन के दीवाने।
हैं स्वप्न जिनके बन कंगूरे महलों के/हैं स्वप्न नींव के पत्थर हों वे अनजाने।
'सर० भगतसिंह', पृ० 470

3 "यह भूमि पवित्र हुई तुमसे, आँचल का दूध पुनीत हुआ।'
'अमृत और विष' पृ० 12

4 'समर्पण' पृ० 42

5 अमर राष्ट्र उद्दण्ड राष्ट्र, उन्मुक्त राष्ट्र, यह मेरी बोली
यह सुधार समझौते वाली मुझको भाती नहीं ठिठोली।'
हिमकिरीट', पृ० 120

6 'उमंग', पृ० 115 7 'रेणुका', पृ० 36

समझा रहे थे कि हमें महासमर की चपेट में फँसे फिरंगियों में स्वयं भी धक्का लगाकर, उनके चंगुल से मुक्त हो जाना चाहिए। उनके प्रचार का सारांश था कि यदि हम सन् 1857 के संग्राम में की गयी भूलों से बचे रहे तो आजादी की मंजिल हमसे समझो फिर कुछ दूर नहीं है तथा 'खून देकर हम अपना पायेंगे अपनी आजादी।[1]

आधुनिक काव्य में क्रांतिकारियों की कतिपय गतिविधियों की यद्यपि निन्दा भी की गयी है किन्तु अधिकांशतः देश की स्वाधीनता की प्राप्ति की दिशा में उनके योगदान की सराहना करते हुए इस तथ्य के प्रति खेद व्यक्त किया गया है कि देश के स्वतंत्र हो जाने की दशा में उन्हें उनका वांछित महत्व नहीं प्रदान किया गया है।[2] मातृभूमि की बलि-वेदी पर शहीद हो जाने वाले न जाने कितने क्रांतिकारी वन पुष्पों की तरह अनदेखे-अनजाने झड़ गये हैं, और आजादी की मंजिल के नीचे दबे पड़े हैं।[3] रघुवीरशरण मित्र के उद्गार हैं कि सिर से कफन बाँधकर मातृभूमि की स्वाधीनता के लिए प्राण न्यौछावर कर देने वाले इन वीरों को अमर समझना चाहिए।[4] उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि ऐसे शहीदों का इतिहास ही फाँसी के तख्तों पर चित्रित हैं जिनके चित्र/हमारा काबा है काशी है/मन्दिर है मस्जिद है/धर्म है रोजा है और 'उनकी जवानी ही देश की जवानी है।[5] दिनकर ने आंग्ल शासन को क्रांतिकारियों को फाँसी देने के लिए धिक्कारते हुए कहा था 'ओ मदहोश! बुरा फल है शूरा का शोणित पीने का/देना होगा तुम्हें एक दिन गिन गिन मोल पसीने का।[6] उन्होंने क्रांतिकारी युवकों की गतिविधियों की *प्रशंसा करते हुए यह भाव भी व्यक्त किया था अभी नींद से जाग रहा युग यह* पहली अँगड़ाई है।[7] जo प्रo मिलिन्द ने दिखाया है कि क्रांतिकारी दल में सम्मिलित किये जाने से पूर्व युवकों के धैर्य शौर्य साहस और बल की कठिन परीक्षा ली जाती थी।[8] क्रांतिकारियों को अक्सर ही वस्त्रों और भोजन का

---

1 'सरदार भगतसिंह, पृ० 86

2 जिन लोगों की लाशों पर चलकर आजादी आयी।
उनकी याद बहुत ही गहरी, हमने दफनायी।
—'सरदारभगत सिंह, श्रीकृष्ण सरल', समर्पण

3 वही, पृ० 539

4 "शीश हथेली पर घर अपना, सर में बसकर चले कफन।
वीर सदा मरकर जीते हैं मृत्यु नहीं है यह जीवन।
शहीद, र० श० मित्र पृ० 8

5 'फांसी', र० श० मित्र, पृ० 9 6 7 'हुंकार' पृ० 28

8 स्वतन्त्रता की बलिवेदी', पृ० 63

करती ही थी, धनवानो के यहाँ पडी डकतियाो के कारण, सामान्य जन मानस में भी वे अपेक्षित श्रद्धा और सहानुभूति की भावना का उद्रेक नही कर सके थे। इस तथ्य को लेकर 'हिदुस्तान समाजवादी प्रजातात्रिक सघ' की केन्द्रीय समिति की बठक मे भगतसिंह और साथियो के मध्य तीखा विवाद भी होते दिखाया गया है। भगतसिंह ने यह प्रश्न उठाते हुए 'यदि जनता का सहयोग नही हम पायेंगे/तो कितने दिन आतकवाद चल पायेगा ? —इस तथ्य पर बल दिया था कि हमे जनता के हृदय म यह विश्वास उत्पन्न करना चाहिए कि 'हम उसके है, उसके ही सदा रहेगे हम।'[1] उनके इस प्रस्ताव का कुछ सदस्यो द्वारा यह तक देकर विरोध किया गया था, 'विप्लव क्या सभव है जनमत से ? उनका कहना था कि चूकि जनता तो भेड चाल चलती है अपनी आदत से' अत 'जनता को तो हम जैसे चाहगे, वस हाकेंगे।' एक सदस्य क यह उद्गार क्रातिकारियो सम्बन्धी जन धारणा का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं 'विश्वास दिला सकते कसे हम जनता को/हम लोगो से जनता खुद ही घबराती है/वह दूर भागती हमसे है हौआ समझ हम/हम लोगो से जनता बेहद घबराती है।'[3] बहुत-कुछ इसी प्रकार की धारणा व्यक्त कराते हुए श्रीकृष्ण सरल ने भगतसिंह के पिता के मुख से क्रातिकारियो का यह कहकर विरोध कराया है कि कुछ गुडे तुम जसे अबोध किशोरो को बहकाकर उनसे अपनी स्वाथ सिद्धि के लिए डाके डलवाते रहते हैं और अपना उल्लू सीधा करने को ही 'क्राति' की सज्ञा प्रदान कर देते हैं।[4] पत ने भी भारत के जन सामान्य को क्राति विमुख बतात हुए क्रातिकारियो के लूट-पाटादिक कृत्यो का यह तक देकर विरोध किया है कि महान लक्ष्य के अभाव म क्राति नही हो सकती।[5] क्रातिकारी भी अपनी बठक मे अतत यह निश्चय करते चित्रित किये गये हैं कि हम भविष्य मे मात्र उन्ही लोगो का वध करेंगे जो हमारे राष्ट्रीय सम्मान को ठुकरायेंगे, तथा हम जनता मे आतक फलाने से बचेंगे,[6] क्योकि हमारा लक्ष्य तो ऐसे समाज की स्थापना करना है, 'जिसम

1 3 सरदार भगतसिंह श्रीकृष्ण सरल, पृ० 434

4 कुछ गुडे निज स्वाथ सिद्धि हित हैं डाके डलवाते
अपना उल्लू सीधा करने क्राति क्राति हैं चिल्लाते।
तुम जसे उल्लू उनके फदे मे फस जाते हैं
क्या होगा परिणाम इसे वे जान नही पाते हैं। वही, पृ० 419

5 लोक क्राति के लिए नही तयार धरा-जन,
लूट-पाट से, अग्निकाड से मारपीट से।
क्राति नही आ सकती—विना महान लक्ष्य के,
रक्त विप्लवा से शिक्षित होते न कभी जन।' किरणवीणा', पृ० 219

6 'हम नही खून-खच्चर के हामी हो तथा हत्याएँ तभी की जायें, 'जब राष्ट्रीय सम्मान दाँव पर लग जाये।'' 'सर० भगतसिंह, पृ० 439

तो न जाने कितने देश प्रेमियों का प्रेरणा-स्रोत रही हैं 'सरफरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है/देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में है।' उनके अंतिम उद्‌गार थे 'दरो-दीवार पर हसरत से नजर करते हैं/खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।[1] देश को 'इन्कलाब जिन्दाबाद' का नारा देने वाले शहीद भगतसिंह के श्रीकृष्ण सरल ने अंतिम उद्‌गार यह लिखाये हैं 'इन्कलाब हो अमर हमारा इन्कलाब की जय हो/इस साम्राज्यवाद का भारत की धरती से क्षय हो[2] जबकि मन्मथनाथ गुप्त के अनुसार उनके अंतिम उद्‌गार यह थे दिल से निकलेगी मरकर भी वतन की उलफत/मेरी मिट्टी से भी खुशबू ए वतन आयेगी।[3] संयुक्त प्रांत में गेंदालाल दीक्षित द्वारा गठित 'मातृवेदी' नामक दल के सदस्यों के यह नारे भी देश प्रेम और देशोद्धार की भावनाओं से सराबोर थे— यदि देशहित मरना पड़े मुझको सहस्रों बार भी/तो भी न मैं इस कष्ट को ध्यान में लाऊँ कभी/भाइयो आगे बढ़ो फोट विलिमय छीन लो/जितने हैं अंग्रेज सारे एक एक कर बीन लो।[4] शि० म० सिंह सुमन ने भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव को फाँसी दिये जाने के संदर्भ में उचित ही यह भाव व्यक्त किया है कि उन्होंने अपनी शहादत की सुर्खी से जो हस्ताक्षर किये थे वे 'राष्ट्रीय जवानी की कहानी' बन गये हैं।[5] कवियों ने इस तथ्य के प्रति भी विषाद व्यक्त किया है कि विदेशी शासन-सत्ता के आधिपत्य को स्वीकार न करने वाले इन बागियों को, आंग्ल शासन द्वारा अपराधी या डाकू बताकर उन पर अपने दमन का दुधारा चलाया था।[6]

क्रांतिकारियों सम्बन्धी इन प्रशंसापरक उद्‌गारों के साथ ही यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि शस्त्रास्त्रों की खरीद तथा अपने जीवन-यापन का व्यय भार उठाने के लिए, उन्हें सरकारी कोषागारों की लूट के साथ ही राजभक्त धनाधीशों के यहाँ डाके डालने पड़े थे। सरकार तो क्रांतिकारियों को डाकू बताकर दण्डित

1 फाँसी, रघुवीर शरण मित्र पृ० 114
2 सर० भगतसिंह, पृ० 562
3 भगतसिंह और उनका युग, पृ० 222
4 उद्० हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय काव्य का विकास, डा० क० वे० शर्मा पृ० 167
5 'मिट्टी की बारात, पृ० 91
6 (क) शोषक सत्ता की नजरों में, बागी अपराधी कहलाये।'
'सिंहासन', बलवीर सिंह रंग पृ० 20
(ख) "रक्त से धोई हुई जो सौंप आजादी गये हैं
बागवाँ इस देश के बनकर बागी गये हैं।'
'सीमा संग्राम', जग० अवस्थी पृ० 3

करती ही थी, धनवानों के यहाँ पड़ी डकैतियों के कारण, सामान्य जन मानस में भी वे अपेक्षित श्रद्धा और सहानुभूति की भावना का उद्रेक नहीं कर सके थे। इस तथ्य को लेकर हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक संघ' की केन्द्रीय समिति की बैठक में भगतसिंह और साथियों के मध्य तीखा विवाद भी होते दिखाया गया है। भगतसिंह ने यह प्रश्न उठाते हुए 'यदि जनता का सहयोग नहीं हम पायेंगे/तो कितने दिन आतंकवाद चल पायेगा?—इस तथ्य पर बल दिया था कि हमें जनता के हृदय में यह विश्वास उत्पन्न करना चाहिए कि 'हम उसके हैं, उसके ही सदा रहेंगे हम।'[1] उनके इस प्रस्ताव का कुछ सदस्यों द्वारा यह तक देकर विरोध किया गया था, विप्लव क्या संभव है जनमत से? उनका कहना था कि चूंकि 'जनता तो भेड़ चाल चलती है अपनी आदत से' अत 'जनता को तो हम जैसे चाहेंगे, बस हाँकेंगे।'[2] एक सदस्य के यह उद्‌गार क्रांतिकारियों सम्बन्धी जन धारणा का अच्छा प्रतिनिधित्व करते हैं 'विश्वास दिला सकते कैसे हम जनता को/हम लोगों से जनता खुद ही घबराती है/वह दूर भागती हमसे है हौआ समझ हम/हम लोगों से जनता बेहद घबराती है।[3] बहुत-कुछ इसी प्रकार की धारणा व्यक्त कराते हुए श्रीकृष्ण सरल ने भगतसिंह के पिता के मुख से क्रांतिकारियों का यह कहकर विरोध कराया है कि कुछ गुंडे तुम जैसे अबोध किशोरों को बहकाकर उनसे अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए डाके डलवाते रहते हैं और अपना उल्लू सीधा करने को ही 'क्रांति' की संज्ञा प्रदान कर देते हैं।[4] पंत ने भी भारत के जन सामान्य को क्रांति विमुख बताते हुए क्रांतिकारियों के लूट-पाटादिक कृत्यों का यह तक देकर विरोध किया है कि महान लक्ष्य के अभाव में क्रांति नहीं हो सकती।[5] क्रांतिकारी भी अपनी बैठक में अंततः यह निश्चय करते चित्रित किये गये हैं कि हम भविष्य में मात्र उन्हीं लोगों का वध करेंगे, जो हमारे राष्ट्रीय सम्मान को ठुकरायेंगे, तथा हम जनता में आतंक फैलाने से बचेंगे[6] क्योंकि हमारा लक्ष्य तो ऐसे समाज की स्थापना करना है, 'जिसमें

1 3 सरदार भगतसिंह, श्रीकृष्ण सरल, पृ० 434

4 'कुछ गुंडे निज स्वार्थ सिद्धि हित हैं डाके डलवाते
अपना उल्लू सीधा करने, क्रांति क्रांति है चिल्लाते।
तुम जैसे उल्लू उनके फंदे में फंस जाते हैं
क्या होगा परिणाम इसे वे जान नहीं पाते हैं। वही पृ० 419

5 लोक क्रांति के लिए नहीं तैयार धरा-जन,
लूट-पाट से, अग्निकांड से मारपीट से।
क्रांति नहीं आ सकती—बिना महान लक्ष्य के,
रक्त विप्लवों से शिक्षित होते न कभी जन।' किरणवीणा', पृ० 219

6 हम नहीं खून-खच्चर के हामी हों', तथा हत्याएं तभी की जायें "जब राष्ट्रीय सम्मान दाँव पर लग जाये। 'सर० भगतसिंह', पृ० 439

शोषित शोषक वग न हो जिसमे कोई भूखा सो न सके' तथा 'श्रम की साँसा पर पूजी हावी हो न सके ।'[1] क्रातिकारियों का समाजवाद की ओर पर्याप्त झुकाव था । भगतसिंह ने 'यह शब्द जुडे इसम समाजवादी पहले/यह करे हमारी रीति नीति का निर्धारण'[2] का तक देकर क्रातिकारी दल के नाम मे समाजवादी शब्द जुडवा दिया था तथा वे और बटुकेश्वर दत्त मजदूरो के हितो के विरोधी 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' का विरोध करते हुए ही असम्बली म बम विस्फोट करके गिरफ्तार हुए थे ।[3] भगतसिंह के सम्बन्ध म कहा गया है कि उन्होने अपने अतिम क्षणो मे भी वाहे गुरु' का स्मरण तथा गुरुवाणी का पाठ करने से इन्कार करते हुए कहा था मुझ पर यह इल्जाम तो कई लगायेंगे कि मैं नास्तिक था और मैंने परमात्मा मे विश्वास नही किया, लेकिन यह तो कोई नही कहेगा कि भगतसिंह बुजदिल और बेईमान था और आखिरी वक्त मौत को सामने देखकर उसके पाँव लडखडाने लगे थे ।[4] सभवत भगतसिंह के इस आचरण के मूल म उनके पक्के समाजवादी होने का तथ्य भी क्रियाशील था । ऐसी दशा मे श्रीकृष्ण सरल के इस उल्लेख मे भी सत्याश स्वीकार करना चाहिए कि भगतसिंह न अपनी दाढी गिरफ्तारी क भय से नही मुडवाई थी अपितु उसके मूल म क्रातिकारी दल का यह निणय क्रियाशील था कि दल के सदस्यो को जाति और धमगत प्रतीक चिह्नो का व्यवहार नहीं करना चाहिए ।[5] भगतसिंह ने यह भाव व्यक्त करते हुए अपनी दाढी मुडवा दी थी कि 'दाढी क्या अपनी सब इच्छाएँ मुडवा दू/यदि मातृभूमि के हित हो यह आवश्यक ।[6] आजाद हिन्द सना के सनिक भी धम और जातिगत भद भावो से शून्य बताये जाते है जबकि सक्रिय क्रातिकारी रहे मन्मथनाथ गुप्त न गदर पार्टी के सदस्यो के मध्य खान-पान का ऐसी खुली छूट होने का उल्लेख किया है कि वे 'मांस या सब्जी, गाय या सुअर हलाल या झटका कुछ भी खा सकत थे ।'[7]

1-2 सर० भगतसिंह पृ० 435 433

3 "इसलिए हमारा निणय है हम जूझेंगे,
यह श्रम विवाद कानून न बनने पायेगा ।
अध्यक्ष घोषणा करे, पूव ही सभा भवन
बम गोलो के विस्फोटा से थर्रायेगा ।" वही, पृ० 483

4 'भगतसिंह और उनका युग', मन्मथनाथ गुप्त, पृ० 221 22

5 'हम धम चिह्न धारण न करें कोई तन पर/ धम न कोई अन्य
हमारे दल का है/है मातृभूमि की मुक्ति धम केवल अपना ।
सर० भगतसिंह पृ० 438

6 वही, पृ० 438

7 'भगतसिंह और उनका युग' पृ० 24

(छ) स्वाधीनता की प्राप्ति में गांधीवादी सत्याग्रह आन्दोलनों का योगदान

सन 1885 में कांग्रेस-पार्टी की स्थापना यद्यपि मिस्टर ह्यूम द्वारा आंग्ल-सरकार की सुरक्षा के लिए सेफ्टी-वाल्व के रूप में की गयी थी, किन्तु शीघ्र ही उसके नेताओं ने सरकार से भारत के लिए हितकर नीतियों के निर्धारण तथा औपनिवेशिक स्वराज्य आदि माँगों को लेकर टकराना आरम्भ कर दिया था। कांग्रेसियों में से भी 'लिबरल' या 'माडरेट' कहे जाने वाले नेता आंग्ल-सरकार को ऐसी नीतियों के निर्धारण में सहयोग देते रहे थे, जो उनके ही दूसरे कांग्रेसी भाइयों के दमन में सहायक बनती थीं। पंडित नेहरू ने अपनी आत्मकथा में लिबरल अर्थात उदारवादी कांग्रेसियों के प्रति तीव्र घृणा व्यक्त की है।[1] इन लिबरलों के सर्वथा विपरीत आरम्भ में बाल, पाल और लाल की तिकड़ी और बाद में देशबन्धु चित्तरंजनदास और सुभाषचन्द्र बोस आदि कांग्रेसी नेता औसत कांग्रेसियों की अपेक्षा अधिक उग्रवादी थे। इस वैचारिक अंतर के कारण ही कांग्रेस पहले गरम और नरम दलों में विभक्त हो गयी थी, चतुर्थ दशक में सुभाष को फॉरवर्ड-ब्लाक की स्थापना करनी पड़ी थी, जबकि स्वातंत्र्योत्तरकाल में भी उसका दो-तीन बार विघटन हो चुका है। दासता काल में आंग्ल शासन ने यद्यपि कांग्रेस को भी कई बार अवैध संस्था घोषित कर दिया था,[2] तो भी पिछली लगभग एक शताब्दी से कांग्रेस देश की स्वाधीनता की प्राप्ति, और कांग्रेसी सरकार के रूप में देश के उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण योगदान करती रही है। यही कारण है कि कांग्रेस दल द्वारा संचालित स्वाधीनता आंदोलनों का अनेक कवियों द्वारा विशद वर्णन चित्रण किया गया है। सन 1920 से कांग्रेसी आंदोलन, भारतीय राजनीति में गांधीजी के वर्चस्व के कारण एक प्रकार से अहिंसावादी सत्याग्रह आंदोलनों का ही रूप धारण कर लेते हैं, हालाँकि इन आंदोलनों ने कुछ स्थानों पर यदा-कदा हिंसक रूप भी धारण कर लिया था। आंग्ल शासन द्वारा इन आंदोलनों का जिस बर्बरतापूर्ण ढंग से दमन किया गया था उसके विरुद्ध कवियों ने तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की है। आधुनिक काव्य से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के सत्याग्रह आंदोलन को व्यापक जन-समर्थन प्राप्त था और सत्याग्रही स्वयंसेवक अहिंसा का आश्रय लेते हुए भी अपने प्राणों को क्रांतिकारियों की तरह ही मातृभूमि की बलिवेदी पर न्यौछावर करने को तत्पर रहते थे। कांग्रेसी आंदोलन को व्यापक जनसमर्थन मिलने से सत्याग्रहियों द्वारा स्वयं को स्वाधीनता-सेनानी और अहिंसक वीर समझने

1 द० 'मेरी कहानी', पृ० 195

2 हुईं अवध शीघ्र ही घोषित सभी राष्ट्र संस्थाएँ/आन लगीं देशभक्तों पर विविध घोर विपदाएँ, 'जगदालोक', श्री० श० सिंह, पृ० 206

कांग्रेस के ध्वज और अभियान गीत तथा सत्याग्रह आदोलन से जुडे कतिपय महत्वपूर्ण प्रसगो सम्बन्धी चेतना पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

(अ) व्यापक जन समथन—स्वाधीनता की प्राप्ति-हेतु सत्याग्रह आदोलनो के सम्बन्ध मे प्रथम उल्लेखनीय तथ्य यह है कि आधुनिक कालीन जन मानस उस मध्ययुगीन राजनीतिक उदासीनता से मुक्ति प्राप्त करत चित्रित किया गया है जो मथरा की भाँति कोउ नप होउ हमहि का हानी के तथ्य म आस्था रखता था।[1] हमारी भी धारणा है कि चाहे व्यापक स्तर पर नही किन्तु बीसवी शताब्दी के आरम्भ से ही यह चेतना उत्तरोत्तर विकसित होती गयी थी और उसका स्पष्ट प्रमाण सन् 1920 1930 31 तथा 1942 मे भारत-व्यापी आदोलनो का छिडना स्वीकार किया जा सकता है। देशवासियो के हृदय मे जाग्रत हुई आजादी प्राप्ति की इस लालसा के सम्बन्ध म उदयशकर भटट के उदगार है अरे दानी भर दो आग अमर, मरे मन म आजादी की/वह मुक्त बने अति मुक्त अवनि, सब ओर गूज आजादी की/ × × × कण कण से देश पुकार उठे स्वर-सार उठे आजादी का।'[2]

इस स्वाधीनता प्रेम की भावना के प्रबल होते जाने के कारण ही चदनसिंह गढवाली ने जिन्हे कवि ललाम ने उचित ही सनिक शादूल कहकर सम्बोधित किया गया है अपनी सनिक टकडी को सत्याग्रहियो पर गोली चलाने का आदेश देने से इकार करन के दण्ड-स्वरूप काले पानी की सजा प्राप्त की थी।[3] पडित नेहरू ने इस घटना के स्मरण स्वरूप गढवाली सनिक टुकडी म पेशावर दिवस या गढवाली दिवस मनान की परम्परा चल पडन का उल्लेख करते हुए कहा है कि दूसरी रेजीमेटो मे भी हुकुम-उदूली की घटनाएँ हुई थी, किन्तु उनकी खबर नही फलने पायी।[4] स्वराज्य फड मे पसा-पसा धेला धेला से ही करोडो रुपयो के एकत्र होने का तथ्य भी स्वाधीनता-सम्बन्धी व्यापक जन-जागति का परिचायक है। इस स्वराज्य-फड मे जिसे राष्ट्रीय यन कहा गया है, गाधीजी और वा के आग्रह पर एक ओर तो स्त्रियाँ अपने आभूषण दते चित्रित की गयी हैं, जबकि श्रमिको द्वारा लकडी आदि बेचकर तथा कृषको द्वारा अपने बतन तक गिरवी रखकर, कांग्रस का चन्दा देने और एक करोड लोगो के सदस्य बन जाने का उल्लेख किया गया है।[5]

---

1 "कोउ नप हो हमे हानि क्या, अब न सोचता कुठित जन मन।
राम राज्य स्वप्नो मे डूबे, ये यथाथ-दर्शी जग लोचन। लोकायतन', पृ० 98
2 'अमत और विष उदयशकर भटट पृ० 13
3 'जयमानव', ब्रह्म० दी० ललाम, पृ० 70 4 मरी कहानी पृ० 342
5 "राष्ट्रीय सभा क सदस्य भारती वीरवर एक कोटि/राष्ट्रीय सभा मे पहुचा था धान धीरे धीरे एक कोटि।' 'जयमानव' ब्रह्म० दी० ललाम, पृ० 17 21

गाधीजी द्वारा सचालित स्वाधीनता आन्दोलन की तीनो ही प्रमुख घटनाओ, अर्थात् सन 1920 तथा 1931 के सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा सन् बयालीस के भारत छोडो आन्दोलन के अवसर पर, देश की जनता इतनी अधिक सक्रिय एव उत्तेजित हो उठी थी कि गाधीजी को या तो अपना सत्याग्रह आन्दोलन ही स्थगित करना पडा था अथवा जनता की हिंसक कार्यवाहियो के लिए प्रायश्चित करना पडा था। कुछ कवियो की इस धारणा को सवथा निराधार नही कहा जा सकता कि यदि गाधीजी ने अपने सत्याग्रह आन्दोलनो को हिंसक कार्यवाहियाँ भडक उठने के कारण स्थगित न किया होता, तो बहुत सभव है कि देश 1920-21 म ही स्वाधीन हो गया होता। प्रस्तुत सन्दभ मे पत की यह धारणा भी उल्लेखनीय है कि उन्होने भारत को स्वतत्र कराने का सम्पूण श्रेय गाधीजी के सत्याग्रह आन्दोलनो को न देकर, यह विचार व्यक्त किया है कि उसके मूल मे विश्व-युद्ध के कारण विश्व स्तर पर घटित हुए राजनीतिक उलट फेर तथा महाशक्तियो के शक्ति-सतुलन के तथ्य का भी पर्याप्त हाथ था।[1] अभिप्राय यह कि विश्व की अमरिका और रूस जसी महाशक्तियाँ भी यह चाहती थी कि ब्रिटन की आर्थिक समद्धि का मूल-स्रोत भारत उसके पजे स निकल जाये जिसम उसके साथ अपने व्यापारिक-सास्कृतिक सम्बन्ध बढाकर हम भी निजी हितो की पूर्ति कर सकें।

(आ) अहिंसक सेनानी तथा अहिंसक युद्ध—आधुनिक काव्य म सत्याग्रह-आन्दोलन तथा सत्याग्रहियो के सम्बन्ध मे अहिंसक युद्ध' और अहिंसक वीरो' की धारणा व्यक्त हुई है[2] जो मध्ययुगीन मानदण्डो के परिप्रेक्ष्य म अनुपयुक्त प्रतीत होने पर भी, इस दृष्टि से उचित ही है कि सत्याग्रहियो को अनेक प्रकार की क्रूरताओ को सहन करत हुए भी अनुपम धैय का परिचय देना पडता था। इसके साथ ही दढता, शूरता, लक्ष्य सिद्धि के प्रति आस्था, नायक की

---

1 'सफल हुआ युग-स्वप्न पुरुष का, भारत न पाया स्वराज धन।
विजय अहिंसा की कहिये या, विश्व युद्ध से घटित विपयय।
विदादश या जड यथाथ का, आग्रह कहिए, युग का निणय।'
'लोकायतन', पृ० 111

2 (क) "छिड गया युद्ध सत्याग्रह का था भारी/जन जागति अहरह लगा रही थी फेरी। 'सर० भगतसिंह', श्रीकृष्ण सरल, पृ० 165

(ख) 'छिडा है असहयोग सग्राम/शाति सहित शुद्धात्मा म ही होगे मार काम। 'राष्ट्रीय सिहनाद सब०, भ्रमर, पृ० 13

(ग) 'है अपूर्व यह युद्ध हमारा हिंसा की न लडाइ है,
नगी छाती की तोपो के ऊपर विकट चढाई है।"
'उमग', गो० सिंह नेपाली, पृ० 106

आज्ञा का पालन आदिक तथ्यो की दृष्टि से भी अहिंसावादी स्वयसेवको या सत्याग्रहियों का सेनानी कहा जाना उपयुक्त ही है। माखनलाल चतुर्वेदी ने 'सत्याग्रह के सनिक थे, सब सहकर रहकर उपवास' के तथ्य का उल्लेख करते हुए उनकी मुख्य चारित्रिक विशेषता यह निर्दिष्ट की है कि हाथ मे शस्त्र लेकर प्रतिकार न करते हुए भी, वे इस तथ्य के प्रति दृढ रहते थे कि 'अपनी मनुहारो द्वारा अत्याचार नही होने देंगे।[1] म० श० गुप्त ने स्वाधीनता सेनानियो से यह अपेक्षा की है कि वे 'सदैव अन्याय विरुद्ध, करें शूर सनिक-सम युद्ध।' किन्तु उनके लिए यह तथ्य आवश्यक है कि 'झेल सकें वे सारे कष्ट न हो अहिंसा-व्रत से भ्रष्ट।'[2] इन्हीं तथ्यो मे आस्था व्यक्त करते हुए माखनलाल चतुर्वेदी ने किसी कांग्रेसी स्वयसेवक से अपना परिचय दिलाते हुए कहलाया है 'हूँ राष्ट्रीय सभा का सनिक/छोटा-सा अनुगामी हूँ/उसकी ध्वनि पर मर मिटने मे/मैं खुद अपना स्वामी हूँ।' यह सनिक अपने जीवन का धर्म अहिंसक-असहकारिता' बताता है जबकि हिंसा और घृणा के सम्बन्ध मे उसने 'है मेरे मजहब मे पाप'[3] की धारणा व्यक्त की है। सोहनलाल द्विवेदी ने भी सत्याग्रहियो से कहलाया है, 'हम मातृभूमि के सैनिक हैं आजादी के मतवाले है/बलिवेदी पर हँस-हँस करके/निज शीश चढ़ाने वाले हैं।'[4] पत ने यह भाव व्यक्त किया है कि सत्याग्रही आग्ल शासन रूपी ऐसे शक्तिशाली साम्राज्यवाद पर सत्याग्रह रूपी तणास्त्रो का प्रयोग करते थे जिसने आसमुद्र पृथ्वी पर आधिपत्य स्थापित किया हुआ था। सत्याग्रहियो का यह दिव्यास्त्र स्वार्थी साम्राज्यवादियो के प्रस्तर-तुल्य हृदयो मे रक्त-हीन व्रण करके, उन्हे मनस्ताप के लिए विवश कर देता था।[5] सत्याग्रह आन्दोलन मे भाग लेने वालो से कहा जाता था कि वे पहले अपने तन-मन को शुद्ध कर लें और तब अहिंसक वीर बनकर अत्याचारी से युद्ध करें।[6] धार्मिक क्षेत्र से अपनायी गयी प्रभात फेरियो के द्वारा जन-मानस मे देशोत्थान तथा कांग्रेस दल के प्रति सहानुभूति अर्जित करने के प्रयास किये जाते थे।[7] हाँ सरकार ने कांग्रेस-दल का स्वयसेवक बनकर देश हित मे प्रचार करने के तथ्य को दण्डनीय अपराध घोषित करके तदर्थ दो वर्ष की सजा निर्धारित कर दी थी।[8] महिलाएँ भी 'तवसी का प्रिय प्रेमास्त्र लिए कानून भग' किया करती थी।[9] सत्याग्रहियो मे शुद्ध अहिंसा, आत्मिक बल,

---

1 नही लिया हथियार हाथ मे, नही किया कोई प्रतिकार,
अत्याचार न होने देंगे, बस इतनी ही थी मनुहार।" 'समर्पण', पृ० 89

2 'हिन्दू', पृ० 140 42

3 'माता', पृ० 70 71

4 'भैरवी', पृ० 121

5 'मुक्तियज्ञ', पत, पृ० 47

6 जयमानव', ब्रह्म० दी० ललाम, पृ० 8

7-9 वही, पृ० 21, 31, 67

प्रेम, क्षमा, अनशन, ब्रह्मचर्य-व्रत-पालन शांति तथा लोक-सेवा के गुणो का होना आवश्यक माना जाता था।[1] मैं० श० गुप्त ने सत्याग्रहियो की अस्थिर किया टोप वालो को गाधी टोपी वालो ने/शस्त्र बिना सग्राम किया है, इन माई के लालो ने'[2] जसे लोकगीत के माध्यम से प्रशसा की है। सत्याग्रहिया द्वारा निश्चित तिथि और स्थान पर प्रदशन करने पर प्रतिबध लगा होने की दशा म पुलिस और सत्याग्रहियों के मध्य आँख मिचौनी चलती रहती थी। दिल्ली म एक बार सत्याग्रहियो द्वारा रस्सी और घी बेचने वाले देहातियो के रूप मे आकर निश्चित समय पर तिरगा झडा फहराकर सभा की गयी थी।[3] सत्याग्रहिया को तितर बितर कर देने के लिए उन पर घोडे तो आम तौर पर ही दौडा दिये जाते थ पेशावर म उन्हे मोटर स कुचलन तथा बम्बई की महिला सत्याग्रहिया के केश उखाड लेन के अमानुषिक कृत्यो का भी चित्रण किया गया है।[4]

गाधीजी द्वारा सचालित सत्याग्रह आन्दोलनो के विरोधिया के मत को मुखरित करते हुए पन्त ने उनके इन विचारो का उल्लेख किया है कि सत्याग्रहिया रूपी गीदडो का रोना सुनकर अंग्रेज भारत छोडकर नहीं जा सकते। गाधीजी ने चरखा कातने का जो गोरख धन्धा चालू किया है उससे देश चाहे जुलाहा भले ही बन जाये किन्तु स्वतन्त्रता नही मिल सकती। जिस अंग्रेजी साम्राज्य म कभी सूर्यास्त तक नही होता, वह नमक की डली नही है कि सुगमता स गल जायेगी इसीलिए चाहे गाधीजी भारत म तन-मन धन को राख कर डालें, किन्तु उसके फलस्वरूप स्वराज्य रूपी पट नही बुना जा सकता।[5] नि सन्देह दासता-काल मे तो ऐसे बहुत-स लोग थे ही जो स्वराज्य की अपेक्षा आग्ल शासन के प्रशसक थे, स्वातन्त्र्योत्तर-काल मे भी ऐसे लोगा का अभाव नही रहा है जो स्वतन्त्र भारत की अनुपलब्धियो स खीझकर उससे पूववर्ती आग्ल शासन की प्रशसा करते रहते हैं। दासता काल म कुछ लोग इस प्रकार की बातें भी करते रहते थे कि यदि स्वराज्य मिल भी गया तो क्या अच्छा होगा, गोरो से काला का शोषण ?'—अर्थात्

1, 3 'जननायक', र० श० मिश्र, पृ० 235, 325
2 'स्वदेश सगीत', पृ० 128
4 'जगदालोक', गो० श० सिंह, पृ० 196
5 "स्यारों का वन रोदन सुनकर, सिंह छोड देंगे क्या जगल ?/अंग्रेजी साम्राज्य भला क्या, डला नमक का—जो जाये गल।/पहरा देता सूय जहाँ नित, वहाँ फटक सकता अधियाला/गाधी ने बाजीगर का-सा, गोरख धन्धा खूब निकाला/सिर धुन, चरखा सूत कातकर, देश भले बन जाय जुलाहा/बुन न सकेंगे जन स्वराज पट, तन, मन, धन सब होगा स्वाहा।"
'लोकायतन', पृ० 77

तब हमारा शोषण गोरे साहबों के स्थान पर काले साहबों शासकों द्वारा किया जाया करेगा। इन काले साहबों अर्थात् भारतीय नेताओं के प्रति बहुत से लोगों की यह धारणा थी कि वे 'स्वार्थरूप धन दारा, सुत रत' तो हैं ही, 'सामन्ती प्रभुओं से परिवृत्त' भी रहते हैं। ऐसी दशा में यह तथ्य संदेहास्पद ही है कि वे चीन्हेंगे क्या दीनों का मुख, रामराज्य सार्वेय जनहित ?[1] कॉंग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन और उसके नेताओं के आलोचकों का विचार था कि ये नेता जन-सामान्य के जीवन से अपरिचित तथा 'खादी मढ़े घड़े पापों के' हैं अतः सम्भावना यही है कि स्वराज्य मिल जाने पर, 'अट न सकेगा महलों में भी उनका पद मद।'[2] कहना न होगा कि पंत द्वारा माधो गुरु के मुख से व्यक्त कराये गये उद्‌गार अनेक नेताओं के सम्बन्ध में प्रायः शतशः सत्य सिद्ध हुए हैं जिनकी पुष्टि इसी अध्याय में आगे दिये उन कवि उद्‌गारों से हो जाती है जिनमें स्वातन्त्र्योत्तर काल के नेताओं-मन्त्रियों के दुराचरण और भ्रष्टाचार की तीव्र निन्दा भर्त्सना की गयी है। गांधीजी द्वारा सत्याग्रह आन्दोलन के अन्तर्गत चरखा चलाने और नमक बनाने जैसे कृत्यों पर बल देने[3] तथा पूंजीपतियों को ट्रस्टी बताने की निन्दा करते हुए[4] एक कवि ने तो उनसे यह प्रार्थना भी की थी कि तुम्हारे पढ़कर प्रयोग पचड़ों में, यह देश बड़ा दुख पाता/बख्शोगे अब न इसे क्या हे भारत भाग्य विधाता ?[5] स्पष्ट है कि क्रांतिकारियों की गतिविधियों के निन्दकों के समान ही कॉंग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलनों के निन्दकों का भी अभाव नहीं था।

(इ) राष्ट्रध्वज और प्रयाणगीत—मध्ययुगीन सेनाओं में शामिल विभिन्न टुकड़ियों की अपनी निजी पताकाएँ होती थीं, और युद्धस्थल में किसी नरेश के झंडे का (जिसे उन दिनों प्रायः निशान कहा जाता था) उत्थान-पतन ही उनकी जय-पराजय का प्रतीक होता था। आधुनिक काल के स्वाधीनता-आन्दोलन में, जिसे इतिहास-ग्रन्थों में भी बहुधा स्वाधीनता संग्राम की ही संज्ञा प्रदान की गयी है, कॉंग्रेस के तिरंगे झंडे का मध्ययुगीन राज-ध्वजों से कम महत्व नहीं रहा है। पन्त ने इस तथ्य का उल्लेख किया है कि देश का तरुण-वर्ग दासता-काल में तिरंगे-

1 2 'लोकायतन' पृ० 77 78

3 "धीमे सुधार की धारा कितने दिन और बहेगी ?/चरखे की चोखी चरचा कितने दिन और रहेगी ?/कच्चे कुसुत के धागे, क्या क्रांति करेंगे कोई ?/मुट्ठी भर नमक बनाकर जागेगी जनता सोई ?" 'करुण सतसई', रामेश्वर करुण, पृ० 25

4 'क्या दूर विषमता होगी यों सत्य अहिंसा द्वारा ?/× × ×मक्कार धनाधीशों को ट्रस्टी बतलाकर तुमने/जनता पर जादू डाला अध्यात्म सुधाकर तुमने।" वही, पृ० 25 5 वही, पृ० 25

झडे को इन्द्रधनुष के समान दिग दिगत तक फहराते हुए 'ध्वजा-वन्दना' एव 'मात अचना किया करता था और उनके इन प्रयासो को आग्ल शासन रूपी अन्धड द्वारा ज्यो-ज्यो कुचलने का प्रयास किया जाता था, वे गरजते हुए सागर की तरह और भी अधिक उद्दाम रूप धारण कर लेते थे।[1]

स्वतन्त्रता-सेनानियो की चाहे सभाएँ रही हो अथवा सरकार विरोधी प्रदशन, उन्होंने अपने जातीय प्रतीक तिरगे ध्वज को न झुकने देने के लिए अहिंसावादी होते हुए भी, मध्ययुगीन वीरो से कम शौर्य और साहस नही दिखाया था। इस राष्ट्रीय या कौमी ध्वज को लेकर निकाली जाने वाली प्रभात फेरियो और प्रदशनो के अवसर पर गाया जाने वाला सर्वाधिक लोकप्रिय एव प्रेरणास्पद गीत रामलाल पार्षद का 'विजयी विश्व तिरगा प्यारा/झडा ऊँचा रहे हमारा/आओ प्यारे बच्चे आओ/देश धर्म पर बलि-बलि जाओ' रहा था। भवानीप्रसाद मिश्र ने तिरगे झडे के तीनो रगो तथा मध्य मे बने चरखे के प्रतीकार्थों का स्पष्टीकरण करते हुए कहा है, 'चिह्न साहस-त्याग का रग केसरी/ताजगी की शक्ति की पट्टी हरी/श्वेत रग है शान्ति-सत्य प्रतीक/और चरखा चिह्न श्रम का ठीक।'[2] सियारामशरण गुप्त ने 'एक हमारा ऊँचा झडा, एक हमारा देश/इस झडे के नीचे निश्चित एक अमिट उद्देश्य' के रूप मे राष्ट्रीय एकता की भावना को उभारा है। उन्होंने इस तथ्य की ओर भी उचित ही इगित किया है कि न जाने कितने वीरो ने अपने प्राण न्योछावर करके भी इस झडे की मर्यादा रक्षा की है अत हम भी रस विष को समान समझते हुए, इसकी आन को अक्षुण्ण रखना चाहिए।[3] आजाद-हिन्द-सेना का देश प्रेम की प्रगाढ भावना से ओत प्रोत यह प्रयाण गीत स्वातन्त्र्योत्तर काल मे भी न जाने कितने हृदयो के रक्त-सचार को तीव्र कर देता है—

"कदम-कदम बढाये जा, खुशी के गीत गाये जा,
यह जिन्दगी है कौम की, तू कौम पे लुटाये जा।
तू शेरे हिन्द आगे बढ, तू मरने से कभी न डर।
चला दिल्ली पुकार के कौमी निशा सम्भाल के।
लाल किले मे गाड के फहराये जा फहराये जा।'[4]

राष्ट्रीय नवयुवक वर्ग की सुषुप्त धमनियो मे अपूर्व उत्साह-ओज की आग फूँक देने की दृष्टि से हम इस गीत की टक्कर का एक ही अन्य प्रयाण गीत जयशकर प्रसाद का 'हिमाद्रि तुग शृग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती/स्वय प्रभा समुज्ज्वला स्वतन्त्रता पुकारती' प्रतीत होता है जिसका कदाचित भाषागत क्लिष्टता के कारण व्यापक प्रचार-प्रसार नही हो सका होगा। सो० ला० द्विवेदी ने भी 'हम मातृभूमि के सैनिक हैं आजादी के मतवाले हैं/बलिवेदी पर हँस-हँस करके,

1 'लोकायतन' पृ० 54
2 गांधी पचशती, पृ० 12
3 नोआखाली में', पृ० 51
4 'प्रभातफेरी' नरेन्द्र शर्मा, पृ० 25

निज शीश चढ़ाने वाले हैं।[1] तथा 'न हाथ एक शस्त्र हो/न अन्न नीर वस्त्र हो/डरो नहीं/हटो नहीं/बढ़े चलो/बढ़े चलो × × × अमोघ रक्त तोल दो/स्वतन्त्रता का मोल दो/कड़ी युगों की खोल दो/डरो नहीं/मरो वहीं/बढ़े चलो/बढ़े चलो'[2] जैसे अत्यधिक प्रेरणास्पद अभियान-गीत लिखे थे। देश के स्वाधीन होने पर राष्ट्र-ध्वज में धर्म के प्रतीक चरखे का स्थान अशोक के धर्म चक्र ने ग्रहण कर लिया है, जिसको एकता, वीरता, विजय और शान्ति का प्रतीक बताया गया है।[3] स्वातन्त्र्योत्तर काल में राष्ट्र-गान के सन्दर्भ में रघुवीर सहाय ने उचित ही यह मार्मिक प्रश्न उठाया है कि 'राष्ट्रगीत में भला कौन वह/भारत भाग्य विधाता है/फटा सुथन्ना पहने जिसका/गुन हरचरना गाता है/ × × × कौन-कौन है वह जन-गण-मन/अधिनायक वह महाबली/डरा हुआ मन बेमन जिसका, बाजा रोज बजाता है ?'[4] स्पष्ट ही कवि का व्यंग्य इस तथ्य की ओर है कि राष्ट्रीय ध्वज की छत्रच्छाया में हमारे नेतागण देशवासियों के सर्वांगीण विकास की जो प्रतिज्ञाएँ करते हैं, वे दलित निर्धन वर्ग के सम्बन्ध में छलावा मात्र ही होता है।

(ङ) भारत विभाजन की विषादमयी घटना—भारत के विभाजन की घटना को लेकर आधुनिक कवियों ने विषादमयी तीखी प्रतिक्रियायें व्यक्त की हैं। पन्त ने इस घटना को आंग्ल शासन द्वारा भारत की छाती पर लौह लात का प्रहार बताते हुए कहा है कि इसके द्वारा भावी विश्व-युद्ध की पृष्ठ भूमि निर्मित कर दी गयी है।[5] इस अवसर पर हुई भयंकर साम्प्रदायिक मार-काट के सम्बन्ध में उन्होंने शत नरक प्रेत धर नर तन करते जन भू पर नर्तन' का घृणापरक भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि 'भू-कंप साम्प्रदायिक वह था धर्म भ्रष्ट पागल पन।'[6] इस भ्रष्ट धार्मिक उन्माद के कारण ही दुष्टों द्वारा स्त्रियों के स्तन काटने, बच्चों को मार डालने जैसे नृशंस-अमानुषिक कृत्य किये गये थे। पन्त की यह धारणा उचित ही है, 'इस रक्त के पीछे थे मध्य युगों के खंडहर/उच्छिष्ट जीर्ण संस्कृति के, स्वार्थों के कट्टर पत्थर।'[7] बिहार, पंजाब, दिल्ली में हुए साम्प्रदायिक दंगों के कारण 'मुख हुआ देश का काला' की धारणा व्यक्त करते हुए, पन्त ने उचित ही कहा है कि इसके मूल में अंग्रेजों द्वारा अफ्रीका और एशिया को पिछड़ेपन की

---

1 2 'सेवाग्राम', पृ० 128, 228 29

3 'जननायक' र० श० मिश्र पृ० 528

4 'आत्महत्या के विरुद्ध', पृ० 49

5 अन्तिम लौह लात वरी की भारत का कर क्रूर विभाजन।
क्या फिर भावी विश्व युद्धहित, रचा द्विसका न रण प्रांगण।"
'लोकायतन', पृ० 112

6 7 वही, पृ० 121, 122

स्थिति म रखने की कूटनीति क्रियाशील थी।[1] बच्चन न भारत के विभाजन का कुर्सी पाने के भूखे नताओ का कारनामा बताते हुए व्यथापूर्वक कहा है कि, हम नाममात्र के ही आजाद होन पर खुशियाँ नही मना सकत, क्योकि हमारी एक कौम का विभाजन करके उसकी दो कौमे बना दी गयी हैं।[3] गा० मा० सिंह ने इस विभाजन को राष्ट्र के प्रभात-काल म अँधेरा छा जाने का सूचक बनाया है।[4]

भारत के विभाजन का सर्वाधिक शर्मनाक एव अमानवीय पहलू, हिन्दू और मुसलमानो द्वारा उन लोगो पर पाशविक अत्याचार करना था जो दुर्भाग्यवश हिन्दू-बहुल अथवा मुस्लिम-बहुल क्षेत्रो म फँस गये थे तथा उस क्षेत्र को छोडकर हिन्दुस्तान या पाकिस्तान जाना चाहते थे। हरिनारायण व्यास ने अमानुषिक क्रूरताओ के शिकार हुए विस्थापितो की दयनीय दशा का हृदय द्रावक चित्रण करते हुए कहा है, 'दूर तक तम्बू तने हैं/खेलते बाहर/कट कर-नाक, टूटी टाँग वाले/दीन बच्चे बाँध उजली पटिटयाँ/हम पडे हैं तम्बुओ म/ × × × खून भीगे परिधान पहने।'[5] एक अन्य कवि न पठान कबाइलियो द्वारा इस प्रकार की बबरतायें किये जाने का चित्रण किया है कि उनका वणन पढकर भी आत्मा थर्रा उठती है, जसे स्त्रियो के सम्मुख ही उनके बच्चो को काटकर कडाह म भूना-उबाला गया। चूल्हे मे कटे हुए पति अगो का इधन जलाया गया, और उन कतलो को माँ के मुह मे भी बलात् ठूसा गया, जबकि बबरो द्वारा स्वय भी उनको नमक लगाकर चूसा गया।[6] इसके प्रत्युत्तर म 'मुसलमान के पागलपन स, हिन्दू भी पागल बन भभके/ नीच नीचता स मारेंगे, कहते-कहत निकल पडे वे।'[7] आततायियो द्वारा इस अवसर पर दुधमुहे बच्चो को माँ के आग लोहू चाटने अथवा भाला की नोको पर टाँगने के कुकृत्यो के सम्बन्ध म यह विषादमय कवि-उद्गार सवथा उचित प्रतीत होते हैं, 'नगी कर अग काटत थे, अपनी दुखिया भारत माँ के।'[8] कहना न होगा कि भारत विभाजन की घटना दश के सास्कृतिक इतिहास का एक बडा ही दु खद त्रासद एव घृणित अध्याय रहा है।

---

1 'लोकायतन', पृ० 139

2 कटते प्रतिमानो की आवाज, पृ० 52

3 'नाम के आजाद हम हैं, देश की एकता खो गयी है।
क्या इसी पर खुशी हम मनायें, एक की कौम दो हो गयी हैं।
'सूत की माला, पृ० 17

4 "हो गया आवृत्त तिमिर से रुचिर राष्ट्र प्रभात था।" 'जगदालोक', पृ० 287

5 'दूसरा सप्तक', सक०, पृ० 69

6 8 'जननायक, र० श० मिश्र, पृ० 507, 508, 481

(च) रामराज्य और समाजवाद का मिथ्या ढिंढोरा

अनेक काव्य प्रणेताओं ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में कांग्रेस पार्टी की केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई गयी ऐसी रीति-नीतियों की तीव्र भर्त्सना की है, जिनके कारण पच्चीस-तीस वर्ष बीत जाने पर भी देश में न तो गांधीजी द्वारा दिखाया गया रामराज्य के आगमन का स्वप्न पूर्ण हो सका है और न नेहरूजी द्वारा घोषित समाजवादी व्यवस्था ही स्थापित हो सकी है अपितु देश में चतुर्दिक पूँजीवादियों तथा भ्रष्ट और स्वार्थांध मन्त्री-नेताओं की लूट-खसोट और शोषण का नग्न-नृत्य हो रहा है।

(1) रामराज्य का स्वप्न भंग होना—रामराज्य के आगमन के सन्दर्भ में पंत ने आक्रोशपूर्वक यह भाव व्यक्त किया है कि देश को स्वाधीन हुए चौदह वर्ष बीत जाने पर भी हमारे नेतागण कुंभकर्णी प्रमाद की ऐसी निद्रा में मग्न हैं कि जनता की दैनिक उपभोग की वस्तुओं का सर्वथा अभाव है, तथा मिलावटखोरी, महँगाई और भ्रष्टाचार ऐसे बढ़ते जा रहे हैं कि राम राज्य के आगमन के स्वप्न ही तिरोहित होते जा रहे हैं।[1] प्रस्तुत सन्दर्भ में माखनलाल चतुर्वेदी ने भौव्ययापूर्वक कहा है कि उसका मूलाधार तो 'इधर राम ने दी ठोकर, उधर भरत ने ठुकराया' के रूप में राज्योपभोग के सम्बन्ध में राम और भरत का निस्पृह दृष्टिकोण था और इस त्याग भावना के कारण ही अवध के सिंहासन पर रामराज्य हरसाया' था। इसके सर्वथा विपरीत आजकल एक एक पद पर सौ-सौ' नेता टूटे पड़ते हैं। ऐसी दशा में 'रामराज्य का स्वांग' करना सर्वथा अनुपयुक्त ही है।[2] मुकुल के उद्गार हैं कि हमारे देश में निर्माण कार्यों और देश की प्रगति का ऐसा मिथ्या ढिंढोरा पीटा जाता रहता है कि सावन के अंधों को अर्थात वैभव विलासमय जीवन व्यतीत करने वाले नेताओं को, वास्तव में ही रामराज्य के आ जाने का भ्रम होता रहता है।[3] रामराज्य के आगमन की घोषणाओं का खोखलापन दिखाते हुए शिवमंगल सिंह सुमन ने कहा है कि स्वतन्त्रता मिले बीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। सम्प्रति घर-आँगन, हल, बक्खर-बैल, खेत आदि सभी वस्तुओं पर हमारी अपनी ही सरकार का स्वामित्व है। ऐसी दशा में भी हमारी रामराज्य की स्थापना की अभिलाषा स्वप्न मात्र ही रह जाने का मूल कारण कहीं यह तो नहीं है कि चूँकि

---

1 "हम कुम्भकर्ण से अब भी सोये प्रमाद में खोये,
युग जीवन की शय्या पर भू के निज पाप न धोये।
भक्ष्य मूढ़ से जनगण, निज भावी के प्रति शंकित।
प्रिय रामराज्य के सपने, मन से हो रहे तिरोहित।

'लोकायतन', पृ० 158 59

2 'समर्पण', पृ० 61 3 'पथ के पुनीत पर्व', पृ० 22

'खून पानी किये बिना स्वराज्य आ पहुँचा ? या इसीलिए बिना वनवास सहे रामराज्य आ पहुँचा'—की स्थिति आ ही कैसे सकती है ?[1] कवि ने इन तथ्यों को भी उभारा है कि स्वतन्त्र भारत में भी 'अभी पेट भर रोटी हमें नसीब नहीं', 'अभी हमारे चाचा-ताऊ नंगे हैं' 'अभी अकालों के गिद्धों का जमघट है' तथा 'ग्राम नगर में डगर डगर भिखमंगे हैं।' उसने इस स्थिति को शर्मनाक बताया है कि भारत जैसा आजाद राष्ट्र दुनिया भर का भिखमंगा हो' और 'समता स्वतन्त्रता दर-दर हा हा खाती फिरती हो।'[2] एक अन्य कवि के भी उद्‌गार है कि आह ! हमें आजादी मुफ्त में मिल गयी/हमारी कुर्बानी का स्तर साधारण था/इसलिए आजादी बदली विलास में/शोषण में/और अब भारत के/इतिहास में चलता/भ्रष्टाचार युग।'[3]

(ii) **समाजवाद का मिथ्या ढिंढोरा**—रामराज्य की स्थापना की तरह भारत में समाजवादी समाज की स्थापना का भी ढिंढोरा पीटा जाता रहता है, जिसका खोखलापन दिखाते हुए विट्ठलभाई पटेल ने कहा है कि हम जब कभी पन्द्रह अगस्त या छब्बीस जनवरी मनाते है, तभी हम वायदा करते है/पसीने की हर बूंद चुकाने का/देश में समाजवाद लाने का और 'हर गली कूचे में रोशनी पहुचाने का, किन्तु हम पूंजीवाद को मिटाने से कही इसलिए तो नहीं डरते हैं कि फिर 'समाजवाद के सपने कौन बुनेगा ?' हमारे देश की वास्तविक प्रगति और समाजवाद की दशा यह है कि हमने 'बढ़ाये हैं संसद सदस्यों के भत्ते/बनाये हैं बड़े बड़े मन्त्रिमंडल/ताकि हम पास कर सकें कम खर्च के प्रस्ताव/और बढ़ा सकें थर्डक्लास का किराया।' हमारा समाजवाद यह है कि अँधेरा मिटाने के लिए हम लालटेन की जगह टेलीविजन बनाकर उस पर गाते हैं 'जरा मशाल जलाओ बड़ा अंधेरा है। कवि की व्यंग्यात्मक टिप्पणी है, 'यही तो है दोस्त सच्चा समाजवाद जो 'भाषण अभिनंदन अखबारों में/विज्ञापन भर रह गया है।'[4] बच्चन ने भारत सरकार की कथनी और करनी के अन्तर को 'गुल समाजवादी समाज का, पूंजीवादी खिला अँधेरा'[5] के रूप में उभारा है, तो पुरुषोत्तम प्रतीक ने किसी व्यक्ति के पच्चीस वर्ष तक समाजवाद की प्रतीक्षा करते हुए अन्तत मर जाने पर कहा है कि उसने मरने में जरा जल्दी कर दी अन्यथा समाजवाद आने ही वाला था क्योंकि अभी तक तो हमारी सरकार 'पाँच वर्ष राम राज/पाँच वर्ष धाम-काज/पाँच वर्ष बदनाम/पाँच वर्ष उसकी माफी[6] माँगने के चक्कर में ही फँसी रही थी।[6] बच्चन ने भारत सरकार की विदेशी ऋणों पर निर्भर रहने की

1 2 मिट्टी की बारात, पृ० 147
3 देश दिल्ली और वहम', रा० प्र० मिश्र, पृ० 18
4 दीवारों के खिलाफ', पृ० 82 84 5 'उभरते प्रतिमानों के रूप, पृ० 79
6 आसन-दर आसन', पृ० 39

(च) रामराज्य और समाजवाद का मिथ्या ढिंढोरा

अनेक काव्य प्रणेताओं ने स्वातन्त्र्योत्तर काल में कांग्रेस पार्टी की केन्द्रीय सरकार द्वारा अपनाई गयी ऐसी रीति-नीतियों की तीव्र भर्त्सना की है, जिनके कारण पच्चास-तीस वर्ष बीत जाने पर भी देश में न तो गांधीजी द्वारा दिखाया गया रामराज्य के आगमन का स्वप्न पूर्ण हो सका है और न नेहरूजी द्वारा घोषित समाजवादी व्यवस्था ही स्थापित हो सकी है, अपितु देश में चतुर्दिक पूँजीवादियों तथा भ्रष्ट और स्वार्थांध मन्त्री-नेताओं की लूट-खसोट और शोषण का नग्न-नृत्य हो रहा है।

(1) रामराज्य का स्वप्न भंग होना—रामराज्य के आगमन के सन्दर्भ में पंत ने आक्रोशपूर्वक यह भाव व्यक्त किया है कि देश को स्वाधीन हुए चौदह वर्ष बीत जाने पर भी हमारे नेतागण कुम्भकर्णी प्रमाद की ऐसी निद्रा में मग्न हैं कि जनता की दैनिक उपभोग की वस्तुओं का सर्वथा अभाव है, तथा मिलावटखोरी, महगाई और भ्रष्टाचार ऐसे बढ़ते जा रहे हैं कि राम राज्य के आगमन के स्वप्न ही तिरोहित होते जा रहे हैं।[1] प्रस्तुत सन्दर्भ में माखनलाल चतुर्वेदी ने भी व्यथापूर्वक कहा है कि उसका मूलाधार तो 'इधर राम ने दी ठोकर, उधर भरत ने ठुकराया' के रूप में राज्योपभोग के सम्बन्ध में राम और भरत का निस्पृह दृष्टिकोण था और इस त्याग भावना के कारण ही अवध के सिंहासन पर रामराज्य हरसाया था। इसके सर्वथा विपरीत आजकल 'इक इक पद पर सौ-सौ नेता टूटे पड़ते हैं। ऐसी दशा में रामराज्य का स्वाग' करना सर्वथा अनुपयुक्त ही है।[2] मुकुल के उद्गार हैं कि हमारे देश में निर्माण कार्यों और देश की प्रगति का ऐसा मिथ्या ढिंढोरा पीटा जाता रहता है कि सावन के अंधों को अर्थात् वैभव विलासमय जीवन व्यतीत करने वाले नेताओं को, वास्तव में ही रामराज्य के आ जाने का भ्रम होता रहता है।[3] रामराज्य के आगमन की घोषणाओं का खोखलापन दिखाते हुए शिवमंगल सिंह सुमन ने कहा है कि स्वतन्त्रता मिले बीस वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। सम्प्रति घर-आँगन, हल, बक्खर-बैल, खेत आदि सभी वस्तुओं पर हमारी अपनी ही सरकार का स्वामित्व है। ऐसी दशा में भी हमारी रामराज्य की स्थापना की अभिलाषा स्वप्न मात्र ही रह जाने का मूल कारण कहीं यह तो नहीं है कि चूँकि

---

1 'हम कुम्भकर्ण से अब भी सोये प्रमाद में खोये
युग-जीवन की गंगा में भू ने निज पाप न धोये।
कर्त्तव्य-मूढ़ मे जनगण, निज भावी के प्रति शंकित।
प्रिय रामराज्य के सपन, मन से हो रहे तिरोहित।"
'लोकायतन', पृ० 158 59

2 'समर्पण', पृ० 61 3 'पथ के पुनीत पाव', पृ० 22

'खून पानी किये बिना स्वराज्य आ पहुँचा ?' या इसीलिए 'बिना वनवास सहे रामराज्य आ पहुँचा'—की स्थिति आ ही कैसे सकती है ?[1] कवि ने इन तथ्यों को भी उभारा है कि स्वतन्त्र भारत मे भी 'अभी पेट भर रोटी हमे नसीब नही, 'अभी हमारे चाचा-ताऊ नगे हैं' अभी अकालो के गिद्धो का जमघट है' तथा 'ग्राम नगर मे डगर डगर भिखमगे हैं। उसने इस स्थिति को शमनाक बताया है कि भारत जैसा 'आजाद राष्ट्र दुनिया भर का भिखमगा हो' और 'समता स्वतन्त्रता दर दर हा हा खाती फिरती' हो।[2] एक अन्य कवि के भी उद्गार हैं कि आह ! हमे आजादी मुफ्त मे मिल गयी/हमारी कुर्बानी का स्तर साधारण था/इसलिए आजादी बदली विलास मे/शोषण मे/और अब भारत के/इतिहास मे चलता/भ्रष्टाचार युग।[3]

(ii) समाजवाद का मिथ्या ढिंढोरा—रामराज्य की स्थापना की तरह भारत मे समाजवादी समाज की स्थापना का भी ढिंढोरा पीटा जाता रहता है, जिसका खोखलापन दिखाते हुए विटठलभाई पटेल ने कहा है कि हम जब कभी पन्द्रह अगस्त या छब्बीस जनवरी मनाते हैं तभी 'हम वायदा करते हैं/पसीने की हर बूद चुकाने का/देश मे समाजवाद लाने का और 'हर गली-कूचे म रोशनी पहुचाने का' किन्तु हम पूजीवाद को मिटाने से कही इसलिए तो नही डरते हैं कि फिर 'समाजवाद के सपने कौन बुनेगा ?' हमारे देश की वास्तविक प्रगति और समाजवाद की दशा यह है कि हमने 'बढाये हैं ससद सदस्यो के भत्ते/बनाये हैं बडे बडे मन्त्रिमडल/ताकि हम पास कर सकें कम खर्च के प्रस्ताव/और बढा सकें थर्डक्लास का किराया।' हमारा समाजवाद यह है कि अँधेरा मिटाने के लिए हम लालटेन की जगह टेलीविजन बनाकर उस पर गाते हैं, 'जरा मशाल जलाओ बडा अँधेरा है। कवि की व्यग्यात्मक टिप्पणी है, 'यही तो है ोमन्त सच्चा समाजवाद जो 'भाषण अभिनदन, अखबारो म/विज्ञापन भर रह गया है।'[4] बच्चन ने भारत सरकार की कथनी और करनी के अन्तर को 'गुल समाजवादी समाज का, पूंजीवादी खिला अँधेरा'[5] के रूप म उभारा है, तो पुरुषोत्तम प्रतीक ने किसी व्यक्ति के पच्चीस वर्ष तक समाजवाद की प्रतीक्षा करते [illegible] अन्तत मर जाने पर कहा है कि उसने मरने म जरा जल्दी कर दी, अन्यथा समाजवाद आने ही वाला था क्योंकि अभी तक तो हमारी सरकार 'पाँच वर्ष राम राज/पाँच वर्ष ग्राम-स्वराज/पाँच वर्ष बन्नाम/पाँच वर्ष उमकी मासी'[6] मौगन के चक्कर में ही फँसी रही थी।[6] बच्चन ने भारत सरकार की विदेशी ऋणों पर निर्भर रहने की

1-2 'मिटटी की बारात' पृ० 147
3 'दश दिल्ली और अहम' रा० प्र० मिश्र, पृ० 18
4 'दीवारो के खिलाफ' पृ० 82 84 5 'उभरते प्रतिमानों के रूप', पृ० 79
6 'आगन-दर आगन', पृ० 39

प्रवृत्ति की तीव्र भर्त्सना करते हुए उचित ही यह आक्रोश व्यक्त किया है कि देश के नेताओं ने भारत की भावी पन्द्रह पीढ़ियों को विदेशी ऋणदाताओं के हाथों गिरवी रख दिया है।[1] हमारे नेतागण इस विदेशी सहायता को, 'जो दाँत निपोरकर माँगी/हाथ फैलाकर पायी/ऋण रूप में उठाई गयी है श्रम-स्वेद से अनर्जित' होने के कारण मुफ्त में मिली राशि समझते हैं तथा इस तथ्य में आस्था रखते हुए कि यह 'बेदर्दी से लूटी जाने को है', बुरी तरह लूटते-खसोटते रहते हैं।[2] एक अन्य कवि के भी उद्गार हैं कि देश के नेताओं द्वारा हमें विदेशी कर्ज और देशी उपदेश का जहर पिलाकर' नपुंसक बना दिया गया है।[3]

(छ) आजादी का खोखलापन

कवियों ने इस दृष्टि से तीव्र व्यंग्याक्षेप किये हैं कि हमारी आजादी किस प्रकार हमारे राजनीतिज्ञों और उनके संरक्षक नौकरशाहों की स्वार्थ सिद्धि का माध्यम बन कर रह गई है। केशवचन्द्र वर्मा ने आजादी को एसा अमृत घट बताया है—जिसमें 'मेम्बरी का टिकट, संसद का भत्ता, कान्फ्रेंसों की रेलयात्रा दावतों के निमंत्रण, दाता रात धर्म, दर्शन शिक्षा, संस्कृति, कला और विज्ञान का विशारद बन जाने रूपी अमृत भरा रहता है। यही कारण है कि 'सभी सुरासुर पार्टीबाज दौड़ते हैं/ हथियाने उस/मुंह बाये कमर कस।'[4] एक कवि ने स्वतन्त्रता को ऐसी द्रौपदी बताया है जिसका पक्ष और विपक्ष रूपी दो-दो दुःशासन चीरहरण करते रहते हैं[5] तो एक अन्य कवि ने 'स्वतन्त्रता ने हमको दी है केवल उदासी और बेहोशी'[6] का भाव व्यक्त किया है। पुरुषोत्तम प्रतीक ने स्वतन्त्रता को धूर्तों का स्वर्ग तथा मुखौटों का मामूला भर बताते हुए कहा है कि इसके अन्तर्गत मुखौटे लगाने वाले ही आगे बढ़ पाते हैं।[7] केशव पांडेय के शब्दों में हमारी स्वातंत्र्योत्तरकालीन उपलब्धियाँ यह हैं कि 'गली गली/चौराहे चौराहे में/हथगोलों अश्रुगोलों की पकी सड़ाँध है।'[8] केवल गोस्वामी ने ग्वालों के दूध के अभाव में मरते बच्चों और देशभक्ति से ओत प्रोत श्रमिकों के क्षय ग्रस्त होने का दोष नेताओं के सिर मढ़ते हुए कहा है 'शायद कोई इतिहासकार/यह नहीं जान पायेगा/कि विदेशी सत्ता से लड़ने वाले लोग/स्वतन्त्रता

---

1 पन्द्रह पीढ़ी गिरवी रख दी नेताजी ने जुआ खेल।'
'उभरते प्रति० के रूप', पृ० 79
2 वही पृ० 79 3 'बंद कमरों की संस्कृति' केवल गोस्वामी, पृ० 30
4 'वीणापाणि के कम्पाउण्ड में' पृ० 49
5 'अंजुरी भर धूप', हरि० पा० अजेय, पृ० 39
6 'इतिहास हन्ता', जगदीश चतु०, पृ० 56
7 'आसन-दर-आसन', पृ० 10 8 'नये स्वर', सक०, पृ० 49

के दीवाने/अपने ही लोगो के स्वार्थ से हारे थे, वे नपुसक बना दिये गये थे 'विदेशी कर्ज और देशी उपदेश का जहर पिलाकर' तथा 'कुछ रक्तलोभी लोग/अपने पुरखो की दुहाई देते रहे थे, और वे 'लेते रहे एक बूद (तक) रक्त जनता का/कर के रूप मे।'[1] कवि को देश की स्वतन्त्रता की अब तक की कालावधि ऐसी गर्हित प्रतीत हुई है कि उसने यह आशा व्यक्त की है कि भावी पीढी इन काले पृष्ठो को फाड/नये सिरे से शुरू करेगी इतिहास।'[2] सव्यासाची ने शासको से कहा है 'आखिर क्या दिया है तुमने आजादी के नाम पर ? लूट और लाटरी/जनता को लूट से कुचलती पुलिस/भ्रष्ट अफसर/भूख, आगजनी/रिश्वत हत्या लूट गिरहकटी/काने कानून झूठी अदालतें, बहुरूपिया शासन/अभाव विवशता और गुलामी'। देश मे 'हर आदमी को जानवर और हर औरत को वेश्या' बना देने का उल्लेख करते हुए कवि ने रोषपूर्वक कहा है देशभक्ति का मतलब सिर्फ तिरगा फहराना और/वदेमातरम दोहराना ही तो नही होता।[3] राजकुमार सैनी ने भारतीय शासन पर अजगर का अध्यारोप करते हुए कहा है अजगरनुमा राजतत्र की/विशालदेह ने/दिये थे आश्वासन/निज कायाकल्प के किन्तु स्थिति यह है कि 'उसने बस केंचुली उतारी है/चक्षुश्रवा सोता है/अब नही सुनता वह।[4] नीरज ने भी बडी व्यथापूर्वक इस विसगति को उभारा है कि गाधी और सुभाष जैसे निस्पृह बलिदानियो के देश मे आजादी 'सेफ-तिजोरियो मे कैद कर दी गयी है तथा वेदो उपनिषदो और गीता जैसे महान ग्रन्थो की रचना किये जाने वाले देश मे लोग सम्प्रति अनाज की बोरी मे बन्द कर दिये गये है—अर्थात स्वतन्त्रता पर पूजीपति वर्ग का आधिपत्य है जबकि जन-सामान्य उदर-पूर्ति के साधन जुटाने मे खटते रहते है।[5] श्रीकृष्ण सरल ने अब युग की आवाज सुनो तुम ओ उद्घाटन करने वालो ! के रूप मे उदघाटन धर्मी नेताओ से उचित ही कहा है कि यदि देश के नगे भूखे बच्चे स्वातत्र्योत्तरकाल मे भी सडको पर सोते रहेंगे तो यह आजादी व्यर्थ हमारी है।[6]

अन्य कवियो मे से विशाल त्रिपाठी ने आजादी के भ्रष्टाचार-रूपी मियादी बुखार के अतत जीर्ण-ज्वर और तपदिक मे परिणत हो जाने के कारण उसको

---

1 2 'बद कमरो की संस्कृति', पृ० 31
3 'सुबह होने से पहले' पृ० 80
4 प्रहार स्याह रात पर , सक०, पृ० 61
5 'गाधी का यही देश ? सुभाष की यही भूमि ?/है कैद जहा आजादी सेफ तिजोरी मे।/वेदो उपनिषदो गीता का यही मर्म/हो जाय आदमी बन्द नाज की बोरी मे ? 'प्राणगीत', पृ० 98
6 राष्ट्रभारती' पृ० 271

मरणासन्न दिखाते हुए, उसका सियापा करने की तैयारी आरम्भ करने का भाव व्यक्त किया है।[1] महेन्द्र भटनागर ने देश के शासक-नेताओं को मुफ्तखोर बताते हुए कहा है कि बस तो वे यह शोर मचाते रहते हैं कि हम अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं अपितु देश के विकास, स्वतन्त्रता और लोकतन्त्र के लिए अपना खून बहा रहे हैं, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि वे चतुर्दिक 'अभाव, रोग, कोढ/मौत ग्रस्त भुखमरी' फैला रहे हैं।[2] सुरेश किसलय ने स्वतन्त्रता की खान में सच्चे देशभक्तों को गिट्टियाँ तथा भले तजुर्बे वाले नेताओं को मणियाँ बीनते दिखाकर यह अमर्ष व्यक्त किया है कि द्वितीय वर्ग के जो सफेदपोश लोग 'नारों की तिजारत' करते हैं उनके हाथों में सत्ता का भोंपू है/और आँखों में एक ठंडी हिकारत' तथा वे वायुयानों में बैठकर 'गिद्धों में मँडराते रहते हैं।[3] लीलाधर जगूड़ी के शब्दों में, 'सूचना विभाग के हर पोस्टर पर तो खुशहाली है जबकि चारों ओर 'कंगाली के पास आटा नहीं' वाली है[4] की स्थिति में विद्यमान है। कवि की इस धारणा से बहुत लोग सहमत होंगे कि जब आजादी अँधेरे के लेन-देन में आकार लेती है अर्थात जब काले धन्धों की छूट का नाम ही स्वतन्त्रता हो और उसे भ्रष्ट मन्त्रियों का भी संरक्षण प्राप्त हो तो वह 'व्यक्तिगत फायदों के बावत/सार्वजनिक सेवा में/लघु कार्यक्रम के बहाने एक बकती होती है।[5] रघुवीर सहाय ने स्वतन्त्रता मिले बीस वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी देश का वांछित उत्थान न हो पाने से व्यथित होकर, बीस वर्ष/खो गये भरम उपदेश में' तथा 'आजादी हो गयी बेगानी अपने ही देश में की धारणा व्यक्त की है।[6] चन्द्रकान्त देवताले ने खेदपूर्वक कहा है कि एक ओर तो नेताओं के 'भ्रष्ट आचरण के लिए जाँच आयोग की माँग' की जाती है और कुछ जाँच आयोग नियुक्त भी किये जाते हैं किन्तु इनसे जनता की लूट का नंगा नाच नहीं रुक पाता। वस्तुतः स्वतन्त्रता शब्द अपना अर्थ खो बैठा है 'स्वतन्त्रता जैसा कोई भी अर्थ नहीं है/केवल कुछ शब्द/जिन्हें हम खौलते पानी से निकालकर/रेत पर सुखा रहे हैं।[8]

---

1 'क्या कहा—आजादी का मरसिया सुनाएँ/रोएँ धोएँ/सियापा मनाएँ/पूव बल/भ्रष्टाचार मियादी बुखार/पाळ बद गया हार/ × × × कभी मंद कभी तेज चलती है/आँकड़ा की नाड़ी/ × × अब तो ज्वर बन गया है/ जीर्ण ज्वर तपेदिक/ × × × आजादी की अरथी सजाएँ।'

साँस की अदारी, पृ० 62

2 'चयनिका' पृ० 145 3 'हलफनामा', पृ० 29

4-5 नाटक जारी है' पृ० 61 110

6 आत्महत्या के विरुद्ध पृ० 18

7 8 'दीवारों पर खून से', पृ० 71 72

काव्य प्रणेताओं में से अधिकांश द्वारा स्वातन्त्र्योत्तर-कालीन भारत में मात्र अभावों की ही चर्चा करते हुए आजादी को कुछ लोगों की तिजारत खोखली तथा जूठी थाली आदि बताने की धारणाओं का विरोध करते हुए अज्ञेय ने आजादी का सिर्फ जूठी थाली बताने वालों का यह कहकर उपहास किया है 'आप यह नहीं देखते कि आपकी यह दलील किसी की/उगाली की जुगाली है।[1] स्पष्ट ही अज्ञेय का मतव्य इस ओर है कि कवियों ने किन्हीं विदेशी लेखकों की उक्तियों को दोहराते हुए ही इस प्रकार की धारणाएँ व्यक्त की हैं। इसी प्रकार उन्होंने आजादी की बीस वर्ष की अनुपलब्धियों का रोना रोने वालों को प्रत्युत्तर देते हुए प्रश्न किया है कि यह तो बताइये आप लोगों की ओर से भी 'बीस बरस की आजादी को क्या मिला? यही न कि उन्नीस नंगे शब्द? अठारह लचर आन्दोलन? सत्रह फर्नीचर कवि? सोलह लुजी—हाँ कह लो कलाएँ? अज्ञेय ने प्रत्यारोप मात्र ही नहीं किया है अपितु यह धारणा भी व्यक्त की है कि हम स्वातन्त्र्योत्तर काल में जिन नैतिक गुणों के ह्रास के विषय में हो-हल्ला मचाते हैं उनमें से अधिकांश जैसे चोरी चापलूसी/सेंध मारना, जुआखोरी/लल्लोपत्तो और लबारियत/ये सब पारम्परिक कलाएँ थीं/आजादी के बीस बरस क्यों, बीस पीढ़ी पहले की।[2] अज्ञेय का यह अभिमत बहुत-कुछ अंशों में सत्य होते हुए भी हमें इस दृष्टि से अस्वीकार्य है कि हमारी पिछली बीस पीढ़ियाँ तो दासताकालीन विवश स्थिति में जीती थीं अतः यह तथ्य कैसे उचित कहा जा सकता है कि हम कतिपय दोषों के परम्परा से चले आने की आड़ लेकर स्वाधीनता काल में भी राष्ट्र के चारित्रिक उत्थान की अपेक्षा न करें?

(ज) जनतन्त्र प्रणाली की विफलता

भारत की जनतान्त्रिक शासन प्रणाली के सम्बन्ध में अधिकांशतः निन्दापरक उद्गार ही व्यक्त किये गये हैं जिनकी ध्वनि यह है कि या तो जनतन्त्र में पनपने वाले अबाध भ्रष्टाचार का नियमन किया जाना चाहिए अथवा इसके स्थान पर किसी अन्य प्रकार की शासन प्रणाली को अपनाना उत्तम रहेगा। धूमिल ने भारतीय जनतन्त्र का मूलाधार मदारी जैसी जादूभरी भाषा बताते हुए इस दृष्टि से गहन चिन्ता व्यक्त की है कि उसमें घोड़े और घास अर्थात् भक्षक और भक्ष्य या शोषक और शोषित को एक जैसी छूट है।[3] उन्होंने इस स्थिति को भी उद्घाटित किया है कि

---

1 अतरा', पृ० 32 2 'क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, पृ० 12

3 कैसी विडम्बना है/कैसा झूठ है/दरअस्ल अपने यहाँ जनतन्त्र/एक ऐसा तमाशा है/जिसकी जान/मदारी की भाषा है।"

'संसद से सड़क तक' पृ० 115

स्वातन्त्र्योत्तर-काल म 'चालाक सुराजिये/आजादी के बाद के अँधेरे म/अपने पुरखो के रगीन बलगम और गलत इरादो क सहारे जीते हुए गम कुत्ता' स्नान और 'सफेद घोडा पीने मे अर्थात मांस मदिरा का सेवन करने म तल्लीन हो गये हैं'[1] तथा निरन्तर प्रतीक्षा करते रहने पर भी निष्कर्ष यह निकला है कि 'जनतत्र त्याग स्वतन्त्रता ✗ ✗ ✗ ये सारे शब्द थे/सुनहरे वादे थे' एव खुशफहम इरादे' मात्र थे।[2] उन्ह जनतत्र हवा म फेंका हुआ ऐसा गोल मटोल शब्द प्रतीत हुआ है जिसकी रोज सकडो बार हत्या होती है और प्रत्येक बार वह 'भेडियो की जबान पर जिन्दा दिखायी देता है।[3] धूमिल ने भारतीय जनतत्र को सिरकटे मुर्गे की तरह फडफडाते' दिखाकर यह विषाद व्यक्त किया है कि 'आजादी और गाधी के नाम पर चल रहे जनतत्र रूपी छदम के कारण देश और देशवासियो की न भूख मिट रही है और न मौसम बदल रहा है।[4] रामदरश मिश्र की दृष्टि म कुछ नेताओ द्वारा मिलकर देश क ससाधनो की लूट करना ही जनतन्त्र है अत जब नेतागण भाषण मचो स यह चिल्लाते हो हत्या, हत्या हत्या जनतत्र की तो उसका अभिप्राय यह होता है कि 'दस चोरो ने देश का माल छिपा रखा था/उसे एक आदमी ने छीन लिया है।[5] कलाश वाजपयी को भारतीय जनतत्र मे जनता की दशा उस बीमार तथा उल्टी लटकी हुई गाय जसी प्रतीत हुई है जिसका बरसो स काले-बाजार और भ्रष्टाचार रूपी कडाह म खून टपक रहा है तथा जिसका वध होना (मात्र) और बाकी है।[6] उन्होने यह दुश्चिन्ता भी व्यक्त की है कि गो रूपी जनता को उसके श्वेताम्बर धारी मालिको से जिनकी 'देह पर दाँत ही दाँत हैं कौन बचाये?'[7] विठ्ठल भाई के अनुसार सम्प्रति प्रजातत्र का अथ/भीड शोरगुल घेराव, हडताल/बन्द या आन्दोलन (मात्र) रह गया है।'[8] उन्होने प्रजातन्त्र की इस अनूठी सामर्थ्य का भी उल्लेख किया है कि उसके अतगत गूगा बोलता है/बहरा सुनता है/अधा देखता है। पहले ईश्वरीय अनुकम्पा के फल समझे जाने वाल उक्त तथ्यो का मूलाधार सम्प्रति यह तथ्य हो गया है कि व्यक्ति क पास एक कुर्सी होनी चाहिए/या कुर्सी वाले की सिफारिश। हमारे प्रजातत्र की उपलब्धि यह है कि हम कुर्सियो के वारिस तयार कर रहे हैं जबकि प्रजातत्र क्रास पर टँगा/सिसक रहा है/दम तोड रहा है।'[9]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने भारत म नाम मात्र का जनतन्त्र होने की धारणा व्यक्त करते हुए यह व्यग्य किया है कि वह व्यवहार की नहीं अपितु देहाती लोगो द्वारा लाठी पर टाग कर ले जाये जाने वाले जूतो की तरह मात्र दिखावे

---

1 4 'ससद से सडक तक' पृ० 51 111 48 15 18

5 'कधे पर सूरज' पृ० 78 79 6 7 देहान्त से हटकर' पृ० 24, 25

8 9 'दीवारों क खिलाफ, 58 59

और कष्ट की वस्तु बन गया है।[1] देश की राजनीतिक स्थिति यह है कि नेतागण यहाँ समाजवादी व्यवस्था स्थापित करने का ढोल पीटते हुए उसके मनमाने अभिप्राय ग्रहण करते रहते हैं।[2] धूमिल ने भी भारतीय समाजवाद के सन्दर्भ में ऐसा ही भाव व्यक्त करते हुए कहा है 'मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद/माल गोदाम में लटकती हुई/उन बाल्टियों की तरह है/जिन पर आग लिखा है/और उनमें बालू और पानी भरा है।'[3] मात्र गणेशचन्द जोशी ने इसके विपरीत यह विचार व्यक्त किया है 'हम समाजवादी समाज की ओर जा रहे/आस्था लेकर व्यक्ति-व्यक्ति की लोकतन्त्र से।'[4] दिनकर ने जनतन्त्र के सम्बन्ध में आरम्भ में बड़े उल्लसित उद्गार व्यक्त करते हुए 'दो राह समय के रथ को घघर नाद सुनो/सिंहासन खाली करो कि जनता आती है'[5] का भाव व्यक्त किया था। किन्तु बाद में उन्होंने इस तथ्य की तीव्र भर्त्सना की है कि जनहितकारी योजनाओं का निर्माण करने के स्थान पर ऐसे प्रश्नों को यह कहकर टाला जाता रहता है कि प्रश्न गूढ़ जनता इस पर क्या कहती है?[7] उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है कि जनता कोई पुष्प अथवा दुधमुहा बच्चा नहीं है, जिसे इच्छानुसार सजाया या चार खिलौने देकर बहलाया जा सके। उन्होंने देश के कर्णधारों को चेतावनी दी है कि 'जनता जब कोपाकुल हो कर भृकुटि चढ़ाती है' तो 'विप्लव के बवडर उठने लगते हैं।[6] विश्व के सबसे विशाल जनतन्त्रात्मक देश भारत में यहाँ की जनसंख्या के अनुरूप ही 'तैंतीस-कोटि हित सिंहासन तयार' किये जाने की आवश्यकता प्रतिपादित करते हुए उनका तर्क रहा है कि चूंकि 'अभिषेक आज राजा का नहीं प्रजा का है, अतः 'तैंतीस कोटि जनता के सिर पर मुकुट धरो।'[7] राजकमल चौधरी ने लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति की निन्दा करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि वह आदमी को तोड़ती तो नहीं है किन्तु उसे अपाहिज और नपुंसक बनाते हुए 'शिष्ट राजभक्त/देश प्रेमी नागरिक बना लेती है।[8]

सन 1962 के लगभग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में लोगों को मनमानी करते देखकर दिनकर ने भारत में जनतन्त्र के स्थान पर एनार्की (अराजकता) जैसी

---

1 "लोकतन्त्र को जूते की तरह/लाठी में लटकाये/ भागे जा रहे हैं सभी/सीना फुलाये।' गर्म हवाएँ, पृ० 15

2 जो भी आयेगा/समाजवाद और मानवता के नाम की/ईंटें पकायेगा/मनमाने बेडौल साँचे में/ढालेगा कच्ची मिट्टी।"—वही, पृ० 20

3 संसद से सड़क तक,' पृ० 139 4 'रण जागरण, पृ० 86

5-7 धूप और धुआं, पृ० 68, 69, 70

8 वाग्देवी', सं० सपा० नरेश मेहता, पृ० 276 77

स्थिति दिखायी है। उन्होंने इस तथ्य के प्रमाण यह दिए हैं कि यदि दिन-दहाड़े ही रेलवे का स्लीपर उठाकर ले जाते किसी व्यक्ति को टोकिए तो उत्तर मिलता है 'बड़ा बेवकूफ है अजब तेरा हाल है/तुझे क्या पड़ी, ये तो सरकारी माल है।'[1] स्वतन्त्रता का भारतीयों द्वारा गृहीत मिथ्या अभिप्राय यह है लोग हैं आजाद बिलखाने का/नेता हैं आजाद जहाँ चाहें जाने को/अफसर परम स्वतन्त्र हैं/मन्त्रीजी हजार पद लगते न मत्र हैं। दफ्तरों की दशा यह है कि साहब लोग इस तथ्य से परेशान हैं 'चपरासी देते उन्हें पानी न तो पान हैं।' कवि ने भारतीय जनतन्त्र को इस दृष्टि से अजीब बताया है कि इसमें 'नकली दवाइयों का व्यापारी स्वतन्त्र है तथा 'चोर का जो चचा है वह 'पुलिस का भी बाप है।' सड़क पर चलते हुए पैदल यात्रियों से यदि किसी कार में सवार व्यक्ति द्वारा एक ओर चलने को कहा जाये तो उत्तर मिलता है, सड़क से हट तू ही क्या न चला जाता है अथवा 'मोटर में बैठ बड़ी शान दिखलाता है/झाड़ देंगे तुमसे जो सड़क भड़क है/टोकने चला है, तेरे बाप की सड़क है।[3] इसी प्रकार चीन द्वारा आक्रमण किए जाने के सन्दर्भ में देश के कम्युनिस्टों का परामर्श है, चीन से लड़ो नहीं जर्नल चिन्तन में डूबे सोशलिस्ट कहते हैं 'कम्युनिस्ट और कांग्रेसी में क्या फर्क है?'[4] कांग्रेसी भी समझ नहीं पाये हैं कि दायें और बायें में से अर्थात् क्रमशः अमरिका और रूस में से किसकी सहायता पर भरोसा किया जा सकता है? उनमें से एक कहता है 'मारो रूस को' तो दूसरा चीखता है मारो मनहूस को।[5] अमेरिकी सहायता का विरोध करते हुए कुछ लोग गाधीजी की बात नहीं याद है/आदमी को यन्त्र कर देता बरबाद है के तथ्य की दुहाई देते हुए कहते हैं तो फिर चलायें चलो तकली/हम गाधीजी के भक्त होंगे नहीं नकली।[6] राष्ट्रीय संकट के दिनों में देशवासियों द्वारा एकमत होकर उचित कदम उठाने का निश्चय न कर पाने की स्थिति को हम 'चाय पियें और जी में जो आये बका करें' के रूप में प्रस्तुत करते हुए दिनकर के उद्गार हैं कि भारत में 'बकना ही असली स्वराज है/बाकी तो जहाँ भी देखो डाकुओं का राज है। कवि ने आगे दिखाया है कि संकट से परित्राण पाने के लिए लोग सरदार पटेल का स्मरण करते हुए नेहरू के कारण ही सारा गण्डगोल है' जैसी चर्चाएँ करते हैं और कभी राजा जी, कभी बिनोवा भावे और कभी लोहिया को याद करते हुए डेमोक्रेसी दूर करो हमें तानाशाह दो की अभिलाषा व्यक्त करने लगते हैं। कवि की यह उक्ति भी जनमानस का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है जहाँ भी सुनो, वही आवाज है/भारत में आज बस, जीभ का सुराज है।[8] ऐसी दशा में भी जनतन्त्र की गाड़ी चलते रहने के सम्बन्ध में दिनकर का यह निष्कर्ष भी उचित ही है कि भारत में जनतन्त्र या गणतन्त्र नहीं

1 8 परशुराम की प्रतीक्षा', पृ० 61 61, 62, 64 65 65 65 66 67

अपितु एनार्की का बोलबाला है।[1] पन्त ने भी इस दृष्टि से तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है कि प्रजातन्त्र का अभिप्राय यह नही होता कि लोग अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए अनेक प्रकार के मतवाद फैलाते हुए, ध्वंसात्मक आन्दोलनो के माध्यम से राष्ट्रीय सम्पत्ति को नष्ट करते रहें।[2] इसी प्रकार मैं० श० गुप्त ने भी भारतीय जनतन्त्र की ऐसी स्थिति के प्रति गहन विषाद व्यक्त किया है कि उसमे योग्यता का कोई मूल्य नही रहा है और जन-सेवा के मायावी तन्त्र को नेतागण सेवा के लिए नही अपितु पद के अर्थ प्रयोग करते हैं। उन्होने स्वातन्त्र्योत्तर-कालीन जनतांत्रिक व्यवस्था मे 'बन साहु भी चार अचानक, फिर चोरो की कौन कहे ?', राष्ट्रीय सम्पदा की लट के लिए अलग-अलग झडे फहराकर, बढ से चले नये नेता' तथा 'और देश के विजेता भी बने हमारे हित चेता की विडम्बनाओ को उभारते हुए उचित ही यह प्रश्न किया है स्वयं भ्रष्ट होने को ही क्या हमने था वह कष्ट किया ?[3]

भारत भूषण अग्रवाल ने भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों भिन्न भिन्न प्रकार की शासन पद्धतियो का प्रचलन मानते हुए 'गाँवा मे समाजवाद, शहरो मे पूजीवाद/दफ्तर म सामन्तवाद तथा 'घरो मे अधिनायकत्ववाद होने की धारणा व्यक्त की है और कहा है कभी-कभी लगता है/यही भारतत्व है।[4] लीलाधर जगूडी ने जनतन्त्र के इस नये जमाने मे पुलिस दमन की ओर इंगित करते हुए 'नागरिकता पर सबसे बडा थाना है तथा 'इस व्यवस्था मे हर आदमी कहीं-न-कहीं चोर है' की धारणाएं व्यक्त की हैं।[5] उन्होन इस स्थिति का भी उदघाटन किया है कि भारतीय जनतन्त्र म मात्र प्रदर्शनो और नारबाजी का ही महत्व रह गया है[6], तथा जनतन्त्र मे हम मात्र अपने अधिकारो का ही ज्ञान रहता है, जबकि कर्त्तव्य के नाम पर हम अपनी जातीय स्वतन्त्रता के प्रतीक राष्ट्रगान और राष्ट्र ध्वज के सम्मान मे 'हर फिल्म शो के बाद' बजते हुए राष्ट्रगान को पचास सेकिंड की असुविधा समझते हैं।[7] जगदीश चतुर्वेदी ने जनतन्त्र के स्थान पर तानाशाही म आस्था व्यक्त की है क्योकि जनतन्त्र को व लोगो को रिरियाते गीदड, पूछ हिलाते कुत्तो और

---

1 "राम जानें, भीतर क्या बल है/तब भी बखूबी यह देश रहा चल है।
गण जन, किसी का न तन्त्र है/साफ बात यह है कि भारत स्वतन्त्र है।
भिन्नता सम्भाले तार-तार की/राज करती है यहाँ चैन से एनारकी।
परशु० की प्रतीक्षा, पृ० 68

2 किरणवीणा', पृ० 220

3 अजलि और अर्घ्य', पृ० 14 15

4 'उतना वह सूरज है', पृ० 53

5 7 'नाटक जारी है पृ० 48, 49, 51

मन्त्रियों-नेताओं के कथनों की तोता रटंत करते रहने वाले खस्सी किये गये पिट्ठुओं का निर्माण करने वाली व्यवस्था मानते हैं।[1] उनकी इस अभिलाषा के प्रत्युत्तर में दिनकर का यह अभिमत प्रस्तुत किया जा सकता है कि 'जनतन्त्र में कष्ट अल्प पर शोर बहुत होता है' जबकि तानाशाही में 'जीभ बाँध जन मन ही मन रोता है।'[2] जनतन्त्र के सम्बन्ध में उनकी यह धारणा भी उल्लेखनीय है कि उसका असली मित्र विपक्षी नेता होता है जो टोकता रहता जो शासन को तथा जनसत्ता का वह गाली संगीत' होती है, 'जो विरोधियों के मुँह से झरती है।'[3]

अन्य कवियों में से सन्तोषानन्द ने प्रश्न किया है कि भारत में 'कहाँ है प्रजा का तन्त्र?' क्योंकि यहाँ का नागरिक 'कुछ लोगों का यन्त्र' बना रहता है। इससे अधिक विडम्बनामयी स्थिति और क्या हो सकती है कि आंग्ल शासन-काल में 'गुलामी जिनमें थी गुलजार' वे पूँजीपति वकील, जमींदार और राजे रजवाड़े ही स्वाधीन भारत के तख्त और ताज पर अधिकार करके 'जनजन के महाराज बने हुए हैं।[4] श्यामनारायण के शब्दों में साथ रहा है नृ शाखा का सूख रहा जब मूल रे' की स्थिति में प्रजातन्त्र का वृक्ष फलित पुष्पित हो ही कैसे सकता है? उन्होंने प्रजातन्त्र की डोली के सवाहक कहारों रूपी नेताओं के बदचलन हो जाने का भी भाव व्यक्त किया है।[5] एक अन्य कवि ने भारतीय जनतन्त्र के सम्बन्ध में यह आक्षेप किया है कि उसमें 'जनता के प्रतिनिधि जनता के/द्वारा शासन में नहीं पहुँचते हैं' अपितु वे चुनावी राजनीति से निकलते हैं/सिर्फ व्यक्तिगत और जातिगत/उन्नति का ध्येय लिए चलते हैं।[6] उसने यह आशंका भी व्यक्त की है कि यदि हमारे सांसद स्वयं को भारतीय समझने के स्थान पर हिन्दू, मुसलमान या ईसाई अथवा पार्टी विशेष का ही सदस्य समझने की भूल करते रहेंगे तो इस विघटनवादी प्रवृत्ति के फलस्वरूप 'आने वाली दासता भी दूर नहीं है।[7] अरुण प्रकाश ने भारतीय जनतन्त्र को अंग्रेजी घोड़े की लीद पर उगा हुआ कुकुरमुत्ता बताते हुए, उससे किसी उत्तम फल को प्राप्त करने की आशा को सर्वथा निराधार सिद्ध किया है।[8] भारतीय जनतन्त्र की 'कुर्सी-हथियाऊ राजनीति से खीझकर

---

1 'इतिहास हता', पृ० 33

2 3 नये सुभाषित' दिनकर पृ० 23, 24 4 'गीता के क्षण', पृ० 104 105

5 'कलाकार चट्टान और बालू पृ० 61 62

6 7 'युगयात्रा' आशु० प्र० शुक्ल, पृ० 93, 95

8 दरअस्ल/वह पेड़ कुकुरमुत्ता था/जिसे वे प्रजातन्त्र कहते हैं/× × × पच्चीस साल पहले अंग्रेजी घोड़े की लीद पर/उग आया था।'

'रक्त के बारे में', पृ० 11

सच्चिदानन्द पाडे ने कहा है कि यहा मजदूरी/खदानों, कारखानों और खेतों में नहीं/कुर्सियों में होती है।' ऐसा देश कब तक जीवित रह सकता है जहाँ के वृद्ध जन मिथ्या आश्वासन देकर कुर्सी-हथियाने के प्रयासों में लीन हो, जबकि तरुण-वर्ग अपने सकल्पों को 'प्रातीयता, जातीयता और/धर्म के फलको पर चित्रित कर' चैन की नींद सोता हो।[1] केशव पाडेय ने देश के नेता-वर्ग को 'ओ गद्दार जन तान्त्रिको!' तथा 'ओ जमाखोर किरायेदारो!' के रूप में सम्बोधित करते हुए कहा है कि हमने तो तुम्हे शरीफ लोग समझकर जनतन्त्र रूपी मकान पाँच वर्ष के लिए सौंपा था, किन्तु तुम हो कि अहाते की बगीचियाँ उखाड गये/जला डालीं छत की लकडियाँ'[2], अर्थात तुमने उसे खोखला कर डाला है। सुग्धा किशलय ने जनतन्त्र की समता बहेलिये के अहाते से करते हुए कहा है कि उसके अन्तर्गत दुआ के लिए हाथ उठाने का अभिप्राय भी किसी न किसी पुरुष रूपी पक्षी की मौत होता है।[3] बच्चन ने एक प्रतीक कथा के माध्यम से जनतन्त्र का ऐसी व्यवस्था दिखाया है जिसमे शुद्ध दूध के नाम पर जनता को सपरटा पिलाया जाता रहता है।[4] मुकुल ने जनतन्त्र की सफलता की दृष्टि से इस तथ्य पर बल दिया है कि सत्ता से जोंकों की तरह चिपकी वृद्ध पीढ़ी को हटाकर उसका स्थान तरुण-पीढ़ी को दिया जाय।[5]

(ङ) गांधीजी के नाम और सिद्धान्तों की छीछालेदर

आधुनिक काव्य प्रणेताओं में से कुछ कवियों ने यद्यपि गांधीजी की अहिंसा-नीति और उनके हृदय परिवर्तन के सिद्धान्त आदि तथ्यों की तो आलोचना की है, तथापि इस दृष्टि से सभी कवि एकमत हैं कि भारत सरकार के कांग्रेसी मन्त्रियों नेताओं ने गांधीजी के नाम और उनके सिद्धान्तों की अपनी स्वार्थ सिद्धि के उद्देश्य से बड़ी छीछालेदर की है। भवानीप्रसाद मिश्र ने उपालम्भपूर्वक इस स्थिति की ओर सकेत किया है कि छोटी-सी बात मद्य निषेध तक पर/एक मत नहीं हो सके गांधीजी के अनुयायी' अपितु बैठकर खादी की गद्दी पर ढलती हैं प्यालियाँ। गांधीजी राष्ट्रभाषा हिन्दी के समर्थक थे, जबकि 'जब चढ जाता है नशा भाषण होते हैं/अंग्रेजी में गांधी पर/जोर-जोर से बजती हैं तालियाँ।' मिश्रजी का प्रश्न है कि जब हमारे नेतागण गांधीजी के सिद्धान्तों की सर्वथा अवहेलना करते रहते हैं, तो विदेशों से आये तमाशबीनों को गांधी की झोपड़ी उनकी लाठी, उसका

---

1 2 'नये स्वर' सं०, पृ० 72, 53

3 'जनतन्त्र किसी बहेलिए का अहाता है/जब भी दुआ के लिए उठाओ हाथ/मरा हुआ पक्षी गिर जाता है।' हलफनामा, पृ० 43 44

4 'उभरते प्रतिमानों के रूप', पृ० 90 5 'पथ के पुनीत पाँव', पृ० 22

चश्मा' क्या दिखाया करते हैं।[1] सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने स्वातन्त्र्योत्तरकाल में गांधीजी से सम्बन्धित विभिन्न उपकरणों के दुरुप्रयोग का विद्रूपतापूर्वक चित्रण करते हुए दिखाया है कि उनकी लँगोटी उत्सवों में अधिकारियों के/बिल्ले बनाने के काम आ गयी' है क्योंकि 'भीड़ से बचकर/एक सम्मानित विशेष द्वार से/आखिर वे उसी के सहारे तो जा सकते हैं।' इसी प्रकार गांधीजी की लाठी का उपयोग 'एक बिगड़ी दिमाग डगमगाती सत्ता' द्वारा चलने हेतु सहारे के लिए किया जा रहा है, क्योंकि वह 'उसी को टेककर चल रही है। उनके चश्मे का सदुपयोग इस रूप में हुआ है कि 'इतने दिनों हर कोई/उसे ही लगाकर/दिखाता रहा है अंधों को करिश्मा', जबकि गांधीजी की चप्पलें गरीबी की चाँद गंजी करने के काम आ रही हैं' और उनकी घड़ी देश की नब्ज की तरह बन्द हो चुकी है। कवि की व्यंग्योक्ति है, अच्छा हुआ/तुम चले गये/अन्यथा तुम्हारे तन का/ये जननायक क्या करते/पता नहीं?" रामेश्वर शुक्ल अंचल ने व्यथापूर्वक यह भाव व्यक्त किया है कि हे बापू! तुम्हारे गीत गाते हुए 'हम तुमको ही भूल गये हैं, और आज तुम्हारे आदर्शों की छाया भी अवशेष नहीं है। हमारे मन्दिरों में पहले ही अगणित पत्थर विद्यमान थे और उनमें एक और पत्थर की वृद्धि करते हुए 'पूजा का पाषाण बनाकर हमने तुमको रख छोड़ा है। तुम्हें मन्दिर में बन्द करके 'हम पापों में भूल गये' हैं तथा बने अनतिक्ता के हैं हम आराधक।'[3]

अन्य कवियों में से प्रगतिशील रुझान के कवि ज० प्र० मिलिन्द ने यह भाव व्यक्त किया है कि हम क्रान्तिकारी लोग ही जनहित के लिए/अन्यायों के विरुद्ध/भुखमरी महगाई और भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करते हुए वास्तविक जयन्ती तुम्हारी मना रहे हैं।'[4] विठ्ठलभाई पटेल ने गांधी शताब्दी-समारोह के सन्दर्भ में यह भाव व्यक्त किया है 'बापू तुम्हारी ऐनक से/नेता केवल अपनों को पहचानते हैं' तुम्हारे उपदेश आचरण करने के लिए नहीं अपितु 'केवल समारोहों में दोहराने' भर के लिए रह गये हैं, 'तुम्हारी लाठी अब भी चलती है/विद्यार्थियों मजदूरों पर। इसी प्रकार तुम्हारा चरखा, नेताओं के ड्राइंग-रूमों का शोभा-उपकरण बन गया है, खद्दर, चुनाव टिकट पाने का प्रमाणपत्र हो गयी है, तथा सत्य अभिनन्दन ग्रन्थों में सिमटकर रह गया है। तुम्हारी शराबबन्दी की नीति की दशा यह है कि 'नेता तुम्हारी तस्वीर का मुखौटा लगाते हैं/और शराब घर से निकलकर/सड़कों पर रामधुन गाते हैं।[5] श्यामनारायण ने गांधीजी को यह व्यथा व्यक्त करते चित्रित किया है कि अरे मेरी आस्था के सच्चे उत्तराधिकारियो।

---

1 'गांधी पचशती', पृ० 337
2 'गर्म हवाएँ', पृ० 30 31
3 विराम चिह्न', पृ० 49
4 'नई किरण', पृ० 94 95
5 दीवारों के खिलाफ', पृ० 81

तुम 'धूर्तता के चेहरा पर/दिठमाव की तरह चिपकी/मेरी तस्वीर को फाड दो।'[1] कवि की निजी धारणा भी यह है कि 'गाधीजी की शक्ल म एक बहुत बडा छद्म इस देश को निगल रहा है।'[2] रमेशचन्द्र मिश्र न उचित ही कहा है कि तस्करी के वस्त्रा म परिवेष्ठित, आग्ल भाषा विदा के वग द्वारा गाधी के चित्रो को, बुतो की अपेक्षा की जाती रहती है। सम्प्रति कौए और कबूतरो की बीटा से ढँकी गाधीजी की प्रतिमाओ का 'वरदहस्त प्रेरित करता रिश्वत को/लाठी उनकी दडित करती न्यायी को।' गाधीजयन्ती वष म उनकी इस इच्छा क सवथा विपरीत कि—काग्रेसिया का शासक के स्थान पर सेवक बनना चाहिए—कुर्सिया की छीना-झपटी होते देखकर कवि का यह निष्कष उचित ही है 'बीसवी शताब्दी के उत्तराद्ध म मर गया गाधी।'[3]

(ग) चुनावो मे अनुचित हथकडे अपनाना

लोकसभा और विधानसभाओ के चुनावा क अवसर पर विभिन्न दलो क उम्मीदवारो द्वारा जिस प्रकार वोटरा से मिथ्या वायदे करके और अनुचित हथकडे अपनाकर चुनाव जीतन की चेष्टा की जाती है उसकी अधिसख्य कवियो ने निन्दा भत्सना की है। चुनाव प्रणाली क स्वातन्त्र्योत्तर काल म पनपे दोषा मे स कुछ दोष दासता-काल म भी विद्यमान थे। हरिऔध न सन् 1924 म प्रकाशित 'चुभते चौपदे' म उन लोगा की भत्सना की है जो धन लेकर वोट देने पर भी सभाओ म अपनी ऐंठ दिखाया करते थे।[4] एस लोगो को उन्होंने उठल्लुआ (हाथ उठान वाले) की सज्ञा प्रदान करते हुए वितृष्णापूवक कहा है कि य बिके हुए लोग, जनता की दृष्टि म बडे बेआबरू रहते हैं और उन्होंने स्वय भी उनके लिए क्या कमीन बन कमाते हैं टका ?' के साथ ही नीच विशेषण का भी प्रयोग किया है।[5] सन 1927 म प्रकाशित 'हिन्दू' म गुप्तजी न मतदान मे जातिवाद का विष परिव्याप्त दिखाते हुए यह भाव व्यक्त किया था कि वण, गोत्र या दलबन्दी क आधार अथवा किसी दबाववश मतदान करना, अपन फँसने के लिए स्वय ही जाल बनाने तुल्य है।[6] कहना न होगा कि सन्दभगत दोनो ही दोष स्वातन्त्र्योत्तर कालीन चुनावा म बुरी तरह घर किये हुए हैं, जबकि सद्धान्तिक स्तर पर सभी दला द्वारा चुनाव रणनीति म जातिवाद या धन द्वारा वोट खरीदने की प्रवृत्ति

---

1 'काई की ऊँचाई', पृ० 40 2 वही, पृ० 41

3 'क्या होगा नामकरण', पृ० 32 33

4 वोट देते हैं टके की ओट म हैं सभाओ म बहुत ही ऐंठते।
'चुभते-चौपदे', पृ० 140

5 वही, पृ० 141 6 'हिन्दू', पृ० 94

की तीव्र निन्दा की जाती रहती है।

स्वातन्त्र्योत्तर-कालीन चुनावों में सिद्धान्तहीनता की दशा की ओर इंगित करते हुए पंत ने कहा है कि इस अवसर पर विभिन्न दल पशुत्व के स्तर पर उतर आते हैं और एक-दूसरे से साँडों की तरह भिड़ते हुए विपक्षी के झंडों को उखाड़ फेंकने आदि कृत्यों में संलग्न होते हुए परस्पर घूसबाजी भी करने लगते हैं। उनके द्वारा नियोजित गुंडे हुल्लड़ मचाते हुए 'बला की जोड़ी भड़की, झोपड़ी जली धू धू कर/घर फूंक दीप से बचना' आदि नारे लगाते रहते हैं जिससे हत बुद्धि हुए मतदाता कुढ़ते हुए यह सोचने लगते हैं कि यदि मौका मिले तो हम मतदान पेटियों में वोटों के स्थान पर पत्थर डाल आयें।[1] ज० प्र० मिलिन्द के शब्दों में चुनावों में बाँटे जा रहे हैं नोट मिले वोट की स्थिति अक्सर ही देखी जा सकती है। नोटों द्वारा वोट खरीदने के लिए प्रायः इलाके के 'मुखिया बुलाये गये × × × पेशगी में बाँट दिये रुपये' की पद्धति अपनायी जाती है। मतदाताओं को प्रभावित करने के लिए 'वक्ता भजनीक और भाटों' के साथ ही लाउडस्पीकर प्रेस और बड़ों का भी आश्रय लिया जाता है, जबकि उन्हें मतदान-केन्द्रों तक लाने के लिए जीपों और कारों आदि का।[2] एक अन्य कवि ने कहा है कि जब मैंने मतदान करना चाहा × × × हाथों में मतदान पत्र की जगह/एक दस का नोट पाया।[3] चुनाव के दिनों में गन्दी-बस्तियों की जिन्दगी में रौनक आ जाती है क्योंकि 'एक यह भी है चमन वोट के बीमारों का' के रूप में वे विशेषतया धन के बल पर चुनाव जीतने के अभिलाषी प्रत्याशियों की आशा का मुख्य केन्द्र होती हैं। इस स्थिति से खीझकर नीरज ने वितृष्णापूर्वक कहा है कि क्या इस प्रकार की ही आजादी को प्राप्त करने के लिए हमने अनेक प्रकार की कुर्बानियाँ दी थीं ?[4] एक अन्य कवि ने चुनावों को पूँजीपतियों का आम आदमी के विरुद्ध चलने वाला षड्यन्त्र घोषित करते हुए कहा है कि उनके अन्तर्गत नोट और वोट का समीकरण मुट्ठी भर लोगों का हित-संरक्षण करते रहने का पर्याय बन गया है। कुछ चतुर धनवान लोग उम्मीदवार रूपी घोड़ों पर दाँव लगाते हैं और बाद में अपने विजेता

---

1 ' सिद्धांत छोड़ पशु बल पर, उतरे अब प्रतिपक्षी दल।/झंडे उखाड़ घूँसे जड़, साँडों से भिड़ उच्छृंखल।/बला की जोड़ी भड़की झोपड़ी जली धू धू कर।/घर फूंक दीप से बचना हुलस गुंडे हुल्लड़ भर।/ताकते एकटक पशु से, मंत्राभिभूत हत जनगण।/हो ओट वोट दें पत्थर, कहते कुढ़ हँस मन ही मन।" 'लोकायतन', पृ० 162

2 'भूमि की अनुभूति', ज० प्र० मिलिन्द, पृ० 73 77

3 'नये स्वर', सक०, नन्दकिशोर तिवारी, पृ० 16

4 'नीरज की पाती', पृ० 18

प्रत्याशियों के माध्यम से ऐसी व्यवस्था का निर्माण कराते हैं जो 'गरीबी की बिक्री म/मुनाफाखोर का काम करती है।'[1]

धूमिल ने दूषित चुनाव प्रणाली को जनतान्त्रिक व्यवस्था की एक अपरिहार्य बुराई के रूप म चित्रित किया है। उनके अनुसार यद्यपि नेतागण एक-दूसरे से नफरत करते हैं तथापि वे इस बात पर सहमत रहते हैं 'कि इस देश म असंख्य रोग हैं/और उनका एकमात्र इलाज चुनाव है।' जनता भी जानती है कि चुनावों म 'जाति और धर्म और सम्प्रदाय और/पेशा और पूंजी के असंख्य कीड़े' किल बिलाते रहते हैं, फिर भी वह इस सन्ताप को चुपचाप सहन करती रहती है। कवि ने जनता की भी इस दृष्टि से भर्त्सना की है कि उसको मलाल, भय या लाज की अनुभूति नहीं होती और वह यह सोचकर सन्तोष कर लेती है कि चलो 'उन्हें एक मौका मिला है/और इसी बहाने/वे अपने पड़ोसी को पराजित कर रहे हैं।'[2] मतदाताओं की विडम्बनामयी स्थिति को उभारते हुए बलदेव वंशी ने उसकी भँवर म डूबते हुए व्यक्ति से तुलना की है।[3] एक अन्य कवि ने विश्व के महान गणतन्त्र भारत के मतदाता का जो 'सब कुछ देता है, कुछ नहीं पाता,'[4] के रूप मे परिभाषित करते हुए उसके मुख से 'मैं उल्लू का पट्ठा हूँ'[5] तथा 'दरअसल मैं आदमी नहीं/धन चक्कर हूँ/आजादी के/सड़े पानी म पैदा हुआ/एक विचित्र नस्ल का मच्छर हूँ'[6] जैसे विद्रूपात्मक उद्‌गार व्यक्त कराये हैं। कुमार विकल ने कहा है, 'मैं कितना भोला हूँ/कि हर पाँचवें साल/एक परची देकर बहला लिया जाता हूँ।'[7] श्याम-नारायण ने नेताओं के धूर्ततापूर्ण भाषणों के भुलावे म फँसने वाली भारतीय जनता को उस गाय से उपमित किया है 'जो भूस भर बछड़े को प्यार से चूमती रहती है और 'कसाई गाय का दोहन करते रहते हैं।'[8] चुनावों के अवसर पर दिये जाने वाले

---

1 "धीरे धीरे लोग समझने लगे हैं/कि बहुत बड़ा गड़बड़झाला है/हमारा ये चुनाव-तन्त्र/नोट के बराबर का वोट/और वोट के बराबर का नोट/ × × × फायदा सिर्फ वे मुट्ठीभर लोग उठाते हैं/जो राजनीतिक धारा पर दाव लगाते हैं/और जीत जाते हैं।'

'अँधेरे से लड़ते हुए', मा० मधुकर, पृ० 72 73

2 'संसद से सड़क तक', पृ० 130-31

3 "तुमने भँवर म फँसे डूबते आदमी को देखा है/ठीक ऐसे ही जीवन को लेकर फँसे हैं यहाँ के मतदाता/बँधी टाँगों से उचक-उचक चलते हैं/जूलते।"

'उपनगर म वापसी', पृ० 22

4 6 'हलफनामा' सुरेश किसलय, पृ० 44, 46, 72

7 'निषेध', सं०, पृ० 164

8 'काई की ऊँचाई', पृ० 54

आश्वासनों में खोखलेपन को उभारते हुए विशाल त्रिपाठी ने कहा है कि यदि तुम्हारे गाँव तक सड़क नहीं बनी है तथा 'कुएँ की गहराई ऊँचाई में बदल गयी/नदी का पुल पाँव नहीं जमा सका/अमीर और अमीर हो गये/गरीब और गरीब तो चिन्ता की बात नहीं है, क्योंकि 'वह दिन फिर आयेगा/मर-मरकर जीने वाली गरीबी का/गला घोटा जाएगा/फिर चुनाव आयगा।[1]

(ट) संसद और सांसद तथा मन्त्रियों का भ्रष्टाचरण

आधुनिक काव्य प्रणेताओं ने संसद और सांसदों के सम्बन्ध में विद्रूपात्मक उद्गार व्यक्त करते हुए मन्त्रियों के भ्रष्टाचार की तीव्र निन्दा की है। संसद के सम्बन्ध में धूमिल द्वारा वितृष्णा एवं आक्रोशपूर्वक यह धारणा व्यक्त की गयी है कि कहने के लिए तो संसद को देश की धड़कन को प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण स्वीकार किया जाता है, और उसे जनता का जनता के विचारों का नैतिक समर्पण माना जाता है जबकि वस्तुस्थिति यह है कि भारतीय संसद तेली की उस घानी की तरह है जिसमें आधा तेल और आधा पानी मिला हुआ हो। उस तेल और पानी अर्थात् सत्य और झूठ के सम्मिश्रण के कारण ही भारतीय संसद में सच बोलने वाले सदस्यों को बड़ी दुर्गति भोगनी पड़ती है।[2] रघुवीर सहाय ने भारतीय संसद को ऐसा राष्ट्र मंदिर बताया है जिसमें भ्रष्ट-से भ्रष्ट सांसदों को भी देश द्रोही नहीं कहा जा सकता। यही कारण है कि उसमें राष्ट्रीय सम्पदा रूपी दूध को डकारकर सदस्य मुँह पोछकर जा बैठते हैं और बेइमान मन्त्रियों में से किसी का भी अपराध सिद्ध नहीं हो पाता। जैसे ही किसी मन्त्री पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया जाता है, तो आरोपकर्त्ता को गृहमन्त्री इशारे से समझा देता है "कहते तुम ठीक हो चुप रहो और मेरे साथ बेईमानी में शरीक हो।[3] भ्रष्टाचार का आरोप लगाये जाने पर संसद में दूसरा रास्ता यह अपनाया जाता है कि तोता रटन्त जैसा यह उत्तर सुनने को मिलता है, "मामला बताओ हम कार्यवाही करेंगे"। यदि

1 सांस की अधारी', पृ० 37 38

2 'कि संसद/देश की धड़कन का/प्रतिबिम्बित करने वाला दर्पण है/जनता को/जनता के विचारों का नैतिक समर्पण है/ × × × अपने यहाँ संसद तेली की वह घानी है/जिसमें आधा तेल और आधा पानी है/ × × × वह एक ईमानदार आदमी को/अपनी ईमानदारी का/मलाल क्या है ? जिसने सत्य कह दिया है/उसका बुरा हाल क्या है ? 'संसद से सड़क तक', पृ० 140

3 "राष्ट्र की/संसद एक मंदिर है जहाँ किसी को द्रोही नहीं कहा जा सकता/दस मन्त्री बेईमान और कोई अपराध सिद्ध नहीं।"
आत्महत्या के विरुद्ध', पृ० 85 86

विपक्षी दलों के सदस्य 'हाय ! हाय !!' के नारे लगाने लगते हैं, तो सरकारी पक्ष का हाँ/हाँ करता हुआ है/हैं करता हुआ दल का दल/पाप छिपा रखने के लिए एकजुट हो जाता है। इस हाँ हाँ, हैं-हैं वादी दूषित राजनीति का नसर्गिक परिणाम यह निकलता है कि संसद में 'जितना बड़ा दल होगा' वह 'उतना ही खायेगा देश को।'[1] देश के संसाधनों की लूट में विपक्षी नेताओं को भी कोटा-परमिट आदि देकर हिस्सेदार बना लिया जाता है।[2] भवानी प्र० मिश्र ने संसद को खोखले प्रजातन्त्र का ऐसा सफेद हाथी बताया है जिसमें गांधीजी के अनुयायियों द्वारा उनकी इच्छाओं का खून होता रहता है और सांसद कृषकों की ओर से बोलने का दिखावा करते हुए वक्त भर जाया करते रहते हैं।[3]

सांसदों मन्त्रियों के अमर्यादित आचरण एवं विलासमय जीवन की अनेक कवियों द्वारा तीव्र भर्त्सना की गयी है और उन्होंने उन पर विभिन्न प्रकार के आक्षेपों की वर्षा की है। पंत ने कहा है कि कहने को तो हमारे नेतागण स्वयं को जनता के सेवक बताते हैं, किन्तु वे सामान्य जन जीवन के कोलाहल से दूर नगरों में सुसज्जित सौधों में निवास करते हैं। उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में थोड़े दिनों की जेल क्या भोग ली थी कि अब वे उसको इस रूप में भुना रहे हैं कि भारतमाता के शव को नोच-नोचकर खाते रहते हैं।[4] निष्काम देश सेवकों का वह युग सम्प्रति बीत चुका है जब सच्चे देश सेवकों ने जेलों में कंकड़ कूटने चक्की और कोल्हू चलाने जैसे कष्ट तो सहन किये थे, तथापि जिन्होंने न कभी उगाहाया, श्रम तप का मूल्य अधेला।[5] अपनी एक अन्य कृति में भी उन्होंने देश के शासक वर्ग पर इसी प्रकार का आक्षेप करते हुए कहा है कि ये 'शक्ति मोह पद मद की स्वप्न भरी निद्रा में/अनाचार संतापों की गहरी छाया में, सुख-सम्पत्ति सुलभ सुविधाओं की शैया पर कुंभकर्ण की तरह सोये रहते हैं।[6] उन्होंने प्रश्न किया है कि क्या सुशासन का अभिप्राय यह होता है कि भारत जैसे निर्धन देश के विधायक स्वयं को जनता

---

1 'आत्महत्या के विरुद्ध' पृ० 85 86

2 "और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए/नेता के भाइयों के नाम/सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का कोटा है?" 'संसद से सड़क तक' धूमिल पृ० 90

3 गांधी पंचशती', पृ० 336 37

4 "जन सेवक अब नेता बन, रहते नगरों में सुख से/सौधों में सजे सुरक्षित, नाता न जनों के दुःख से। × × × पकड़े दाँतों पंजों से, भारत मां का शव जर्जर/जन हित नारा क्या भोगी, करते वसूल उसका कर।"

'लोकायतन', पृ० 160

5 वही पृ० 160

6 किरण वीणा', पृ० 224

के सेवक बताते हुए भी 'सम्राटों से रहें उच्च वेतनभोगी बन ?' तथा 'निखिल देश की सुविधाओं का अधिकृत कर/राज्य करें जीवन मृत हड्डी के ढाँचा पर।'[1] कांग्रेसी नेताओं के धूर्ततापूर्ण आचरण से विक्षुब्ध होकर उन्होंने यह माँग भी की थी कि वे 'जनश्रम की प्रतीक पावन खादी के वस्त्र' पहनना छोड़ दें क्योंकि ये 'गांधी के वल्कल' भी 'शासकगण के काले कर्मों को ढँकने में असमर्थ आज हैं।'[2] दिनकर ने मंत्रियों के संबंध में विद्रूपात्मक किन्तु पूर्णत सटीक यह टिप्पणी दी है कि जब तक कोई विधायक मंत्री नहीं बन जाता, या वह मंत्री की कुर्सी को त्यागने के लिए विवश कर जाता है तो उसको सारा शासन चक्र भयानक पुंज पाप का/और शासकों का दल चोर नजर' आया करता है। किसी भूतपूर्व मंत्री की मुख्य पहचान ही यह है कि वह जोर-जोर से कहता है यह सरकार बहुत पापी है।[3] उन्होंने मंत्रियों को यह सत्परामर्श भी दिया है कि वे अपने मंत्रित्व-काल में पापों को ढील न दें अन्यथा मंत्री-पद से हट जाने पर जब तुम भ्रष्टाचार के विरुद्ध आवाज बुलंद करोगे 'तो लोग हँसेंगे।'[4] मुक्तिबोध ने भ्रष्टाचारियों में मंत्री विधायक, उद्योग पति और अफसरों का तालमेल दिखाते हुए घृणापूर्वक कहा है कि उनका सदसद विवेक लुप्त हो जाता है और आत्माएँ मर जाती हैं। दिन के प्रकाश में तो ये सफेद-पोश लोग बड़े सज्जन प्रतीत होते हैं जबकि उनकी दूषित काली आत्माएं घरों-दफ्तरों-केन्द्रों में अपने राक्षसी स्वार्थों की पूर्ति के षडयंत्र रचती रहती हैं।[5] कैलाश वाजपेयी ने इस भ्रष्टता की ओर संकेत करते हुए कहा है 'मैंने बनाये थे जो बाँध/बह गये/फिस्स हो गये कारतूस एन वक्त पर' तो मैं क्या करूँ ? क्योंकि चतुर्दिक भ्रष्टाचार का ही बोलबाला है।[6] इसी प्रकार हमारे भ्रष्ट नेताओं की भ्रष्ट अफसरों से मिलीभगत के फलस्वरूप 'नलकूप नहर बड़े-बड़े जलागार/फाइलों की धुंध में गुम हो जाते हैं। उनके विषय में संसद में पूछताछ करने पर 'तलाश जारी है' का घिसापिटा उत्तर देते रहने के बाद मामले को दबा दिया जाता है।[7]

देश के नेताओं पर अन्य कवियों द्वारा किये गये अनेकानेक प्रकार के व्यंग्याक्षेपों में से कतिपय इस प्रकार हैं राजा दुबे का आक्षेप है कि स्वातंत्र्योत्तर-काल में उभरे नेताओं में से बहुत-से ऐसे हैं जो दासता-काल में पेटीकोटों में छिपे रहते थे और कैनेडा से अपने नाखून मात्र ही कटाकर आजकल शहीदे-नाज कहलाने लगे हैं। कवि ने ऐसे लोगों को मंत्री-पद मिलने की निन्दा उल्लुओं के सिर पर ताज

---

1 2 'किरण-वीणा', पृ० 221, 221
3 4 नये सुभाषित पृ० 22, 23
5 चाँद का मुह टेढ़ा है पृ० 256 57
6 देहान्त से हटकर' पृ० 134 35
7 'रक्त के बारे में' अरुण प्रकाश, पृ० 26

रखे जाने के रूप में की है।[1] विट्ठल भाई पटेल ने भी इस दृष्टि से गहन खेद व्यक्त किया है कि वे स्वतन्त्रता सेनानी जो स्वाधीनता आन्दोलन के दिनों में सबसे आगे रहकर स्वाधीनता के झंडे को ऊँचा रखते हुए पुलिस से मार खाते रहे थे वे स्वातन्त्र्योत्तर काल में 'धूप में आये/बादल से गुम हो गये हैं।' विडम्बनामयी स्थिति यह है कि आजादी मिलने के पश्चात 'उनकी जिन्दगी सँवर गयी है 'जो आजादी की लड़ाई में/घरों में रहे/अँग्रेजों के सामने झुके रहे' थे, जबकि सच्चे 'स्वतन्त्रता के सेनानी बने रहे सतरी' की नियति भोग रहे हैं।[2] नागार्जुन ने काँग्रेसी सासन्दों मन्त्रियों में 'जमादार हैं, साहूकार हैं, बनियाँ हैं, व्यापारी हैं' का प्राधान्य बताते हुए कहा है कि वे 'अन्दर-अन्दर विकट कसाई, बाहर खद्दरधारी हैं।' इसी क्रम में उन्होंने खादी और मलमल की सांट गाँठ का उल्लेख करते हुए यह भाव व्यक्त किया है, 'बिड़ला टाटा डालमिया की तीसों दिन दीवाली' रहती है।[3] कैलाश वाजपेयी के भाषणबाज नेताओं के सम्बन्ध में यह उद्गार जन धारणा का ही मुखरित रूप हैं 'लीडर और कुत्ते सबके सब बोलने के मरीज हैं/सबके सब एक दूसरे की आँखों में बदतमीज हैं।'[4] धूमिल ने एक ओर तो हमारे राष्ट्रपिताओं के इस सभ्याचरण का उल्लेख किया है, 'शब्दों के जंगल में हम/एक-दूसरे को काटते थे/भाषा की खाई को/जुबान से कम और जूतों से/ज्यादा पाटते थे।'[5] इसके साथ ही उन्होंने नेताओं की इस धूर्तता का भी उद्घाटन किया है कि वे राजनीतिक प्रपंच के रूप में ही जनता के भूखों मरने की अथवा देश धर्म और नैतिकता की दुहाई दिया करते हैं, अन्यथा उनके मानवोचित दया धर्म और करुणा आदि गुणों का सर्वथा ह्रास हो जाता है।[6] भवानीप्रसाद मिश्र ने भी इस संदर्भ में यह भाव व्यक्त किया है कि यदि हमारे संवेदना शून्य नेताओं के शरीरांग लोहे या लकड़ी से निर्मित होते तो और भी उत्तम

---

1 'उल्लुओं को मिले सिंहासन, गधों के सिर पर ताज हैं/ब्लेडों से काटकर नाखून हो गये कुछ यों भी शहीद नाज हैं/कल तक छिपे रहे जो, जंग आजादी में किसी पेटीकोट के भीतर/वही आज शासन के कलपुर्जे, हिन्दोस्तां के रामराज हैं।' 'एक हस्ताक्षर और', पृ० 80

2 'दीवारों के खिलाफ', पृ० 74

3 'आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नागार्जुन', सपा० प्रभा० माचवे, जीवनवृत्त, पृ० 12 13

4 संक्रांत, पृ० 71

5 'संसद से सड़क तक', पृ० 112

6 "उनकी सख्त पकड़ के नीचे/भूख से मरा हुआ आदमी/इस मौसम का सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय/सबसे सटीक नारा है/ × × × अफवाहों के पुलिन्दों को फेंकते हैं/देश और धर्म नैतिकता की दुहाई देकर/कुछ लोगों की सुविधा/दूसरों की हाथ पर सेंकते हैं।" वही, पृ० 120

था क्योंकि तब उन्हें सभी प्रकार के अपमानों को पी जाने तथा मारपीट को सहन करने में सुविधा हो जाती।[1] राजेन्द्र प्रसमाना ने नेताओं में 'उचक्का, मूर्खों, लफंगों का प्राधान्य बताते हुए कहा है कि वे देश के अभावों का तूफानी दौरा सं/कारों न/भाषणों से/पाटते रहते हैं।'[2] जयनाथ नलिन के अनुसार आजकल सच्चा और सफल नेता वही है जो देश पर बलिदान दे दूसरों का/दूसरों की हड्डियों की जो निर्मित करे मचानें और फिर 'चढ़ उन्हीं पर शेर सा निर्भय दहाड़े।' उसका सिद्धान्त यह रहता है कि यदि वह किसी संकट में फँसकर मर गया तो 'कौन उजड़े देश की हालत सँभालेगा' अतः वह चन्दा डकारने के अतिरिक्त अन्य कोई धंधा नहीं करता और माल खा मिल मालिकों का शान से जुगाली करता रहता है।[3] कवियों द्वारा नेताओं के लिए अनेक दुर्विशेषणों का प्रयोग किये जाने के संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि उनसे घिरे रहने वाले प० जवाहरलाल नेहरू ने भी लिखा है कि 'हाँ, निस्सन्देह तमाम सार्वजनिक आंदोलनों की तरह कांग्रेस की हलचल में भी बहुत से नामाकूल बेवकूफ निकम्मे और इससे भी बदतर लोग आये हैं और हैं।'[4]

सांसदों द्वारा सदन में गाली-गलौज, हाथा-पाई तथा जूता-पट्टी करने जैसे अमर्यादित आचरणों की भी तीव्र भर्त्सना की गयी है। देवेन्द्र उपाध्याय का यह प्रश्न स्वाभाविक ही है कि जनता का चारित्रिक उत्थान हो ही कैसे सकता है जब 'संविधान समझाना चाहते हैं हम/सदनों में लड़ते हुए राजनीतिज्ञ।' उनकी लड़ाई भी तो तर्कों की नहीं होती अपितु वे 'चप्पलों, कुर्सियों या माइकों की छीना-झपटी करते हुए योद्धा की भूमिका निभाते हैं और सदन में मार्शलों द्वारा कंधों पर लादकर बलात् बाहर निकाले जाते रहते हैं। कवि ने विद्रूपपूर्वक इस तथ्य का उल्लेख किया है कि सदन से बलात् निकाले जाते समय इन राष्ट्रपिताओं के मुख पर मसीहाई मुस्कान थिरकती रहती है और भीड़ में आकर वे चीखते हैं कुछ निरर्थक नारे और शब्द।' उनके निरर्थक शब्दाडम्बर से ऊबी हुई जनता तालियाँ पीटकर/चैन की साँस लेती है किन्तु वे बेहया सांसद ऊब का प्रतीक तालियों को अपनी लोकप्रियता का प्रमाण मानकर अलस्सुबह/अखबारों में खोजते हैं/अपने

---

1 'तुम्हारा चेहरा लोहे या लकड़ी का होता/तो भी ऐसा ही लगता/आँखों की जगह होते दो छेद/या वे कौड़ियों की बनी होती तो क्या फर्क पड़ता/ पुर्जे हिलते भावों की जगह/तो क्या तुम आज से अधिक पूर्ण न होते। गांधी पचशती', पृ० 277-78

2 परवलय', पृ० 107

3 'धरती के बोल', पृ० 67

4 मेरी कहानी', पृ० 231 32

गुम हो गये चेहरे और विचार।[1] दिनकर सानवलकर ने भी सासदो द्वारा 'विधान सभाओ के भीतर गाली गलौज करने, कुर्सियां फेंकी जाने प्रस्तावों की प्रतियों को फाड़ने और परस्पर फ्री-स्टाइल कुश्तियाँ लड़ने का यह विद्रूपात्मक हेतु निर्दिष्ट किया है कि वे 'जनता के कल्याण के लिए' उक्त तथ्यो का नाटक कर रहे होते है। इसी प्रकार 'विधान-सभा के बाहर/जनता के हिमायती दुकानें जला रहे हैं/सम्पत्ति लूट रहे हैं/दंगे करा रहे हैं/किसलिए? जनता के कल्याण के लिए। जनता के कल्याण के नाम पर विधायकों द्वारा करायी जाने वाली इस लूट-पाट और आगजन के सम्बन्ध मे कवि की यह व्यंग्योक्ति सर्वथा उचित और सटीक है 'अजीब है यह जनता/क्या इससे खुद/कुछ भी करते नही बनता?/बेचारी दूसरा के भरोसे रहती है' तथा 'भूख से गोली न मरती है।[2] विधायको की क्षुद्रता की ओर 'सिंहासन ऊंचा है सभाध्यक्ष छोटा है' के रूप मे इंगित करते हुए रघुवीर सहाय ने उनके सम्बन्ध म घृणापूर्वक कहा है कि अंधे, लूले लँगड़े बहरे सरकारी-लड़को की दुर्गंध से मदन बुरी तरह सड़ाँध छोड़ता' रहता है।[3] बच्चन ने नेताओं की बेहयाई और जनता की नापुंसकता को उभारते हुए कहा है कि देश की जनता पर सवारी गांठकर उसे कभी प्रतारणा और कभी प्रलोभन द्वारा ऐसे मरुस्थल मे जहाँ न कोई पथ स्पष्ट है/और न लक्ष्य ही भगाते रहने वाले नेताओं के प्रति हमने इसके अतिरिक्त और क्या किया है कि 'उनको हमने बहुत किया/मुह चिढा दिया है।' इस तथ्य को उनकी बेसमझी, बेहयाई या राजनीतिक चातुर्य कुछ भी क्यो न कहा जाये हाँ नेताओं ने हमारे मुह चिढ़ाने की ओर ध्यान ही नही दिया है उसका नेताओ ने नोटिस नही लिया' है।[4] हमारे ये व्यग्य, हमारी नापुंसकता के ही प्रतीक हैं।[5] कैलाश वाजपेयी तो सासदो के अमर्यादित नग्न नाच से इतने अधिक क्षुब्ध हुए हैं कि उन्होंने उनके सम्बन्ध मे मानवीय गुणों की चर्चा करना ही अनर्गल घोषित कर दिया है।[6]

---

1 मुट्ठियो म बन्द आकार, सक०, पृ० 31 2 'अ स असभ्यता', पृ० 16

3 'अगणित पिताओ म/एक परिवार के/मुह बाये बैठे हैं लड़के सरकार के। लूले कान बहरे विविध प्रकार के/हल्की-सी दुर्गंध स भर गया है सभाकक्ष।' आत्महत्या के विरुद्ध', पृ० 16 17

4 उभरते प्रतिमानों के रूप, पृ० 136

5 यह जो व्यग्य किये हैं/सच पूछो तो/इनसे अपना नपुंसकत्व ही सिद्ध किया है।' वही पृ० 136

6 करने दो उन्हे नग्न नाच/वे विधायक हैं/हर धड़कती हुई नब्ज के/ क्या हुआ? अगर दल विरोधी/कुछ औंधे बुद्धि दबा दिये गये जेल म/निर्वासित हो गये/कर मरे/आत्मघात/क्या रखा है? कला फ्ला/शब्द अर्थ म।

देहान्त से हटकर', पृ० 13-14

भारतीय राजनीति के आयाराम-गयाराम के दूषित राजनीतिक दुष्चक्र ने भ्रष्ट राजनीति के सभी पैमाना को ध्वस्त कर दिया है। कहना न होगा कि जन मानस से रही-सही नैतिकता का जनाजा निकालने की दिशा म हमारे उन नैतिकता शून्य नेताओ का पर्याप्त हाथ है जो लाख-दो लाख रुपये लेकर कभी कभी तो एक ही दिन म दो बार तक दल बदलते रहे हैं। इस सदभ म रमेश गौड ने वितृष्णापूवक उचित ही कहा है लाल टोपी पहनकर गया हुआ विधायक/सफेद टोपी पहनकर लौट आता है, और सफेद वाला काली/इसके अतिरिक्त कुछ भी तो नही बदलता/न स्वागत समारोह/न सभाएँ/न भाषण/न आश्वासन/सिफ किसी का काला धन सफेद हो जाता है/और किसी का थूका हुआ खून पानी। उनकी इस धारणा के मूल म भी सामान्य जन चिन्तन स्पदित हो रहा है कि भारत की सम्पदा उस घास की तरह है 'जिसे पहले एक बकरी चर रही थी/और अब बैलो की जोडियाँ और गऊ माताएँ/भेडा का जुलूस पूरे जोर से गाता है/राष्ट्रीय गान सदन म जमकर दल-बदलू विभीषणो का राजतिलक होता' अर्थात उन्ह मन्त्रि-पद की शपथ दिलायी जाती है।[1] रघुवीर सहाय के शब्दो म विरोधी दल का महामंत्री जब गाकर सुनाता है/जनवादी वादो की घोषणा तब यह घोषणा जनता के लिए नही होती अपितु वह विरोधियो का प्रमाण-पत्र दे रहा होता है 'कि मैं दल-बदल के लिए योग्य व्यक्ति हूँ।'[2] केशव पाडेय की अभिलाषा है कि कितना उत्तम होता यदि भारतीय विधायक/मूगफली और छोला की तरह सस्ता न होता।[3] श्यामनारायण के अनुसार स्वातन्त्र्योत्तर कालीन भारत की दशा यह है कि बढ गया है/कुर्सियों का दाम और चेहरा पर चिपक गया है दल बदल का इनाम।[4] नीरज ने बडी व्यथापूवक इस तथ्य का उल्लेख किया है कि हमारे देश के स्वार्थान्ध नेताओ ने आजादी और भारतमाता की चोली तक को चोर-बाजार मे बेच दिया है। वे गाधीजी का कफन चुराकर महलो मे जा छिपे हैं जिसस गाधीजी के दरिद्र-नारायण की अर्थी तक नगी रह जाती है जबकि इस तथा कथित रामराज्य म न जाने कितनी सीताओ का लज्जापहरण होता रहता है।[5] भ्रष्ट नेताओ के इसी प्रकार के अधमाचरण को उद्घाटित करते हुए शिशु रश्मि ने भारतमाता के मुख से व्यथापूवक कहलाया है कि वे मेरे आभूषणो तक को विदेशी बैंको म जमा कराने जा रहे हैं और यदि मौका मिला तो उन्हे झडे तथा टोपी की

---

1 निषेध, सक० पृ० 186
2 आत्महत्या के विरुद्ध पृ० 81-82
3 'नये स्वर' पृ० 51
4 'काई की ऊँचाई', पृ० 42
5 'प्राणगीत', पृ० 62

आड में देश को बेचने में भी लज्जानुभव नहीं होगा।[1] विभिन्न दलों के स्वार्थान्ध नेताओं के मिथ्या तर्कों खोखले आश्वासनों और अवांछनीय छींटाकशी में फँसी जनता अब यह अनुभव करने लगी है कि उसे भाषण नहीं—राशन चाहिए। उसको 'घेराव स्ट्राइक धरना, बन्द /फटे-नुचे/आधे वाक्यों में भाषण करते नेताओं के विषय में इस तथ्य का ज्ञान हो चुका है कि उन तथ्यों के माध्यम से नेतागण अपनी-अपनी पार्टी का विज्ञापन करते/अगले इलेक्शन की तैयारी में लगे रहते हैं,[2] अर्थात उनका जनता की सुख-समृद्धि की अभिवृद्धि की ओर रंचमात्र भी रुझान नहीं होता।

(ट) सीमा-संघर्ष तथा राष्ट्रीय एकता

आधुनिक काव्य में भारत के पाकिस्तान और चीन से हुए सीमा संघर्षों के अवसर पर देश में अभूतपूर्व राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न होने के तथ्य की अभिव्यंजना हुई है। इन आक्रमणों को भारत की सभ्यता और संस्कृति[3] तथा जातीय गर्व पर[4] प्रहार किये जाने की चेतना भी व्यक्त हुई है। कहना न होगा कि यह नूतन मनोदृष्टि आधुनिक काल की ही देन है, क्योंकि इससे पूर्व भारतवासियों में अपने राज्य या क्षेत्र विशेषों को ही सर्वस्व समझने की संकीर्ण चेतना विद्यमान थी। कवियों ने उन भारतीय वीरों के अप्रतिम शौर्य की भी मुक्त-कंठ से सराहना की है जिन्होंने अपने प्राणों की बाजी लगाकर शत्रु-पक्ष के दाँत खट्टे किये हैं। इन संघर्षों में से प्रथम संघर्ष स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद ही कश्मीर में पाकिस्तानी घुसपैठियों के अनधिकृत प्रवेश को लेकर हुआ था। रघुवीरशरण मित्र ने कश्मीर के राजा हरीसिंह और शेख अब्दुल्ला द्वारा भारत से सहायता की याचना करने पर भारतीय सेनाओं के तुरन्त ही वायुयानों द्वारा कश्मीर में जा उतरने के तथ्य

1 मेरे अगरक्षक/मेरे बेटे चाँद और सूरज/मेरे गहने उतार-उतारकर/विदेशी बैंकों में जमा कर रहे हैं/श्रद्धा की आड में/मेरे बेटों ने मेरा त्रिशूल गायब कर दिया है/टोपियों की आड में/ये तिरंगे का सौदा कभी भी कर सकते हैं।
कलम से कटा हुआ सूरज, पृ० 23

2 पूर्ण गलत पाठ स्नेहमयी चौधरी पृ० 49

3 (क) माँ, मेरी संस्कृति का छोर जल रहा/रक्ताञ्जलि से आग बुझाकर ही दम लूगा। 'पथ के पुनीत पाँव', मुकुल, पृ० 62
(ख) भारत पर आक्रमण न केवल/पावन संस्कृति पर हमला है।
'शरणार्थ', सं०, आनन्द नारायण शर्मा पृ० 42

4 जातीय गर्व पर क्रूर प्रहार हुआ है/माँ के किरीट पर ही यह वार हुआ है।"
'पर० की प्रतीक्षा, दिनकर, पृ० 8

को लेकर गांधीजी को अत्यधिक प्रमुदित चित्रित किया है। न जाने कवि द्वारा उल्लिखित इस तथ्य में कितना सत्यांश है कि अहिंसा के पुजारी गांधीजी ने इस अवसर पर कहा था कि यदि कश्मीर की रक्षा में पूरी भारतीय जनता और सभी नेता भी मारे जाते हैं, तो भी मुझे कोई अफसोस नहीं होगा।[1] कश्मीर को भारत और पाकिस्तान के मध्य झगड़ों की जड़ बनाने के लिए कवियों ने उचित ही आंग्ल शासन की कूटनीति को दोषी ठहराया है और यह भाव व्यक्त किया है कि इंगलैण्ड के साथ ही अमेरिका भी अपने राजनीतिक हितों तथा सैनिक संधियों की दृष्टि से पाकिस्तान को भारत से लड़ने को उकसाता रहता है।[2] नीरज ने पाकिस्तानी नेताओं को सम्बोधित करते हुए कहा है कि तुम्हारा लदन और वाशिंगटन के इशारों पर भारत से लड़ना[3] इस दृष्टि से सर्वथा अनुचित प्रतीत होता है कि भारत और पाकिस्तान 'एक ही घर के सेहन हैं/एक ही लौ के दिये हैं/एक ही दिन की किरण हैं।[4] कश्मीर में पाकिस्तानी घुसपैठियों की सूचना वजीर मोहम्मद नामक मुसलमान के माध्यम से दिये जाने के तथ्य को उचित ही मुसलमानों की देशभक्ति की सूचक घटना के रूप में उभारा गया है। वह पाकिस्तानी आसूसों की रिश्वत के पीछे अपनी आत्मा को नहीं बेचता और निकट वर्ती पुलिस चौकी में आकर एक मुसलमान सिपाही को पाकिस्तानी घुसपैठियों के आगमन की सूचना देते हुए कहता है कि हम वतन के प्रति अपने फर्ज का पालन करते हुए अपना रक्त बहाकर भी भारत की रक्षा का प्रयास करना चाहिए।[5] पाकिस्तानी टैंकों को तोड़ने के लिए ख्यातिप्राप्त स्वर्गगत अब्दुल हमीद को भी इसी प्रकार के राष्ट्र प्रेम में रंगा हुआ चित्रित करके मुसलमानों की राष्ट्र भक्ति का स्तवन किया गया है।[6]

पाकिस्तान से हुए संघर्षों के संबंध में अभिव्यंजित हुए अन्य उल्लेखनीय तथ्य यह हैं कि भारतीय सैनिकों ने पाकिस्तानी जनता पर इसलिए अत्याचार नहीं किये थे, क्योंकि उनका मूलोद्देश्य तो पाकिस्तान की सैन्य शक्ति की बांह मरोड़ना मात्र था। पाकिस्तान को अमेरिका द्वारा दिये गये पटन टैंकों और सेबर जेट विमानों के विध्वंस पर विशेषतः आह्लाद व्यक्त किया गया है।[8] चूंकि पाकिस्तान को सैन्य

---

1 'कश्मीर की रक्षा में यदि सारी जनता भी मर जाये/चाहे कश्मीर में सारे नेताओं की बलि चढ़ जाये/मेरी आँखों में आँसू की एक बूंद भी नहीं ढलेगी।' 'जननायक', पृ० 557

2 सूली और शांति म० सि० शीशो० पृ० 12

3 4 नीरज की पाती पृ० 44 52

5 6 'सूली और शांति' म० सि० शीशो०, पृ० 126 88

7-8 'रंग-जंग और व्यंग्य', गो० प्र० व्यास, पृ० 79 81

सामग्री मुख्यत अमरिका, ब्रिटेन और चीन द्वारा प्रदान की जाती रही है, अत यह चेतना भी उचित ही है कि हमारी गोलियाँ पाकिस्तानी सैन्य सामग्री को नष्ट नही कर रही हैं अपितु वे अमेरिका, ब्रिटेन और चीन के पेट में घुस रही है।[1] भारतीय सैनिकों के शौर्य का स्तवन करते हुए कवि 'नीरस' ने हिटलर के उस कथन का स्मरण दिलाया है कि यदि मुझे भारतीय सेना सौंप दी जाये तो मैं आसानी से विश्व विजय करके दिखा सकता हूँ[2] जबकि शिवमंगल सिंह सुमन ने भारतीय सैनिकों द्वारा हथगोला फेंककर दुर्दान्त पैटन टैंकों के विध्वंस तथा 'नेट' जैसे लघु भारतीय यान द्वारा सेबर जेटों को मटियामेट कर डालने के तथ्योल्लेख द्वारा इस धारणा का मुखरण किया है कि युद्ध में विजय शस्त्रास्त्रों की उत्तमता पर नही अपितु सैनिकों के शौर्य और बलिदान भावना पर निर्भर रहती है।[3] वस्तुत पाक से हुए युद्धों के अवसर पर अप्रतिम शौर्य प्रदर्शन के लिए भारतीय सेना के अनेक योद्धाओं का नामोल्लेख किया गया है किन्तु किसी अनाम विमानचालक द्वारा शत्रु के रडार को ध्वस्त करने के लिए उससे अपना नेट-यान टकराकर आत्माहुति देने के तथ्य की उसको देशवासियों के करोड़ों प्रणाम समर्पित करके सराहना की गयी है।[4] पाक आक्रमणों के समय देश के सभी राजनीतिक दलों द्वारा भेद भाव भूलकर एकजुट हो जाने, देश की जनता द्वारा खेतो-खलिहानो से लेकर फैक्टरियो, मिलों दुकानो मे अधिकाधिक उत्पादन करने में जुट जाने[5] तथा देशभक्तों को ही स्वजन परिजन समझने[6] की चेतना व्यक्त हुई है जो यथार्थ ही है।

चीन द्वारा भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा पर किये गये आक्रमण के फलस्वरूप भारत के बहुत से भू भाग पर चीन का अधिकार हो गया था और पाकिस्तान से हुए संघर्षों के सर्वथा विपरीत भारतीय सेनाओं को नीचा देखने की भी नियति भोगनी पड़ी थी। आधुनिक काव्य में इस तथ्य को राष्ट्रीय अपमान का प्रतीक स्वीकार करते हुए देश के कर्णधारों की नीतियों की तीव्र भर्त्सना की गयी है। इस दिशा में सर्वाधिक प्रखर स्वर अपने नामानुरूप ही दिनकर का रहा है और

---

1 'मरी हुई मछलियों की तरह/पाकिस्तानी जहाज, तोपें, टैंक/अपनी ही घृणा के पानी में उतरा रहे हैं/हमारी गोलियाँ इन टैंकों की छातियाँ छेदती घुसी जा रही हैं/अमेरिका ब्रिटेन और चीन के पेट में।"

पक गयी है धूप रा० द० मिश्र, पृ० 110

2 "गोरी चमड़ी की शाख रखी थी हमने/हिटलर के वाक्य शब्द सुने क्या तुमने? इंडियन आर्मी हो यदि हाथ भर में/मैं विश्व विजय करके दिखला दूँ पल में।'

'बंगलोदय', नीरस, पृ० 58

3 मिट्टी की बारात' पृ० 132

4 6 'सूली और शान्ति', म० सि० सोशो० पृ० 64, 113 14, 121

उनकी यह सार्वेतिक पंक्तियाँ किसी व्यक्ति का नामोल्लेख न करते हुए भी, व्यक्ति विशेष सम्बन्धी जन धारणा को प्रत्यक्ष मुखरित करती हैं—

"घातक है जो देवता सदृश दिखता है/लेकिन कमरे में गलत हुक्म लिखता है।
जिस पापी को गुण नहीं गोत्र प्यारा है/समझो उसने ही हमें यहाँ मारा है।'[1]

दिनकर ने भारतीय जनता को भी आड़े हाथों लेते हुए, इस पराजय के मूल में उसकी इस भूल का हाथ दिखाया है कि वह चुनाव-मंचों से चोर उच्चकों के भाषणों को सुनकर उन्हें विजय-हार पहनाती रही है।[2] उन्होंने भारत की सैनिक दृष्टि से पर निर्भरता की भी यह कहकर निन्दा की है कि जो निर्लज्ज देश हाथी जैसे बृहत्काय होने पर भी किन्हीं शेरों पर लदकर चला करते हैं आत्म-बल की अपेक्षा कि ही दूसरे शेरों के बल विक्रम के मुहताज रहते हैं, उनको ही शान्ति का प्रबल शत्रु समझना चाहिए।[3] चीन से हार के संदर्भ में भारतीय सैनिकों के मनोबल को बढ़ाने के लिए इस प्रकार के उद्‌गार भी व्यक्त किये गये हैं 'घबरा जाना नहीं दोस्तो छोटी मोटी हारों से/देश हमारा गुजर रहा है तलवारों की धारों से।[4] इसके साथ ही उनकी स्वतन्त्रता की रक्षा तथा देश प्रेम सम्बन्धी चेतना को उद्‌बुद्ध करते हुए उन्हें यह सन्देश भी दिया गया है कि चीनी आक्रमण के रूप में वह घड़ी उपस्थित हो गयी है जब 'आजादी ने आज देश से पहली कीमत माँगी है।[5] तुम्हें भोजन को अंगार और जल को विष तुल्य समझना चाहिए यदि तुम्हारे जीते-जी जन्मभूमि (या उसका कुछ भाग) शत्रु के अधिकार में चले जायें।[6] चीनी आक्रमण के सन्दर्भ में भारत की तटस्थतावादी विदेश-नीति की भी भर्त्सना की गयी है। कवि नीरस ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है, नेहरूजी की नीति रही कितनी बचकानी/श्वेतांगों की चाल उन्होंने कभी न जानी। कवि ने 'निर्णायक प्रतिभा न मिली थी उन्हें रंच भी' का तथ्योल्लेख करते हुए यह आक्षेप भी किया है कि वे 'झाड़खंड में अटकाकर राष्ट्रीय समस्या' विषम समस्याओं को सुलझाने में लगे रहते थे।[7] प्रसंगवश इस तथ्य का निर्देश अप्रासंगिक न रहेगा कि इसी कवि ने श्रीमती इंदिरा गांधी की बांगला देश के निर्माण काल की विदेश नीति की अत्यधिक

1-2 परशुराम की प्रतीक्षा, पृ० 3, 55

3 'वे देश शांति के सबसे शत्रु प्रबल हैं/जो बहुत बड़े होने पर भी दुर्बल हैं।
औरों के पाले जो अलज्ज पलते हैं/अथवा शेरों पर लदे हुए चलते हैं।'
वही, पृ० 28

4 5 रंग जंग और व्यंग्य गो० प्र० व्यास पृ० 28

6 'तू जिन्दा हो और जन्मभूमि बन्दी हो तो धिक्कार तुझे/भोजन जलते अंगार तुझे पानी है विष की धार तुझे। वही पृ० 60

7 बांगलोदय, नीरस, पृ० 70

सराहना की है। वच्चन न भारत क पचशील सिद्धान्त और सतोषन्वति की वखिया उधडत हुए कहा है कि चीनी आक्रमण के समय पटोसिया स बखबर होकर पचशीली पचतह। आढे रजाई/आत्मतोषी डास तोषक/सज्जबागी स्वप्नदर्शी/योजना या गुलगुला तकिया लगाकर/चिर पुरातन मा यताआ का/कलेजे स सटाय/निंद भरा सो रहा था।[1] भारतभूषण अग्रवाल न भी नेहरू कालीन राज नीति की इस दृष्टि स भत्सना की है कि उन दिनो भारत 'हर पराधीन देश की मुक्ति म लगा रहता था' किन्तु उसक 'अपन ही अग पराय बधन म जकडे रहे थे।'[2] इसक विपरीत एक कवि न भारत की तटस्थतावादी नीति की सराहना करते हुए कहा है पक्के हैं हम अडे रहग निश्चलता पर। हम अमरिका के मित्र होते हुए भी उसक दलाल नहीं हैं जबकि रूस के साथी होते हुए भी लाल नही हैं, उसके लिए हलाल नहीं हैं।[3] कवि न यह धारणा भी व्यक्त की है कि जो नेता या पत्रकार नेहरू की तटस्थ नीति का विरोध करते हुए भारत के अमेरिकी या रूसी गुट म सम्मिलित होन की वकालत करते हैं, व डालरा या रूबला पर बिके हुए लोग हैं और 'भारत की जनता उनके साथ नहीं है।[4] एक अन्य कवि न प्रस्तुत सन्दर्भ मे यह भाव व्यक्त किया है कि भारत की तटस्थता की विदेश नीति हात हुए भी चीनी आक्रमण के अवसर पर अमरिका और ब्रिटेन न अपनी ओर से पहल करके भारत को उसके घर आकर सहायता दी है और चीन का आक्रमणकारी घोषित किया है।[5] कवि का प्रश्न है कि जब हमने अपना हाथ फैलाकर इस सहायता को स्वीकार किया है तो हम इन सहायता देन वाले राष्ट्रा का कृतज्ञ क्या नहीं होना चाहिए ?[6] हाँ इस सहायता क प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए भी कवि न आत्म निर्भरता की चेतना जाग्रत करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि, पर सहायतापेक्षित रहना, तो विष का पीना है।[7]

चीनी आक्रमण की वच्चन[8] सोहनलाल द्विवेदी[9] और देवराज दिनेश[10] आदि कवियो न इस दृष्टि स प्रशसा भी की है कि उसन हमारे सोये हुए राष्ट्र को ठोकर

1 दो चटटानें, पृ० 17 2 ओ अप्रस्तुत मन', पृ० 108

3 4 'रण जागरण' गणेशचन्द्र जोशी पृ० 65 71

5 7 'सीमा सग्राम जगमोहन अवस्थी पृ० 155, 155 156

8 'अजन्हे हम किस तरह तुझको सराहे/दाहिना ही सिद्ध तू हमको हुआ है/गो कि चलता बाएँ।' दो चटटानें' पृ० 18

9 'भला हुआ जो लगी हमारे मस्तक पर ठोकर/भला हुआ जो जाग उठे हम कुछ धरती खोकर।' जय भारत जय' पृ० 134

10 'आज हमारे प्रबल शत्रु ने करके वज्रप्रहार/हमारे जनमानस की चेतना के खोल दिये हृ द्वार।' शखनाद', सं०, पृ० 106

मारकर जगा देने के रूप में प्रच्छन्न वरदान की ही भूमिका अदा की है क्योंकि उसके कारण देश में राष्ट्रीय एकता तथा नव जागृति की चेतना का संचार हुआ है। इस धारणा के औचित्य के सम्बन्ध में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि अनेक कवियों ने भारत में सामान्यतः राष्ट्रीय एकता की भावना का अभाव होने के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। रामदरश मिश्र ने दिखाया है कि कहने को तो मैं छाती में राष्ट्र का वक्ष/पीठ पर विश्व को लादे/आवाजें लगाता हूं अर्थात विश्व मानवता का प्रेमी होने का नाटक करता हूँ किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि मैं राष्ट्र से प्रान्त—प्रदेश से नगर/और नगर से मैं बनकर संकुचित वयक्तिकता के अपने में समा जाता हूं, और 'पीठ पर से विश्व लुढ़क पड़ता है/और छाती में से राष्ट्र।'[1] कहना न होगा कि कवि का 'मैं' औसत भारतीयों का प्रतीक है। नरेन्द्र शर्मा ने इस तथ्य की ओर विषादपूर्वक इंगित किया है कि हमारे वयक्तिक क्षुद्र स्वार्थों के कारण राष्ट्र की नाव छिन रही है और राष्ट्र की मिथिला जलती रहने पर भी बुद्धिजीवी लोग विदेह बन रहते हैं। स्थिति यह है कि 'राष्ट्र के सिवा सभी स्वाधीन' बने हुए हैं और राष्ट्रीय एकता एवं राष्ट्रोत्थान की अपेक्षा निजी स्वार्थों की सिद्धि पर बल देते रहते हैं।[2] शम्भुदयाल शर्मा ने भाषा धर्म प्रान्त के झगड़े भारत में अब खड़े न हों[3] के रूप में राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता पर बल दिया है तो श्रीमन्नारायण ने उसका अभाव देखकर ईश्वर से यह प्रार्थना की है कि वह ही हमारे अनेकता में एकता के आदर्श को स्थापित करने में सहायता पहुँचाये क्योंकि राष्ट्रीय एकता के अभाव में हमारी पुरातन गरिमा विलुप्त होती जा रही है।[4] श्याम विमल ने तो सिक्खिस्तान द्रविडिस्तान जैसी पृथक्तावादी माँगों से खीझकर मूर्तिस्तान (पिशाच प्रान्त) की भी माँग किये जाने का प्रस्ताव रखा है।[5] एक अन्य कवि ने भी खेदपूर्वक कहा है कि राष्ट्रीय एकता की चर्चा तो बहुत दिनों से चलती आ रही है लेकिन राष्ट्रीय एकता की/आज भी हमारे सामने अधूरी स्थिति है,' क्योंकि सस्ती शिक्षा की पुरानी प्रणाली/राष्ट्रीय एकता की नींव को खोखला बनाती है।[6]

इस राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से ही आधुनिक काव्य में उन लोगों की तीव्र

---

1 'कंधे पर सूरज' पृ० 57-58
2 'बहुत रात गये' पृ० 22-23
3 'क्रान्तिकारिणी', पृ० 112
4 'रजनी में प्रभात का अंकुर' पृ० 8 9
5 यह क्या किया कमीने ? माँग लेता एक मृत प्रान्त/बहुत बड़ा है हमारा देश (था भी)।' 'दीमक की भाषा', पृ० 16-17
6 'युगयात्रा', आ० प्र० शुक्ल, पृ० 89 91

भर्त्सना की गयी है जिन्होंने चीनी आक्रमण के समय, चीन को उसको आक्रान्ता बताकर निन्दा नहीं की थी या जो भारतीय होते हुए भी ऐसा आचरण कर रहे थे, मानो वे चीनी नागरिक हों। ऐसे लोगों को घर के भेदी आस्तीन के साँप, जयचन्द, गद्दार, पापी भारत भू के कलंक आदि बताकर निन्दा करने वाला में सर्वाधिक प्रखर स्वर जगमोहन अवस्थी का रहा है— सावधान इनसे रहना ये नीच भेदिये घर के/लिपटे नाग राष्ट्र शंकर के, तन में है विष भर के।[1] कवि ने ऐसे लोगों को अवसरवादी बताते हुए कहा है कि हमें उन अवसरवादियों से सावधान रहना चाहिए जिनका 'तन देशी है लेकिन मेधा, पीकिंग से ही पाते हैं।' बहुत से लोग ऐसे भी हैं जिनकी 'उड़ती है पतंग भारत में किन्तु उनकी पतंग की डोर मास्को के हाथ में रहती है, जो हंसिया और हथौड़ा धरकर छाती पर चिल्लाते हैं/परदेशी पैसे के बल पर पापी मौज उड़ाते हैं।' देश हित के विरुद्ध बातें करने वालों पर कवि ने उचित ही 'घर में बैठ पापी घातक, यह कलंक काजल लेकर/ विद्रोही गद्दार भयानक/काले साँप आस्तीनों में छिपे वार कर उठे अचानक' जैसे लाछना की वर्षा की है।[2] उसने अन्यत्र भी चीनी सैनिकों से कहा है कि हमें तुमसे भय है नहीं, अपितु हमें इस घर के जयचन्दों से भय है, तथा कामरेड हैं व्याल भयंकर इन्हें परखना अति दुष्कर है।'[3] दिनकर ने भी इस ओर संकेत करते हुए कहा है और आज भी जिस पापी का सही नहीं ईमान (भले वह नेता हो, शासक हो या दुकानदार हो)/चीनी है दुश्मन है सबके लिए काल है।[4] राजेश दीक्षित ने देश के एक एक गद्दार को पकड़कर मौत के घाट उतार देने की अभिलाषा व्यक्त की है,[5] तो एक अन्य कवि ने भी 'पैदा न कहीं जयचन्द करो बन्धो अब दुश्मन से जूझो,[6] की चेतना जाग्रत करने का प्रयास किया है।

चीनी आक्रमण के सम्बन्ध में यह धारणा भी व्यक्त की गयी है कि चीनी शासकों ने अपने देश की भूखों मरती हुई जनसंख्या को कम करने के उद्देश्य से ही उन्हें सीमा पर मरने के लिए भेज दिया है। चीन में वस्त्र और भोजन के अभाव में वहाँ के निवासी भेड़-बकरियों जैसा जीवन व्यतीत करते हुए मेढक, गिरगिट, चूहे, छिपकली, कुत्ते, साँप, छछूंदर आदि अभक्ष्य वस्तुएँ खाने को विवश हो रहे थे। इस भूखी-नंगी जनसंख्या से छुटकारा पाने के लिए ही चीन ने भारत से युद्ध छेड़ा है।[7] चीनी सैनिकों का यह कहकर भी उपहास किया गया है डर है कहीं हिमालय में हिम द्रवित हुआ तुम बह जाओगे/चीनी ठहरे रक्तपात में घुलकर

1 3 सीमा संग्राम, पृ० 158, 21, 84 4 'परशु० की प्रतीक्षा' पृ० 56

5 और वे गद्दार अपने मुल्क में जो पल रहे हैं/देखना उनमें कि जिन्दा एक भी रहने न पाये। 'शंखनाद', सक० पृ० 190

6 'रंग जंग और व्यंग्य', गो० प्र० व्यास, पृ० 57

7 'सीमा संग्राम, जगमोहन अवस्थी, पृ० 133

कैसे रह पाओगे ।[1] बौद्धधर्म के अनुयायी चीन द्वारा भारत पर आक्रमण किये जाने के तथ्य को शिष्य द्वारा गुरु के प्रति द्रोह बताकर निन्दा करते हुए पंत के उद्गार हैं, सांस्कृतिक शिष्य भारत का/जन रक्तपात को तत्पर,[2] जबकि नरेन्द्र शर्मा ने चीन को पितृहता और गुरुद्रोही बताते हुए घृणापूर्वक कहा है—

'प्राचीन चीन से विमुख पितृहंता हो तुम गुरुद्रोही ।
जो बौद्धिवक्ष का देश, रौंदने चले आज उसको ही ।'[3]

कवियों ने चीन को नाम मात्र का साम्यवादी किन्तु वस्तुत साम्राज्यवादी विस्तारवादी बताकर[4] मियाँजी की जूती मियाँ के सिर की उक्ति चरितार्थ की है क्योंकि चीन साम्यवादी रूस तक के लिए इन्हीं दुर्विशेषणों का प्रयोग करता रहा है। चीन से मुह की खाने के तथ्य को लेकर कवियों ने गहन मनस्ताप भी व्यक्त किया है। कैलाश वाजपेयी के सांकेतिक उद्गार हैं 'मेरा आकाश छोटा हो गया है, मुझे नींद नहीं आती।[5] चीन द्वारा एकतरफा युद्ध विराम की घोषणा करने पर बच्चन के इन उद्गारों में जन मानस की टीस मुखरित हो उठी है कि चीनी सैनिक हमें पददलित मान मर्दित कलंकित और हमारी साख को मिट्टी में मिलाकर लौट गये हैं तथा 'वे हमें बिना पराजित किये/तुम विजित किये जाने योग्य भी नहीं/कहकर चले गये[6] हैं।

इस राष्ट्रीय अवसाद की व्यंजना के साथ ही कवियों ने देश रक्षार्थ नवचेतना जाग्रत करने की भी चेष्टा की है। गणेशचन्द्र जोशी ने किसी विद्यार्थी को अल्पायु के कारण सेना में भरती न किये जाने पर यह भावना व्यक्त करते दिखाया है कि मैं बच्चा हू तो क्या हुआ, क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी शेर का बच्चा हू[7] तथा पढ़ाई लिखाई की अपेक्षा देश की आजादी की रक्षा करना मेरा अधिक महत्वपूर्ण कर्तव्य है। गुलाम होकर पढ़ना तो क्या मैं जीना तक हराम समझता हूँ।[8] श्रीकृष्ण सरल ने गांधीजी को स्वर्ग से यह सन्देश भेजते दिखाया है कि मैं आजादी की रक्षा के लिए भारत आने को मचलती रानी लक्ष्मीबाई, भगतसिंह, आजाद और

---

1 सीमा संग्राम', जगमोहन अवस्थी पृ० 87
2 लोकायतन' पृ० 175   3 प्यासा निर्झर', पृ० 217
4 (क) पाशविक शक्ति का गर्व, दम्भ है बनने का जन नेता।
साम्राज्यवाद के गढ़ चले तुम बनने विश्व विजेता।' वही, पृ० 219
(ख) यह वही दुश्मन जिसे विस्तारवादी नीति प्रिय है।
नाम को है साम्यवादी किन्तु है साम्राज्यवादी।'
शंखनाद' सं०, पद्म० शर्मा, कमलेश, पृ० 121
5 वही पृ० 70   6 दो चट्टानें पृ० 26
7 8 'रण जागरण पृ० 107, 108

सुभाष वीरों की आत्माओं को यह सोचकर नहीं भेज रहा हूं कि 'भारत के बच्चे-बच्चे में तुम सब हो साकार।'[1] चन्द्रकुमार सुकुमार ने यह भाव व्यक्त किया है, 'एक नहीं लाखों प्रताप हैं अभी देश के लाला में/वीर शिवाजी हैं लाखों ही धरती के रखवाला में।'[2] इसी प्रकार की चेतना जाग्रत करते हुए देवराज दिनेश ने कहा है कि राष्ट्र के इस संकट-काल में जहाँ हमें भामाशाहों से दान चाहिए, वहीं राष्ट्र को आज चाहिए दान, दान में नवयुवकों के प्राण।'[3] पद्मसिंह शर्मा कमलेश ने 'अलख घर घर जगा दो/पुरुष नारी वृद्ध-बालक युवा-युवती/सभी को सैनिक बनाओ'[4] का आह्वान किया है, तो आनन्दनारायण शर्मा ने जन-जागरण का शंख फूंकते हुए 'शब्द-दान दे चुके बहुत अब रक्त दान की वेला आई' के तथ्य की ओर इंगित करते हुए कहा है नगपति तुम्हें पुकार रहा है जागो भारत की तरुणाई।[5]

युद्ध-काल में सीमा पर लड़ते सैनिकों को ही नहीं अपितु देश के प्रत्येक निवासी को ही सैनिक मानते हुए यह चेतना भी व्यक्त की गयी है 'सरहद पर ही नहीं, मोर्चे खुले हुए हैं/खेतों में, खलिहान, बैठकों, बाजारों में/जहां कहीं आलस्य वहीं दुर्भाग्य देश का/जो भी नहीं सतर्क, सभी के लिए विपद है।'[6] राष्ट्रीय रक्षा कोष में अधिकाधिक योगदान करने की भावना उद्बुद्ध करते हुए किसी पति को स्व-पत्नी को यह परामर्श देते चित्रित किया गया है कि तुम निज भूषण दान सुरक्षा में सब करना' तथा जब तक सीमा से शत्रु नहीं भगा दिये जाते 'तुम माँग सिन्दूर न रानी तब तक भरना।[8] एक अन्य कवि ने कोई नव विवाहिता सुरक्षा कोष में अपनी मगनी की अंगूठी तक दान देते चित्रित की है।[9] विद्यावती मिश्र ने सीमाओं पर लड़ते सैनिकों को देशवासियों की ओर से यह विश्वास दिलाया था देश है साथ में हर समय हर कदम/तुम अकेले नहीं, तुम अकेले नहीं/स्वर्ण देंगे कि तुम अस्त्र से सज सको/रक्त देंगे कि तुम मृत्यु भय तज सको।'[10] श्रीकृष्ण सरल ने दिखाया है कि देश के आबाल-वृद्ध निवासियों के हृदय में राष्ट्रीय रक्षा-कार्य में अधिकाधिक दान देने के प्रति ऐसा प्रबल उत्साह था कि उन्होंने 'जीवन भर में जो कुछ जोड़ा, कुछ न सो पाई-पाई दी' की उदारता का परिचय दिया था। देश की नारियाँ भी पीछे नहीं थीं और उन्होंने सुरक्षा-कोष में 'चूड़ियाँ, मुद्रिकाएँ, कंगन

---

1 'राष्ट्र भारती' पृ० 251
2 5 शंखनाद', सं०, पृ० 88, 104, 122, 41
6 'परशुराम की प्रतीक्षा' दिनकर, पृ० 56
7 8 सीमा संग्राम, पृ० 36 102
9 'रण जागरण' ग० च० जोशी, पृ० 145
10 'शंखनाद' सं० पृ० 204

निज कटहार प्यारे-प्यारे' समर्पित कर दिए थे।[1] जन-सामान्य में राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दान देने के प्रति इतना अधिक उत्साह दिखाने के साथ ही प्रधानमंत्री के साथ फोटो खिचवाने के शौकीन लोगों का उपहास भी किया गया है जो 'आधे तोले सोने की/अँगूठी पहनकर/सब के सब/प्रधानमंत्री के पास जायेंगे तथा फोटो खिचवाकर इसे/रक्षा कोष में जमा करायेंगे।'[2] दिनकर ने इस तथ्य की ओर बड़ी व्यथापूर्वक इंगित किया था कि जन सामान्य की ओर से मातृभूमि की बलिवेदी पर थालियाँ नहीं घटती हैं किन्तु धनाढ्य-पूंजीपति वर्ग की ओर से सोने की ईंटें, मगर, नहीं मढ़ती हैं। उन्होंने आक्रोशपूर्वक प्रश्न किया था कि ये धन-कुबेर 'यदि आज नहीं तो कब सुवर्ण वे देंगे?' और घृणामिश्रित यह भविष्यवाणी भी की थी तूफान उठेगा, प्रलय-वाण छूटेगा/है जहाँ स्वर्ण बम वहीं स्यात् फूटेगा।[3] काश दिनकर की यह भविष्यवाणी सच सिद्ध होती!

(ठ) युद्धों तथा शस्त्रास्त्रों के निर्माण की प्रतिस्पर्द्धा विरोधी चेतना

आधुनिक काल के काव्य प्रणेताओं की युद्ध सम्बन्धी मनोदृष्टि मध्यकाल के सामन्तयुगीन कवियों से पर्याप्त भिन्न रही है। मध्ययुगीन कवि अपने आश्रयदाता नरेशों की सेना उनके युद्धोपकरणों वीरों द्वारा प्रदर्शित शौर्य, शत्रु-देश की लूट-पाट, शत्रु-पत्नियों की दुर्दशा आदि के तथ्यों का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करते हुए 'बरस अठारह छत्री जीयै आगे जीवन को धिक्कार' के सिद्धांत के उद्घोषक थे जो क्षत्रियों का प्रमुख मंतव्य केवल युद्ध करना ही स्वीकार किये जाने के तथ्य से पूर्ण संगति रखता था। यदा कदा अपने राज्य के वास्तविक विस्तार के लिए नहीं अपितु मात्र यश-वर्द्धन के लिए ही, राजसूय और अश्वमेध जैसे यज्ञों की आयोजना द्वारा प्रकारांतर से युद्धों को आमंत्रण दिया जाता रहता था। हाँ इन युद्धों का स्वरूप आधुनिक काल के युद्धों से सर्वथा भिन्न था। एक ओर सेनाएँ युद्ध करती रहती थीं, जबकि दूसरी ओर कृषक हल चलाते रहते थे—अर्थात युद्ध दो राजाओं और उनकी सेनाओं के मध्य होता था जबकि जन-सामान्य का जीवन उसके दुष्प्रभावों से प्रायः मुक्त रहता था। इसके सर्वथा विपरीत आधुनिक काल के युद्धों में सामान्य नागरिकों पर ही बम वर्षा नहीं की जाती अपितु अस्पताल और विद्यालयों पर भी बम वर्षा में सकोचानुभव नहीं किया जाता। द्वितीय विश्वयुद्ध के दिनों में जापान के हिरोशिमा और नागासाकी नगरों पर प्रयुक्त किये गये अणु-बमों से उन नगरों का तो सर्वनाश हो ही गया था उनके दुष्प्रभावों को दूरवर्ती प्रदेशों के नर-नारियों

---

1 'राष्ट्रभारती' पृ० 72-73
2 'गद्यदीप', मनोहर शर्मा, पृ० 76
3 'परशुराम की प्रतीक्षा', पृ० 45

ने भी अनेक रूपों में भोगा है। रूस और अमेरिका द्वारा घातक-से घातक अणु विनाशास्त्रों के निर्माण की प्रतिस्पर्द्धा के फलस्वरूप यह संकट उत्पन्न हो गया है कि यदि कभी इन महाशक्तियों के मध्य युद्ध छिड़ गया तो ये दोनों राष्ट्र ही नहीं अपितु धरातल के समस्त जीवधारियों और वनस्पतियों का भी अस्तित्व मिट जायेगा। इस परिपार्श्व में ही समाज के सर्वाधिक संवेदनशील सदस्यों अर्थात् कवियों ने युद्धों तथा शस्त्रास्त्रों के निर्माण की प्रतिस्पर्द्धा विरोधी चेतना का मुखरण करते हुए विश्व को भावी विश्व-युद्ध की सम्भावना से बचाने का प्रयास किया है।

युद्ध विरोधी चेतना के परिप्रेक्ष्य में दिनकर ने यह मत व्यक्त किया है कि युद्धों के मूल में धूर्त कूटनीतिज्ञों की कुटिल नीतियाँ क्रियाशील रहती हैं[1] क्योंकि विभिन्न समुदाय और राष्ट्र एक-दूसरे पर आक्रमण किए जाने से सामर्थ्य नहीं होते।[2] यह सच है कि युद्ध छेड़ने वाले व्यक्ति की अन्तरात्मा यदा-कदा यह सोचकर छट पटाती है 'नर का बहाया रक्त हे भगवान मैंने क्या किया?' किन्तु वह इस मन स्थार को भूलकर 'होना अमर आरूढ फिर/फिर मारता मरता' तथा विजय पाकर बहाता अश्रु है।'[3] युद्ध के प्रति घृणा या विरोधी चेतना को मुखरित करते हुए भी दिनकर ने इस वस्तुस्थिति की ओर भी संकेत किया है कि चाहे युद्ध का निंद कहा जाय किन्तु 'जब तलक हैं उठ रहा चिनगारियाँ/भिन्न स्वार्थों के कुलिश-संघर्ष की/युद्ध तब तक विश्व में अनिवार्य है।[4] चूंकि ये स्वार्थ—धर्म प्रचार, धनार्जन या विदेशियों के धन की लूट, अपनी विचारधारा के प्रचार प्रसार आदि अनेक प्रकार के हो सकते हैं—अतः दिनकर द्वारा प्रस्तुत यह विचार 'रण रोकना है तो उखाड़ विषदन्त फेंको/वृक व्याघ्र भीति से मही को मुक्त कर दो[5] विशेष कारगर नहीं प्रतीत होता। प्रश्न यह है कि व्याघ्रों के गले में घंटी कौन बाँधेगा? क्या बिना संघर्ष के वृक और व्याघ्र अपने दाँत सहज ही उखाड़ लेने देंगे? ऐसी दशा में हम उनका यह समाधान किन्हीं अंशों में अधिक उचित प्रतीत होता है कि अजा के हाथों को भी बना दो व्याघ्र/शीश में कराल वज्र-कूट विष भर दो।'[6] कहना न होगा कि रूस और अमेरिका के समतुल्य महाबली व्याघ्र होने के कारण ही तृतीय विश्वयुद्ध की आशंका सचाई में परिणत नहीं हो सकी है। दुष्यन्तकुमार ने युद्ध को एक आवश्यक बुराई बताते हुए यह विचार व्यक्त किया है जहाँ कि 'न्याय की हत्या हो/अन्याय सफल हो/ जहाँ प्रबल हो आसुर/और निर्बल हो धर्म/वहाँ युद्ध का दुष्कर्म रह जाता है/और एकमात्र उपाय युद्ध ही रह जाता है।'[7] इसी प्रकार म० म० गुप्त ने राजनीति की दृष्टि से सर्वग्रासी

1 2 कुरुक्षेत्र' पृ० 1 2

3-6 वही पृ० 3 17, 102 102 7 एक कण्ठ विषपायी, पृ० 104

बनने की धारणा पर बल देते हुए कहा है कि चाहे वास्तव में युद्ध न छेड़ा जाय, किन्तु राष्ट्र की रक्षा के लिए धनुष की टंकार का प्रतिध्वनित होते रहना नितान्त आवश्यक है।[1] बलाश वाजपेयी ने भी युद्ध को अपरिहार्य बुराई बताते हुए कहा है— शकर के दर्शन, सूर के पद ढोला मारू और रवीन्द्र के गुंजन/इन सबकी रक्षा के लिए/मैं तुम्हें आवाज देता हूं कि 'नीचे से ऊपर तक युद्ध को/नहीं, नहीं— आवश्यक बुराई को ओढ़ लो।[2]

युद्ध विरोधी चेतना जाग्रत करते हुए शेर-जग गर्ग ने यह प्रश्न किया है कि उस युद्ध को धर्म-युद्ध बताना कैसी विचित्र विडम्बना है, जिसमें मन्दिर मस्जिद और गिरजाघरों को नष्ट किया जा रहा हो।[3] रवीन्द्रनाथ त्यागी ने खेदपूर्वक यह भाव व्यक्त किया है कि एक ओर तो विश्व के प्रत्येक कस्बे कस्बे, गाँव-गाँव/किसान और कुली नंगे हैं फिर भी चमकती वर्दियों वाले फौज के आला अफसर/किसी के हाथ में शतरंज के मुहरों की तरह पिटते रहते हैं। कवि का प्रश्न है हाय! क्यों लड़ते हैं देश! कैसे हैं वे सिद्धान्त/(जिन पर एकमत न होते हुए भी) लाखों आदमी यूँ ही मर जाते हैं।' उसने यह विषाद भी व्यक्त किया है कि युद्ध में तो एक-दूसरे देशों के असंख्य सैनिकों नागरिकों की मृत्यु होती ही है युद्धोत्तर काल में भी फिर प्लेग और मौत/फिर भुखमरी और मौत/युद्ध की मौत और युद्ध के बाद की/शांति की मौत[4] की दारुण परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। हरि मोहन ने सैनिकों को युद्धार्थ विदा करने वाले माता पिता-पत्नी-पुत्रादि से विद्रूप पूर्वक कहा है कि तुम अपने पुत्र-पति या पिता को इस तथ्य पर बधाई दो कि वे किस प्रकार पकी-हारी मानवता पर बमों की वर्षा करते हुए उसके वाटर वर्क्स, पावर-हाउसों कारखानों कार्यालयों मंदिरों मस्जिदों गिरजाघरों को क्षण मात्र में ध्वस्त करेंगे कि वे किस प्रकार वर्षों की अनवरत साधना से निर्मित उपकरणों को पलक झपटते नष्ट भ्रष्ट कर देंगे।[5] युद्ध विरोधी चेतना के कारण

1 साकेत' पृ० 238 2 शखनाद' सक०, पृ० 70

3 धर्मयुद्ध में मैंने/मंदिरों, मस्जिदों गिरजाघरों को जलते देखा है/क्या इसी का नाम है धर्म?/क्या इसी का नाम है धर्म-युद्ध?'

'चंद ताजा गुलाब तेरे नाम पृ० 12

4 कल्पवृक्ष पृ० 77 78

5 'अपने पापा को, प्रेमी को पति को पुत्रों/और भाइयों को/बधाई दो विदाई दो/ × × × देखो/तुम्हारे विमान उड़ते जा रहे हैं/उनकी दुमों से लगातार/बमों की बीट गिर रही है/शहर का वाटर वर्क्स पावर हाउस/ऊँचे-ऊँचे मिलों की चिमनियाँ/कारखाने, आफिस मन्दिर, मस्जिद गिरजाघर आली शान इमारतें/वर्षों के बसाए एक क्षण में/सबके सब नष्ट हो गये ध्वस्त हो गये।" नई कविता', अंक 1, सन 1954 पृ० 66 68

ही केवल गोस्वामी ने सैनिकों के विषय में यह प्रश्न किया है, वे सिपाही क्यों हैं? उन्हें 'थ्री-नाट-थ्री ढोने वाले गधे क्या नही कहना चाहिए'[1] गि० कु० माथुर ने धनिक-वर्ग की निन्दा करते हुए उन्हें ऐसा तकनीकी जंतु बताया है जो 'पेच कस प्लास लिग/पहने काला बालदार एप्रन/कंधे पर एक तरफ ट्रांजिस्टर/एक तरफ स्टेनगन' लेकर 'चढा हुआ आग फेंक टैंक पर/लिबर्टी के नाम पर/लिबर्टी को जिन्ह कर/लगाता अपनी ही पीढी मे/जहरीले नशीले इंजेक्शन।[2]

द्वितीय विश्व युद्ध मे अमेरिका द्वारा जापान के नागासाकी और हिरोशिमा नामक नगरो पर अणुबमो का प्रयोग किये जाने के तथ्य की आधुनिक काव्य मे तीव्र निन्दा की गयी है तथा विश्व मानवता को आणविकास्त्रो के आतक से ग्रस्त चित्रित किया गया है। पंत ने कहा है कि इन भीषण अणुबमो के विस्फोटन से मानवता के हृदय मे जो घाव हुआ है वह कभी भर भी पायेगा इस तथ्य मे सन्देह है। उन्होने अणु रूपी दानव को इस यन्त्र-युगीन विश्व की जड भौतिकता का अन्तिम-क्षण उसके सर्वनाश की अन्तिम घडी भी बताया है।[3] रूस और अमेरिका के मध्य आणविकास्त्रो के निर्माण की प्रतिस्पर्द्धा को चिन्त्य बताते हुए उन्होंने यह धारणा भी व्यक्त की है कि यह तो सत्य है कि विश्व राजनीति मे दक्षिण (अमेरिकी) और वाम (रूसी) शक्तियो का यह सतुलन विश्व ध्वस भय से जन सागर को/कूलो मे रखेगा मर्यादित' किन्तु इसके साथ ही उन्होंने यह आशका भी व्यक्त की है कि यदि किसी कारण इन दोनो महाशक्तियों मे सघर्ष छिड गया तो फिर उनमे जय-पराजय का कुछ भी महत्व नही रह जायगा क्योंकि सर्वनाशी आणविकास्त्रो के कारण वसुन्धरा से मानव-जाति तथा उसकी सभ्यता और संस्कृति विनष्ट विलुप्त हो जायेंगी। ऐसी दशा मे अणु-बल द्वारा अणु-बल पर विजय पाने की चेष्टा करना मानवता के सर्वनाश को आमन्त्रित करना है।[4] शील ने अमेरिकी राष्ट्रपति ट्रूमन द्वारा दक्षिणी कोरिया पर बम गिराने के निर्णय की उनको नाश का पुतला बताकर भर्त्सना करते हुए कहा है 'इसी नाश के पुतले ने/की नागासाकी छार छार/कल इसी नाश के पुतले ने हर ली हिरोशिमा

---

1 'बंद कमरा की संस्कृति', पृ० 81

2 भीतरी नदी की यात्रा पृ० 63

3 हिरोशिमा नागासाकी पर/भीषण अणुबम का था विस्फोटन/मानवता के ममस्थल का/कभी भरेगा क्या दुःसह व्रण। × × ×/उपजा यांत्रिक-युग अणु-दानव/जड भौतिकता के अन्तिम क्षण। 'लोकायतन', पृ० 112

4 यदि दो अग्नि शिखर आपस ही में/टकरा उठते तो विनाश निश्चय/कौन बचा सकता भू-जन का सब/क्या संस्कृति सभ्यता, पराजय, जय/अणुबल से अणुबल पर पाना जय/विश्व ध्वस को देना आमंत्रण। वही, पृ० 593

की बहार। कवि ने एटम बम के विघातक दुष्प्रभावों का उल्लेख करते हुए दिखाया है कि जहाँ बम गिरे थे वहाँ और उसके समीपवर्ती क्षेत्र में फिर दूब तक नहीं उग सकी है, इसके साथ ही गायों का दूध सूख गया है मनुष्य की ज्ञानेन्द्रियाँ संवेदन शून्य हो गयी हैं जबकि प्रसूताएँ तक अपंग और कोढ़ी बच्चों को जन्म दे रही हैं।[1] जापानी नगरों पर बम गिराने वाला विमानचालक बाद में विक्षिप्त हो गया था। रणजीत ने उसके पागलपन के सम्बन्ध में उचित ही यह भाव व्यक्त किया है कि उसकी विक्षिप्ति उसके द्वारा किये गये भीषण नरमेध का प्रायश्चित है और अच्छा हो कि यह पागलपन विश्व के प्रत्येक जंगबाज नेता के मस्तिष्क को ग्रस्त कर ले जिससे भविष्य में ऐसे अधमकृत्य की पुनरावृत्ति की सम्भावना ही मिट जाये।[2]

आणविकास्त्रों से सन्त्रस्त विश्व मानवता के आतंक को उभारते हुए एक कवि ने उचित ही कहा है 'ऊपर लटका है/एटम/कच्चे धागे से बंधा/नीचे बैठा है/आतंकित विश्व।'[3] श्रीकान्त वर्मा ने इस आतंक को मुखरित करते हुए यह तथ्य प्रस्तुत किया है कि विश्व के भावी विनाश पर आयोजित की गयी शोक-सभाएं अखबार विक्रेता की यह चिल्लाहट सुनकर कि अणुबम पर रोक लगा दी गयी है अचानक ही विवाह-मंडप जैसे हर्षाकुल वातावरण का रूप धारण कर लेती है।[4] प्रभाकर माचवे ने जेरी लेहमान आदि आणविकास्त्रों के परीक्षणों के विरोधी सौ व्यक्तियों द्वारा सन 1961 में मास्को से लेकर कैलिफोर्निया अर्थात रूस से लेकर अमेरिका तक मार्च (पदयात्रा) करने का स्तवन करते हुए उनके उद्‌गारों के माध्यम से इस जन चेतना को वाणी दी है कि अरे वैज्ञानिको और राजनीतिज्ञो! तुम चाहे किसी भी देश और किसी भी रंग के क्यों न हो अपने उपनिवेशवादी स्वप्नों को त्यागने के साथ ही अणु-परीक्षणों को भी त्याग दो। तुम इस भूमि को मरुस्थल तथा

1 एटम से जजर हो धरती फिर दूब नहीं उपजा पाई
विष के कीड़ों से डसी गयी खेती न अभी तक लहराई,
गायों का सूखा दूध मनुज की ज्ञान शिरा बेकार हुई
माताएँ जनने लगी कोढ़ रसवती प्रकृति बीमार हुई।'

लावा और फूल, पृ० 77

2 "और जो इस भीषण नरमेध का प्रायश्चित/अमरीकी पागलखाना में कर रहा है/यह पागलपन व्याकुल है/कि मैं इसे दुनियाँ के हर जंगबाज नेता/और उसके हर वफादार सिपाही के दिमाग तक पहुँचा दूँ।'

प्रतिश्रुत पीढ़ी, सक०, पृ० 204

3 'कालजयी', विनयकुमार आलोक पृ० 74

4 दिनारंभ', पृ० 54

जल और आकाश को भी विषाक्त बनाने पर क्यों तुले हुए हो ? हम नहीं चाहते कि हमारे भावी शिशु लुन्ज-पुंज विकृतांग और संक्रामक रोगों से ग्रस्त उत्पन्न हों। हम नहीं चाहते कि यह विश्व राख का ढेर या श्मशान बन जाये। तुम विश्व को प्रतिहिंसा की भट्टी में झोंकने का प्रयास क्यों कर रहे हो ?[1] सियारामशरण गुप्त ने एक प्रतीक कथा का माध्यम अपनाकर जयन्त नामक वैज्ञानिक को लेसर किरण जैसी 'भस्मक किरण' का विकास कर लेने पर, उसके दुष्प्रभाववश स्वयं ही लुंज-पुंज होकर मरणासन्न दशा में पड़ा चित्रित करके[2] आणविकास्त्रों के विकास की विरोधी चेतना जाग्रत की है।

अन्य कवियों में जं० प्र० मिलिन्द ने वसुंधरा के मुख से अपने सपूतों के प्रति यह मार्मिक उद्गार व्यक्त कराये हैं कि तुम वास्तव में ही धन्य हो जो मेरे जीवन-पय का अनुपान करके मेरे ही उदर को विदीर्ण करने के लिए विस्फोटक अणु अस्त्रों का निर्माण कर रहे हो।[3] कैलाश वाजपेयी ने भूमिगत एवं जलगत अणु परीक्षणों का विरोध करते हुए विद्रूपपूर्वक कहा है कि यदि वैज्ञानिक जल थल और आकाश में विष घोल रहे हैं तो चिन्ता की क्या बात है ? कारण यह है कि इस धरातल के नाबदान के कीड़ों और कुकुरमुत्तों जैसे लोग, वैसे भी तो अंतत: मरेंगे ही, अतः यदि वे बम-वर्षा से मरते हैं तो क्या अन्तर पड़ता है ? इसी प्रकार यह दुनिया समझदार तो बहुत दिन रह ली है अतः क्या बुरा है, यदि अब इस पर नापाम आदि बमों की वर्षा द्वारा पागलपन के कीटाणुओं की वर्षा कर दी जाती है ?[4]

(ङ) द्वितीय विश्व युद्ध तथा आजाद हिन्द सेना के नायक सुभाष विषयक चेतना

कतिपय कवियों ने द्वितीय विश्व युद्ध तथा तृतीय या भावी विश्व-युद्ध के सम्बन्ध में भी चिन्तापरक उद्गार व्यक्त किये हैं। इस संदर्भ में मनोरंजक तथ्य यह है कि सन् *1905* में जापान द्वारा रूस को परास्त करने की घटना को मैथिलीशरण गुप्त ने 'एशिया की यूरोप पर विजय' की प्रतीक घटना मानकर यह

---

1 मंगल पृ० 38

2 "भस्मक किरण खोज के निकाली थी/ × × × और तो क्या वज्र गल जाये क्षण मात्र में/अंत में हुआ क्या ? उस ज्वाला का जनक ही/दग्ध कर बैठा हाथ-पैर आप अपने/और अब जीवित भी मृत-सा पड़ा कहीं।"

'उन्मुक्त', पृ० 26

3 भूमि की अनुभूति पृ० 18-19

4 देहान्त से हटकर पृ० 13

आह्वान व्यक्त किया था कि रूस विजेता के रूप में एशिया महाद्वीप के गौरव में चार चाँद लगाने वाला जापान भारत का शिष्य रहा है।[1] इस चेतना के सर्वथा विपरीत द्वितीय विश्व-युद्ध के अवसर पर मार्क्सवादी रुझान के कुछ कवियों ने जर्मनी के सहयोगी जापान की ही निन्दा नहीं की है अपितु उनके सहयोग तथा 'आजाद हिन्द सेना' के माध्यम से आंग्ल शासन को उखाड़ फेंकने का अनुपम साहसिक कदम उठाने वाले नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की भी रामविलास शर्मा ने कायर, भगोड़ा और तानाशाही-भलीशाही का एजेंट बताकर निन्दा करते हुए उन समस्त भारतवासियों को 'कायर' कहकर लांछित किया है जो चीनी जनता के हत्यारे जापान और जर्मनी का सक्रिय विरोध नहीं करते थे।[2] इसी परिप्रेक्ष्य में भगवतीचरण वर्मा ने भी चीन को भगवान तथा जापान को शैतान बताते हुए जापान द्वारा चीन पर किये गये आक्रमण को शैतान द्वारा भगवान पर आक्रमण घोषित करते हुए भारतवासियों को यह परामर्श दिया था कि उन्हें शैतान जापान को पछाड़ने में चीन रूपी भगवान की सहायता करनी चाहिए।[3]

द्वितीय विश्वयुद्ध के अवसर पर देश की प्रमुख राजनीतिक संस्था काँग्रेस द्वारा इस तथ्य का विरोध किया गया था कि आंग्ल शासन द्वारा गुलाम भारत को भी यूरोप में छिड़े महायुद्ध में सम्मिलित घोषित करके भारतीय सैनिकों और धन का इंगलैंड की सुरक्षा के लिए प्रयोग किया जाये। काँग्रेस के इस निर्णय के विरोध में कि वह स्वतन्त्र घोषित कर दिये जाने की दशा में ही अंग्रेजों को युद्ध में सहायता देगा[4] देश के प्रमुख नेताओं को भारत रक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार करके

---

1 "जयपाणि जो मदक हुआ है एशिया के हृत का।
है शिष्य वह जापान भी इस वृद्ध भारतवर्ष का।"

'भारत भारती', पृ० 13

2 कायर वह जो नेता बनता था चला गया/मिल गया लुटेरों की सेना में कायर/× × × लाखों की रकम डकार रहे हैं/काट रहे हैं/गले करोड़ों के छिप छिपकर कायर/ × × कायर जो भी मुँह देख रहा हो/चीनी जनता के हत्यारों का वह कायर।

'तार सप्तक', सं० रामविलास शर्मा, पृ० 242

3 'चीन भगवान है हम सबका रक्षक है/और जापान है पूरा शैतान/× × × संकट में पड़ा हुआ आज भगवान/मानव है/साथ दो उसका/नहीं तो यह जापान शैतान/देगा पछाड़ भगवान को/तुम पर/कर लेगा आधिपत्य।

'एक दिन', पृ० 64-65

4 'बापू बोले पराधीन हम, कहो आपकी मदद करें क्या?

'जननायक', र० श० मिश्र, पृ० 351

जेलों म डाल दिया गया था [1] और 'भूखे नगे ग्रामीणो को फौजो मे भरती' करने की प्रक्रिया आरम्भ कर दी गयी थी।[2] आग्ल शासन की इस कायवाही के विरोध स्वरूप विनोबा भावे आदि सत्याग्रहियो ने गाँवो म घूम घूमकर सैनिको की भरती किये जाने के विरोध मे भाषण देने आरम्भ कर दिये थे।[3] उन्होंने आग्ल शासन के इस तक का कि 'हमारी भर्ती खव ठाठ से होती, चन्दा हमे खूब मिलता है, खोखलापन दिखाते हुए कहा था कि सरकार भूखे-नगे लोगो को डरा धमकाकर सेना मे भरती कर रही है जबकि उसके युद्ध-कोष मे जनता हृदय से एक कौडी तक नही देना चाहती।[4]

देश की प्रतिनिधि राजनीतिक सस्था राष्ट्रीय काग्रेस द्वारा आग्ल शासन या मित्र शक्तिया को युद्ध मे सहयोग देने के स्थान पर 'अग्रेजो भारत छोडो' का आह्वान किया गया था अत निश्चय ही देश का वातावरण आग्ल शासन विरोधी भावनाओ से ओत प्रोत था। इस परिपार्श्व मे पन्त के यह उद्गार सवथा समीचीन प्रतीत होते हैं कि देशवासी हृदय मे यह अभिलाषा किया करते थे कि युद्ध मे मित्र राष्ट्रों (अमेरिका इगलड फास और रूस आदि) की पराजय तथा धुरी राष्ट्रो (जमनी इटली-जापान) की विजय होनी चाहिए।[5] इस युग ग्रहकन के विपरीत युगान्त और ग्राम्याकार पन्त की चिन्तन-सरणि की कुछ परिसीमाएँ रही हैं अत उन्होंने अपने मार्क्सवादी बन्धु-बान्धवो की इस धारणा का भी उल्लेख किया है कि जनता द्वारा आग्ल शासको के प्रति प्रदर्शित विद्वेष भाव क्षणिक ही था, क्योंकि इगलड पूँजीवादी युग का एक प्रगतिशील राष्ट्र था, और आग्ल शासक भी बडे सहृदय थे।[6] इसीलिए भारतवासी भी मित्र राष्ट्रो की विजय के अभिलाषी थे और आग्ल शासन के प्रति सदभाव प्रेरित होकर जन मन धन की दृष्टि से उसके पूणत साथ थे।[7] पन्त ने यह भाव भी व्यक्त किया है कि भारत के शत्रु के शत्रु अर्थात जपान के शरीर का कीडा (आजाद हिन्द सेना) ताल ठोकते हुए भारत के द्वार पर आ खडा हुआ था तथा बरमा और मलाया को जीतकर, भारत की ओर

---

1 4 'जन नायक', र० श० मित्र पृ० 354 374, 371, 383

5 नमक मिच वहु लगा ग्राम जन/मित्र राष्ट्र का गाते परिभव।
अवचेतन मे क्रुद्ध मनाते/विजय धुरी राष्ट्रो की नित नव।"
'लोकायतन', पृ० 104

6 आग्ल देश क प्रति वह केवल/क्षण आवेश रहा जन मन मे।
प्रगति पुरस्सर राष्ट्र रहा वह/पूँजीवादी युग जीवन मे।" वही पृ० 104

7 'मित्रा का जय कामी भारत/उसके प्रति सदभाव विद्रवित।
जन धन मन से विश्व युद्ध मे/मित्र राष्ट्र के सग था निश्चित।'
वही, पृ० 106

भी गीध-दृष्टि से देख रहा था। इस सन्दर्भ में कवि की प्रतिक्रिया यह है कि यद्यपि आंग्ल-साम्राज्यवाद भी 'हिंस्र क्रूर' था किन्तु जर्मनी की नाजी तथा इटली की फासिस्ट शक्तियाँ रूपी यान्त्रिक दत्या का बौना सैनिक शिष्य अर्थात् जापान और भी अधिक भयंकर था।[1] बहुत कुछ इसी प्रकार की धारणा व्यक्त करते हुए रामविलास शर्मा ने उन हिन्दू मुसलमानों का उपहास किया है जो जन्हैयालाल की' की तान पर 'हिन्दू हिन्दुस्तान की/जय हिन्लर भगवान की/जिन्ना पाकिस्तान की/टोजो और जापान की' जय-जयकार करते हुए कवि की दृष्टि में इस मूढ़ता में लीन रहते थे, 'बोलो वन्दे मातरम्/सत्य शिव सुन्दरम्।[2] उन्होंने हिन्दू मुसलमानों को इस तथ्य के लिए भी लताड़ा है कि वे कहने को तो 'हिन्दुस्तान हमारा है/प्राणों से भी प्यारा है/ × × × पाकिस्तान हमारा है' की नारेबाजी करते रहते हैं किन्तु इस युद्ध-काल में इसकी रक्षा कौन करे? —के प्रश्न के उत्तर में 'सत मत में कौन मरे?' की धारणा अपनाते हुए 'बैठी हाथ पै हाथ धरे/गिरने दो जापानी बम/सत्य शिव सुन्दरम्' का निश्चय किये शान्त बैठे हुए हैं। इसी क्रम में डा० शर्मा ने यह अभिलाषा भी व्यक्त की थी 'यह आजादी का मैदान जोतेंगे मजदूर किसान।[3] अभिप्राय यह कि कवि को शायद यह गलत फहमी थी कि द्वितीय विश्व-युद्ध में रूस के सहायक अंगरेजों का अंध समर्थन करने वाली कम्यूनिस्ट पार्टी को उस युद्ध में विजयी हुए आंग्ल शासक भारतीय स्वतन्त्रता का और प्रकारान्तर से भारतीय शासन का तोहफा भेंट कर जायेंगे। जग० प्र० मिलिन्द ने भी 23 12 43 को लिखी कविता में आंग्ल-साम्राज्य की रक्षा के लिए भारत आये मित्र राष्ट्रों के सैनिकों की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है कि यान्त्रिक सभ्यता का प्रतिनिधित्व करने वाले ये लाल और श्वेत वर्णों के सैनिक 'संरक्षण मानवता के हैं' तथा ये स्वयंसिद्ध जय के त्राता हैं। अपनी माँ-बहनों-पत्नियों को छोड़कर साधिकार जय रक्षा व्रत/लेकर चल पड़े स्वगृह से ये/ये श्वेत वर्ण ये रक्त वर्ण। कवि ने यह भाव भी व्यक्त किया है कि यदि उनके वाधुयानों से कुछ ऐसे काले भारतीय मर भी जाते हैं जो गोरों के शिष्य युगों के हैं किन्तु 'फिर भी निबल हैं और बस पाक कला निपुण सेवा तत्पर'[4] हैं तो कोई हानि नहीं है। कवि ने आंग्ल शासन की इस दृष्टि

1 "अरि का अरि कृमि तन का शव/डाल ठाकता खड़ा द्वार पर।
बरमा मलाया, निगल फरता/गृद्ध दृष्टि भारत पर दुद्धर।
हिंस्र क्रूर साम्राज्यवाद था/पर नात्सी, फासिस्त क्रूरतर।
इन यान्त्रिक दत्या के बौने/सैनिकवादी शिष्य भयंकर।
लोकायतन', पृ० 106

2 'तारसप्तक', सं० पृ० 246 3 वही सं० पृ० 247

4 'बलिपथ के गीत' पृ० 92 93

से भी सराहना की है कि अंग्रेजों ने इन जड-बुद्धि काले भारतीयों पर अनवरत अनुकम्पा करते हुए उनको विज्ञान तथा कला-कौशल सिखाये हैं और उनकी पिछली कृतघ्नता को भूलकर अब उनकी रक्षा के लिए युद्ध कर रहे हैं।[1] इन सैनिकों के आगमन से न जाने कितने भूखों-नंगों की रोटियाँ चल रही हैं और ताँगे वाले भी एक की जगह चार चार रुपये पाकर प्रसन्न हो रहे हैं।[2] कवि ने कुछ मूढ़ दिलजलों द्वारा उन सैनिकों की यह कहकर निन्दा करने पर कि ये 'खाते है सेरों फल मक्खन अंडे दिन में ये सात बार' ऐसे मूढ़ों को कुछ विज्ञों के मुख से यह समझाने का चित्रण किया है आये भी तो हैं दूर यहाँ/उपकार हमारा करने को देने को हमको अभयदान।[3] कवि के इन उद्गारों में स्पष्ट ही है कि इक्कों-तांगों तथा भूखों-नंगों की रोटियाँ चलाने वाले मित्र राष्ट्रों के ये सैनिक यदि सदव के लिए ही भारत में अड्डा जमा लेते तो कितना उत्तम रहता।

काँग्रेस द्वारा आंग्ल शासन या मित्र राष्ट्रों को युद्ध सहायता दिये जाने का विरोध करने के तथ्य का चित्रण करने वाले रघुवीर शरण मित्र जैसे कुछ वाद मुक्त कवियों ने यद्यपि रूस की वीरता की भी प्रशंसा की है[4] और जापान द्वारा विजगापटटम कोकनद और कलकत्ता पर बम वर्षा करने पर भी चिन्ता व्यक्त की है[5] तथापि उन्होंने सुभाषचन्द्र बोस को राष्ट्रीय हीरो के रूप में चित्रित करते हुए उनकी आजाद हिन्द सेना की भी मुक्त कंठ से सराहना की है। गो० प्र० व्यास ने दिखाया है कि सुभाष ने आजाद हिन्द सेना के सैनिकों को भारत की आजादी के सम्बन्ध में यह समाश्वासन दिया था कि 'वह बोले रक्त मुझे देना/इसके बदले में भारत की आजादी मुझसे लेना।[6] जब उन्होंने भारतमाता के प्रति अपना तन मन धन-जन-जीवन समर्पित करने के अभिलाषी युवक युवतियों से एक कागज पर अपने रक्त से हस्ताक्षर करने का आह्वान किया था तो ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था कि युवक-युवतियाँ चाकू छुरिया आलपीन से, अपना रक्त गिराते हुए 'आजादी के परवाने पर हस्ताक्षर करते जाते थे।'[7] रक्त-हस्ताक्षर

---

1 'जड बुद्धि कृष्ण वर्णों पर भी/अक्षय है गोरी अनुकम्पा।
कितने श्रम से सिखलाये है/विज्ञान कला, कौशल इनको।
पिछली कृतघ्नता असफलता/सब भूल बने इनके रक्षक।'
बलिपथ के गीत', पृ० 93

2 'कितने भूखों बेकारों की/रोटियाँ चलाने ये आये।
हँस हँस कहते ताँगे वाले/दिं रहे एक के चार-चार। —वही पृ० 94

3 वही पृ० 94

4 5 जननायक', र० श० मित्र पृ० 386 40

6 7 'रंग जंग और व्यंग्य गो० प्र० व्यास, पृ० 66, 67

करने म 'संग्रह कायाओ' ने भी 'आगे आ करके खून बहाया' था।[1] आजाद हिन्द सेना के सिपाहियों को वस्त्र और भोजनादि की चिन्ता नहीं थी क्योंकि 'बस एक लक्ष्य आजादी था, आजाद हिन्द के राही का।[2] उस सेना मे जातिगत ऊँच-नीच या हिन्दू मुसलमान का कोई भेदभाव नही था, और सन् 1857 के स्वतन्त्रता-संघर्ष के हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की तरह देखा उस दिन मुस्लिम भाई भी सबसे आगे आये थे।[3] नाना प्रकार के अभाव झेलते हुए भी सुभाष के नेतृत्व म आजाद हिन्द सेना ने कोहिमा मणिपुर, विशनपुर और इम्फाल के मोर्चे जीत लिए थे, जिससे आजाद हिन्द सेना की भारत के तो 'नगर-नगर घर घर मे दुहाई' फिर ही गयी थी उसके शोलो से यूरोप भी दहल उठा था। लन्दन म चिन्ता छा गई थी और अगरेज यह मानने को विवश हो उठे थे कि माला के विष की दवा नहा के अनुरूप काले हिन्दुस्तानी सनिकों की वीरता का कोई जोड़ नही है।[4] कवि ने इस संग्राम के सम्बन्ध म यह स्वतन्त्रता के महासमर का, पहला रक्तिम च्यौरा था [5] की धारणा भी व्यक्त की है जो वस्तुत पहला रक्तिम दौर' माने जाने के स्थान पर सन् 1857 के संघर्ष के परिप्रेक्ष्य म द्वितीय दौर कहा जाना चाहिए। अन्य कवियों ने भी सुभाष द्वारा राष्ट्र की मुक्ति-हेतु मातृभूमि की गोद त्यागने, उनकी सेना का समर घोष 'जयहिन्द और 'चलो दिल्ली है इनका नारा' होने तथा सुभाष द्वारा 'मुझे खून तुम दो मैं दूगा स्वतन्त्रता कल्याणी आदि' तथ्यों[6] का वर्णन करने के साथ ही इस तथ्य पर आह्लाद व्यक्त किया है कि सुभाष ने अँगरेजो की गोलियो का मुहतोड़ उत्तर बम-वर्षा द्वारा दिया था।[7]

सुभाष के सन्दर्भ म यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि मार्क्सवादी रुझान के एक कवि विशेष की ओर से उनको कायर भगोड़ा और तानाशाही का एजेंट बताया गया था, किन्तु अनेक कवियों ने उन्हें राष्ट्रीय वीर तथा सच्चे देशभक्त के रूप म श्रद्धांजलियाँ अर्पित की हैं[8] जो वस्तु स्थिति के सर्वथा अनुकूल हैं। मार्क्सवादी

---

1 5 रग, जग और व्यग्य' गो० प्र० व्यास पृ० 69 70, 71, 75, 72

[illegible] सिंहासन', बलवीर सिंह रग पृ० 58 61

7 आजाद हिन्द सेना बोली, भारत छोडो ! भारत छोडो !
बर्मा से सेनानी सुभाष, गोरो की फौजो पर लपका
अग्रेजो ने गोली मारी उसने गोरो पर बम पटका।
'जननायक', र० श० मिश्र, पृ० 408

8 चमको राष्ट्र गगन मडल म चूम चरण सिन्धु तेरे।
मेरे वीर सुभाषचन्द्र, सौभाग्य चन्द्र बन जा मेरे।'
'सेवाग्राम', सो० ला० द्वि०, पृ० 36

स्तान के ही कवि ज० प्र० मिलिन्द ने तो अपने सहधर्मियों की ओर से नेताजी सुभाष से यह क्षमा-याचना भी की है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में दलगत राजनीतिक धुंध का गन्दा वातावरण छँट गया है जिससे आप राष्ट्रीय गगन-मंडल में एक शुभ्र नक्षत्र के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके हैं। ऐसी दशा में अब आपको कुछ लोगों द्वारा आपके विषय में जो अनुचित उद्‌गार व्यक्त किये गये थे उनकी उपेक्षा करते हुए शीघ्र ही भारत लौट आना चाहिए।[1] मिलिन्द जी का सुभाष की विमान दुर्घटना में मृत्यु हो जाने की अफवाह में विश्वास नहीं रहा है, अतः उन्होंने 'जहाँ कहीं हो स्वीकृत कर लो, मातृभूमि के हे प्रिय स्मृति धन/सबके महामिलन का वन्दन स्नेह प्रसून नयन के जलकण'[2] के रूप में उनको कृतज्ञ राष्ट्र के भाव भीने श्रद्धा-सुमन समर्पित किये हैं। चीनी आक्रमण के समय आक्रान्ता को मुंहतोड़ उत्तर देने के लिए दिनकर द्वारा वीर सेनानी सुभाष के भारत लौटने के सम्बन्ध में जो तीव्र छटपटाहट व्यक्त की गयी है[3] वह जन धारणा का मुखरित रूप ही है। धर्मवीर भारती ने सुभाष की विमान-दुर्घटना में मृत्यु हो जाने की किंवदन्ती को स्वीकृति प्रदान करते हुए एक ओर तो यह विषाद व्यक्त किया है, दूर देश में किसी विदेशी गगन खंड के नीचे/सोये होगे तुम किरनों के तीरों की शैया पर। इसके साथ ही उन्होंने सुभाष की अप्रतिम देश भक्ति की भावना को रेखांकित करते हुए यह भाव भी व्यक्त किया है कि देश भक्त सुभाष की स्वस्थ आत्मा को, स्वर्ग का वैभव विलास मोहित नहीं कर पाया होगा। इसीलिए खुद ईश्वर ने वीर अंगूठा अपनी सत्ता भूल/उठकर स्वयं किया होगा विद्रोही का सम्मान' जैसा अद्वितीय गौरव पाने पर भी वे भारतमाता की स्मृति को नहीं भूल होंगे और स्वर्ग में अपने स्वागत-समारोह का कोलाहल शान्त होते ही 'खोल कफन ताका होगा तुमने भारत की ओर'[4] अर्थात् आपकी आत्मा भारत माता के दासता-पाश को काटने के लिए व्यग्र रही होगी। हमारा निजी अनुभव भी यही है कि नेताजी सुभाष' और उनकी 'आजाद हिन्द सेना' के प्रति देश के कोटि-कोटि लोगों के मानस में अधिकांश कवियों द्वारा व्यक्त श्रद्धास्पद चेतना के अनुरूप ही उदात्त भावनाएँ विद्यमान रही हैं। सन 1946 48

1 छंट चुके हैं नीचे दलगत राजनीति के धूमिल बादल।
ऊपर स्वच्छ राष्ट्र उर नभ के, हो तुम शुभ्र नक्षत्र समुज्ज्वल।"
बलिपथ के गीत', पृ० 95

2 वही पृ० 97

3 'हम हाय आज तक जिसको गुहराते हैं/नेताजी अब आते अब आते हैं।
साहसी, शूर रस के मतवाले को/टेरो टेरो आजाद, हिन्द वाले को।
'परशु० की प्रतीक्षा', पृ० 9

4 'ठंडा लोहा', पृ० 47

की कालावधि म वे विशेषत ग्रामीण समाज के ऐसे 'हीरो' बन गय थे कि उनक समक्ष राष्ट्रपिता गाधी और पंडित नेहरू की भी छवि धूमिल पड गयी थी। उन दिनो उनके अप्रतिम शौय की प्रशसा स सम्बन्धित अनक लोकगीत और जिकडी भजनो की रचना की गयी थी। इसी प्रकार के एक जिकडी भजन की आरम्भिक पक्ति थी—'भारत गारत भया भूमि आरत भई भारी'। आत-मातभूमि की रक्षा हेतु अवतरित दिखाये गये नेताजी सम्बन्धी इस गीत की मुख्य टेक थी— बिचरयो दल बोस निसक। कहा जा सकता है कि स्वतन्त्र्योत्तर काल क स्वार्थांध राज नीतिक वातावरण म 'सुभाष' को भी बहुत कुछ उसी प्रकार की उपक्षा-अनादर की नियति भोगनी पडी है जो बिस्मिल-आजाद आदि अन्य क्रान्तिकारी शहीदो के सन्दभ म घटित हुई है।

ततीय विश्व युद्ध के विषय मे चर्चा करते हुए पन्त न यह भाव व्यक्त किया है कि विगत वर्षों म विश्व राष्ट्रो ने अणु-अस्त्रो क साथ ही रुज कीटाणुओ की गरल-वृष्टि की पद्धति का भी विकास कर लिया है, जिसस वे महा प्रलयकर ततीय विश्व युद्ध क लिए सन्नद्ध प्रतीत हाते हैं।[1] नीरज ने ततीय विश्व-युद्ध की सम्भावना के सम्बन्ध मे यह भाव व्यक्त किया है कि उसके कारण होन वाले भयकर विनाश की आशका इस तथ्य की ओर सकेत करती है कि अब युद्ध नही होगा अब युद्ध नही होगा।[2]

प्रस्तुत अध्याय म भारत की दासताकालीन तथा स्वातन्त्र्योत्तरकालीन राज नीतिक स्थिति के सम्बन्ध म अभिव्यजित हुई कवि चतना से स्पष्ट होता है कि देशवासियो के हृदय म स्वाधीनता प्राप्ति की कामना जाग्रत करने क उद्देश्य से कवियो ने मात भू के स्तवन तथा पौराणिक एतिहासिक वीरो के श्रद्धापरक स्मरण के साथ ही महाराणा प्रताप छत्रपति शिवाजी और महारानी लक्ष्मीबाई को स्वा धीनता-सेनानियो के रूप म चित्रित करने का माग अपनाया था। इसी प्रकार सन् 1857 के सघष को अनेक कवियो ने प्रथम' स्वतन्त्रता-सग्राम के रूप म निरूपित करते हुए उसे भारतीय सभ्यता का पाश्चात्य सभ्यता के विरुद्ध सघष मानने की भी चेतना व्यक्त की है। इसी अनुक्रम म रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद और सरदार भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी शहीदो की आग्ल शासन को थर्रा देने वाली गतिविधियो का बडा ही भाव भीना और श्रद्धापरक चित्राकन किया गया है। इस तथ्य को भी विषादपूवक उभारा गया है कि आजादी की नीव का पत्थर बनन वाले इन शहीदो तथा द्वितीय विश्व-युद्ध काल मे अपनी आजाद हिन्द फौज' के अप्रतिम साहसिक कारनामो द्वारा भारत को आग्ल शासन के दासता पाश से मुक्त कराने करन की चेष्टा करने वाले वीर सुभाष को स्वातन्त्र्योत्तर

---

1 युगपथ, पृ० 107 2 'प्राणगीत, पृ० 89

काल मे अपेक्षित महत्त्व नही प्रदान किया गया है। गाधीजी के नायकत्व मे चले कॉग्रेसी आन्दोलनो, सत्याग्रहियो द्वारा सहे जाने वाले कष्टो आदि तथ्यो का भी अधिसख्य कवियो ने सहृदयतापूर्वक वर्णन चित्रण किया है। हाँ यह चेतना भी व्यक्त हुई है कि जैसे कुछ लोग क्रान्तिकारियो की गतिविधियो के निन्दक थे उसी प्रकार कुछ लोग गाधीजी के अहिंसा, चर्खा कातने, ट्रस्टीशिप आदि सिद्धान्तो की निन्दा करते रहते थे। भारत विभाजन के अवसर पर हुई भयकर मारकाट की घटना के सम्बन्ध म कवियो न बड़े ही विषादमय उदगार व्यक्त किये हैं।

स्वातन्त्र्योत्तरकालीन भारत की शासनीय राजनीतिक स्थिति और भ्रष्ट राजनेताओ क सम्बन्ध म कवियो ने तीव्र व्यग्य विद्रूपात्मक दृष्टिकोण व्यक्त किया है। अधिसख्य कवियो ने हमारी आजादी के खोखली सिद्ध होने तथा जनतत्र व्यवस्था के सर्वथा असफल हो जाने का मूल कारण हमारे राजनीतिज्ञो-सासदो मन्त्रियो का आकठ भ्रष्टाचार मे लिप्त रहना निर्दिष्ट किया है। पूजीपतियो चोरबाजारियो और गुण्डो के बलबूते ससद की कुर्सी पाने वाले सासद ऐसी नीतियो का निर्माण करते दिखाये गए हैं जो उनके इन आकाओं का हित-सरक्षण करते हुए जन-सामान्य की अधोन्नति की खाई का गहरा करती हैं। सरकारी और विपक्षी सभी प्रकार की राजनीतिक पार्टियो के सासद स्वतत्रता रूपी करप-वक्ष स अनेकानेक प्रकार की नियामतें लूटते दिखाए गए हैं। आयाराम गयारामो की धन लिप्सा, सासदो की पारस्परिक गाली गलौज और हाथापाई आदि तथ्यो के प्रति भी बडी ही घृणापरक चेतना व्यक्त की गयी है।

पाकिस्तान से हुए सघर्षो के सम्बन्ध मे जहाँ राष्ट्रीय गर्व की चेतना व्यक्त हुई है वही चीन से मुह की खाने के तथ्य के प्रति आत्मालोचनापरक दृष्टि व्यक्त की गई है। कवियो न युद्ध विरोधी चेतना जाग्रत करते हुए द्वितीय विश्व-युद्ध के दुष्परिणामो का लोमहर्षक चित्रण किया है। मार्क्सवादी रुझान क कवियो ने इस युद्धावसर पर मित्र राष्ट्रो की विजय कामना करते हुए उनकी भारत मे आयी सेनाओ का उल्लासपरक वर्णन तथा सुभाष के सघर्ष की निन्दा की है। इसके विपरीत राष्ट्रीय सास्कृतिक काव्य धारा के कवियो ने कॉग्रेस द्वारा इस युद्ध म आग्ल शासन की सहायता स इन्कार करने के तथ्य को उचित ठहराते हुए अजाद हिन्द सेना और उसके नायक सुभाषचन्द्र बोस द्वारा भारत को सशस्त्र सघर्ष द्वारा मुक्त कराने के प्रयास की मुक्तकठ से सराहना की है। स्वातन्त्र्योत्तर काल मे मार्क्सवादी कवियो की ओर से भी सुभाष से क्षमायाचनापूर्वक यह आग्रह किया गया है कि वे स्वदेश लौट आयें, क्योकि राजनीतिक धुध का वातावरण छट जाने के कारण अब आप राष्ट्रीय गगन म एक शुभ्र नक्षत्र के रूप म प्रतिष्ठित हो चुके हैं।

छठा अध्याय

साहित्य, कला, शिक्षा, भाषा और विज्ञान सम्बन्धी नवीन चेतना

आधुनिक काव्य में साहित्य और कला के उद्देश्य, शिक्षा-पद्धति, राष्ट्र भाषा तथा विज्ञान की उपयोगिता-अनुपयोगिता के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं। साहित्य और कला के क्षेत्र में अधिकांश कवियों द्वारा उन्हें जन जीवन से सम्पृक्त करने के तथ्य पर बल देते हुए उनको मन प्रसादन की वस्तु समझने की धारणा का खंडन किया गया है। भारत की शिक्षा प्रणाली को अनुपयुक्त दिखाते हुए यह धारणा व्यक्त की गयी है कि आंग्ल शासन द्वारा निजी स्वार्थों की सिद्धि हेतु प्रवर्तित शिक्षा प्रणाली को स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी अपनाये रखने से बेरोजगारी तथा विघटनवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं। राष्ट्र भाषा के सम्बन्ध में दासता-काल से ही चलते आने वाले विवाद के स्वातन्त्र्योत्तर काल में भी न सुलझ पाने के सम्बन्ध में कवियों ने गहन चिन्ता एवं तीव्र आक्रोश व्यक्त किया है। विज्ञान तथा वैज्ञानिक आविष्कारों के समर्थन और विरोध से सम्बन्धित चेतना यद्यपि पिछले अध्यायों में भी यथा प्रसंग प्रदर्शित की जा चुकी है, तथापि तत्सम्बन्धी कुछ अन्य तथ्य प्रस्तुत अध्याय में भी निर्दिष्ट किये गये हैं।

(क) साहित्य और कला

काव्यकृतियों के अन्तर्गत मुख्य रूप से कविता की विषयवस्तु, उसकी उपयोगिता-अनुपयोगिता, कवियों द्वारा देशी विदेशी भाव विचारों के अपहरण, काव्य क्षेत्र की गुटबाजी, कवि-कलाकारों की आर्थिक दुरवस्था और उनका सत्ताधीशों धनाधीशों द्वारा क्रय कर लिया जाना आदि तथ्यों का व्यंजित होना ही नैसर्गिक है, हाँ उन्होंने अन्य कलाओं के सन्दर्भ में भी यत्किंचित मात्रा में उद्‌गार व्यक्त किये हैं। पंत ने सातवें दशक के साहित्य और कला जगत में कैक्टस युग विद्यमान होने की धारणा व्यक्त की है।[1] दिनकर ने भी 'कैक्टस' को आधुनिकता

1 "कैक्टस युग अब विद्यमान साहित्य, कला में/× × × कैक्टस प्रमुख प्रतीक आज विकलांग जगत का।" 'शंख ध्वनि', पृ० 24

या कहिये अधुनातन सभ्यता का प्रतीक बताते हुए, इस सभ्यता के पुजारियों से यह अनुरोध किया है 'आधुनिकता की बही पर नाम अब भी तो चढ़ा दो/नायलन का कोट हम सिलवा चुके हैं/और जड़ से नोचकर बेला चमेली के द्रुमों का/कैक्टसों से भर चुके हैं हम बाग अपना।'[1] एक अन्य कवि ने भी इसी प्रकार की धारणा व्यक्त की है 'यही सभ्यता, संस्कृति, यही शालीनता/हाइड्रोजन परीक्षण के विरोध से ज्यादा/कैक्टस उगाने की महत्ता।'[2] कलाओं के संरक्षण और विकास की दृष्टि से पन्त ने दक्षिणी भारतवासियों की प्रशंसा करते हुए कहा है— नत हूँ मैं दक्षिणी भारत के सम्मुख/वह महान है/कलाभिरुचि रखता है अद्भुत।[3] पंत ने कला में सत्यम् शिवम् सुन्दरम् के समन्वित आदर्श के निर्वाह पर बल देते हुए यह धारणा भी व्यक्त की है कि सत्य के अभाव में सौंदर्य—ज्योति छाया का माया-जाल मात्र होता है, जबकि वह सत्य जिसमें कल्याण की भावना का अभाव हो, बाल की खाल निकालने की सीमा तक तर्काधृत होते हुए भी अग्राह्य ही है। इसी प्रकार घोर वैयक्तिक राग-द्वेष की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित कला-कृतियां, रचनाकार के अचेतन एवं उपचेतन मानस में विद्यमान दमित भावनाओं से सम्बद्ध होने के कारण, वस्तु या कथ्य की दृष्टि से कीचड़ में रेंगते कीड़ों-तुल्य घणित-कुत्सित होती हैं।[4] ताजमहल की गणना विश्व के प्रसिद्ध सात आश्चर्यों में किये जाने पर भी पंत ने उसके सौंदर्य के सम्बन्ध में निन्दापरक उद्गार व्यक्त किये हैं। शुद्ध कलाकृति की दृष्टि से तो एक कवि ने ताजमहल की इन शब्दों में प्रशंसा की है—

'ताजमहल तू मनुज प्रेम की सुन्दर सुरभित, सुखद कली।
खिलकर, परिमल विश्व प्रसारा, किया पराजित काल बली।[5]

इसके विपरीत मार्क्सवादी कविताएँ लिखने के उत्कर्ष-काल में पंत ने इस दृष्टि से गहन आक्रोश व्यक्त किया था कि जब देश के करोड़ों लोग भूखे-नंगे हों तो फिर किसी मृत रमणी की स्मृति को चिरस्थायी रखने के लिए मृत्यु की ऐसी अमर और अपार्थिव पूजा किये जाने का क्या औचित्य था ?[6] रमेश गौड़ ने यही प्रश्न

1 नये सुभाषित', पृ० 46 2 'जग लगे सपने', विजयचन्द, पृ० 74
3 'वतझर', पृ० 100
4 'न वह सौंदर्य न जिसमें सत्य, ज्योति छाया का मायाजाल।
न वह सत्य ही न जो शिव रूप बाल की भले निकाले खाल।
अचेतन उपचेतन के चित्रमात्र अति वैयक्तिक उच्छ्वास।
रेंगती कला पंक कृमि तुल्य, अधोमुख कुत्सित बुद्धि विलास।'
'लोकायतन', पृ० 279
5 'रजनी में प्रभात का अंकुर', श्रीमन्नारायण, पृ० 59
6 हाय! मृत्यु का ऐसा अमर अपार्थिव पूजन!
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।" 'रश्मिबंध' पृ० 72

'जवानज्योति' को ही कदाचित 'जवाहर ज्योति' मानते हुए उठाया है, 'जब नापाम बमो स जलते हुए जिस्मो, खेतो, शहरो और सस्कृतियों से धुआँ उठ रहा हो, तो हर रोज/पाँच सौ लोगो की रोजी को फूक देने वाली अखड जवाहर ज्योति/प्रकाशित नही कर पाती देश का कोई भी कोना ।'[1]

आधुनिक काल म दिवगत नेताओ के कलात्मक स्मारक बनाने, उनकी स्मृति म डाक टिकट और सिक्के जारी करने की प्रथा विकसित हुई है जो सास्कृतिक दृष्टि म निश्चय ही एक उपयोगी एव अपेक्षित कदम है। डा मिथिलेश काति ने नेहरू की दिवगत आत्मा से इन प्रथाओ का विरोध यह तक दिलाकर कराया है कि गाधीजी के नाम का सिक्का चलाने का काय मैंने तो देश के पिता/अपने गुरु पथ प्रदशक गाधी के लिए (भी) नही किया था' किन्तु उसको 'मेरे दोस्त कर बठे' हैं और 'उन्होने मुझ सिक्के म कद कर/मुर्दापरस्ती और बुतपरस्ती का जो नमूना पेश किया है' उसस 'मैं कितना शरमिन्दा हूँ कह नही सकता। इसी प्रकार उन्होंने यह उद्गार भी व्यक्त कराये है भूल जाओ तीन मूर्ति को/भूल जाओ मेरे सिक्के को/भूल जाओ मेरी तस्वीरो को/वह सब करो जिससे मुझे प्यार था/जिसमे देश का उद्धार था।'[2] वस्तुत यह तथ्य विवादास्पद ही है कि किसी महान व्यक्ति के गुणो को देशवासियो के जीवन मे उसके स्मारकादि बनाने के अभाव मे कसे सचरित किया जा सकता है? हाँ जसा कि पीछे दिखाया जा चुका है आधुनिक काव्य म इस तथ्य की भी भत्सना की गयी है कि गाधीजी की शिक्षाओ क अनुकूल आचरण करने के स्थान पर उन्हे पूजा की वस्तु बनाकर मन्दिरो मे पहले स ही विद्यमान प्रस्तर-खण्डो (मूर्तियो) म एक और पत्थर के रूप म जोड दिया गया है। बच्चन ने आधुनिक काल म बुद्ध की मूर्तियो के ड्राइगरूमो का शोभा उपकरण मात्र बन जाने के तथ्य पर इस दृष्टि स गहन विषाद व्यक्त किया है कि उनक विचारो से सवथा अनभिज्ञ लोग उनकी मूर्तियो को शिकार किये गये जानवरो की खालो और सीगो के मध्य सजाते है।[3] उन्होने कला और साहित्य के सम्बन्ध म यह लोक धारणा भी व्यक्त की है 'कला और साहित्य शगल हैं/कुछ रईसजादो की फुरसत की घडियो क' इसीलिए 'कभी सिर फिरे युवक म/पत्र-पत्रिकाओ को पढकर/अगर हुई कुछ सुग-बुग कलम चलाने की तो/दुनिया देखे समझदार/इस बेकारी

1 निषेध' सक० पृ० 185 2 ज्योतिपुरुष, सक०, पृ० 324

3 'बुद्ध भगवान/अमीरो क ड्राइगरूम/रईसो के मकान/तुम्हारे विचारो स अनजान/× × × शेर की खाल हिरन के सीग/कला कारीगरी के नमूना क साथ तुम भी हो आसीन/लोगो की सौंदय प्रियता का/देत हो तुम तस्कीन/इसीलिए तुमने एक की थी आसमान-जमीन।'
उद० आधुनिक कविता खण्ड 3, प्र० सपा० ओमप्रकाश शर्मा, पृ० 34 35

के धंधे मे पडने मे/मना उसे करते हैं—'तात करो विधि सोई/हंडिया खुद बुद होई।'[1] कलाओ के सम्बन्ध मे रमेशचन्द्र मिश्र के यह विद्रूपात्मक उदगार हम भी वस्तुस्थिति के निकट प्रतीत होते हैं ऐसा लगता है कि/कला का केन्द्रीकरण हो गया है/कला सिमट आयी है—कला-वीथियो मे/तीन मूर्ति संग्रहालय मे या रवीन्द्र भवन म/अशोका य कालीनो पर या फिर चायघरो म/कलाकार। केन्द्रित हो गये हैं/नगरो मे इगरो म/या फिर केवल केन्द्र दिल्ली मे/उसम भी रेस्ट्रा की कुर्सिया पर/कविता के मच पर/पार्टी के लन्च पर/शोक प्रस्तावक गोष्ठियो मे/चन्न संग्राहक समितियो मे/ ✕ ✕ ✕ एकादमी के पुरस्कारो मे/पत्रिकाओ की सम्पादकीय पोशाक मे/या फिर सभापति की व्यास गद्दी पर।[2]

काव्य-कला को मूर्ति-कला और काष्ठ-कला से उत्तम घोषित करते हुए श्याम विमल ने यह भाव व्यक्त किया है कि, 'पत्थर मे तराशा हुआ गाधी/इसस हमारा क्या होगा ? लकडी मे बसा सेवाग्राम/हमे क्या फायदा ? दगा जबकि मैं कविता मे 'शब्द या शिल्प/नही आदमी रखकर सोचता हू।[3] वीरेन्द्र कुमार जैन ने आधुनिक काल के कला और साहित्य पर पाश्चात्य जगत म उभरे अनेक वादो का प्रभाव दिखाते हुए नागावाद (डाडाइस्ट) भाववाद (इम्प्रशनिस्ट) बिम्बवाद (इमेजिस्ट) प्रतीकवाद (सिम्बोलिस्ट) घनवाद (क्यूबिस्ट) स्वप्नवाद (ड्रीमिस्ट), अति यथार्थवाद (सररियलिस्ट) का उल्लेख करने के साथ ही अमानुषिकतावादी हो/कोलाज हो पाप हो कि फ्लाप हो/कि हैपनिंग्ज कही जाने वाली/नवीनतम नाटयकला हो' के संबंध मे यह विचार व्यक्त किया है कि ये सभी वाद रचना-कौशल या तकनीक स सम्बन्धित हैं। ये सभी वाद 'रूप-पर्याय बदलने की युक्तियां से/भटके चित्त का बहलाव मात्र हैं इसीलिए 'कही भी चेतना की नयी पखुरी नही खुलती/नया प्रदेश नही खुलता/आदमी का नया जन्म नही होता /कोई नवीनतम अतिक्रान्ति घटित नही हो रही/किसी भी कला मे, कविता मे चित्र मे/नाटक मे।'[4] कवि ने इस दृष्टि से भी चिंता व्यक्त की है कि 'लदन पेरिस यूयार्क और बम्बई/मास्को टोकियो और पीकिंग मे सब कही/सारे कवि चित्रकार कलाकार नाट्यकार कलाकार/ अपनी चेतना को दोहरा रहे हैं/आत्मा को दोहरा रहे हैं' जिसमे विश्व मे 'सवत्र एक जैसी ही कला और काव्य-कृतियो का सजन' हो रहा है।[5] यह मनोरजक तथ्य भी उल्लेखनीय है कि कुछ कवियों जस डा०

1 उभरते प्रतिमानो के रूप', पृ० 110
2 व्यक्ति और अभिव्यक्ति पृ० 62 3 दीमक की भाषा पृ० 18
4 शून्य पुरुष और वस्तुए पृ० 185
5 सब एक-दूसरे की नकल कर रहे हैं/सब गलरियो म एक-से चित्रो और शिल्पो का प्रदर्शन हो रहे हैं/सारे कवि-रूपो और बिम्बो और शलियो के/हरफेर क साथ एक-सी कविताएँ लिख रहे हैं। वही, पृ० 186

देवराज[1] और श्यामसिंह शशि[2] ने यह धारणा व्यक्त की है कि भारत के साहित्य जगत् में पनपने वाले विभिन्न काव्यांदोलनों और साहित्यिक वादों की जड़ें सात समन्दर पार के बुद्धिजीवियों-साहित्यकारों द्वारा व्यक्त किये गये भावों विचारों से जुड़ी तो रहती ही हैं भारत में प्रायः पाश्चात्य जगत् के मृत वादों के भूतों को पुनर्जीवित किया जाता है। इस मान्यता का प्रतिवाद भी किया गया है।[3] कला और संस्कृति की दृष्टि से विभिन्न लोगों की भिन्न भिन्न अभिरुचियों की ओर संकेत करते हुए विठ्ठलभाई पटेल ने एक ही परिवार की नाना पीढ़ियों की अलग अलग रुचियों का उद्घाटन करते हुए ठीक ही लिखा है 'चाहे तुम अपने बंगले के बरामदे में थर्मस भले ही उगाओ/किन्तु तुम्हारी माँ तो आँगन में तुलसी चौरा पर दीपक जलाती है/तुम अपने ड्राइंगरूम में चाहे पिकासो की पेंटिंग भले ही टाँग लो/किन्तु तुम्हारी पत्नी ने शयनकक्ष में अभिनेत्रियों के भड़कीले कलेण्डर' टाँग रखे हैं। इसी प्रकार तुम्हारे बुकशेल्फ में चाहे पास्तरनाक और सार्त्र की पुस्तकें सुशोभित रहती हैं किन्तु तुम्हारा अनुज तो छिपकर गुलशन नन्दा ही पढ़ा करता' है।[4]

(ग) काव्य की परिभाषा, विषय वस्तु और उद्देश्य

काव्य की विषय-वस्तु और उद्देश्य की दृष्टि से अधिकांश कवियों ने यह धारणा व्यक्त की है कि काव्य मनोरंजन मात्र की वस्तु नहीं है अपितु उसके द्वारा समाज का उचित मार्ग-दर्शन किया जाना चाहिए। उसकी विषय-वस्तु का सम्बन्ध शृंगार रस की कामोत्तेजक भावनाओं के स्थान पर जन-सामान्य के सुख-दुःख की अभिव्यक्ति तथा उनकी जीवन-दशा को उत्कृष्ट बनाने सम्बन्धी

---

1 "भूतपर्वी मार्क्स-सार्त्र इलियट के भक्त बुद्धि/जीवी लेखक रीडर/कहीं पूर्व पश्चिम की धरती में नहीं जड़ें/किन्तु बड़े आधुनिक/शाम सुने सुबह दुहराते एशिया के होनहार नागरिक।' इतिहास पुरुष, पृ० 20

2 "हमारी रचनायें/ऐसी कार्बन कापियाँ हैं/जिनका ओरोजिनल/सात समन्दर पार/किसी साहित्यिक म्यूजियम में सुरक्षित है/पश्चिम में जब कोई वाद/दफना दिया जाता है/तब हम उसके भूत को/बड़े जोर शोर से जगाते हैं/उसे पुनर्जीवित करने का/असफल नाटक रचाते हैं। × × × कितने चतुर दूकानदार हैं हम/नि कापी को/ओरोजिनल के नाम से/खपाते हैं।

शिलालेख पर से पृ० 1[illegible]

3 'नया जो भी है/नकल है/आयातित है, झूठ है/यह बात आरगनिक कमिस्ट्री के/आठवें घर की गैसों से भी हल्की जान पड़ती है।'

'परवलय', राजेन्द्र धस्माना, पृ० 31

4 'दीवारों के खिलाफ', पृ० 18

तथ्यों का मुखरण होना चाहिए। मैथिलीशरण गुप्त ने काव्य का उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करने के साथ ही 'उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए' की धारणा व्यक्त की है।[1] उन्होंने कवियों से यह आग्रह भी किया है, करते रहोगे पिष्टपेषण और कब तक कविवरो/कच कुच कटाक्षों पर अहो ! अब तो न जीते जी मरो।'[2] पंत ने पल्लव की भूमिका में (पृ० 21) रीतिकालीन शृंगारी कविताओं की तीव्र भर्त्सना की है जबकि लोकायतन की एक कविता में भी यह भाव व्यक्त किया है कि उसमें चित्रित नर-नारी फ्रायड द्वारा प्रदर्शित काम ग्रंथियों से सपीड़ित हैं और रीतिकालीन काव्य उनका काम-ग्रंथियों का मुचन मात्र है।[3] हाँ उस कालावधि में पंत वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान/निकलकर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान'[4] के रूप में काव्य को वैयक्तिक राग-द्वेषमयी अनुभूतियों का सहज उच्छलन स्वीकार करते थे। परवर्तीकाल में उनकी दृष्टि जनोन्मुखी हो गयी है और उन्होंने 'कला कला के लिए' के सिद्धान्तानुकूल काव्य प्रणयन करने के तथ्य को वाणी का व्यभिचार बताकर निन्दा करते हुए इस तथ्य पर बल दिया है कि कवियों को लोक जीवन में पठकर उसको स्वर्गोपम बनाने का प्रयास करना चाहिए।[5] उनका विचार है कि कवि का लक्ष्य आनंद और रस की सिद्धि मात्र नहीं होता क्योंकि रस और आनंद अनुभूतिजन्य होते हैं और वे वस्तुतः भाव व अर्थ गौरव की ही वृद्धि में सहायक बनते हैं।[6] हाँ अन्यत्र उन्होंने रस सिद्ध शब्दों को ही कवित्व, मार्मिक नि स्वर के स्फुरण को ही गीत, अर्थ असामर्थ्य को अलंकार तथा स्वतः प्रकृत अक्षरों को छन्दों के रूप में परिभाषित किया है।[7] कवि-कर्म के सम्बन्ध में भी पंत ने यह विचार व्यक्त किया है कि कवि सम्राट या सेनापति नहीं होता अपितु वह होता सित चित्त रस

1 2 'भारत भारती', 170 95 170/92

3 'फ्रायड के से नर नारी/गत रीति काव्य में मूर्तित। उपमन कुंजों में करते/निज काम ग्रंथियाँ मुखित।" 'लोकायतन' पृ० 153

4 पल्लव, पृ० 65

5 'कला के लिए कला का राग/वरद कवि वाणी का व्यभिचार।
लोक जीवन के भीतर पठ/स्वर्ग शोभा में उसे सँवार।"
'लोकायतन, पृ० 253

6 लक्ष्य कवि का न मात्र आनंद/न रस ही उसकी अंतिम सिद्धि।
उभय अनुभूति जन्य परिणाम/अर्थ गौरव की करते वृद्धि।' वही, पृ० 254

7 कवि क्या कवित्व ? रस सिद्धि शब्द/क्या गीत ? स्फुरण मार्मिक नि स्वर/
क्या अलंकार ? असमर्थ अर्थ/क्या छन्द ? स्वतः प्रकृत अक्षर।
किरण वीणा', पृ० 86

चातक ।' इसीलिए उसका लक्ष्य समाज को आदर्श देकर बदल देना नहीं होता अपितु वह 'मात्र दृष्टि भर देता जन को ।[1] उन्होंने ऐसे कवियों को धिक्कारा है, जो युगसंकट की घड़ी में भी आत्मतोष के स्वप्नलोक में निमग्न रहते हुए कला और सौन्दर्य के थोथे आराधक बने रहते हैं।[2] दिनकर ने काव्य का लक्ष्य मूलतः पतन पाप और पाखंडों को जलाना घोषित किया है[3] जबकि उन्होंने अपनी वैयक्तिकता परक रसमयी कविताओं के सम्बन्ध में भी यह छटपटाहट व्यक्त की है, 'उर की दबी व्यथा बहाती जग में आज प्रलाप/कविता ही बन रही हाय ! मेरे जीवन का शाप।[4] रामेश्वर करुण ने ऐसी काव्य-कृतियों को थोथी घोषित किया है जिनमें श्रमकारियों के हित की बातें नहीं होती[5] तथा ऐसे कवियों को धिक्कारा है जो अपनी भूखी-नंगी मातृभूमि की उपेक्षा करके शृंगारिक कविताओं के प्रणयन में निमग्न रहते हैं।[6]

नरेन्द्र शर्मा ने कवि-कर्म की समता किसी खनिक की तरह आपे को खोदन किसी प्रसविणी के जापे तथा धरती को फोड़कर उग आने वाले पादपों से की है,[7] तथा काव्य को स्वयं के तपते रहने की भाँति कवि के निजी ताप से तापित अन्तर्मन का रसायन बताया है।[8] सोहनलाल द्विवेदी ने 'ओ नवयुग के कवि जाग-जाग ! के आह्वान के साथ ही उन्हें यह परामर्श दिया है, है एक ओर पीड़ित जनता है एक ओर साम्राज्यवाद/गा जनगण के जागरण गीत टूटे/जिससे युग का प्रमाद ।[9] प्रभाकर माचवे ने यह अभिलाषा व्यक्त की है कि हम उनके गायेंगे

---

1 पौ फटने से पहले पंत, पृ० 84

2 'स्वप्नलोक में रहते हो तुम आत्मतोष के/साथ नहीं दोगे तुम जन का युग संकट में/रिक्त कला सुन्दरता के थोथे आराधक/धिक् तुमको ! यह व्यक्ति अहं जन-पथ कंटक है।' 'रजतशिखर पृ० 64

3 क्रान्ति धात्रि कविते ! जागे उठ आडम्बर में आग लगा दे,
पतन पाप पाखंड जलें जग में ऐसी ज्वाला सुलगा दे। 'रेणुका', पृ० 32

4 वही पृ० 68 5 करुण सतसई', पृ० [illegible]

6 तमसा पृ० 15

7 जसे खनिक खदानें खोदे खनता है वह अपना आपा ।
रत्न प्रसव करती है कविता, हो जसे जाया का जापा ।
गीत उठें उठते धरती से, जस शाल, ताल अरु नीमन ।
बहुत रात गये', पृ० 37

8 'जिसे काव्य कहते आलोचक, है वह अर्तासिद्ध रसायन ।
स्वय ताप से तपता अतसु, जसे स्वय सूयनारायण । —वही पृ० 38

9 'प्रभाती पृ० 5

गाने'। जिनका जीवन किन्ही कारणों से है आज हुआ बेमाने/जो निज अधिकारों से वंचित, जो हैं शोषित, लुंठित, मुंचित।[1] मुक्तिबोध ने काव्य-वस्तु की दृष्टि से इस तथ्य की ओर इंगित करते हुए कि कवि के लिए आजकल विषयों की कमी नहीं है अपितु 'आधिक्य उनका ही/उसको सताता है/और वह ठीक चुनाव नहीं कर पाता है'[2] कविता को ऐसा आवेग त्वरित 'काल-यात्री' घोषित किया है जिसका 'मैं नहीं कर्ता/पिता धाता/कि वह कभी दुहिता नहीं होती/परम स्वाधीन है वह विश्वशास्त्री है/गहन गम्भीर छाया आगमिष्यत की/लिए, वह जन चरित्री है/नये अनुभव नये संवेदन/नये अध्याय प्रकरण जुड़/तुम्हारे कारणों से जगमगाती है/व मेरे कारणों से सकुच जाती है।'[3] नीरज ने पूर्ण होकर रुदन भी युग गान बनता है/मधुरतम गान बनता है'[4] की धारणा व्यक्त करते हुए भी इस रुदन के आत्मकेन्द्रित नहीं अपितु लोकपरक होने पर बल दिया है।[5] अन्यत्र उन्होंने कविता को ऐसी चिड़िया बताया है जो अपना घोंसला तो/पेड़ की ऊँची से ऊँची शाखा पर बनाती है/लेकिन जो अपना भोजन/धरती के गन्दे से गन्दे कोनों में खोजती है।'[6] धूमिल ने कविता को भीड़ में घिरे हुए उद्विग्न व्यक्ति का संक्षिप्त एकालाप बताते हुए[7] असमपूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है कि जब कविता से 'न चोली बन सकती है/न चोगा/तब आप कहाँ/इस ससुरी कविता को जंगल से जनता तक/ढोने से क्या होगा?[8] अन्यत्र उन्होंने कविता को कुर्ता या पाजामा अर्थात् कवि के बाहरी व्यक्तित्व का प्रतीक न मानते हुए कहा है ना भाई ना/कविता/शब्दों की अदालत में/मुर्जरिम के कठघरे में खड़े बेकसूर आदमी का/हलफनामा है तथा यह व्यक्तित्व बनाने की/चरित्र चमकाने की/खाने कमाने की चीज नहीं है अपितु 'कविता/भाषा में/आदमी होने की तमीज है।[9] कैलाश वाजपेयी ने हर शाम फोड़ा की तरह मुझे चीरकर कविताएँ निकलती रहीं[10] के रूप में कविता का सहज विस्फोटन होने का भाव व्यक्त किया है तो दुष्यन्तकुमार ने भी अपनी कविताओं का उत्स अपने परिवेश के दु:ख-दर्द की उपेक्षा न कर पाने

---

1 अनुक्षण पृ० 52
2 3 चाँद का मुँह टेढ़ा है पृ० 73, 155 4 लहर पुकारे', पृ० 1
5 मेरे दर्दीले गीतों को मत पहनाओ हथकड़ी।
मेरा दर्द नहीं मेरा है सबका हाहाकार है।' प्राणगीत, पृ० 5
6 आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि नीरज, सपा० क्षेमेन्द्र सुमन पृ० 117
7 'मगर अब/अब उसे मालूम है कि कविता घेराव में/किसी बौखलाये हुए आदमी का संक्षिप्त एकालाप है। संसद से सड़क तक', पृ० 10
8 9 वही पृ० 67, 91
10 'देहात से हटकर पृ० 9

की विवशता म दिखाया है।[1] उन्होंने यह भाव भी व्यक्त किया है ' × × × लगता है/मैं तो बस जल भीगा कपडा हूँ/जिसको निचोडकर मेरी य कविताएँ/उष्ण इस धरती के ऊपर छिडक देती हैं।'[2]

अन्य कवियो म से केदारनाथ अग्रवाल न 'लेकिन हम लेखक—कुत्ते या घडी नही के रूप म चाटुकारिता तथा कवियो का धन और सत्ता द्वारा सचालित किये जान के तथ्यो का विरोध करते हुए कहा है कि हम मानव आत्मा के शिल्पी है उनके हम वशज हैं/ × × × जिनका ईमान किसी दाम पर बिका नही।' कवि ने कवि कलाकार-वग को वास्तविक स्वतत्रता दिये जान का आग्रह किया है ताकि वह मजूर की किसान की हिमायत करे/जालिम के साथ नही कोई रियायत करे।[3] रघुवीरशरण मित्र ने स्वातन्त्र्य प्रम के गायक पृथ्वीराज (राणा प्रताप के प्रशसक बीकानेर नरेश) और भूषण' तथा अकबर स गोहत्या बन्द करा दने वाले 'नरहरि जसे कवियो के अभाव पर अश्रुपात करते हुए इस दृष्टि स आक्रोश व्यक्त किया है कि आधुनिक काल के कवि हाला पिलात और मधुबाला बुलात आज हैं/रस रगशाला और मधुवाला सजात आज है[4] अत देश म एसी स्थिति विद्यमान है 'ताले गिरा पर लग गय भूखा बिचारा देश है/पग शृखलाओ से बध बस अगला ही शेप है।[5] श्रीकृष्ण सरन न भी कवियो से सदेश जागरण का नूतन अब तुम घर घर म फलाओ/कवि ! अब तुम नये गीत गाओ',[6] का आह्वान किया है। राजेन्द्र धस्माना ने कविता का उद्देश्य समसामयिक चेतना को उसके एकदम/नजदीक से कचोटना' बताते हुए कहा है कि जीवन म अनुपस्थित मूल्यो की प्रावमी देन/आज की कविता नही आती/ × × × समकालीन बोध के इद गिद वह/तेजी से चक्कर काट रही है।'[7] शम्भुनाथ सिंह ने भी अपनी कविताओ को युग धडकनो का ग्राफ और समकालीन परिवेश का थर्मामीटर बताते हुए, उनका लक्ष्य अन्धो को प्रकाश तथा दु खियो को सान्त्वना देना घोषित किया है।[8]

---

1 यह गीत/जो आज चहचहाता है/ × × × बहुत दिनो तडपा था अपन जनम के लिए/मेरी भावनाओ की जख्मी कोख म/काहनियाँ टिकाकर/नन्ह नाखूनो से खरोचकर/लगातार छोटे छोटे पावो से प्रहार कर/विवश कर दिया था इसने वध्या अभिव्यक्ति को। आवाजो क घेरे पृ० 29 30

2 वही पृ० 49

3 फूल नही रग बोलते है पृ० 79 80

4 5 परतन्त्र पृ० 54 60 6 राष्ट्रभारती, पृ० 479

7 परवलय पृ० 130 31

8 ' वध्या न बन कर प्रजनन/वलय/चल, न रुक, न सुस्ता पागल/अन्धे की आँखो को दे प्रकाश जल/आँसू बन ढल, निखरे लोचन/ × × × वर ल उनको

श्रीमन्नारायण ने मधुशाला और मधुबाला सम्बन्धी गीत लिखने वाले कवियों की निन्दा करने के साथ ही छायावादी रहस्यवादी कविताओं को भी निरर्थक घोषित किया है[1] तथा इस तथ्य पर बल दिया है, 'सूर्यकिरण बन जाओ हे कवि, खारे जल से अमृत खींचो/भवसागर दुःख क्षार क्षणों से आशा-वर्षा कर जग सींचो।[2] रणजीत की आत्मस्वीकृति है कि यदा-कदा उनका परास्त मन 'सीधे-सादे ढर्रे से जीवन जीने की/बात सोच लेता है' किन्तु 'संघर्षों के आदी सपने सब समझौते तुड़वाते हैं/और मुझे हर जोर-जुल्म से/बेइंसाफी के खिलाफ वे/बाँह उठाकर लड़वाते हैं।[3] कुमार विमल के उद्गार हैं कि 'कविता आदमी का निजी मामला नहीं/एक-दूसरे तक पहुँचने के लिए एक पुल है।[4]

रामनरेश मिश्र ने इस प्रवृत्ति की निन्दा की है कि 'हमारा कलाकार/घर से निश्चिन्त होकर/बाहर का दंद गा रहा है/या कुतुबमीनार पर चढ़कर/आसमान की हवा खा रहा है।[5] सन्तोषानन्द ने 'मैं जन-जन का गायक हूँ', का भाव व्यक्त करते हुए कहा है कि तुम भी 'सबका दुःख अपना दुःख है मेरे संग यही उचारो।'[6] अजीत पुष्कल ने काव्य सृजन के सम्बन्ध में यह धारणा व्यक्त की है कि दर्द की हर चीख/कविता बन गयी तो क्या करूँ मैं?[7] तो रामावतार त्यागी की मान्यता है कि काव्य उस अनुभूति का संयत प्रकाशन है कहे जिसको रहा जाता नहीं है।'[8] जुगमन्दिर तायल ने कविता का परिवेश की क्रूरताओं से घबड़ा जाने वाले कवि की शरण-स्थली अर्थात् टी० एस० इलियट की तरह कवि व्यक्तित्व का कविता में पलायन स्वीकार करने की धारणा व्यक्त की है।[9] महेश उपाध्याय ने साम्प्रतिक कविता को पान बताते हुए यह धारणा व्यक्त की है कि उसमें शृंगार रस का कत्था, हास्य रस का चूना और वीर रस की सुपारियों का मिश्रण रहता है और कवि गोष्ठियों तथा कवि सम्मेलनों में ऐसी ढेरों कविताएँ प्राप्त की जा

जिसका झुका हुआ माथ/रत्न बाँट करके मथन/थर्मामीटर तू छू तापमान देख/नाड़ी की गति को अवलेख/ग्राफ बना आड़ी तिरछी रेखा खींच/कर उतार चढ़ाव सबका अंकन। 'माध्यम में', पृ० 85

1 2 'रजनी में प्रभात का अंकुर', पृ० 36 37

3 प्रतिश्रुत पीढ़ी, सं०, पृ० 216 4 निषेध सं०, पृ० 167

5 कंधे पर सूरज, पृ० 26

6 'गीता के क्षण, पृ० 96

7 प्रतिश्रुत पीढ़ी सं० पृ० 139

8 'सपने महक उठे, पृ० 21

9 फिर हुआ यह कि मैं असलियत से घबरा/गया और कविता में पलायन कर गया। प्रतिश्रुत पीढ़ी, पृ० 112

सकती हैं।[1]

कतिपय कवियो ने काव्य की भाषा और छन्दो मे अपेक्षित परिवर्तन करने के तथ्य पर बल दिया है। उदाहरणार्थ निराला ने आधुनिक कालीन काव्य म छद मुक्त कविताओ का प्रचलन बढने क सदर्भ म यह आह्लाद व्यक्त किया था कि सम्प्रति कविता छन्द के सकीर्ण कटकाकीर्ण मार्ग को त्याग रही है जबकि पत ने कविता की छद मुक्ति को युग-वाणी क रजत-पाश स मुक्त हो जाने का पर्याय घोषित किया है।[3] अलकारो को पत न कविता-कामिनी के बाह्य शोभोपकरण न मानकर यह धारणा व्यक्त की है कि अलकार 'भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। वे भाषा की पुष्टि के लिए, राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान हैं वे वाणी के आचार-व्यवहार रीति नीति हैं × × × वे वाणी के हास अश्रु, स्वप्न, पुलक हाव भाव हैं।[4] प्रयोगवादी कवियो ने काव्य भाषा की परम्परागत शब्दावली उपमान योजना एव छन्द विधान आदि तथ्यो का प्रखर विरोध किया है। इस सदर्भ म भारतभूषण अग्रवाल के उद्गार है, कितनी सकुचित जीर्ण वृद्धा हो गयी आज कवि की भाषा × × × कवि तोडो फाडो अपना शब्द जाल जो आज खोखला शून्य हुआ/यह है अपने पुरखो की वैभव भोगमयी कलुषित वाणी मदमत्त विलासिनि/त्याग इसे/ × × × हम खुद ढालेंगे/जीवन की भट्टी मे भाषा/जो चाहा रूप बना लेंगे।[5] अज्ञेय न परम्परागत उपमानों को अपर्याप्त एव अनुपयुक्त घोषित करते हुए यह धारणा व्यक्त की है कि ये उपमान मले हो गये है/देवता इन प्रतीको क कर गये है कूच/कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।[6] अजितकुमार न इस परम्परागत काव्य रूढि का विरोध करते हुए कि मुख को चाँदनी चन्द्र या कमल-वत कहा जाये यह धारणा व्यक्त की है हम लिखेंगे/चाँदनी उस रुपये-सी है/कि जिसम/चमक है पर खनक गायब है/हम कहगे जोर स/मुह घर अजायब है/(जहाँ पर

---

1 'आज की कविता एक पान है/कत्था शृगार रस/चूना हास्य रस/सुपारी वीर रस कवि-सम्मेलन पान की दुकान है/गोष्ठी पानदान है।' आँधी आयेगी महेश उपा० पृ० 50

2 आज नही है मुझे और कुछ चाह ! अर्धविकच इस हृदय कमल में आ तू/प्रिये छोडकर बधनमय छदो की छोटी राह/गज गामिनी वह पथ तेरा सकीर्ण कटकाकीर्ण। अनामिका, पृ० 34

3 'खुल गये छद क बध प्रास के रजत पास। अब गीत मुक्त और युगवाणी बहती अयास। युगवाणी' पृ० 21

4 पल्लव, भूमिका, पृ० 32

5 'तारसप्तक' सक० पृ० 89

6 आयाम' सक०, पृ० 30

वतुके, अनमल, जिन्ना और मुदा मात्र रहते है।[1] गिरिजाकुमार माथुर ने स्वय का छायावादी काव्य-परम्परा का भजन बताते हुए कहा है कि मैं छायावाद की अधरी रात्रि को प्रभासित कर देने वाला एसा अग्नि ध्वज हूँ जो निरंतर काव्य क्षितिज म उभरता आ रहा है, 'मैं एसी नयी आवाज हूँ जो बूढी रूढिया और धुनी अनुभूतियो का भग्न कर डालेगी तथा क्या करूँ/, जो शभु धनु टूटा तुम्हारा/ताडन को मैं विवश हूँ।[2]

(ग) साहित्यिक गुटबाजो से अनुप्रेरित पारस्परिक छींटाकशी

इष्ट मित्रो या शिष्य प्रशिष्या द्वारा रचनाओ की पूर्व नियोजित प्रशसा कराने तथा विरोधी खेमे के कवियो पर मिथ्याक्षेप करने की प्रवृत्तियो की यद्यपि कवियो द्वारा भत्सना की गयी है तथापि आधुनिक काव्य म अपने काव्य-गुट के मडन तथा अन्य काव्य गुटो के खडन की प्रवृत्ति अभूतपूर्व रूप म व्यजित हुई है। हाँ पारस्परिक छीटाकशी करते हुए भी प्रतिष्ठित आलोचको को मठाधीश कहकर निम्न करने की दिशा म सभी गुटो के कवि एक मच पर खडे दिखायी पडते हैं। आधुनिक काल के काव्य की विभिन्न धाराओ के सम्बन्ध म उनसे भिन्न काव्य-धाराओ के कवियो की धारणाओ पर दृष्टिपात करें तो स्पष्ट होता है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मूलत आलोचक होते हुए भी आधुनिक काल के रहस्यवादियो के विरोध म कविता लिखते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि सम्प्रति काव्य-जगत म रहस्य जैसे किसी निराले वाद की प्रतिष्ठा नही की जा सकती और यदि कोई नर (पशु) एसा प्रयास करने की धृष्टता करता है तो उसे काव्य-रूपी कृषि क्षेत्र से बाहर हाँक देना चाहिए।[3] इसी प्रकार उन्होने यह भाव भी व्यक्त किया है कि आग्ल-साहित्य म ब्लेक आदि कवियो ने भी एसा ही पाखड रचा था जिनके अनुकरणकर्ताओ को हम पर नही जमाने देने चाहिए। रहस्यवाद म अध्यात्म योजना निरर्थक है क्योकि एसी कविताओ म वासना का विकराल रूप विद्यमान रहता है।[4] प्रभाकर माचवे ने छायावाद के सम्बन्ध म 'अर्थहीन शब्दो का

---

1 'अकेले कठ की पुकार' पृ० 37 2 तारसप्तक', सं० पृ० 199 200

3 'काव्य म रहस्य कोई वाद है न ऐसा जिसे/लेकर निराला कोई पथ खडा करे/ × × × किन्तु आ इसी के सदा झूठे स्वाँग रचे उस/हाँक दो न घूम घूम खेती काव्य की चरे। मधुस्रोत', पृ० 84

4 ''झूठा और पुराना यह पश्चिमी पाखड ले के/होती है नवीनता की ढोंग भरी यक चक/यूरप के किसी कोने म न रह जो रहा/रोकना है किन्तु यहाँ इस आज भरसक/कहाँ का अध्यात्म ? अरे कभी ब्रह्मलिप्सा यह/वासना का सच्चा चोखा रूप विकराल अति।' 'मधुस्रोत, पृ० 86-87

गुफन अस्पष्टाय विवादी/क्या इसका ही कहते हैं सब कविता छायावादी ?'— जैसी जिज्ञासा व्यक्त करते हुए कहा है कि छायावादी कवि संस्कृत शब्द-कोश को लेकर चुन चुन शब्द पुराने/कुछ रहस्य दे अवगुंठन के डाले तान-वितान' की प्रक्रिया अपनाया करते हैं।[1] शि० म० सिंह सुमन ने छायावाद के सम्बन्ध में यह धारणा व्यक्त की है कि 'छायावाद की छाया बडी शीतल थी और उसमें 'हर नारी अप्सरा हर मनुष्य मेमना था।' इसी प्रकार 'प्रगतिवाद नारेबाजी में खो गया/प्रयोगवाद उच्छृंखल बारहसिंघे-सा/अपनी ही अटपटी सींगों में उलझ गया/बिम्बवाद प्रतिबिम्बों के मुकुर में/बिम्बलाशों के चित्र चातन में सो गया तथा अस्तित्ववाद अपने अस्तित्व में/विपुरुषों का पेशा अपनाने में खो गया है।'[2] प्रभाकर माचवे ने किसी प्रगतिशील कवि का परिहासात्मक अंकन करते हुए उससे कहलाया है, 'मैं विद्रोही कवि हूँ, मेरी वाणी भरव प्रलय कहानी/(मैं कब ए लगती है मुझको हाट डिजीज मुझे होता है)।[3] प्रयोगवादी कवियों को नयी कविता के समर्थकों की ओर से सभी प्रकार के प्रभावों से अछूता स्टील का बर्तन घोषित किया गया है। जिस प्रकार स्टील के बर्तन में डाला गया प्रत्येक कमिक्स/हर आब शराब तेजाब, पेमाव या कि गुलाब/अपना प्रयोग कर उड जाता है/बर्तन का कसर छोड़कर वही दशा प्रयोगवादियों की भी प्रदर्शित की गयी है मैं भी बस ही करता हूँ प्रयोग/बेमतलब, बे प्रयास, बिना ध्यान ध्येय के/ × × × मुझ भी कुछ मतलब नहीं/अपने से, अकल से जनता से, कविता से/यह तो कायस सय-कासस मन करता है मेरा।[4] नीरज ने भी बहती गंगा में हाथ धोते हुए 'ढिल्लू और निठल्लू' को खोखल नामक संस्था के माध्यम से प्रयोगशील नामक काव्य आन्दोलन चलाते दिखाया है और यह विचार व्यक्त किया है कि इस संस्था के सदस्यों को छन्द लय और मात्राओं तक का ज्ञान नहीं है। उनका हिन्दी-काव्य जगत को ऐसा सराहनीय योगदान रहा है कि उन्होंने परम्परा का दुग ढहाकर/छन्द-मुक्त गीतों टेकों का गला दबाकर काव्य रचना को इतना सरल बना दिया है कि रघुय तली जो कल तक बेचा करता था, प्याज पकौड़ी/वह भी अब मुक्त छन्द में कविता करता है तथा घसरा धीसू भी जिसकी घास न बिकती थी छदाम को/वह भी अब खच्चरा-गधा पर कलम चलाकर/सप्तक-अप्तक में छपता है।[5]

कतिपय प्रयोगवादी कवि ही आगे चलकर नयी कविता नामक काव्यान्दोलन से भी जुड गये थे अतः उनके द्वारा परम्परा की अस्वीकृति और उपहास किये

1 'स्वप्न भंग' पृ० 63 2 मिट्टी की बारात, पृ० 75
3 स्वप्न भंग', पृ० 77
4 नयी कविता, अंक 1,1954 मेघराज इन्द्र, पृ० 90 91
5 'नीरज की पाती', पृ० 87

आन का प्रत्युत्तर परम्परावादी तथा प्रगतिवादी दोनों ही प्रकार के कवियों की ओर से दिया गया है तथा इस आरोप प्रत्यारोप की प्रक्रिया में यही नियति अकविवादियों की भी भागनी पड़ी है। प्रयोगवाद के पुरस्कर्ता अज्ञेय को 'नयी कविता' के क्षेत्र में स्थान नहीं मिल सका या कहिए नहीं दिया गया था। अतः उनके शब्दों में किसी नये कवि की यह विद्रूपात्मक आत्मस्वीकृति प्रेक्षणीय है 'किस का शब्द था/ मैंने सन्दर्भ में जोड़ लिया/कोई मधुकोष तोड़कर लाया था/ मैंने निचोड़ लिया/किसी उक्ति में गरिमा थी/मैंने उस थोड़ा-सा सँवार दिया/ किसी की संवेदना में आग का-सा ताप था/मैंने दूर हटते हटते उसे धिक्कार दिया।' अज्ञेय के स्वर में इस तथ्य की स्वर तल्खी आ गयी है कि नयी कविता आन्दोलन का प्रवर्तक तथा युगनेता होने का दंभ करने वाला कोई नयी कविता से सम्बद्ध कवि (शायद डॉ० जगदीश गुप्त) उनके काव्य विषय की अस्वीकृति और गाली गलौज करने की दिशा में उस सीमा का भी अतिक्रमण कर गया है जिसका उन्होंने छायावाद की छीछालेदर करने में प्रदर्शन किया था। इसीलिए उन्हें उस कवि विशेष तथा उसके काव्य गुट को गतानुगामी घोषित करके ही आत्म तोष मिला है।[1] शि० मं० सिंह सुमन की नयी कविता के प्रभाव सम्बन्धी व्यंग्यात्मक आत्मस्वीकृति में कहा गया है 'नयी कविता पढ़ी/तो पढ़ता गया/पढ़ता गया/धूल के सुमेरु पर/चढ़ता गया/चढ़ता गया/एक बार झटके से गिरा तो ऐसा गिरा/कि कमर की कचोट का/स्फोट मुँह फूट पड़ा हिच।'[2] इसी प्रकार अपनी काव्योपलब्धियों पर आत्मग्लानि की अनुभव करते हुए सुमन ने इस दृष्टि से विद्रूपात्मक आह्लाद व्यक्त किया है कि उनके श्मशानी पीढ़ी के कवि बंधुओं ने 'ह्रीं ह्रीं क्लीं-क्लीं जैसे निरर्थक शब्द मन्त्रों की साधना द्वारा अपनी अंजुलियाँ काव्य रत्नों से भर ली हैं।[3] बच्चन ने भी परवर्ती पीढ़ी के नये कवियों को

---

1 "आ, तू आ/मेरे पैरों की छाप छाप पर रखता पैर/मिटाता उसे/मुझे मुँह भर भर गाली देता/आ तू आ। × × ×मेरे पैरों की छाप छाप पर रखता पैर/जयी, युगनेता, पथप्रवर्तक/आ तू आ—/ओ गतानुगामी।"

अरी ओ करुणा प्रभामय, पृ० 27 28

2 'विंध्य हिमालय, पृ० 63

3 'तुम तो सहज सिद्ध बनो/ह्रीं, ह्रीं ह्रीं ह्रीं/कापालिक अघोर घट/क्लीं-क्लीं क्लीं क्लीं/नव नव प्रयोगों से/अष्टांग योगों से/साधो सपर्या क्रिया/अनुक्षण श्रीवृद्धि करो/× × ×धन्य हुआ बंधु आज/सिंधु के अनबीधे मोती/ सगोती गोताखोरों का/अंजुलि में भरे देख/ × × × तुमने नये यन्त्रों से/ नयी भूमि तोड़ी है/घिसी पिटी लीकों का/बासी मोह छोड़कर।'

—वही, पृ० 71-72

दुत्कारते हुए कहा है, 'खून पसीने से/जो कर न सके हम/बातों से कर लेंगे/बरखुरदार बड़े भोले हैं/ठोस कदम क्या ये रखेंगे जो कि खोखले हैं, पाले हैं/व्यंग्य सुगम है/चुहल सरल है/कर लें देखें क्या बनता है/दम जिनमें है नहीं/टोलियों से उच्छृंखल/और नपुंसक दल से कोई रण ठनता है ?/सृजन के लिए रक्त देना पड़ता है/अपनी वृद्ध नसों से हम दें ? [1]

अकवितावाद और उससे सम्बन्धित कवियों की तरह-तरह के आक्षेपों द्वारा निन्दा की गयी है। रामदरश मिश्र ने किसी ऐसे विद्रोही अकवि के सम्बन्ध में जो निश्चय ही प्रतिबद्ध कवियों में से है यह भाव व्यक्त किया है कि वह जहरीली गैस भरे अंधे कुएँ में उतरकर सुरंग के रास्ते से कभी रूस और कभी अमरीका में उभरता हुआ सियार की तरह 'हुआँ-हुआँ' करता रहता है।[2] विद्रोही अकवितावादियों के विद्रोह के स्वरूप का स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने अन्यत्र दिखाया है कि किसी कवि की बन्द कमरे में बैठकर लिखी गयी कविता की आवाज उसकी पत्नी तक भी नहीं पहुँचती किन्तु वह यह सोचकर प्रमुदित रहता है कि वियतनाम का मुक्तियुद्ध उसी की कविताओं के बल पर लड़ा जा रहा है। काफीहाउसों में बैठा वह कवि 'अपने से पहले के सारे कवियों का/हुक्का बहुकर उन पर फब्तियाँ कसता रहता है और समझता है कि 'लोग अब तुलसी और रवीन्द्र की जगह/उसी का पढ़ने लगे हैं।'[3] अकविता की वर्ण्य-वस्तु के सम्बन्ध में केदारनाथ कोमल के उद्गार हैं, अकविता है जंगल में तड़पती अधनंगी औरत।[4] दिनकर सोनवलकर ने कौओं और अकवितावादियों में अत्याधुनिकता-बोध की दृष्टि से यह निकट सम्बन्ध बताया है कि वे जिस काव्य वृक्ष पर बैठते हैं उसकी जड़ों से अपने सभी प्रकार के सम्बन्धों को नकारते रहते हैं।[5]

कुछ कवियों ने उन आलोचकों को भी आड़े हाथों लिया है जो विद्वेष प्रेरित होकर किसी कवि और उसकी कृतियों की कटु आलोचना करते रहते हैं। पन्त के

---

1 दो चट्टानें, पृ० 96 97

2 यह है एक अन्धा कुआँ/इसमें मत उतरो/इसमें भरा है जहरीला धुआँ/चीखता रहता है एक विद्रोही (अ) कवि/और रात को सीढ़ियाँ लगाकर/स्वयं उसमें उतरता है/सुरंग के रास्ते/कभी रूस और कभी अमरीका में उभरता है/और वहाँ कवि के नाम पर कर ही क्या सकता है/केवल हुआँ हुआँ। कंधे पर सूरज पृ० 37

3 वही पृ० 66 67 4 कोहरे से निकलते हुए, पृ० 29

5 अ-कवि ही नहीं/कौए भी हो गये हैं/अत्याधुनिक/बरगद की डाल पर बैठकर/करते हैं काँव-काँव/कि इसकी जड़ों से/कोई भी सम्बन्ध नहीं है/हमारा/किसी भी स्तर पर।' 'अ से असभ्यता', पृ० 30

उद्गारों से ज्ञात होता है कि उनकी आरम्भिक रचनाओं के विषय में किये गये मुख्य आक्षेप यह थे, 'न गुरु से सीखे वेद-पुराण/न षड्-दर्शन न नीति विज्ञान/तुझे कुछ भाषा का भी ज्ञान/काव्य रस छन्दों की पहचान।[1] पंत ने आगे चलकर किरण वीणा में भी हिन्दी-समीक्षा पर यह अभियोग लगाया है कि वह क्षुद्र राग-द्वेष का मंच बन चुकी है और छोटे बड़े शुक प्रातिभ विद्वान पाश्चात्य जगत के विद्वानों के सूत्रों को तोता रटंत करते हुए यह घोषणा करते रहते हैं कि जिस तथ्य को हाइडेगर, विकगाड, यास्पर्स, या सार्त्र आदि विचारकों का समर्थन प्राप्त नहीं है, वह सत्य हो ही नहीं सकता। इन साहित्यिक नेताओं ने कुण्ठित बुद्धिजीवियों की सेना के साथ साहित्य जगत में प्रवेश करके उसको अकारण ही वाग्युद्ध का क्षेत्र बना दिया है।[2] उन्होंने इस स्थिति के प्रति खेद व्यक्त करते हुए उचित ही कहा है, कवि का कटु आलोचक के पंजे में फँसना/प्रतिमा के पृथुगज का दलदल में गिरना है/जहाँ मात्र दलबन्दी ही का तार्किक कीचड[3] होता है। तीखी आलोचना के व्यंग्य-बाणों से घायल-आहत तो न जाने कितने कवि हुए हैं हाँ प्रगतिशील आलोचकों के व्यंग्यबाणों से आहतों की मनोव्यथा को उदयशंकर भट्ट ने इन शब्दों को वाणी प्रदान की है अरे यह नहीं हमारा/प्रगतिशील यह कहा क्योंकि—/विश्वास नहीं इसका एशिया में/मार्क्सवाद में/कम्यूनिज्म में/जो है केवल मात्र महौषधि/भारत की ही नहीं नहीं इस व्यस्त सृष्टि की/इस पर है विश्वास न जिसका और नहीं टोटा कह देता/वह कैसा कवि कैसा लेखक, कैसा नेता है।'[4] बचनदेव कुमार ने भी 'ओ मेरे आलोचक मित्र! पक्षधर मस्खरे!' को सम्बोधित करते हुए यह भाव व्यक्त किया है पोस्टरों या पम्फ्लेटों से/कविता जीती नहीं/जीती है वह/अन्तर्बल से प्राण स्फुरण से' और यह चुनौती भी दी है किन्तु हतप्रभ, हतदर्प मैं होता नहीं/कारण यह पथ प्रदर्शिका ऋचा है मेरा/उपेक्षा, उपालम्भ, उपहार एवं उपासना यही तो सोपान चतुष्टय हैं/जीवन विकास के।[5] अभिप्राय यह कि कवि इस विषय में आश्वस्त है कि पक्षधर आलोचकों के मिथ्याक्षेपों की धुंध छँट जाने पर अंततः उसे अपेक्षित स्वीकृति-समादर

---

1 'गुंजन' पृ० 103

2 "राग द्वेष का तुच्छ मंच बन रही समीक्षा/छदमयों के साथ खड़े कुछ चोटी के भी शुक प्रातिभ विद्वान बाल की खाल खींचते/बालों ही की पकड़ सिद्धि अब चोटी की भी/उद्धृत करते ब्रह्मवाक्य मृत विज्ञियों के/कैसे हो सकता वह सत्य भला हाइडेगर किर्कगार्ड, यास्पर्स, सार्त्र या रसल वेल्स से/द्रष्टा जिसके बारे में कह नहीं गये कुछ/ × × × कला क्षेत्र वाग्युद्ध क्षेत्र में बदल अकारण।' 'किरणवीणा', पृ० 226-27

3 वही, पृ० 226

4 पूर्वापर, पृ० 87-88

5 'ईहामृग', पृ० 20

मिलकर ही रहेंगे। उपेन्द्रनाथ अश्क ने भी किसी कवि को यह उपालभ दिया है कि जब तुम मुझसे प्रसन्न थे तो मेरी प्रशंसा में मुझ पर कल्पित गुणों का अध्यारोप किया करते थे और अब अप्रसन्न हो जाने पर कल्पित मिथ्या दोषों का आरोप करने लगे हो।[1] पत्रिकाओं के सम्पादकों पर भी यह आक्षेप लगाया गया है कि वे रचनाओं को उनके स्तर के आधार पर नहीं छापते अपितु या तो 'अहो रूप अहो ध्वनि' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए अपने जैसे ही घटिया इष्ट मित्रों की रचनाएँ छापकर एक-दूसरे की प्रशंसा करते हैं अथवा पत्रिका के मालिकों को प्रसन्न करने के लिए उनके भाई भतीजों की रचनाएँ प्रकाशित करते हैं।[2] इसी प्रकार के किसी सम्पादक को सम्बोधित करते हुए प्रभाकर माचवे ने किसी कवि से कहलाया है, गांधीजी पर कविता मैंने लिख डाली है सम्पादक जी/और शाम को किसी 'बार' में काकटेल पर तो मिलियेगा।[3]

कैलाश वाजपेयी ने कवि और आलोचक के मध्य निरर्थक-सा रिश्ता बताते हुए कहा है कि जैसे हम गंगा और गाय से अपना कोई सम्बन्ध न होते हुए भी उन्हें माता कहते हैं, बहुत-कुछ उसी प्रकार का सम्बन्ध कवि और आलोचक के मध्य भी है।[4] रामदरश मिश्र ने किसी आलोचक को किसी का पहना हुआ जूता अर्थात् आलोचना का निकष पाकर प्रमुदित होते दिखाया है। वह अपने शिष्य से उस जूते को नित्य प्रति चाटते रहने और उधर से गुजरने वालों को काटते रहने का परामर्श देता है। कवि के अनुसार तभी से वह स्वामिभक्त (आलोचक कुत्ता) किसी को वस्तुतः काट तो नहीं पाया है हाँ 'हर आने जाने वाले को/× × × भूक रहा है यह कुत्ता।[5] प्रभाकर माचवे ने अध्यापक वर्ग के आलोचकों को अभिव्यक्ति के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा बताते हुए यह तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त

---

1 तुमने मेरे चित्र बनाये/और मुझमें वे गुण दिखाये/जो मुझमें नहीं थे/किन्तु/ अब जब तुम मुझसे अप्रसन्न हो/ × × × अपनी मटमैली कल्पना से/तुम मेरे चित्र बनाते हो/और/मुझमें वे दुर्गुण दिखाते हो,जो मुझमें नहीं हैं।"
'सड़कों पर ढल साये', पृ० 67 68

2 'इसीलिए छपती हैं रचनाएं/सहयोगी, सहधर्मी, प्रकाशकों की/(अहो रूप अहो ध्वनि)/मालिकों के भाई भतीजों की/यश के सौदागरों की/कुर्सी वालों की,साहित्यिक महन्तों की,चाहे वे घटिया ही हों/यहाँ भी है भ्रष्टाचार।"
'सांस की अधारी' विमल त्रिपाठी, पृ० 56

3 स्वप्न भंग पृ० 83

4 'कवि का आलोचक से/ऐसा नाता है/जैसे गंगा एक नदी है/गाय एक चौपाया/फिर भी हम सबकी माता है।" देहात से हटकर, पृ० 117

5 'कन्धे पर सूरज', पृ० 38 39

की है मेरा मन होता है—कह दूं अभिव्यक्ति की/राह में हैं बड़े-बड़े रोडे और पत्थर/आचार्य और डाक्टर/सम्पादक, प्रकाशक, टेक्स्टबुक वाज, आलोचक/जो कि नहा पढ़ते हैं/चल बस गढ़ते हैं अपने ही जैसे हर साल यों अनाडी/और कीचड़ में फंसी रहती है उस हिन्दी की गाड़ी।[1]

(घ) कवि सम्मेलनी कवि और कविताएं

कवि-सम्मेलनी कवियों को रीतिकालीन राजदरबारी कवियों का आधुनिक कालीन नवीन संस्करण कहा जा सकता है। राजदरबारी वातावरण के अनुरूप ही कवि-सम्मेलनों में उच्च-स्तरीय कविताएँ तो जम नहीं पाती जबकि गले-बाजी और हास्य-व्यंग्य में निष्णात कवि बाजी मार ले जाते हैं। यद्यपि निराला दिनकर, बच्चन और नीरज जैसे प्रतिभावान कवि भी कवि सम्मेलनों से चमके हैं, किन्तु कवियों ने कवि-सम्मेलनों में जमने वाले कवियों की प्राय निन्दा ही की है। प्रभाकर माचवे की यह टिप्पणी देखिये, कविता नहीं हुवा म कर-पद फेंक चीखना अल्फा-बीटा/कविता नहीं गलेबाजी या लम्बे बाल, शाल या अचकन/यह जो मिनिट मिनिट पर अपना दिल उघारते या फिरते हो/अरे बेहया कवि हो या मटके हो जो क्षण-क्षण भरते हो।[2]

हास्य-व्यंग्य प्रधान कविताओं के सम्बन्ध में गोपालप्रसाद व्यास की यह स्वानुभूतिपरक उक्ति उचित ही है, अरे हास्य रस के लेखक जी इस समाज में सांड कहाते/घटनी जैसे समझे जाते, या मजलिस के भाँड कहाते।[3] श्रीकृष्ण सरल द्वारा कवि भूषण के मुख से लगवाया गया यह आरोप भी वस्तुस्थिति का उद्घाटक है कि सम्प्रति कवि सम्मेलनों में वीर रस की कविताओं के स्थान पर बस या तो कोकिल-कंठी कवियों की पूछ रहती है या हास्य रस के विदूषकों की अर्थहीन कविताओं की प्रशंसा की जाती है।[4] सरकारी संरक्षण में आयोजित किये गये किसी कवि सम्मेलन के सम्बन्ध में रामदरश मिश्र ने बड़े ही विद्रूपात्मक उद्गार व्यक्त किये हैं शाही महफिल में/किराये के कवि/वीर रस की कविताएँ भूक रहे हैं/महफिल का पास लिए हुए/शहर का सारा अंधकार/बैठा हुआ

1 अभिव्यक्ति', सर०, पृ० 43
2 स्वप्न भंग', पृ० 64
3 रंग जंग और व्यंग्य पृ० 89
4 'लोग यहाँ अब नाम वीर रस का सुन घबराते हैं/कोकिल कंठी कवि ही केवल अब आदर पाते हैं/या फिर सुकवि विदूषक जी जो सबको खूब हँसाये/अर्थहीन कविता के सच्चा में ही उन्हें फंसाये।'

'राष्ट्रभारती', श्रीकृष्ण सरल, पृ० 129

झूमता है।'[1] 'जी हुजूर मैं गीत बेचता हूं' भवानीप्रसाद मिश्र का कवि सम्मेलनों में अत्यधिक चला फर्माइशी गीत रहा है जिसके सम्बन्ध में रामावतार त्यागी ने उनसे यह प्रश्न कर ही दिया है, ठहरो गीत बेचने वाले, ओ सौदागर! ओ व्यापारी/मैं ग्राहक हूँ बोलो मन से तुमने कितने गीत लिखे हैं! कवि का अभियोग यह रहा है कि 'गीत फरोश' के गीतों में दुखी जीवन की व्यथा नहीं उभरी है, अपितु उनमें नकली आँसुओं की लड़ियाँ पिरोयी गयी हैं। उसके आक्रोश का एक कारण यह मिथ्या गर्व भी रहा है कि अब तक कोई गीत को खरीद नहीं सका है, कितनी कर मर गये खजाने गीत आज तक नहीं बिका है और इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने यह भाव व्यक्त कर दिया है कि तुम कैसे बेचोगे जिसने गीत एक भी नहीं लिखा है।'[2] वस्तुस्थिति यह है कि जैसाकि आगे दिखाया गया है अनेक कवियों ने दूसरे कवियों पर यह आक्षेप किया है कि उन्होंने अपने गीत या कविता तो क्या अपनी अंतरात्मा तक पूंजीपतियों, मंत्रियों और पुरस्कारों के हाथों बेच रखी है।

(इ) नियोजित काव्य साधना

सम्प्रति हिन्दी काव्य जगत में तो कविता-लेखन की बाढ़-सी आयी हुई है। कभी तीन चार कवि मिल मिलकर अपने पैसे से कविता-संकलन छपवा देते हैं, तो कभी कोई नया काव्यान्दोलन ही चलाते हुए एक-दूसरे की प्रशंसा में समीक्षाएं भी लिख देते हैं। सरकारी-अर्द्धसरकारी पुस्तकालयों में इन काव्य संकलनों को खपा कर लागत मूल्य ही नहीं लाभार्जन भी कर लिया जाता है नहीं तो कम से कम कवि कहलाने का गौरव-लाभ तो उपलब्ध हो ही जाता है। इस स्थिति की व्यंजना कई कवियों की उक्तियों में हुई है कि आजकल किस प्रकार काव्य-साधना एक प्रकार का नियोजित व्यवसाय सा बन गयी है। उदाहरणार्थ गुटबद्ध काव्य-साधना के सम्बन्ध में दिनकर सोनवलकर द्वारा प्रस्तुत यह विद्रूपात्मक चित्रांकन प्रेक्षणीय है 'सब कुछ तय हो गया है/बस लिखने भर की देर है/प्रकाशक का पटा लिया है, रायल्टी का निश्चय हो चुका है/× × × परिचय आचार्यजी लिखेंगे/और भूमिका डाक्टर साहब/समीक्षाएं/पहली लिखेंगे मेरे मित्र (मैंने उनकी लिखी थी)/दूसरी मित्र के मित्र/उन्हें भी अपनी लिखवानी पड़ेगी)/तीसरी मेरा शिष्य (गुरु दक्षिणा के निमित्त)/चौथी शिष्य का शिष्य (उसे भी तो बनाना है अपना भविष्य)/यानी लेनी है डॉक्टरेट/और समर्पण/वह अभी अनिश्चित है/पता नहीं/पुस्तक छपने तक/किसकी मिनिस्ट्री बनती है/कौन होता है मुख्यमंत्री/शिक्षण

1 पक गयी है धूप, पृ० 231
2 सपने महक उठे, रामावतार त्यागी, पृ० 122 23

संस्थाओं मे/स्वीकृत भी तो करानी है।[1]' आधुनिक काल के काव्य गगन मडल मे बेशुमार कवि तारिकाओं के प्रभासित होने के सदभ मे डा० ओमप्रकाश शर्मा की यह व्यग्यात्मक टिप्पणी भी वस्तुस्थिति का सही उद्घाटन करती है कि उनके द्वारा रचा गया काव्य-सकलन आधुनिक कविता का सकलन है क्योंकि इस सकलन की कविताओं मे उन्होंने 'शब्दों को उठाया है भावों को चुराया है, तथा 'कविता बनाने म/बात बनाने से कम समय लगता है/शब्दों को चुराते हैं भावों को उडाते हैं/वह भी जल्दी जल्दी म/काट छाँट करके, उनको छिपाते है कापी राइट के भय म।[2] उनका यह विचार भी हमे सवथा उपयुक्त प्रतीत होता है 'कविता के रूप म भी/तुक हो/ अतुक हो ताल हो बेताल हो लय हो, लयहीन हो/सुर हो, सुर भग हो इस अधी दौड मे/जिसको समय है आज, यह सब देखने का/सुनन-परखने का/इसलिए हमने भी श्वेत खाली कागज को/छापेखाने की स्याही स/शब्दों से भर दिया है।[3] कवियो की सख्या मे हुई वद्धि का 'पापूलेशन एक्सप्लोजन तथा शिक्षा के क्षेत्र म हुए विस्फोट के परिप्रेक्ष्य म पूणत उचित ठहराते हुए उन्होंने आगे कहा है 'पाँचवा सवार बन हमने भी अपना नाम कोटि कोटि कवियों की कोटि म लिखा लिया है और यह चिन्ता भी नहीं है कि अपने पैसा से छपवाया गया काव्य-सकलन बिकेगा कम? क्योंकि तथ्य हम सरकारी अनुदान म चलने वाले पुस्तकालयों के अध्यक्षों से मिलकर पहले ही गोटी भिडा चुके हैं। इस काव्य कृति म जिसके सौ पचास पन्नो का बीस रुपये मूल्य है बस तो लेखक प्रकाशक और विक्रेता सभी को मुनाफा होगा, हाँ यदि टाटा होगा तो भी कोई बात नहीं है क्योंकि सरकार के माध्यम स करो के रूप मे/परोक्ष रूप म यह घाटा कर दाताओं स वसूल कर लिया जायेगा।[4]

(च) साहित्यकारों द्वारा अन्तरात्मा बेचने की भत्सना

यह तथ्य विवादास्पद तो हो सकता है कि क्या वास्तव म ही अधिकाश साहित्यकारों ने स्वय को सरकार या पूजीपतियो के टुकडो पर बच रखा है अथवा नहीं, तथापि लगभग तीस-पतीस कवियो ने अन्य कवियों के सम्बन्ध म यह आरोप लगाया है कि उन्होंने अपनी अन्तरात्मा को पूजीपतियो नेताओं साहित्य अकादमियों म मिलने वाली सुविधाओ और पुरस्कारो के लाभ म बचा हुआ है जबकि वे स्वय बिना बिके हुए काव्य-साधना कर रहे हैं। अन्तरात्मा का बेचन की यह प्रक्रिया कम आरम्भ होती है इस तथ्य की झलक दिनकर द्वारा किसी कवि

---

1 अ स असभ्यता', पृ० 56 57

2-4 आधुनिक कविता', खंड 3 प्रधान सपा० डॉ० ओमप्रकाश शर्मा, पृ० 9 12

पत्नी के मुख से व्यक्त कराये इन उद्गारों से भली भाँति मिल जाती है—

प्रासादों से घिरी कुटी में चिन्ता मग्न खड़ी कवि जाया।
कोस रही वाणी के सुत को टका सत्य है और सब माया।[1]

कहना न होगा कि गृहस्थ जीवन व्यतीत करने वाले कवि के बीवी-बच्चों की आये दिन की माँगें उसे टका धर्म का पुजारी बनने की ओर अनुप्रेरित करती रहती हैं और उसकी अपने सम्बन्ध में यह उदात्त धारणाएं कि वह स्वर्ग का दूत है नन्दनवन अथवा व्यथालोक का राजकुमार है और विधाता की सृष्टि को स्वर्ग तुल्य बनाने से सम्बन्धित त्रुटियों को सुधारने के लिए भूतल पर आया है,[2] धूलिसात हो जाती हैं। वीरेन्द्र मिश्र ने 'चूल्हा जलता रहे निर्दयी का सदा/इसीलिए अन मोल गीत! मैं तुझे दे रहा माटी मोल' की विवशता को मुखरित करते हुए यह भाव भी व्यक्त किया है 'अपने जीवन से इंधन के वास्ते/मैं स्वार्थी हूँ निर्दयी, पुत्र! न तू मेरी जय बोल।'[3] हाँ उन्होंने कवि कलाकारों का आह्वान करते हुए, उन्हें यह परामर्श अवश्य दिया है 'कलम के कारीगरो/कलम के मेहनतकशो! उठो/× × ×तुम्हें मिली अनमोल लेखनी सौदा नहीं करो।'[4] उन्होंने 'भूषण है पर नहीं पालकी है' के रूप में कविता का उपयुक्त सम्मान न किये जाने के तथ्य को उभारते हुए यह धारणा भी व्यक्त की है कि कवि के वेतन भोगी होने से बुरी दशा और कुछ नहीं हो सकती।[5] अल्पायु में दिवंगत हुए देवप्रकाश ने प्रकाशकों द्वारा आर्थिक शोषण तथा साहित्यिक मठाधीशों द्वारा उपेक्षा किये जाने के सन्दर्भ में जो यह उद्गार व्यक्त किये हैं कि —मेरी पाण्डुलिपियों को कबाड़ी को बेचकर मिले पैसों से फ्री-लांसर साहित्यकारों को कॉफी का प्याला पिलाते हुए मेरे कफन का टुकड़ा मेरे पिता को तथा मेरी ख्याति मेरे देश के अन्धकार को बाँट देना—[6] उन्हें आर्थिक दृष्टि से अभावग्रस्त साहित्य-साधकों के जीवन की करुण गाथा कहा जा सकता है। निराला की मृत्यु भी उनके अन्तिम दिनों में अर्थाभाव के कारण

---

1 'रसवन्ती' पृ० 53

2 'कवि! स्वर्ग-दूत या चरम स्वप्न/विधि का तुमको सुकुमार कहें?
नन्दन-कानन का पुष्प व्यथा/जग का या राजकुमार कहें?
विधि ने भूतल पर स्वर्गलोक/रचने का दे सामान तुम्हें
अपनी त्रुटि को पूरी करने का/दिया दिव्य वरदान तुम्हें।' —वही पृ० 93

3 4 'लेखनी बेला' पृ० 98 115

5 'इसीलिए वेतन की जाली में खाली है कवि की कंगाली में
इससे बुरी दशा भी क्या होगी कवि होता जाता वेतन भोगी।'

—वही, पृ० 118

6 'अनाहूत', सं० पृ० 146

सम्यक उपचार न हो पाने के कारण हुई थी। इस लज्जास्पद स्थिति को उभारते हुए शि० म० सि० सुमन ने उचित ही यह भावना व्यक्त की है कि यह तथ्य मेरे अंतमन को घुन की तरह खाता रहता है तथा भीतर ही भीतर शूल सम्मूल उभरता है कि युग की सर्वोत्तम सुषमा श्री से मंडित कवि /पथ पर बेगानों-सा क्या मरता है ?'[1] राजा दुबे ने निराला के असामयिक निधन के लिए हिन्दी-जगत को एक आधुनिक-कालीन तुलसी की हत्या करने का अपराधी घोषित करते हुए कहा है कि इस तथ्य का मुख्य दोष साहित्यिक गुटबन्दी के सिर पर है।[2] केवल गोस्वामी के यह उद्गार भी न जाने कितने साहित्यकारों की मनोव्यथा समाहित किये हुए हैं 'बस इतना ही बहुत है मेरे मरने के बाद/तुम शहर के किसी भव्य भवन में/करा दो एक शोक सभा/जहाँ जीवनभर मेरा जाना निषेध था।'[3]

पंत को एक लाख रुपये का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किये जाने पर निश्चय ही अनेक क्षेत्रों में उन पर व्यंग्य-बाणों की वर्षा की गयी होगी। ज्ञात नहीं बच्चन के यह उद्गार चिदम्बरा कार की ओर सकेतित हैं या उक्तिकार की ओर अथवा सिद्धान्तकथन मात्र हैं—

यह पद/यह पुरस्कार अलंकार/तुम अपना गुण/अपनी योग्यता/अपने अधिकारी होने का अहंकार/लिए बैठे रहोगे बुद्ध जन्म भगवतदत्त/और कोई अपनी खुशामद बरामद/पहुँच प्रभाव दबाव/प्रचार, बिनरिया दंडवत के बल पर/झट ले जायगा।[4]

वस्तुस्थिति जो कुछ भी हो पंत ने 'पुरस्कार भगवान दिलाएँ नहीं किसी को' की धारणा व्यक्त करते हुए कहा है कि पुरस्कृत होने पर व्यक्ति के मित्र भी शत्रु बन जाते हैं और इससे पूर्व प्रशंसक रहे आलोचक भी कटु आलोचक बनकर उसके कृतित्व ही नहीं अपितु चरित्र पर भी अनेकानेक प्रकार के आक्षेपों की वर्षा करके आत्मतोष पाने लगते हैं। उन्होंने विषादपूर्वक इस स्थिति का भी उद्घाटन किया है कि मुझे ऐसे अनेक पत्र मिले हैं जिनमें यह धारणा व्यक्त की गयी है कि हमें खुशामद करना नापसंद है अन्यथा हम भी पुरस्कार और पदवियाँ प्राप्त कर सकते थे तथा किसी साहित्य-स्रष्टा की महानता का निकष पुरस्कार की प्राप्ति को नहीं

---

1 मिट्टी की बारात, पृ० 47

2 'अब भले मनायें जयन्तियाँ/फेरें रात दिन राष्ट्रभाषा की माला/पर जीते जी हमने हिन्दी का एक तुलसी मार डाला/साहित्य को खा गयी राजनीति/हाय! किसी जवाहर से/कम नहीं था—/प० सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला।
एक हस्ताक्षर और', पृ० 8।

3 'बन्द कमरों की संस्कृति', पृ० 45

4 'उभरते प्रतिमानों के रूप', पृ० 21 22

माना जा सकता।[1] अज्ञेय ने साहित्यकारों के वशीकरण तथा उनकी अक्ल दुरुस्त करने के अनेक साधनों का उल्लेख करते हुए पद और पुरस्कारों की ऐसे ब्रह्मास्त्र से तुलना की है जिनके द्वारा रचनाकार की वैचारिक स्वतंत्रता का हनन किया जा सकता है।[2] अज्ञेय ने धर्मवीर भारती को पद्मश्री से विभूषित किये जाने के सन्दर्भ में यह व्यंग्य भी किया है, एक थे डा० भारती/साकिन अतर सुइया/मौके से छू जाय बंगलादेश की लड़इया/पद्मश्री तो पा गये/पर कविता गँवा गये/(या यों ही हेरा गये हांके बम्बइया ?)।[3] रामप्रसाद मिश्र ने एक ओर तो यह धारणा व्यक्त की है आकाशवाणी गोष्ठी/कवि सम्मेलन पत्र आदि/शासन सम्पत्ति धार/के अनुचर हैं[4] जबकि साहित्यिक पुरस्कारों के सम्बन्ध में उन्होंने यह भावना व्यक्त की है, पुरस्कार प्राचीन दासता का स्मारक' है जिसे कुछ नया रूप रंग दे दिया गया है तथा 'विश्व पुरस्कार और राष्ट्रीय पुरस्कार/राजनतिक सांस्कृतिक, साहित्यिक पुरस्कार/आदि परिधानों में प्रतिभा को कृतघ्न करने का षड्यन्त्र चलता रहता है। कवि ने पुरस्कार का स्वीकार करने वाले व्यक्ति की प्रतिभा का विक्रेता प्राचीन दासता का सहयोगी निकम्मा/अपने आप से असन्तुष्ट क्षुद्र व्यक्ति बताकर निन्दा करते हुए प्रश्न किया है प्रतिभा का उपहार बेचने की वस्तु है ?'[5]

भौतिक सुख सुविधाओं तथा विलास-वैभव के चक्कर में पड़कर अपने उचित कवि-दायित्व से विमुख रहने वाले कवियों की निन्दा करते हुए रामेश्वर शुक्ल अंचल ने कहा था जीवन ज्वाला कब भड़केगी ?/इन सस्ते गीतों में ओ कवि/मँगनी की मोटर पर जाकर/जिन्हें सुनाते कवि-सम्मेलन में तुम बढ़ चढ़।' उन्होंने अपने आक्रोश का यह कारण निर्दिष्ट किया था, यस्तस्वार्थ धन सत्ता को तुम कोसा करते/किन्तु उन्हीं की चाटुकारिता में रत रहते हो।[6] नरेन्द्र शर्मा ने भी धन के लिए अंतरात्मा को बेचने अथवा कलम के कंचन की दासी बन जाने के प्रति

---

1 मुझे चुनौती मिली वे भी चाहें तो सब/पुरस्कार पदवियाँ स्वयं भी हथिया सकते/किन्तु खुशामद करना उन्हें पसन्द नहीं है/ कौन न्याय कर सकता, कौन बड़ा सजग है ? पुरस्कार पा क्या लेखक महान हो जाता ?'

शंखध्वनि', पृ० 169

2 लेखक है ? आज़ाद है/मारो स्साले को/पिटाई से न सधे सके तो बदनाम करो, सखिया/धतूरा कुछ खिला दो पागल खाने में डाल दो/ये सब भी बेकार हो जायें तो/साल-दुशाला पद-पुरस्कारों से लादकर/कुचल दो वह तो ब्रह्मास्त्र है।' 'अंतरा पृ० 61

3 वही, पृ० 32 4 5 देश दिल्ली और अहम, पृ० 10, 77

6 'विराम चिह्न, पृ० 69 70

मनस्ताप और आक्रोश व्यक्त किया है।[1]

कवि कलाकारो द्वारा अपनी आत्मा को बेचकर शोषको-अत्याचारियो की निन्दा म वचन की प्रवृत्ति की सर्वाधिक तीखी और मार्मिक निन्दा आलोचना मुक्तिबोध ने की है। उन्होंने यह भाव व्यक्त किया है कि चूकि रक्तपायी वग स नाभिनाल-बद्ध ये सब लोग/नपुसक भोग शिरा-जालो म उलझे रहते हैं अत उनकी जीवन कहानी को इन शब्दा म परिभाषित किया जा सकता है, 'उदरम्भरि बन अनात्म बन गये/भूतो की शादी मे कनात से तन गये/किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर।[3] व्यभिचारियो क भोगो म उपकरण या सहायक की भूमिका अदा करने वाले रचनाकारो की उन्होंने यह कहकर भी निन्दा की है कि वे निजी दु खाभावो का भी तमगो की तरह प्रदशन करते हुए 'अपने ही ख्यालो में दिन रात डूबे रहते हैं' जिसमे उन पर यह उक्ति पूणत चरितार्थ होती है कि उनकी 'जिन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर।[4] जब ऐसी स्थिति हो कि 'बौद्धिक वग है क्रीतदास' तो 'किराये के विचारो का उदभास' होना अवश्यम्भावी ही है।[5] जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द ने तुलसीदास को इस तथ्य के लिए श्रद्धाजलि अर्पित की है कि वे अपने युग मे धन या सत्ता के हाथो बिके नहीं थे[6] जबकि उन्होंने अपनी कविताओ के सन्दभ मे भी यह धारणा व्यक्त की है कि धन या सत्ता के हाथो बिके चाटुकार कवि-कलाकार और बुद्धिजीवी उनकी भावनाओ की गहराई तथा विद्रोही स्वप्नो को समझने म कभी भी सफल नहीं हो सकत।[7] भारत भूषण अग्रवाल ने बिकना तो हमारी परम्परा है' के तथ्योल्लेख के साथ दिखाया है कि पहले हम धम भक्ति और रूप पर बिका करते थे जबकि आजकल के इस सकटमय युग मे उक्त तथ्यो का अभाव

---

1 हुआ नित्य निधन कवि बनकर धनी लालमा का चेरा
व्यवसायी बन गयी भावना सुविधा ने डाला डेरा।
कनक तीलियो मे बन्दी है कवि जन मन बहुमान को।" 'हसमाला', पृ० 43

2 5 चाद का मुह टेढा है पृ० 284, 260, 260 285

6 विद्रोही तुलसी ओ यौवन का नमस्कार/× × ×तुम पतन शील कवि से जूझ थे आजीवन/ ठुकराये तुमने जीण, रूढ़िगत जड विचार/सत्ता वभव न स्वणजाल सब पर डाला/तुम पर उनका चल सका न क्षण भर सम्मोहन।" 'नई किरण', पृ० 17

7 चाटुकारिता/पाखडो की/दुनिया अपनी/अमल लिए जो दरबारी है/ मेरी मनोव्यथा/उन बुद्धिजीवियो को/अविदित है/सत्ता के, धन क अधिपतियो के आगे/नत/साहित्यकार वज्ञानिक कलाकार विद्वान/न मेरे/ विद्रोही स्वप्नो/की कल्पना/कभी कर सकते/अपनी आत्मा का सतीत्व वे/ बेच चुके हैं। —वही पृ० 109-10

होने के कारण 'हार कर हम बिके हैं चाँदी के टुकड़ो पर' तथा 'हम कृतकृत्य हैं' कि हमने 'अपनी परम्परा/अक्षुण्ण रखी है।'[1] जयनाथ नलिन ने किसी आधुनिक कालीन कवि का इस दृष्टि से नवयुगदर्शी कवि बताकर उपहास किया है कि वह मन्त्रियो, मिल-मालिको और उनके रिश्तेदारो के यहाँ विवाह के अवसर पर ही सेहरा नही पढता है अपितु उनके यहाँ कान छेदन या मुडन जैसे उत्सव होने पर भी 'दाँत दिखा, कर उठा मुसकरा' कर बधाइयाँ सुनाता है जिसमे 'तुम देख जगनीक, चन्द दलपत आदि भाट कवि भी लज्जित हो उठते है'। ऐसा कवि उस पूंजीपति को भी चाटुकारिता मे कमी नही छोडता 'जिसने तेरी वर्षगाँठ पर/छपा दिया था तेरा अभिनन्दन ग्रथ छबीला।'[2] कैलाश वाजपेयी ने 'ओ तमाम खुशहाल लोगो' का सम्बोधित करते हुए उनके द्वारा किसी स्वाभिमानी साहित्यकार को मूर्ख बताने के सम्बन्ध मे यह प्रतिक्रिया व्यक्त की है 'तुम ठीक कहते हो/वह एक मूर्ख था/इस पागलखाने मे अन्यथा वह भी, एक बार ढलकर टकसाल मे/उम्र भर मजे से चल सकता था/विदूषक हो सकता था/किसी नगर सेठ का/या फिर/गुण गाकर किसी धूर्त शासक के/अखबारो की कतरन से/अपने लिए टोपी सिल सकता था।'[3]

सेठो मन्त्रियो का कृपा-पात्र होने के फलस्वरूप अभिनदन ग्रथ भेंट किये जाने का सौभाग्य मिल जाने के सदर्भ मे यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि मलयज के अनुसार बहुत से साहित्यकार स्टट फिल्मो मे घटित होने वाली आश्चर्यजनक घटनाओ के अनुरूप प्रकाशक आदि लोगो से अपने अभिनदन की स्वय ही व्यवस्था करा लेते हैं।[4] बच्चन ने भी किसी ऐसे ही साहित्यकार को सम्बोधित करते हुए कहा है, 'लालाजी/आपने अपना अभिनदन ग्रथ/स्वय लिखा/स्वय सपादित किया/स्वय प्रकाशित कर लिया/यह आपने क्या किया? न कोई अपना अनुयायी/न उत्तराधिकारी/आकबत न बिगडे इसस/खुद कर ली अपनी क्रिया/खुद अपना श्राद्ध कर लिया/खुद अपना पिंडा पार दिया।'[5] उन्होंने इस तथ्य की ओर भी इंगित किया है, कि किसी को अभिनदन-ग्रन्थ भेंट किये जाने के लिए सम्बंधित व्यक्ति की जाति बिरादरी वालो का आर्थिक सहयोग भी अपेक्षित रहता है इसीलिए 'गुप्तजी को/भारीभरकम अभिनदन ग्रथ/भेंट कराने के लिए/

1 ओ अप्रस्तुत मन, पृ० 122
2 'धरती ने बोल' पृ० 66 112
3 देहान्त से हटकर' पृ० 109 10
4 स्टट फिल्म की तरह/प्रकाशक से कोई/स्वर्ण जयन्ती मनवा रहा है। 'जख्म पर धूल', पृ० 34
5 'उभरते प्रतिमानो के रूप' पृ० 118

धन लिया मारवाड़ी सेठो ने/उनके बनिया होने के नाते।' बच्चन की शिकायत है कि कायस्थ लोग वस तो धनहीन होते ही है क्योंकि वे आज जो कमाते है/कल उड़ाते हैं किन्तु कायस्थ साहित्यकारो का अभिनदन न हो पाने के मूल मे इससे भी बढ़कर यह तथ्य क्रियाशील रहता है कि किसी कायस्थ ने कायस्थ को कब उठाया ?'[1] है। कुछ भाग्यवान लोग अभिनदना के विशिष्ट पात्र होते ही हैं, इसी कारण जब 'पडितजी को मिली पदमश्री तो 'सस्था सस्था/पडितजी के अभिनदन का आयोजन है' क्योंकि लोग यह विश्वास करते हैं हो विशिष्ट योग्यता कुशलता/अलकरण यह तभी किसी को मिल पाता है।' इसके साथ ही जब पडितजी ने तजी पद्मश्री तो भी 'आज यहाँ कल वहाँ/हमारे पडितजी का अभिनदन होता रहता है, क्योंकि लोग सोचते हैं कि पडितजी का 'त्याग बडा अभिनदनीय है।'[2] प्रतीत होता है कि बच्चनजी के ये पडितजी साहित्यकार नही अपितु भारतीय राजनीति के पक्ष या विपक्ष के कोई 'किंग मेकर' श्रेणी के महापुरुष रहे होंगे।

अन्य कवियों मे से उपेन्द्रनाथ अश्क ने एक कवि, उसके सगीतकार मित्र तथा बुद्धिजीवी साथी की परिणत नियति के माध्यम से इस तथ्य की व्यजना की है कि कवि और सगीतकार द्वारा अपनी कला के प्रभाव से दुष्टो का हृदय-परिवर्तन करने तथा बुद्धिजीवी द्वारा अपने क्रान्तिकारी भाषणो से उनका तख्ता पलटने का स्वप्न उस दशा मे सर्वथा भग हो गया जब सत्ताधीशो ने तीनो को ही खरीद लिया। बाद मे स्थिति ऐसी हो गयी कि वह क्रान्तिकारी और उसके साथी सत्ताधीशो के अनुगत होकर एक बोतल शराब और/घडकते लजीज गोश्त के लिए/क्रान्ति को भून/दानवो से समझौता कर/ऐश उड़ाते हैं।'[3] रघुवीर सहाय ने किसी उप राष्ट्रकवि को अनेक ऐसे विधायकों के घर जाते चित्रित किया है जिनके महामत्री बनने की सम्भावना है जिससे वह स्वय भी राष्ट्रकवि बनने का गौरव प्राप्त कर सके।[4] रणजीत ने यह आशका व्यक्त की है कि कही पूजी के अजगर और प्रेत मुझे भी खरीदकर, उन साहित्यकारो की नियति भोगने को विवश न कर दें जो आरम्भ मे मानवता के ध्वज वाहक होते हुए भी अतत इन प्रेतो द्वारा

1 2 उभरते प्रतिमानो के रूप, पृ० 119, 120

3 खोया हुआ प्रभामडल पृ० 35 36

4 पुलकित उप राष्ट्रकवि/जनगणा तट पर बठे/घिसते थे चदन/किसको तिलकित करें/आज नही जानते वैसे लोहिया के यहाँ आने-जाने लगे हैं/दोनो/कब फिर होंगे राष्ट्रकवि महामत्री।" 'आत्महत्या के विरुद्ध', पृ० 81 82

अपने ही वर्ग में सम्मिलित करके प्रेत बना लिए गये हैं।[1] अतः एक अन्य कवि की यह धारणा भी उल्लेखनीय है आज के राजनीतिक प्रभुओं के अधीन/ज्ञान विज्ञान, साहित्य कला/धनी गरीब/सभी प्रकार की विद्या और सभी प्रकार के/ × × × उपकरण भी दास-दासियाँ हैं जो उनकी पद-सेवा और स्तुति-गायन में रात दिन व्यस्त हैं।'[2] पुरस्कारों सम्बन्धी इस हीनतापरक चेतना के परिपार्श्व में बच्चन का ज्यां पाल सार्त्र द्वारा नोबेल पुरस्कार को ठुकरा देने की इन शब्दों में प्रशंसा करना—'संसार में तेरी प्रतिष्ठा/पुरस्काराभिषेकिता से बढ़ गयी है तथा कलम की महनीयता/स्थापित हुई/स्वाधीनता रक्षित हुई है'[3],—सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होता है।

(छ) शिक्षा के प्रसार तथा शिक्षा-पद्धति सम्बन्धी चेतना

ईस्ट इंडिया कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में से कुछ सदस्यों द्वारा भारत में आंग्ल पद्धति की अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा-दीक्षा दिए जाने का यह तर्क देकर विरोध करने पर भी कि वहाँ शिक्षा के कारण आयी नवजागृति के फलस्वरूप अमेरिका की तरह भारत भी हमारे हाथ से न निकल जाये[4] अंततः उसे सन् 1835 से इस दृष्टि से स्वीकृति प्रदान कर दी गयी थी कि उसके फलस्वरूप भारतवासियों के स्वतः ही ईसाई बनते जाने की प्रक्रिया चल पड़ने[5] के

---

1 "कहीं न डगमग ले पूंजी का अजगर मुझ को भी/प्रेतों के हाथों मैं भी बिक जाऊं/ उन इंसानों की तरह/जिन्होंने पहले स्वर में/मानवता की विजय-पताका फहरायी थी/किन्तु जिन्हें फुसला-फुसलाकर/चाँदी के इस चक्रव्यूह में लाकर/ इन प्रेतों ने/आज प्रेत ही बना लिया है। प्रतिश्रुत पीढ़ी', मक० पृ० 198

2 दीपाराधना' आ० श० माधवन पृ० 97

3 'दो चट्टानें' पृ० 132

4 ' On the occasion one of the directors stated that we had just lost America for our folly in having allowed the establishment of schools and colleges and it would not do for us to repeat the same act of folly in regard to India

उद० आधु० काव्य का सा० स्रोत डा० केसरी नारायण शुक्ल, पृ० 21

5 सन् 1826 से 1831 तक दिल्ली के सहायक कमिश्नर तथा 1831 से 1837 तक कम्पनी सरकार में सचिव रहे सर चार्ल्स एडवर्ड ट्रेवेलियन ने प्रस्तुत सन्दर्भ में 'हाउस आव लार्ड्स' में यह विचार व्यक्त किया था कि पाश्चात्य पद्धति की शिक्षा के प्रचार प्रसार के कारण भारतीय युवक तर्कों के आधार

साथ-साथ, ऐसी शिक्षित पीढ़ियों का भी विकास होगा जो तन से भारतीय होते हुए भी मन-मस्तिष्क आचार विचार आदि की दृष्टि से अपने शासकों-तुल्य होंगी।[1] कहना न होगा कि इनमें से प्रथम स्वप्न की तो आंशिक पूर्ति ही हुई थी, जबकि लार्ड मकाले की देख रेख में सन 1835 में आरम्भ की गयी अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी गयी शिक्षा-पद्धति से आंग्ल-कूटनीतिज्ञों की दूसरी इच्छा की पूर्णत पूर्ति हुई है। आंग्ल शासन में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के सम्बन्ध में गांधीजी ने उचित ही यह विचार व्यक्त किया था, मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली दोषपूर्ण ही नहीं हानिकारक भी है। अधिकांश बालक अपने माता पिता तथा पैतृक व्यवसाय का त्याग कर देते हैं। नगरवासियों के समान वे बुरी आदतों के शिकार हो जाते हैं। वे जो कुछ सीखते है, उस शिक्षा के अतिरिक्त कुछ भी कहा जा सकता है।[2] इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि गांधीजी ने व्यवसाय आधृत बेसिक शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया था, और आजकल भी बहुत से स्कूलों का नाम बेसिक स्कूल है किन्तु वस्तुस्थिति यह है कि उनमें छात्रों को कारगर ढंग से काष्ठ चमड़ा आदि व्यवसायों की शिक्षा दिये जाने के स्थान पर खाना पूरी मात्र की जाती है। कारण यही है कि अभी भारतीय माता पिता और उनके बच्चों की मनोदृष्टि में श्रम की महत्ता का वह मूल्य घर नहीं कर पाया है, जो व्यवसायाधृत शिक्षा प्रणाली की धुरी है।

परतन्त्रता काल में कवियों ने आंग्ल शासन पर यह आरोप लगाया है कि वह निर्धन देशवासियों के बच्चों के लिए सस्ती शिक्षा का प्रबन्ध नहीं कर रहा है जिससे करोड़ों लोग मूर्खता का अभिशाप भोग रहे हैं और देश की उन्नति नहीं हो पा रही है। जब लोगों को खाने के लिए अन्न तक उपलब्ध नहीं है तो फिर वे

पर तथ्यों का निर्णय करने की प्रवृत्ति के फलस्वरूप अपने परम्परागत धर्म का त्याग कर देंगे। चूंकि धर्म प्रेमी भारतीय अधिक समय तक धार्मिक सुविधाओं के अभाव में नहीं जी सकते फलत वे नैसर्गिक रूप में ही इसाई धर्म की शरण में आ जायेंगे। दे० द आफ्टर मथ आव रिवोल्ट',

डी० आर० मेटकाफ पृ० 25

1 Mecaulay put it to creat a class who could act as "Interpreters between us and the millions whom we govern a class of persons Indian in blood and colour but English in taste in opinions in moral and in intellect Ibid p 22

2 'यदि गांधीजी शिक्षक होते', उद्० विजयसिंह लोढ़ा, पृ० 128

बच्चों की फीस और पुस्तकों का प्रबंध कर ही कैसे सकते हैं ?[1] म० श० गुप्त द्वारा आंग्ल शासन की महँगी शिक्षा-पद्धति के लिए दोष देने के साथ ही खाते पीते घरों के उन लोगों की भी निन्दा की गयी है जो धनाढ्य होने के कारण अपने बच्चों को यह तक कहकर नहीं पढ़ाते थे कि हम अपने बच्चों से नौकरी तो करानी नहीं है अतः उनको पढ़ाना लिखाना व्यर्थ है।[2] उन्होंने सरकार के प्रति यह आक्षेप भी किया है कि उसने शिक्षा को विक्रय की वस्तु बना दिया है अतः यदि उसे खरीदने की सामर्थ्य न हो तो व्यक्ति को मूर्ख ही रह जाना पड़ता है। इसके विपरीत जो पढ लिख जाते हैं उनमें से अधिकांश को क्लर्की करके उदर-पूर्ति करनी पड़ती है। डिप्टीगीरी की प्राप्ति स्वर्ग के सोपान की भाँति दुष्कर है। बहुत से लोग इंगलैण्ड जाकर वाकील-बरिस्टर तो बन जाते हैं किन्तु ऐसे शिक्षितों का सर्वथा अभाव है जिनके प्रयत्नों से देश के वाणिज्य को लाभ पहुँचा हो या नये कारखाने खुले हों।[3] आंग्ल शासन की शिक्षा पद्धति के सम्बन्ध में गुप्तजी ने यह आक्षेप भी किया है कि वह हमारे देश की आवश्यकताओं के सर्वथा प्रतिकूल है। उसके कारण हमारे हृदय में स्व-देश के प्रति विद्वेष भाव जाग्रत होता है जबकि विदेशों के प्रति अनुरक्ति बढ़ती है। यही नहीं उससे हमारा स्वास्थ्य भी चौपट हो जाता है।[4] यूरोपीय इतिहास के सन सम्वतों को रटने में भारतीय विद्यार्थियों का व्यर्थ ही समय नष्ट होने का भाव व्यक्त करते हुए उन्होंने जापानी विद्यार्थियों की इस माँग की सराहना की है 'साहब ! हम यूरोपियिन हिस्ट्री न अब सिखलाइए/ बलून की रचना हम करके कृपा सिखलाइए।'[5] रा० न० त्रिपाठी ने आंग्ल शासन द्वारा मात्र अपने राज्य-कार्य के सचालन के लिए क्लर्क आदि कर्मचारियों के निर्माण हेतु आरम्भ की गयी शिक्षा-पद्धति को ऐसी व्याधि बताया है जो भारतीयों

---

1 'क्या कर वह उन्नत होवेगा खोवेगा अपना अज्ञान/कई करोड़ मूर्ख हैं हाँ, जिस भारत के भावी विद्वान/अन्न नहीं है फीस नहीं है पुस्तक है न सहायक हाय/हा ! हा ! या रोते फिरते है, भारत के भावी विद्वान।'

'माता' मा० ला० चतु०, पृ० 44

2 श्रीमान शिक्षा दें उन्हें तो श्रीमती कहती वहीं/घेरो न लल्ला को हमारे नौकरी करनी नहीं/शिक्षे ! तुम्हारा नाश हो तुम नौकरी के हित बनी/लो मूर्खो जीती रहो रक्षक तुम्हारे हैं धनी।' 'भारत भारती', पृ० 114

3 4 वही पृ० 117, 119

5 'वह साम्प्रतिक शिक्षा हमारे सर्वथा प्रतिकूल है/हममें हमारे देश के प्रति द्वेष-मति की मूल है/हममें विदेशी भाव भरके वह भुलाती है हमें/सब स्वास्थ्य का सहार करके वह रुलाती है हमें।' वही, पृ० 118

में 'चरित्रहीनता और भीरुत्व के दुर्गुणों का विकास करती है।[1] माखनलाल चतुर्वेदी ने भी उसे ऐसी काल-सर्पिणी घोषित किया है, जिसके प्रभावस्वरूप देशवासियों की शिराओं में दास्य भावना का विष मिश्रित होता रहता है।[2]

स्वातन्त्र्योत्तर काल मे भी प्रायः पुरानी शिक्षा-पद्धति ही प्रचलित रही है, जिसको पंत ने यह कहकर भर्त्सना की है कि यह तथ्य हमारी मानसिक गुलामी का ही प्रतीक है कि हम शिक्षा के विगत ढाँचे और राजभाषा अंग्रेजी को अपनाये हुए हैं जिनके कारण प्रान्तीयता की विघटनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है।[3] उन्होंने आक्रोशपूर्वक कहा है कि 'शिक्षा ने पथभ्रष्ट कर दिया नवयुवकों का/कुंठा का दिग् अंधकार ही उनके सम्मुख/क्या भविष्य है उनका? थोथी शिक्षा के बल/बलि पशु बनकर, मनुष्यत्व भी आज खो रहे'।[4] इसीलिए हम अपनी शिक्षा-पद्धति में सुधार करके उसको कृषि प्रविधि, अर्थ तथा उद्योगपरक आधार प्रदान करने की आवश्यकता है जिससे शिक्षितों के साथ साथ राष्ट्रोत्थान भी हो सके।[5] अम्बाशंकर नागर ने पब्लिक स्कूलों में शिक्षित नवयुवकों को 'तन से जर्जर, मन से शंकित, बस दुबले, अति आतंकित' तथा 'तर्कों वादों, मत मतान्तरों के नीम हकीम थोथे पंडित' बताते हुए कहा है कि वे मिल्टन, शैली और वर्ड्सवर्थ आदि पाश्चात्य कवियों के तो भक्त होते हैं, किन्तु उन्हें भारत के वाल्मीकि और तुलसी आदि भारतीय कवियों का नाम तक ज्ञात नहीं रहता। इसी प्रकार उन्हें रामचरित मानस, सत्यार्थप्रकाश, गुरु ग्रंथ साहब और कुरान का तो ज्ञान नहीं होता किंतु उन्हें होली बाइबिल के कोटेशन रहते जुबान' हैं। भारतीय युवा वर्ग के भारतीयता से विमुख और पाश्चात्य संस्कृति की ओर उन्मुख रहने का कारण निर्दिष्ट करते हुए कवि ने उचित ही कहा है, पर इनका कुछ भी नहीं दोष/है व्यर्थ क्रोध है व्यर्थ रोष/× × ×ये शिक्षा के जर्जर स्तूप/ये मकाले की टकसालें/अब तक हैं जैसी की तैसी'।[6] उसने शिक्षा की पद्धति में

---

1 "राजकार्य सचालनार्थ ही कुछ शिक्षा प्रचलित है/कठिन व्याधि है विमुख प्रजा का अधःपतन निश्चित है/ प्रजा नितांत चरित्रहीन हो, शक्ति जाय मिट मन की/शिक्षा का उद्देश्य यही है नीति यही शासन की/चरित्रहीन डरपोक अशिक्षित प्रजा अधीन रहेगी।' 'पथिक', पृ० 46

2 माता, पृ० 44

3 4 'किरण वीणा, पृ० 211 221

5 शिक्षा पद्धति निश्चय हम बदलनी होगी
जिस शिक्षा से सुख-सुविधा दुह सके दम कर।
उन्हें बना कृषि प्रविधि अर्थ उद्योगपरक अब।"—वही, पृ० 222

6 'चाँद चाँदनी और कैक्टस', पृ० 66 67

परिवर्तन की आवश्यकता पर बल देते हुए उचित ही खेदपूर्वक इस तथ्य की ओर भी इंगित किया है 'पर शिक्षा क्षेत्र उपेक्षित है रीता है/राख है मैकाले भरा नहीं/ अब भी जीता है।'[1] शम्भूदयाल शर्मा ने भी भारत की शिक्षा प्रणाली की निंदा करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि उसके अन्तगत बच्चों से दिमागी कसरत कराते हुए उनके मन पर अनेक ग्रथों का बोझ लादा जाता रहता है और दिग्भ्रमित शिक्षा शास्त्री, शिक्षा-जगत में तरह-तरह के अंध प्रयोग करते रहते हैं।[2] चूंकि हमारी शिक्षा-पद्धति व्यवसाय आधृत नहीं है अत शिक्षित युवक बेकारी से तंग आकर 'जेब काटते वक्त लूटते सब कुछ करने को तैयार रहते हैं। इस शिक्षा प्रणाली के प्रवर्तक मकाले का तो उचित ही निजी हितों के अनुकूल यह ध्येय था कि 'बाबू बन अनेकों शिक्षित अंग्रेजी में काम करें/अंग्रेजों की शान बढ़ायें, दासवत्ति में नाम करें' किन्तु अब तो देश स्वाधीन हो चुका है फिर इस शिक्षा प्रणाली को क्यों नहीं बदला जाता ?[3] वास्तव में ऐसी शिक्षा शिक्षा न होकर भयंकर शाप ही कही जानी चाहिए जो शिक्षितों को आत्म निर्भर न बनाये, अत हमें आधुनिक शिक्षा प्रणाली में सुधार-परिष्कार करते हुए इन तथ्यों का ध्यान रखना चाहिए तकनीकी, वैज्ञानिक शिक्षा शिल्प कला-कौशल अभियान/जिस शिक्षा में नहीं सम्मिलित, वह निष्फल बोझिल, बदनाम होती है।[4] एक अन्य कवि ने भी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में यह दोष दिखाये हैं कि वह 'व्यक्ति को मशीन का पुरजा बनाती है/राष्ट्रीय एकता की नींव को खोखला बनाती है/व्यक्ति का अहम जगाती है/सिर्फ एक पत्र के नाम पर आदमी का/अस्तित्वहीन, व्यक्तित्वहीन जीवन जीना सिखाती है/ जीवन अनिश्चित बनाती है/दिमागी दासता बढ़ाती है।[5] भ० प्र० मिश्र ने छोटे छोटे बच्चों के सिर पर पाठ्यक्रम में निर्धारित अनेक विषयों की पुस्तकों का भारी बोझ लादे जाने से खीझकर पाठ्यक्रम निर्माताओं का सिर तोड़ने की अभिलाषा व्यक्त

---

1 चांद चांदी और कैक्टस' पृ० 68

2 शिक्षा आज दिमागी कसरत मन पर ग्रथों के अम्बार।
नव प्रयोग का गोरख धंधा अंधों का शिक्षा-व्यापार।'

'क्रांतिवादिनी , पृ० 73

3 पर अब तो स्वाधीन देश है/फिर क्यों अंग्रेजी की छाप ?
हिन्दी आज राष्ट्र की भाषा क्यों न मिटे मन का सताप ?

वही पृ० 76

4 वही शम्भूदयाल शर्मा, पृ० 77

5 युगयात्रा', आशु० प्र० शुक्ल, पृ० 91

है।[1] डॉ० विनय के उद्गार हैं, 'हमारे जीने के ढग म शामिल हो गया है/यूनिवर्सिटी के अहाते म/रोज रोज पुलिस आना/हडताल /भूख हड्ताल नारे जुलूस/ और सबको गालियाँ देना।[2] ऐसी स्थिति अक्सर ही देखने को मिलती रहती है जब 'गुरु का कर लिया है/घराव/अनुशासनहीन शिष्या न ?[3] छात्र-आन्दोलनो के अवसर पर कालिजो म की जान वाली तोड फोड और आगजनी के सन्दभ म व्यक्त किये गये यह उदगार— पास म जल रहा कालेज मुझे लगता है/बंकिम के आनन्द मठ म लग गयी है आग[4]—न कितन देश वासियों की मनोव्यथा क मुखरित रूप हैं।

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में समाजवादी समाज की स्थापना किये जान की सरकारी घोषणाओ के परिप्रेक्ष्य म कवियो ने धनाढ्यो मन्त्रियो-अधिकारियो के बच्चो क पब्लिक स्कूलो म तथा जन-सामान्य क बच्चो क नगर निगम, जिला-बोड या सरकारी स्कूलो म शिक्षाजन करने क तथ्य क प्रति भी कटु व्यग्य किय हैं। विशाल त्रिपाठी ने पब्लिक स्कूलो को पुरातन आश्रमो-गुरुकुलो का नवीन सस्करण बताते हुए कहा है कि उनम आधुनिक द्रोणाचाय नये राज-पुत्रो को पढाते हैं जबकि हमारे इस जनतत्रात्मक शासन म भी न जान कितने एकलव्य उनमे शिक्षा प्राप्त करने मे असफल-असमथ रह जाते हैं।[5] पब्लिक स्कूलो के सम्बन्ध म रामप्रसाद मिश्र का यह विचार उचित ही है कि पब्लिक स्कूल भारत की/बहुसख्यक पब्लिक क/मुह पर तमाचा है।' इसी प्रकार उनक यह उदगार पूणत सत्याधृत हैं कि यद्यपि इन स्कूलो के नाम म 'पब्लिक' शब्द जुडा रहता है, किन्तु वे पब्लिक स साठ कोस दूर होते हैं, और वे अग्रजी दासता की जीती-जागती निशानी हास्यास्पद कहानी है। कवि न इन स्कूलो म शिक्षा प्राप्त करन वाले बच्चो के पिताओ को भी गाय की खाल ओढे भडिय तथा भारत के प्रमुख व्यक्ति होत हुए भी उन्ह 'भारत क प्रमुख शत्रु' घोषित किया है। उसन यह मीठी चुटकी भी ली है कि जनसख्या क अनुपात की

---

1 "और छात्र बढे पुरजोर हैं/कालिजो म सीखने को आये तोड फोड हैं।
कहते हैं पाप है समाज म/धिक हम पै ! जो कभी पढें इस राज म।
अभी पढने का क्या सवाल है ? अभी तो हमारा धम एक हडताल है।'
'परशु० की प्रतीक्षा, पृ० 63

2 सदभ', सक० पृ० 26

3 'अ से असभ्यता दिन० सोनवलकर पृ० 20

4 'सुरभि के दाण त्रिभुवन चतुर्वेदी पृ० 68

5 'द्रोणाचाय अब भी हैं पढा रहे नये राजपुत्रो को/आश्रम का नाम हो गया है/पब्लिक स्कूल/अपने जनतत्र म/एकलव्य ज्यो के-त्यो/निशान है साध रहे/वन मे।' 'साँस की अधारी, पृ० 11

दृष्टि से दिल्ली मे पब्लिक स्कूलो की सर्वाधिक संख्या विद्यमान है जिससे स्पष्ट होता है कि दरिद्र-नारायण के पुजारी तथा व्यवसाय आधृत बेसिक शिक्षा प्रणाली के प्रवर्तक गांधीजी की समाधि, दिल्ली मे बहुत सोच समझकर ही बनायी गयी है।[1] रामदरश मिश्र ने उन ग्रामीण बच्चो की मनोव्यथा को वाणी प्रदान की है जो 'गवई स्कूलो मे पढ़कर/पब्लिक परीक्षाओ के लिए मूर्ख करार दिये जाते हैं/ सभ्याचरण विहीन अँगरेजीविहीन।'[2] सुरेश किसलय ने किन्हीं बच्चो को अपने पिता से यह शिकायत करते चित्रित किया है कि उसने स्वाधीनता सेनानी होने का (सच्चा या मिथ्या) सर्टीफिकेट क्यो नहीं सहेजकर रखा था जिसके अभाव मे कैसे वे पब्लिक स्कूलो मे पढ़ते ? कैसे कहलायें राष्ट्र की सम्पत्ति। अब तो उन्हें सामान्य स्कूलो मे पढ़ने वाले विद्यार्थियो जैसी यह नियति भोगनी पड़ रही है कि वे निगम के तम्बूनुमा स्कूलो मे/पटटी पर बारहखडी लिखते हुए/गलत हिसाब मे जोड़ते घटाते हुए/माध्यमिक स्कूलो के ट्यूशन खोरे/कसाई मास्टरो की बेंतो से सड़ते हुए/स्कूल से भागते' रहते हैं।[3]

(ज) विज्ञान और वैज्ञानिक उपलब्धियों सम्बन्धी चेतना

विज्ञान तथा उसके आविष्कारो और उपलब्धियो के सम्बन्ध मे निन्दा और प्रशंसा दोनो ही प्रकार के सक्रान्तिपरक उद्गार व्यक्त किये गये हैं। इन आविष्कारो के फलस्वरूप मानव जाति जहा अनेक असाध्य सी बीमारियो पर काबू पाने, आवागमन और सचार के द्रुत साधनो, हजारो-लाखो मनुष्यो की बराबर काम करने वाली मशीनो, मुद्रण कला तथा अन्धकार को मिटाकर दिवस-तुल्य प्रकाश विकीर्ण करने वाली विद्युतशक्ति आदि वैज्ञानिक उपकरणो की खोज मे सफल हुई है वहीं इन वैज्ञानिक उपकरणो का प्रयोग करते हुए लोगो की मृत्यु हो जाने, उनके आलसी तथा मशीनवत् संवेदना शून्य हो जाने तथा बेरोजगारी मे निरन्तर वृद्धि होने आदि तथ्यो को लेकर विज्ञान और उसके द्वारा आविष्कृत उपकरणो का विरोध किया गया है। विज्ञान का सर्वाधिक विरोध अत्यधिक विनाशकारी युद्धोपकरणो के निर्माण को लेकर किया गया है किन्तु इस सन्दर्भ मे भी यह चेतना व्यक्त की गयी है कि यदि वैज्ञानिक अनुसंधानो का सूझ-बूझ और मानवता के हित की भावना से ओत प्रोत होकर प्रयोग किया जाये तो विज्ञान स्वयं मे बुरा नहीं है—अर्थात् दोष विज्ञान का न होकर उसके प्रयोगकर्ता उन कुटिल बुद्धि के राजनीतिज्ञो का है जो उसके दुरुपयोग को प्रोत्साहित करते हैं।

पन्त ने वैज्ञानिक आविष्कारो के फलस्वरूप धरा आमलक-सी करतल मे

---

1 देश, दिल्ली और अहम रामप्रसाद मिश्र, पृ० 56

2 'पक गयी है धूप', पृ० 94

3 'हलफनामा', पृ० 19

सभ्य मनुज के बन जाने के तथ्य की प्रशंसा करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि वैज्ञानिक यन्त्र जड नहीं होते, अपितु वे आधुनिककालीन सभ्यता और संस्कृति के भाव रूप का प्रतिनिधित्व करते हैं।[1] रेडियो तार टेलीफोन, वाष्प इंजिनों जलयान और वायुयानों द्वारा देश काल के व्यवधान समाप्त हो गये हैं तथा बेतार के तार और रेडियो के आविष्कार के फलस्वरूप प्रत्येक देश के निवासियों की भावनाएँ उनकी बातें, विचार, संगीत और संस्कृति निराकार रूप में दसों दिशाओं में झंकृत होते रहते हैं।[2] इन तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में पन्त ने वैज्ञानिक यन्त्रों को उचित ही जीवन सौन्दर्य के प्रतीक जन-जन के शिक्षक, क्रान्ति प्रवर्तक तथा भविष्य के पथ-दर्शक उपकरण घोषित किया है।[3] उन्होंने विश्व की वैज्ञानिक प्रगति का स्तवन करते हुए आह्लादपूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है कि उसके फलस्वरूप सम्प्रति दशकों में ही प्राचीनकाल की शतियों से भी अधिक विकास हो रहा है।[4] कुछ ही दशकों में पिछले हजारों वर्षों से भी अधिक प्रगति होने के तथ्य की प्रशंसा करते हुए उन्होंने उसका मूलाधार आधुनिक काल में वैज्ञानिक सत्य का सूर्य' उदित होना बताया है और उचित ही यह धारणा व्यक्त की है कि सम्प्रति चतुर्दिक यह बिगुल गूंज रहा है कि आधुनिक काल में वैज्ञानिक सत्य का सूर्य उदित हो चुका है जिससे आधुनिक काल की संज्ञा वैज्ञानिक युग होनी चाहिए।[5] उन्होंने विज्ञान द्वारा दुर्दान्त प्राकृतिक शक्तियों को वशवर्तिनी बना लेने के साथ ही चिकित्सा के क्षेत्र में संजीवनी-तुल्य औषधियों के खोज लिए जाने की प्रशंसा की है[6] और कम्प्यूटरों की भी ऐसे विद्युत्चालित मस्तिष्क बताकर सराहना की है जो मनुष्यों जैसे सभी कर्म सम्पन्न करते हुए 'भेजेंगे सदेश

---

1 'जड़ नहीं यंत्र वे भाव रूप संस्कृति चेतन/वे विश्व शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक। ग्राम्या, पृ० 88

2 3 वही पृ० 88, 88

4 'प्रगति करता विज्ञान महत्/एक दशक में कर शतियाँ अतिक्रम।
कुछ ही वर्षों में सहस्र वत्सर/लाँघेगा रचना-कौशल विक्रम।
लोकायतन' पृ० 575

5 'बन रहा अब नव भव इतिहास/बज रहा वैज्ञानिक युग-तूर्य।
मनुज अन्तर तम भेद/प्रकट क्या हुआ सत्य का सूर्य।'
वही, पृ० 385

6 आज वाष्प औ विद्युत विश्व किरण मानव के वाहन।
मूल शक्ति का आदि स्रोत भी, अणु ने किया समर्पण।'
स्वर्णकिरण, पृ० 17

दिशाओं से बातें कर/दूरभाष का भी संवाद तुरंत ग्रहण कर।'[1] वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण ही मानव जाति को यह सामर्थ्य उपलब्ध हो गयी है कि समुन्तल पर सम्प्राहात वितान/आप सहज ही जा सकते सब खाने-पीने/लिखने पढ़ने की सुविधा पा अतल गर्भ में।'[2]

विज्ञान और वैज्ञानिक उपलब्धियों के प्रशंसक होते हुए भी पन्त ने इस दृष्टि से गहन चिन्ता व्यक्त की है कि वैज्ञानिक प्रगति के कारण ही विश्व के विभिन्न देश, 'शुभ शान्ति की छद्म ओट में महाप्रलय का/खर ताडव रच रहे, भयंकर भस्मासुर को पालपोस कर।'[3] उन्होंने अणु-बम के प्रयोग को महिषासुर तारक या वकासुर से भी भीषण बताते हुए कहा है कि उसके कारण धरा से ग्राम पुर नगरों का अस्तित्व सहसा ही विलीन हो जाता है तथा पंच भूतों का घनत्व क्षण मात्र में ही धूम और वाष्प बनकर उड़ जाता है।[4] आणविकास्त्रों के इस भयंकर रूप से व्यथित होकर पन्त ने उचित ही यह दुश्चिन्ता व्यक्त की है क्या स्मृति में ही शेष रहेगी ध्वस्त सृष्टि सब/दृश्य स्पर्श रस गंध शब्दगुण से विहीन हो।[5] उनकी यह चिन्ता भी स्वाभाविक ही है कि विश्व जीवन में 'जड़ यान्त्रिकता का आडम्बर' ऐसा बढ़ता जा रहा है कि उसके फलस्वरूप सिमट रहा जग-जगत विवश हो सर्पों की ऐंठी रस्सी-सा। भौतिकतावाद के विद्युद्‌दशा के कारण मानवता अपना ध्रुव लक्ष्य विस्मृत-सा करती जा रही है और यह सम्भावना उत्पन्न हो गयी है कि अब दानव से संगणक यन्त्र ही/संचालित कर पायेंगे भविष्य मनुज नियति को, जग जीवन को। कम्प्यूटरों और रोबोटों (कृत्रिम मनुष्य) का निर्माण किये जाने के फलस्वरूप शीघ्र ही ऐसी स्थिति आ सकती है जब कम्प्यूटर ही कम्प्यूटर अब रह जायेंगे/कल के जड़ जग में—विस्थापित कर मनुष्य को। उस दशा में आन्तरिक और बाह्य दोनों ही दृष्टियों से भ्रान्तिग्रस्त होकर मानव कृमि-सा रेंगेगा तब भू-पर।[6] रोबोट तथा सरलकों द्वारा मुक्त मानव आत्मा का स्थान ग्रहण करके 'अंतिम कृत्रिम स्थितियों का निर्माण' किए जाने से संत्रस्त होकर पन्त ने इस जन धारणा को वाणी प्रदान की है कि हे भगवन! भारत में वह स्थिति कभी न आये जब भारत भी पाश्चात्य देशों की तरह सौ-सौ मंजिल मकानों वाले नगरों के रूप में ईंट-पत्थरों का निर्मम गढ़' बन जाये।

---

1 2 पतझर, पृ० 61 62 3 शिल्पी, पृ० 54

4 स्वप्न दृश्य से ओझल होते ग्राम पुर नगर
चित्रित हो यह माया जग चल छाया पट पर।
भूतों का गिरत्व गल तडित् स्पर्श से/
धूम वाष्प बनकर विलीन हो रहा निमिष में। —वही, पृ० 59

5 शिल्पी, पृ० 59 6-7 'शंखध्वनि', पृ० 45, 53

इससे पूर्व प्रसाद जी ने भी कामायनी में सारस्वत प्रदेश की यांत्रिक सभ्यता की यह तर्क देकर निन्दा की थी कि उसके कारण मानव की स्वाभाविक शक्तियों का ह्रास हुआ है तथा शोषणाधृत मशीनी सभ्यता ने लोगों के जीवन को खोखला कर दिया है।[1]

वैज्ञानिक हानि लाभों के सम्बन्ध में दिनकर ने भी अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में उद्गार व्यक्त किये हैं। उन्होंने वैज्ञानिक खोजों की यह तर्क देकर सराहना की है कि उनके फलस्वरूप मानव जाति अज्ञानान्धकार को विदीर्ण करके बुद्धि के ज्योतिमय मगार में प्रवेश कर गया है। मानव ने दुर्दमनीय प्राकृतिक शक्तियों पर ऐसी विजय प्राप्त कर ली है कि सम्प्रति 'हैं बँधे नर के करों में वारि विद्युत भाप/हुक्म पर चढ़ता उतरता है पवन का ताप। यही नहीं वह लाँघ सकता सरिता गिरि सिन्धु एक समान' तथा 'नव्य नर' की विकराल मुट्ठी में, 'हैं सिमटते जा रहे प्रत्येक क्षण दिक्काल।' इन तथ्यों के परिपार्श्व में मानव जाति का यह विकास या प्रगति वास्तव में ही अभूतपूर्व तथा निस्सीम कही जा सकती है।[2] इस वैज्ञानिक प्रगति के प्रति दिनकर ने यह आक्षेप भी किया है कि मानव की स्वार्थ-बुद्धि द्वारा अनुप्रेरित वैज्ञानिक आविष्कारों व्यय उन्नति ने उसके हृदय की दया करुणा, परोपकार विश्व-बन्धुत्व जैसी सद्वृत्तियों को निश्शेष कर दिया है। इस स्थिति के प्रति घृणा व्यक्त करते हुए दिनकर ने उचित ही यह धारणा व्यक्त की है कि आधुनिक काल का 'ज्ञानी मनुष्य कुत्तों शृगालों से भी हीन हो गया है।'[3] इसी आधार पर उन्होंने विज्ञान और उसकी उपलब्धियों को भ्रमग्रस्त बुद्धि के द्वारा उद्भूत अपावन इन्द्रजाल बताकर निन्दा की है[4] तथा मानव जाति को उसे त्यागने का परामर्श देते हुए कहा कि तू इस विज्ञान रूपी दुधारी तलवार को दे फेंक, तज कर मोह स्मृति के पार।[5] दिनकर ने अन्यत्र भी यह चेतना उद्बुद्ध करने का प्रयास किया है कि 'विज्ञान काम कर चुका हाथ उसका रोको/आगे आने दो गुणी! कला कल्याणी को।'[6]

अन्य कवियों ने भी विज्ञान वैज्ञानिकों तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों के सम्बन्ध

---

1 प्रकृति शक्ति तुमने यन्त्रों से सबकी छीनी।
शोषण कर जिन्दगी बना दी जर्जर झीनी। 'कामायनी' पृ० 203

2 यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास।
चरण-तल भूगोल ! मुट्ठी में निखिल आकाश। कुरुक्षेत्र, पृ० 96 97

3 'यह मनुज ज्ञानी शृगालों कुक्कुरों से हीन। —वही पृ० 101

4 'भ्रमित प्रज्ञा का कुतक यह इन्द्रजाल विचित्र।
श्रेय मानव के न आविष्कार ये अपवित्र। —वही पृ० 102

5 वही, पृ० 102 6 धूप और धुआँ, पृ० 9

में निन्दा-स्तुतिपरक मिश्रित धारणाएं व्यक्त की हैं। डा० देवराज ने वैज्ञानिकों को आधुनिक काल के योगियों तथा उनकी शोधों को यज्ञों की मनाएँ प्रदान करते हुए उनकी उपलब्धियों की यह तक देकर सराहना की है कि उनके फलस्वरूप ही मानव-जाति की देवोचित शक्तियों का प्रकटन एवं विवर्द्धन हुआ है।[1] शि० म० सि० सुमन ने भी विज्ञान को मानव जाति का सहायक बताते हुए वैज्ञानिकों की आधुनिक काल के परमार्थी ऋषि बताकर प्रशंसा की है।[2] इसी क्रम में उन्होंने 'हर प्रयोगशाला में ज्योतिब्रह्म विराज रहा है' की धारणा व्यक्त करते हुए, वैज्ञानिकों को ऐसे गोताखोर बताकर सराहना की है जो ज्ञान सिन्धु में गोते लगाकर, मानव मात्र के लिए हितकारी नवीन शोधों रूपी मुक्ताओं के संचयन में संलग्न रहते हैं।[3] ज० प्र० मिलिन्द ने वैज्ञानिक ज्ञान की अभिवृद्धि के साथ ही मानवीय गुणों के भी विकास को परमावश्यक घोषित करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि चाहे वैज्ञानिक कृत्रिम ग्रह उपग्रह चांद सूर्य और पृथ्वी का भी निर्माण करने में सफल क्यों न हो जायें, किन्तु जब तक मानवीय गुणों का विकास नहीं होता जब तक रण ज्वाला में आहुति ही देगा नूतन विज्ञान।[4] बालकृष्ण राव ने यह दुश्चिन्ता व्यक्त की है मशीन को मनुष्य ने बना दिया मनुष्य-सा/मशीन ना मनुष्य को बना दिया मशीन ने। ऐसी दशा में यह तथ्य स्वाभाविक ही है कहाँ मिले मनुष्यता मशीन के मनुष्य में?[5] एक अन्य कवि द्वारा व्यंजित यह धारणा समुचित ही प्रतीत होती है कि सम्प्रति विज्ञान मानव-जाति का दास होने के स्थान पर उसका स्वामी बनता जा रहा है और हम एक-दूसरे के दास हैं और एक-दूसरे के स्वामी भी जैसी स्थिति भी विद्यमान है किन्तु शीघ्र ही विज्ञान और मनुष्य दोस्त भी बन जायेंगे, क्योंकि ये दोनों ही स्वार्थी हैं, जबकि 'दो समस्वार्थी व्यक्तियों का सहकार ही दोस्ती होता है।[6]

पृथ्वी की कक्षा में मानव रहित कृत्रिम ग्रहों की स्थापना के अनन्तर मानव-सहित भू उपग्रहों की स्थापना और तदनन्तर चन्द्र-तल पर भी मानव के अवतरण

---

1 विज्ञानी वे उदार/योगियों से एकचित्त निज प्रयोग भवनों में/रच लेते शोध योग/× × × मानव की देवोचित शक्तियों का करते नापन-वर्धन।

'इतिहास पुरुष' पृ० 16

2 शत्रु नहीं विज्ञान तुम्हारा संकट का साथी है।
यह भी ऋषियों के चिन्तन का रस है परमार्थी है।'

'विंध्य हिमालय' पृ० 51

3 वही, पृ० 51 4 नई किरण, पृ० 36

5 हमारी राहें', पृ० 43

6 शब्दों का वक्ष' भूषण वनमाली पृ० 109

तथा चन्द्र-तल की मिट्टी के नमूने लेकर इन अन्तरिक्ष-यात्रियों का पृथ्वी पर प्रत्यावतन परी-कथाओं जैसी काल्पनिक बातें प्रतीत होते हुए भी सातवें-आठवें दशकों की ठोस वैज्ञानिक उपलब्धियाँ रही हैं। इन उपलब्धियों को विभिन्न कवियों ने मुक्त कंठ से सराहना की है। पंत ने रूसी अन्तरिक्ष यात्री यूरी गगारिन द्वारा कृत्रिम भू उपग्रह में बैठकर सर्वप्रथम पृथ्वी की परिक्रमा करने की घटना से अनुप्रेरित होकर उनकी प्रशस्ति में अप्सरा मरुत, नीलाकाश आदि पात्रों के माध्यम से एक काव्य रूपक का सृजन किया है। मरुत प्रश्न करता है कि यह वायु बाण अग्नि-बाण या निशा-यान अथवा नूतन ग्रह जैसा कौन अस्त्र है जो शब्द और ज्योति की भी गति का अतिक्रमण करते हुए पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा है? वह उसको जटायु जैसा कोई मूढ खग अथवा दुःसाहसी प्रमत्त मनुज घोषित करता है जो अपने 'पंख झलमाने या 'दृष्टि गँवाने की ढिठाई दिखा रहा है। वह इस दृष्टि से रुष्ट भी है कि जिस गगन मंडल में अमर भी श्रद्धानत निःशब्द विचरते/अप्सरियाँ नूपुर उतार अभिसार स्थलों पर/आती-जाती संकेतों से भाव प्रकट कर वहीं पर यह मूढ अंतरिक्ष यान भग कर रहा शुभ शांति निःसीम नील की। अप्सरा भी कहती है कि यह तो सर्वथा अनहोनी घटना है कि कोई दुस्साहसी व्यक्ति विचित्र यान में बैठकर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति की अवहेलना करते हुए 'अमित नील को नापने की दुश्चेष्टा कर रहा है तथा विचित्र ध्वनि संकेतों द्वारा नीहारलोक को/तडित तरंगों में कंपित' कर रहा है।[2] कहना न होगा कि यदि किन्हीं देवों का वास्तव में ही अस्तित्व है तो वे मानव के इस दुस्साहस पर इसी प्रकार विस्मय विमूढ़ हो उठे होंगे। पंत ने मानव जाति की इस अन्तरिक्ष विजय का उचित ही इन शब्दों में स्तवन किया है दिशाहस्तगत आज साहसी धरा पुत्र के।'[3]

पंत ने मानव जाति की इस वैज्ञानिक उपलब्धि की नीलध्वनि आकाश के माध्यम से यह परिसीमा भी दिखायी है कि यद्यपि मानव ने मंगल, चन्द्र या शुक्र ग्रहों पर विजय वैजयन्ती फहराने में सफलता प्राप्त कर ली है तो भी यह तथ्य संदेहास्पद ही है कि क्या तोड सकेगा मानव अंधी लौह नियति को?' स्वयं को महाकाल बताते हुए आकाश धरावासियों के लिए यह संदेश भी प्रेषित करता है कि अभी मनुष्य को मुझ पर पूर्णतः विजय प्राप्त करनी शेष है और मैं उसको ललकार रहा हूँ/खडा प्रतीक्षा में।[4] महाकाश द्वारा मानव जाति को दिया गया यह परामर्श भी उचित ही है कि उसको बन्दरों की तरह एक ग्रह से दूसरे ग्रह पर आने जाने की उछल-कूद में निमग्न रहने का निरर्थक-सा प्रयास करते रहने के स्थान पर इस 'धराधाम को ही स्वर्ग में परिणत करने की चेष्टा करनी चाहिए। यह तथ्य

1-4 सौवर्ण', पृ० 94 95 98 99

विडम्बनापूर्ण ही कहा जायेगा कि मानव धरातल पर छाये 'राग-द्वेष, कटु घृणा व गर्हित प्रतिस्पर्धा के अंधकार को दूसरे ग्रहों पर भी ले जाय तो नक्षत्रों की शुभ शान्ति को युद्ध-क्षेत्र के/नारकीय कोलाहल में परिणत' कर दे।[1] इसी चेतना के परिपार्श्व में पन्त ने मानव की चन्द्रावतरण जैसी महान् उपलब्धि की भी यह तक देकर अवमानना की है कि मनुष्य ने अपने लौह-नखों से चन्द्रमा के कोमल हृदय को आहत किया है।[2] इस दृष्टि से कुछ अन्य कवियों ने भी दुश्चिन्ता व्यक्त की है कि चन्द्रमा इस भय से आतंकग्रस्त हो उठा है कि अब धरा-जैसी दानवी लीला मेरे शान्त धरातल पर भी छिड़ने की सम्भावना है।[3] मानव की चन्द्र विजय सम्बन्धी इन विरोधी धारणाओं के साथ ही कुछ कवियों ने उचित ही इस घटना पर गर्वोल्लास भी व्यक्त किया है। शि० म० सिंह सुमन ने चन्द्रमा और पृथ्वी की सगाई की कल्पना करते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि समधी इन्द्र द्वारा देवगुरु के परामर्श से स्पूतनिक रूपी पालकी मँगाई गयी है।[4] अमरनाथ पुरोहित ने भी इस घटना को धरती की चाँद से सगाई' का प्रतीक बताते हुए[5], यह विश्वास व्यक्त किया है कि मंगल और शुक्र ग्रह भी 'धरती के इन बेटों को शीघ्र ही जयमाल पहनायेंगे।[6] अम्बालाल नागर ने गर्वपूर्वक कहा है 'चाँद अब तुम ! अछूते अनछूये III रहे नहीं/मानव के चरणों ने/चाँप ही लिया तुम्हें।'[7] चन्द्रमा का धरातल ऊबड़-खाबड़ होने के तथ्य का ज्ञान होने पर जीवन शुक्ल की यह टिप्पणी उचित ही है कि तू अब मेरे नन्हे-मुन्ना का मामा/मेरी प्रेयसी का मुख-दर्पण कुछ भी नहीं रहा।'[8] किन्तु पन्त ने चन्द्र विषयक इस परम्परागत रूढ़ि में ही आस्था व्यक्त की है अब भी चाँद दिलाता याद/किसी मुख की/मेघों से आ बाहर' चाहे भले वहाँ दिग्यान भेजकर/वैज्ञानिक जन-लोक बसाएँ/कहें वहाँ ऊबड़ तल/वाष्प, रेत, कंकड़ रज छाय।[9] अन्तरिक्ष यात्राओं के सम्बन्ध में वीरेन्द्र कुमार जैन की यह धारणा ज्ञान शनैः शनैः सिद्ध होती जा रही है कि, 'ये खतरनाक

1 सौवर्ण पृ० 100 2 शङ्खध्वनि, पृ० 4

3 (क) जो मानव कर रहा धरा को यहाँ कलंकित
वहाँ छायेगा चन्द्र इसी से है आतंकित।'

राष्ट्रभारती, श्रीकृष्ण सरल पृ० 206

(ख) चन्द्र भयभीत है कि/उसकी सरहदों पर/पहुँच गये अमरीकी/फिर पहुँचेंगे रूसी/और छिड़ेगा शीत युद्ध।

ग से असभ्यता दिनकर सानझलकर पृ० 20

4 विंध्य हिमालय पृ० 93 94 5 6 'समर्पण, पृ० 77

7 'चाँद चाँदनी और कदम पृ० 85

8 साठोत्तरी कविता, सं० पृ० 79 9 किरणवीणा', पृ० 98

अन्तरिक्ष यात्राएँ/तब तुम्हारी उँगलियों के पोरों का खेल होंगी/चाँद सूर्य, मंगल, शुक्र, शनि पर/उतरने के लिए तुम्हारे यानों को/प्राणों की बाजियाँ नहीं लगानी होंगी।[1]

वैज्ञानिक खोजों और उनके फलस्वरूप विनिर्मित जीवनोपकरणों की विभिन्न कवियों द्वारा प्रशंसा के साथ ही निंदा भी किये जाने के सन्दर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि हमारे राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के सूत्रधार महात्मा गांधी मशीनी सभ्यता के घोर विरोधी थे। पंडित नेहरू के अनुसार गांधीजी ने सन् 1909 में लिखा था *हिन्दुस्तान का उद्धार इसी में है कि उसने पिछले पचास साल में जो कुछ भी सीखा है उसे भूल जाये। तार अस्पताल वकील, डाक्टर और इस तरह की सभी चीजें मिट जानी चाहिए और ऊँची कही जाने वाली जातियों को स्वेच्छापूर्वक धर्म भाव से और निश्चित रूप से किसानों का जैसा सादा जीवन बिताना सीखना चाहिए क्योंकि इस प्रकार का जीवन ही सच्चा सुख देने वाला है। इतनी अधिक कृत्रिम और तेजी से चलने वाली चीजों से दुनिया का सुधार करने की कोशिश बिलकुल नामुमकिन है।*[2] जुगमिन्दर तायल ने भी यद्यपि मौत की उपेक्षा करती हँसती जिन्दगी में आस्था व्यक्त की है तो भी आधुनिक सभ्यता के उपकरणों जैसे बिजली के तार, दूर जाते की पटरियों पर चिंघाड़ते रेलवे इंजन सड़क के बीच में बने सीवर के गड्डे, केमिस्ट की शीशियों में तथा चमकती कारों में मौत को हँसते दिखाकर वैज्ञानिक उपकरणों का विरोध ही किया है।[3] गिरिजा कुमार माथुर ने आधुनिक काल को इलेक्ट्रान सभ्यता का युग बताया है जो अट्टहास करती हुई अन्धलोक की ओर भागी जा रही है जिसमें मार्फिया, शराब, कबरे और फ्लश का प्राधान्य है। तदनन्तर वैज्ञानिक आविष्कारों की निन्दा करते हुए उनके उद्गार हैं कि उनके कारण सुगन्धि के अमल के हिसाब मात्रा में घर डाले गये हैं 'डीफोलिएट छाकर पेड नंगा ढंग कर' किये गये हैं 'समुद्रों का तेल का कुप्पा तथा झीलों को 'कारखाने के फुजले का गटर और पोखरा' बना दिया गया है। हवा में गंधक मिली रहती है जबकि 'धूप पर इलेक्ट्रो-प्लेटिंग और 'चाँदनी पर डियोडेरण्ट वार्निश कर दी गयी है। सब्जियों में रस में गमैक्सीन मिली रहती है तो मछलियों में पारे का विष समाविष्ट रहता है। फस्डों में एसबेस्टस की शीटें लगा दी जाती हैं। इसी प्रकार आदिम शान्त आकाश 'अब सुपरसोनिक यानों की ध्वनि से रौरव नरक बना दिया गया है, घर वध्या जीवन के अस्पतालों में बदल गये हैं जबकि हमारा व्यवहार भी राग द्वेष शून्य

1 'शून्यपुरुष और वस्तुएँ' पृ० 91
2 'मेरी कहानी' पृ० 804
3 प्रतिश्रुत पीढ़ी', संकलन पृ० 117

(डिमइनफ़क्ड) हो गया है ।[1] कुछ कवियो ने तो उन उपकरणो की भी बीमारियाँ और आलस्य फलाने व निमित्त कहकर निन्दा की है जिनके कारण आधुनिक जीवन पूर्वापेक्षा बहुत अधिक सरल-सुगम तथा अवकाशपूर्ण हो गया है । भगवती चरण वर्मा के इन उदगारो म सत्याश अवश्य है कि आटा पीसने की हथचक्की का प्रचलन उठ जाने के फलस्वरूप नगरो म ही नही अपितु गाँवो मे भी नष्ट हो गया स्वास्थ्य/अपच, कुपच, विसूचिका/कितने सक्रामक रोग' फल गये हैं ।[2] वस्तु स्थिति यह है कि आटा पीसने की चक्की के आविष्कार से ग्रामीण नारियो को पर्याप्त राहत मिली है और उन्हे आटा पीसते रहने के उस सकट से मुक्ति मिल गयी है जो उनके दनिक जीवन को दूभर बनाये रखता था ।

कुछ अन्य कवियो ने भी वज्ञानिक उपकरणो के फलस्वरूप मानव जीवन मे कृत्रिमता और आलस्य की वद्धि होने[3] तथा विज्ञान के धम और दशन का पूरक न होने के प्रति चिन्ता व्यक्त की है ।[4] सिद्धनाथ कुमार ने श्रम के शोषण से सम्बन्धित धारणाओ के क्रम मे उस भावी भयावह स्थिति का चित्रण किया है जब स्वचालित मशीनो के चरम विकास के फलस्वरूप मानव-श्रम की कोई महत्ता ही शेष नहीं रहेगी । उस स्थिति म कारखाने के मालिक द्वारा श्रमिको से कहा जाता है कि अब 'यन्त्र स्वत सचालित होगे' अत 'अब न तुम्हे श्रम करना होगा/अब तुम बधन मुक्त हो गये ।' श्रमिक अपने गुजारे के लिए वेतन माँगते हैं तो उन्हें उत्तर मिलता है 'श्रम का मूल्य भला क्यो दूगा/बिना परिश्रम कम अपना हिस्सा लोगे ?' श्रमिको का स्वाभाविक प्रश्न है 'तब बोलो हम क्या खायेंगे ? वे यह माँग भी कर उठते हैं 'हमे काय दो/श्रम का मूल्य चाहिए हमको । मालिक का यह उत्तर पाकर कि अब 'लौहदेव की महाशक्ति से/श्रम का अथ न शेष रह गया अत 'मर जाओ तुम' श्रमिक उचित ही यह कह उठते हैं हम सब भूखा नही मरग/लौह देव के वरदानो को/क्षण मे खड-खड कर देंगे/ हम नही वरदान चाहिए लौहदेव के ।[5] अधुनातन स्वचालित मशीनो के कारण मिला स मजदूरो की छँटनी की प्रक्रिया आरम्भ हो चुकी है जबकि नवयुवक वग के सम्मुख पहले ही बेकारी की भयावह समस्या विद्यमान है। ऐसी दशा म या तो स्वचालित मशीनो वाले कारखानो के उत्पादन और लाभ पर पूरे समाज का अधिकार होना चाहिए अन्यथा मजदूर वग वास्तव म ही इस आह्वान को क्रियान्वित करने को विवश हो जायेगा, 'उठो बढ चलो/

1 भीतरी नदी की यात्रा', पृ० 66 2 'एक दिन', पृ० 70 71
3 दश दिल्ली और अहम , पृ० 62
4 'युगयात्रा' पृ० 101
5 सृष्टि क

मनु के पुत्रो/तोड फोड यन्त्रो को हम मिटटी मे भेंटें ।[1] कहना न होगा कि वैज्ञानिक खोजो द्वारा जहाँ एक ओर विनाश के भयकरतम आणविकास्त्रो का निर्माण किये जाने का भय परिव्याप्त है वही दूसरी ओर यह दुश्चिन्ता भी निराधार नही है कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे स्वचालित यन्त्रा का विकास होते जाने के फलस्वरूप विश्व की अनुदिन बढ़ती जनसख्या द्वारा अपने जीविकोपार्जन के लिए किस माध्यम को अपनाया जायगा ?

(ङ) राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा भाषाई दगों सम्बन्धी चेतना

राष्ट्रभाषा का प्रश्न स्वाधीनता की प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयासो के दिनो से ही राष्ट्रीय समस्या के रूप मे उभरता रहा है। 19 अप्रल 1900 को सर ए० पी० मैकडानल द्वारा की गयी इस विज्ञप्ति के कारण कि अब से न्यायालयो की ओर से जारी किये जाने वाले समन आदि फारसी लिपि के साथ साथ नागरी लिपि मे भी लिखे अथवा भरे होगे" यह विवाद आरम्भ मे हिन्दी और उर्दू के झगडे के रूप म पनपा था। स्वातन्त्र्योत्तर काल मे इस विवाद ने सरकारी काम-काज म राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रयोग होना चाहिए अथवा तदथ अँगरेजी का ही प्रयोग चलते रहने देना चाहिए के रूप म हिन्दी अगरेजी विवाद का रूप धारण कर लिया है जिसे राजनीतिज्ञो द्वारा—विशेषत लोकसभा चुनावो के अवसर पर—बुरी तरह बढ़ावा दिया जाता रहता है। आधुनिक काव्य मे हिन्दी उर्दू तथा हिन्दी अँगरेजी विवाद के सन्दर्भ म पर्याप्त मात्रा म उदगार व्यक्त करते हुए कवियो ने इन विवादो को भडकाने वाले स्वार्थी राजनीतिज्ञो पर तीखे व्यग्याक्षेप किये हैं जिन पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

कालक्रम की दृष्टि से विचार किया जाये तो भारतेन्दु का भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण प्रतापनारायण मिश्र के हिन्दी हिन्दू हिन्दूस्तान सम्बन्धी नारे की अपेक्षा व्यापक है। यद्यपि उर्दू बीबी का स्यापा' के रूप म उर्दू भाषियो द्वारा उसकी अधोदशा पर मगरमच्छी आँसू बहाने की भर्त्सना भारतेन्दु ने भी की है और हिन्दी की दुर्दशा पर यह पश्चात्ताप भी व्यक्त किया है 'भोज मरे अरु विक्रम हू किनको अब रोइके काव्य सुनाइये/भाषा भई उर्दू जग की अब तो इन ग्रथन नीर डबाइये'[3] तथापि एक ओर तो उन्होने हिन्दी के भण्डार की अभिवृद्धि के लिए सस्कृत और अगरेजी के साथ ही फारसी और अरबी के ग्रथों का भी हिन्दी अनुवाद

---

1 'सृष्टि की साझ और अन्य काव्य नाटक' पृ० 102 104

2 'राष्ट्रभाषा पर विचार डा० चन्द्रबली पाडेय, पृ० 221

3 'भारतेन्दु ग्रथावली , द्वि० भा०, पृ० 866

करने की वकालत की है[1] जबकि दरबारी या राजकीय शिष्टाचार की दृष्टि से तत्कालीन जीवन में परिव्याप्त इस तथ्य को भी स्वीकृति प्रदान की है—

बैठनि बोलनि उठनि पुनि हँसनि मिलन बतरान।
बिन पारसी न आवसी यह जिय निश्चय जान।।[2]

भारतेन्दु हिन्दी की उन्नति किये जाने के प्रबल पक्षधर थे और उन्होंने उसे न्यायालयों की भाषा बनवाये जाने की दिशा में प्रयत्न भी किये थे, किन्तु देशोन्नति की दृष्टि से वे अंगरेजी भाषा का पढ़ना लिखना सीखना और भी अधिक आवश्यक स्वीकार करते थे। 'हिन्दी सवर्द्धिनी सभा' के सभापति की हैसियत से तो उन्हें निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल जैसे उदगार व्यक्त करने ही चाहिए थे, अन्यथा उन्होंने देशवासियों को इस तथ्य के लिए भी अनुप्रेरित किया था कि वे अँगरेजी सीखकर विलायत जायें और वहां से भारत को आयात किये जाने वाले कागज, कपड़ा, चमड़ा आदि उद्योगों, पुलों के निर्माण तथा सेना को कवायद कराने आदि तथ्यों की विधियों को सीखकर आयें।[3] सरकारी नौकरियों की दृष्टि से भी उन्होंने इस विवश स्थिति को उभारा है कि जैसे पहले फारसी ज्ञान के अभाव में दरबारी शिष्टाचार की ज्ञाता का ज्ञान नहीं हो पाता था, उसी प्रकार अब 'तिमि जग की विद्या सकल अंगरजी आधीन/सबै जानि ताकं बिना रह दीन के दीन।'[4]

आधुनिक काल के कवियों में से महावीरप्रसाद द्विवेदी ने फरवरी 1905 की सरस्वती में यह विचारता व्यक्त किया था 'इंगलिश का ग्रंथ-समूह बहुत भारी है सस्कृत भी सबके लिए सौख्यकारी, है/इन दोनों में से अर्थ रत्न ले लीजे/हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजे' अर्थात उन्होंने अँगरेजी के ग्रंथों के हिन्दी में अनुवाद किये जाने का तो समर्थन किया था किन्तु द्विवेदीजी अँगरेजी तथा उर्दू की शिक्षा और व्यापक प्रयोग के विरोधी थे। उन्होंने अँगरेजी और उर्दू के प्रेमी भारतवासियों से आक्रोशपूर्वक कहा था कि आप मेरा भारत छोड़कर फारस अथवा इंगलिस्तान कूच कर जाइये।[5] प० ना० रा० शर्मा शंकर ने

1 'अंगरजी अरु फारसी, अरबी संस्कृत ढेर।
खुले खजाने तिनहिं क्यों लूटत लावहु देर।' भार०ग्रंथ०', द्वि भा० पृ० 38
2 वही, पृ० 732
3 अँगरेजी पहिले पढ़ पुनि विलायतहि जाय,
या विद्या को भेद सब तौ कछु ताहि लखाय।
जाति सकं सब कछु सबहि विविध कला के भेद
बन वस्तु कल की इत मिट दीनता खेद। —वही, पृ० 736 4 वही पृ० 732
5 हिन्दू होकर भी हिन्दी में यदि कुछ भी न भक्ति का लेश।
दूर देश की भाषाओं से यदि इतना है प्रेम विशेष। (क्रमश)

हिन्दी को 'समाज भाषा' बताते हुए इसकी उपेक्षा करके ऊँचे सरकारी पद प्राप्त करने के उद्देश्य से 'कलमुतारा' लिपि में लिखी जाने वाली राजभाषा उर्दू को पढ़ने वालों की यह कहकर निन्दा की है कि वे उन्नति मार्ग पर जा रहे हैं[1] और रिश्वत की कमाई खाने के लिए ही राजभाषा पढ़ रहे हैं।[2] सरस्वती आदि हिन्दी पत्रिकाओं में उन दिनों हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के समर्थन या कहिये गुणकीर्तन की दिशा में अनेक कविताएं प्रकाशित हुई थीं। विस्तार भय से हम उनको निर्दिष्ट न करते हुए मात्र हरिऔध के तत्सम्बन्धी विचारों पर प्रकाश डाल रहे हैं जिनमें प्रायः सभी तथ्यों का समाहार हो गया है—

हरिऔध ने बंगाली, मराठी और उर्दू की समुन्नत दशा की ओर इंगित करते हुए यह खेद व्यक्त किया है कि युक्त प्रांत में 'नित्य हिन्दी का दबा उन्नयन है हो रही' तथा सुविधाओं के भूखे हिन्दू भूल अपनपन को उर्दू ओर ही हैं जा रहे।'[3] उन ब्राह्मणों के विषय में क्या कहा जाये, जिन्होंने 'नागरी को पूज उर्दू पथ में पड़कर' त्याग दिया है।[4] उन्होंने स्पष्ट किया है कि 'मैं न हूँ उर्दू विरोधी, मैं न हूं उससे जला' तथा 'कौन हिन्दू चाहता है काटना उसका गला?'[5] किन्तु इसके साथ ही उन्होंने इस तथ्य को रेखांकित करते हुए कि 'क्या न जीयेगा मुसलमा पारसी अरबी बिना' हिन्दुओं से यह प्रश्न किया है, 'जी सकोगे हिन्दुओ त्यों हीन तुम हिन्दी बिना?'[6] उन्होंने हिन्दुओं से यह प्रश्न भी किये हैं कि क्या उर्दू-साहित्य में आपकी पुरानी जातीय संस्कृति का कोई चिह्न है? क्या आप हसन की मसनवी पर मुग्ध होकर रामायण रूपी रत्न को फेंक देंगे? क्या आप लोग दानवीर कर्ण का स्थान हातिमताई को देने को तैयार हैं?[7] इन तथ्यों

इंगलिस्तान, अरब, फारिस, को तो अब तुम कर दो प्रस्थान।
यहाँ तुम्हारा काम नहीं कुछ, छोड़ो मेरा हिंदुस्तान।"

द्विवेदी काव्यमाला पृ० 448

1 'अनुराग रत्न', पृ० 205

2 'न भाषा पढ़ो, राजभाषा पढ़ो, बढ़ो वीर ऊंचे पदों पर बढ़ो।
करो चाकरी घूस खाया करो, मिले चेतना की बचाया करो।'

वही, पृ० 247

3 6 पद्य प्रसून' पृ० 92 93 97 97

7 'देखकर उर्दू-कुतुब यह दीजिये मुझको बता
आपकी जातीयता का है कहाँ उसमें पता?
क्या हसन की मसनवी से आप होकर मुग्ध मन,
फेंक देंगे हाथ से वह दिव्य रामायन रतन। (क्रमश)

के परिपाश्व मे उन्होंने ईश्वर से ही यह प्रार्थना की थी कि वह ही हिन्दुओं को ऐसी सद्बुद्धि प्रदान करे कि वे 'जानि भाषा के लिए जो राज-सुख को रज गिनें अर्थात सरकारी पदों के लोभ म फँसकर अँगरेजी और उर्दू भाषाएँ ही पढने की ओर उन्मुख न रहें। उन्होंने इस विडम्बना को पुन उभारा है कि 'हिन्दू जनता नहिं आज भी, हिन्दी के रंग में रँगी तथा पत्न वालो में हैं कितने उर्द-सेवी/ कितनों की है परमफल अँगरेजी देवी[1] जबकि नहिं जाती जड़ता जाति की निज भाषा जाने बिना[2] के सिद्धान्त की सर्वथा उपेक्षा की जाती रहती है। म० श० गुप्त ने भारत भारती म अर्थात सन 1912 के लगभग है राष्ट्रभाषा भी अभी तक देश म कोई नहीं/हम निज विचार जना सकें, जिससे परस्पर सब कहीं' के तथ्य का उल्लेख करते हुए, इस स्थिति की ओर भी इंगित किया है कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने का यद्यपि कुछ प्रात भी विरोध कर रहे हैं 'पर एक उर्दू दाँ अधिकतर, बन रहे बाधक यहाँ।'[3]

गाधीजी हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के प्रबल समर्थक थे। रघुवीर शरण मित्र ने उनको काग्रेसी कार्यकर्ताओं को यह परामर्श देते चित्रित किया है कि परायी भाषा का दास होना पाप है अत वे भारतीय भाषाओं म ही वक्तव्य दिया करें,[4] तथा भारत की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही बन सकती है।[5] भवानीप्रसाद मिश्र ने 30 अप्रल 1935 को इन्दौर के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष-पद से दिये गाधीजी के भाषण को काव्य निबद्ध करते हुए दिखाया है कि उन्होंने इस तथ्य पर बल दिया था 'यदि हमको उत्तर से दक्षिण पश्चिम से पूरब जाना है/ तो अनिवार्य सीखना हिन्दी सबको हो जाता है भाई', तथा 'समझ बोल लेते हैं हिन्दी ज्यादातर तो लोग देश के/किन्तु कठिन कहते हैं इसको कुछ सज्जन दक्षिण प्रदेश के।[6] इस अवसर पर गाधीजी द्वारा हिन्दी भाषी क्षेत्रों से ऐसे 'हिन्दी सेवक माँगने का भी उल्लेख किया गया है जो स्नेह और समझदारीपूर्वक अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में हिन्दी का प्रचार प्रसार कर सकें।[7]

वर्ण की ऊँची जगह जो हाथ हातिम के चढ़ी
तो समझिये ढह पड़ेगी आपकी गौरव गढ़ी।'

वही, पृ० 97 98

1-2 'पद्य प्रसून' पृ० 103, 106 3 'भारत भारती', 175/112 13

4 'वह स्वतन्त्र भी पराधीन है जिसके पास न अपनी भाषा।'

जननायक', पृ० 189

5 'हिन्दी ही भारत की बिन्दी हो, जननायक ने यह अपील की।'

वही, पृ० 336

6-7 'गाधीपचशती', पृ० 18, 19

स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिये जाने पर भी इस घोषणा का क्रियान्वयन नहीं हो सका है, और सरकारी कामकाज में अंगरेजी का ही प्रयोग चलते रहने के तथ्य की कवियों ने तीव्र भर्त्सना की है। गुप्तजी ने दिवंगत राष्ट्रपिता का स्मरण करते हुए यह विषाद व्यक्त किया है कि आपकी अभिलषित हिन्दी का राष्ट्रभाषा बनाये जाने की सरकारी घोषणा तो हो चुकी है किन्तु खेद है कि उसकी पीठ थपथपाने के लिए आप नहीं रहे हैं[1] जिससे उसके राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग को लेकर अनेक अड़चनें डाली जा रही हैं। 'पंत' ने राजकाज में अँगरेजी का ही प्रचलन बने रहने के तथ्य को भारतीयों की मानसिक दासता के साथ ही उनकी स्वाभिमान शून्यता का भी प्रतीक बताया है।[2] ज० प्र० मिलिन्द ने यह धारणा व्यक्त की है कि जब तक अंगरेजी को भी भारत से नहीं खदेड़ दिया जाता, तब तक अपनी आजादी को अधूरा ही समझना चाहिए।[3] गो० प्र० 'व्याम' ने यह दुश्चिन्ता व्यक्त की है कि अंगरेजों ने तो जैसे-तैसे भारत को छोड़ दिया है किन्तु उनके बुत, अँगरेजी-दाँ हिन्दुस्तानियों के रूप में अब भी हमारी छाती पर बैठे हुए हैं, और उनकी मनोदृष्टि अपने भूतपूर्व आकाओं जैसी ही है।[4] सरकारी कार्यालयों तथा कचहरियों आदि में अंगरेजी के प्रयोग का इस दृष्टि से भी भर्त्सना की गयी है कि किसान मजदूर आदि अशिक्षित एवं दलित वर्ग सम्यक् न्याय से खोता है तथा सत्ता मुट्ठी भर लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है।[5] आंग्ल भाषा विदों को साम्राज्यवादियों के मानस-पुत्र बताते हुए मिलिन्द ने यह आशा व्यक्त की है कि अब 'उनके सामंती स्वार्थों के अन्यायों के दिन हैं थोड़े क्योंकि 'जन आन्दोलन के सागर में शोषण की माया लय होगी।[6] उन्होंने इस तथ्य की ओर भी इंगित किया है कि विश्व के बहुत से राष्ट्र

1 मन की मन में कसक रही है हिन्दी की यह अभिलाषा।
तुमसे पीठ न ठुकवा पायी, जब वह बनी राष्ट्रभाषा।"
'अंजलि और अर्घ्य', पृ० 25

2 मानसिक दासता कुंठित, हम स्वाभिमान से विरहित
पर भाषा जीवी बुधजन माँगी विद्या पर गर्वित।'
लोकायतन', पृ० 163

3 आजादी अभी अधूरी है, हम पूरी उसे करायेंगे,
अँगरेज हटाये शासन से, अँगरेजी और हटायेंगे।" 'नयी किरण' पृ० 49

4 "अँगरेज गये जैसे तैसे लेकिन अंगरेजी बाकी है।
उनके बुत छाती पर बैठे जहनियत अभी वह बाकी है।
रंग जंग और व्यंग्य', पृ० 62

5 6 नयी किरण, पृ० 49, 49,

हमारा इस दृष्टि से उपहास करते हैं कि हम स्वतन्त्र होते हुए भी अँगरेजी को सिर पर चढ़ा लाए हुए हैं किन्तु इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि 'हमारा मुह काला कुछ देशी काले अगरेजो ने करवाया है।[1] कवि ने देश के उन विधायको को भी आडे हाथो लिया है जो चुनाव-काल में तो जनता से देशी भाषा में वोट मागते हैं किन्तु जो सत्ता पाते ही शासन में अगरेजी को अपनाते हैं जिसके फलस्वरूप शिक्षा मना न्यायालय में भी अगरेजी की माया है की स्थिति विद्यमान है।[2]

कहने का तो स्वातन्त्र्योत्तर कालीन कविताओ में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गयी है कि हिन्दी रूपी पावन-पुनीत गगा यह जन से जन को जोड़ेगी, यह अवरोधो को तोड़ेगी तथा यह सस्कृति-सगम की प्रतीक' है[3] किन्तु हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के विरोध में हुए भाषाई दंगे इस तथ्य से सर्वथा भिन्न कहानी प्रस्तुत करते हैं। इन भाषाई दगो तथा राष्ट्रनताओ की हिन्दी विषयक उपेक्षावृत्ति के सम्बन्ध में कतिपय प्रतिक्रियाएँ अवलोकनीय हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने भाषाई दगो को भारतीयो द्वारा अपने भविष्य को गिरवी रखकर विदेशियो से ली गयी पूजी तथा अंगरेजी के लिए खेली जाने वाली ऐसी होली बताया है जिसमे वे देव और दानव दोनो की ही भूमिका अदा कर रहे हैं।[4] धूमिल ने इन दगो के मूल में रोजी रोटी के विषधर क्रियाशील दिखाने के साथ ही व्यग्यपूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है कि 'हे तमिलनाडु के भाइयो ! जो राजनीतिक दरिन्द तुमसे रेलो के डिब्बे तुड़वा रहे हैं वे ही भोजपुरी को हिन्दी से पृथक भाषा के रूप में विकसित किये जाने की माँग के लिए मुझको भी उकसाते रहते हैं और भाड़े की भीड इकट्ठी करके राष्ट्रीय सम्पत्ति की तोड फोड कराते हैं। इन तिकड़मी दरिन्दो के एक नही अनेक चेहरे होते हैं और वे सडक, ससद और अधर में भिन्न भिन्न प्रकार की बातें करके हम-तुम्हे गुमराह करते रहते हैं।[5] कहना न होगा कि धूमिल

1 2 नयी किरण, पृ० 49, 50

3 'चाँद चाँदनी और कक्टस', अम्बाशकर नागर, पृ० 50 51

4 आह/विदेशी मनीषी/तुम्हारी पूजी हमने माल ली है/अपने भविष्य की माया से/ × × × और हम होली खेल रहे हैं/और हम अहा स्वय दानव स्वय दव/इसी सागर में दोनो खेल रहे हैं। चुका भी हूँ नहीं मैं, पृ० 65 66

5 "भाषा और भाषा की बीच की दरार में/उत्तर और दक्षिण की तरफ/फन पटकता हुआ/एक दो मुहा विषधर/रेंग रहा है/रोजी के नाम पर/जगह-जगह/जहर/फेंक रहा है/ × × × हाय ! जो असली कमाई है/उसकी निगाह में/तुम्हारा यह तमिल दुःख/मेरी इस भोजपुरी पीडा का/भाई है/ भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है/जो सडक पर और है/ससद में और है।' 'ससद से सडक तक', पृ० 101 05

कि जगवासियो के दु ख-दर्दों से व्यथित कवि-मानस की अन्तव्यथा स्वत ही काव्य के रूप म मुखरित हो उठती है या पके फोडे के स्वत फूट जाने के अनुरूप कवि मानस म व्याप्त जागतिक अनुताप कविता के रूप म स्वत उच्छवसित हो उठते हैं। यह धारणा भी व्यक्त हुई है कि कविताएँ युग की धडकनो का ग्राफ तथा समकालीन परिवेश का थर्मामीटर होती हैं, जो हमे आधुनिक काल के अधिसख्य कवियो की कविताओ के परिप्रेक्ष्य म सटीक प्रतीत होती है। इस परिपाश्व म हमारी निजी धारणा यह है कि आधुनिक काल के काव्य को इसके पूववर्ती तीनो काव्य कालो के सदभ म निस्संकोच 'जन काव्य' की सना प्रदान की जा सकती है क्योकि तीनो कालो की समग्र कृतियो म मिलाकर भी दीन दलित उपेक्षित पुरुषो और नारियो के सम्बन्ध म उतने उदगार उपलब्ध नही हो सकते, जितने आधुनिक काल के मात्र दो चार कवियो की कृतियो म उपलब्ध हो जाते हैं।

आधुनिक काव्य के विभिन्न साहित्यिक गुटो द्वारा एक-दूसरे की निन्दा करने की प्रवृत्ति अभूतपूव कही जा सकती है। चालीसोत्तरी काल के समस्त काव्य गुटो ने एकजुट होकर विशेषत छायावाद को अपने प्रहारो का लक्ष्य बनाया है। बच्चन शि० म० सिंह सुमन और अज्ञेय आदि कवियो ने भी स्वनिन्दको के प्रति प्रत्याक्रमणात्मक उद्गार व्यक्त किये हैं। अधिसख्य कवियो ने यह धारणा व्यक्त की है कि उनके अतिरिक्त अन्य कवि पूजीपतियो या सरकार के पिट्ठू हैं।

भारत की दासताकालीन के साथ-साथ और स्वातन्त्र्योत्तरकालीन शिक्षा और परीक्षा प्रणालियो की निन्दा भत्सना की गयी है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग और विरोध को लेकर यह चेतना व्यक्त हुई है कि धूत राजनीतिज्ञो द्वारा इस समस्या को अपनी राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से उलझा दिया गया है। वज्ञानिक आविष्कार और उपलब्धियो के सम्बन्ध म मिश्रित चेतना व्यक्त हुई है। विज्ञान के जन हितकारी आविष्कारो की सराहना की गयी है जबकि उसकी खोजो के फलस्वरूप भावी विश्व युद्ध म धरा से मानवता का समूल विनाश हो जाने अथवा अत्यधिक मशीनीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मानव-श्रम की रचमात्र भी महत्ता न रह जाने की भयावह स्थिति को लक्षित करते हुए उसका तीव्र विरोध भी किया गया है। सक्षेप म कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के अधिकाश काव्य प्रणेता अपने परिवेश के प्रति पर्याप्त जागरूक रहे हैं और हमारे परिणत सास्कृतिक जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नही है जिसके प्रति उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाए न व्यक्त की हो। सास्कृतिक परम्पराओ के भजन की दिशा म मार्क्सवादी रुझान के कवियो के समान ही अकवितावादियो ने भी बढ चढकर अभिरुचि प्रदर्शित की है जिसके सम्बन्ध मे कहा जा सकता है कि उनके उद्गारो मे व्यजित हुई चेतना यथास्थिति की उद्घाटक होने की अपेक्षा उनके

हमारा इस दृष्टि से उपहास करते हैं कि हम स्वतन्त्र होते हुए भी अँगरेजी को सिर पर क्यों लादे हुए हैं किन्तु इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि 'हमारा मुह काला कुछ देशी काले अँगरेजों ने करवाया है।'[1] कवि ने देश के उन विधायकों को भी आड़े हाथों लिया है जो चुनाव-काल में तो जनता से देशी भाषा में वोट माँगते हैं किन्तु जो सत्ता पाते ही शासन में अंगरेजी को अपनाते हैं जिसके फलस्वरूप शिक्षा सेना न्यायालय में भी अंगरेजी की माया है' की स्थिति विद्यमान है।[2]

कहने को तो स्वातन्त्र्योत्तर कालीन कविताओं में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गयी है कि हिन्दी रूपी पावन-पुनीत गंगा यह जन से जन को जोड़ेगी, यह अवरोधों को तोड़ेगी तथा यह 'संस्कृति-संगम की प्रतीक' है[3] किन्तु हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के विरोध में हुए भाषाई दंगे इस तथ्य से सर्वथा भिन्न कहानी प्रस्तुत करते हैं। इन भाषाई दंगों तथा राष्ट्रनेताओं की हिन्दी विषयक उपेक्षावृत्ति के सम्बन्ध में कतिपय प्रतिक्रियाएँ अवलोकनीय हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने भाषाई दंगों को भारतीयों द्वारा अपने भविष्य को गिरवी रखकर विदेशियों से ली गयी पूजी तथा अंगरेजी के लिए खेली जाने वाली ऐसी होली बताया है जिसमें वे देव और दानव दोनों की ही भूमिका अदा कर रहे हैं।[4] धूमिल ने इन दंगों के मूल में रोजी रोटी के विषधर क्रियाशील दिखाने के साथ ही व्यथापूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है कि हे तमिलनाडु के भाइयो! जो राजनीतिक दरिन्दे तुमसे रेलों के डिब्बे तुड़वा रहे हैं वे ही भोजपुरी को हिन्दी से पृथक भाषा के रूप में विकसित किये जाने की माँग के लिए मुझको भी उकसाते रहते हैं और भाड़े की भीड़ इकट्ठी करके राष्ट्रीय सम्पत्ति की तोड़ फोड़ कराते हैं। इन तिकड़मी दरिन्दों के एक नहीं अनेक चेहरे होते हैं और वे सड़क, संसद और अन्धेरे में भिन्न भिन्न प्रकार की बातें करके हमें-तुम्हें गुमराह करते रहते हैं।[5] कहना न होगा कि धूमिल

1 2 नयी किरण, पृ० 49, 50

3 चाँद चाँदनी और कैक्टस', अम्बाशंकर नागर, पृ० 50 51

4 ओह/विदेशी मनीषी/तुम्हारी पूजी हमने मोल ली है/अपने भविष्य की माया से/ × × × और हम होली खेल रहे हैं/और हम यहाँ स्वयं दानव स्वयं देव/इसी सागर में होली खेल रहे हैं। 'चुका भी हूँ नहीं मैं', पृ० 65 66

5 'भाषा और भाषा की बीच की दरार में/उत्तर और दक्षिण की तरफ़/फन पटकता हुआ/एक दो मुहा विषधर/रेंग रहा है/रोजी के नाम पर/जगह-जगह/जहर/फेंक रहा है/ × × /हाय! जो असली कसाई है/उसकी निगाह में/तुम्हारा यह तमिल दुःख/मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का/भाई है/ भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है/जो सड़क पर और है/संसद में और है। 'संसद से सड़क तक', पृ० 101 05

स्वातन्त्र्योत्तर काल में हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिये जाने पर भी इस घोषणा का क्रियान्वयन नहीं हो सका है और सरकारी कामकाज में अंगरेजी का ही प्रयोग चलते रहने के तथ्य की कवियों ने तीव्र भर्त्सना की है। गुप्तजी ने दिवंगत राष्ट्रपिता का स्मरण करते हुए यह विचार व्यक्त किया है कि आपकी अभिलषित हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने की सरकारी घोषणा तो हो चुकी है किन्तु खेद है कि उसकी पीठ थपथपाने के लिए आप नहीं रहे हैं।[1] जिसमें उसके राष्ट्रभाषा के रूप में प्रयोग को लेकर अनेक अड़चनें डाली जा रही हैं। पंत ने राजकाज में अँगरेजी का ही प्रचलन बना रहने के तथ्य को भारतीयों की मानसिक दासता के साथ ही उनकी स्वाभिमान शून्यता का भी प्रतीक बताया है।[2] ज० प्र० मिलिन्द ने यह धारणा व्यक्त की है कि जब तक अँगरेजी को भी भारत से नहीं खदेड़ दिया जाता, तब तक अपनी आजादी को अधूरा ही समझना चाहिए।[3] गो० प्र० त्याग ने यह दुश्चिन्ता व्यक्त की है कि अँगरेजों ने तो जैसे-तैसे भारत को छोड़ दिया है, किन्तु उनके बुत अँगरेजीदाँ हिन्दुस्तानियों के रूप में अब भी हमारी छाती पर बैठे हुए हैं और उनकी मनोदृष्टि अपने भूतपूर्व आकाओं जैसी ही है।[4] सरकारी कार्यालयों तथा कचहरियों आदि में अंगरेजी के प्रयोग की इस दृष्टि से भी भर्त्सना की गयी है कि किसान मजदूर आदि अशिक्षित एवं दलित वर्ग सम्यक् न्याय से खोता है तथा सत्ता मुट्ठी भर लोगों के हाथों में केन्द्रित होती है।[5] आंग्ल भाषा विदों को साम्राज्यवादियों के मानस-पुत्र बताते हुए मिलिन्द ने यह आशा व्यक्त की है कि अब 'उनके सामंती स्वार्थों के अन्यायों के दिन हैं थोड़े क्योंकि 'जन आन्दोलन के सागर में शोषण की माया लय होगी।[6] उन्होंने इस तथ्य की ओर भी इंगित किया है कि विश्व के बहुत से राष्ट्र

---

1 'मन की मन में बसाए रही है हिन्दी की यह अभिलाषा।
तुमसे पीठ न ठुकवा पायी, जब वह बनी राष्ट्रभाषा।'
'अंजलि और अर्घ्य', पृ० 25

2 मानसिक दासता कुंठित, हम स्वाभिमान से विरहित
पर भाषा जीवी बुधजन माँगी विद्या पर गर्वित।"
'लोकायतन', पृ० 163

3 आजादी अभी अधूरी है हम पूरी उसे करायेंगे
अँगरेज हटाये शासन से, अँगरेजी और हटायेंगे।" 'नयी किरण' पृ० 49

4 'अँगरेज गये जैसे तैसे लेकिन अँगरेजी बाकी है।
उनके बुत छाती पर बैठे जहनियत अभी वह बाकी है।"
रंग जंग और व्यंग्य', पृ० 62

5 6 नयी किरण', पृ० 49, 49,

हमारा इस दृष्टि से उपहास करते हैं कि हम स्वतन्त्र होते हुए भी अंगरेजी को सिर पर क्यों लादे हुए हैं किन्तु इस सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है कि 'हमारा मुंह काला कुछ देशी काले अँगरेजों ने करवाया है।[1] कवि ने देश के उन विधायकों को भी आड़े हाथों लिया है जो चुनाव-काल में तो जनता से देशी भाषा में वोट मांगते हैं किन्तु जो सत्ता पाते ही शासन में अंगरेजी को अपनाते' हैं जिसके फलस्वरूप शिक्षा सेना न्यायालय में भी अंगरेजी की माया है की स्थिति विद्यमान है।[2]

कहने को तो स्वातन्त्र्योत्तर कालीन कविताओं में इस प्रकार की धारणा व्यक्त की गयी है कि हिन्दी रूपी पावन-पुनीत गंगा यह जन से जन को जोड़ेगी, यह अवरोधों को तोड़ेगी तथा यह संस्कृति संगम की प्रतीक है[3] किन्तु हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के विरोध में हुए भाषाई दंगे इस तथ्य से सर्वथा भिन्न कहानी प्रस्तुत करते हैं। इन भाषाई दंगों तथा राष्ट्रनेताओं की हिन्दी विषयक उपेक्षावृत्ति के सम्बन्ध में कतिपय प्रतिक्रियाएँ अवलोकनीय हैं। शमशेर बहादुर सिंह ने भाषाई दंगों को भारतीयों द्वारा अपने भविष्य को गिरवी रखकर विदेशियों से ली गयी पूंजी तथा अंगरेजी के लिए खेली जाने वाली ऐसी होली बताया है जिसमें वे देव और दानव दोनों की ही भूमिका अदा कर रहे हैं।[4] धूमिल ने इन दंगों के मूल में रोजी रोटी के विषधर क्रियाशील दिखाने के साथ ही व्यंग्यपूर्वक यह भाव भी व्यक्त किया है कि हे तमिलनाडु के भाइयो! जो राजनीतिक दरिन्दे तुमसे रेलों के डिब्बे तुड़वा रहे हैं वे ही भोजपुरी को हिन्दी से पृथक भाषा के रूप में विकसित किये जाने की माँग के लिए मुझको भी उकसाते रहते हैं और भाड़े की भीड़ इकट्ठी करके राष्ट्रीय सम्पत्ति की तोड़ फोड़ कराते हैं। इन तिकड़मी दरिन्दों के एक नहीं अनेक चेहरे होते हैं और वे सड़क, संसद और अंधेरे में भिन्न भिन्न प्रकार की बातें करके हमें-तुम्हें गुमराह करते रहते हैं।[5] कहना न होगा कि धूमिल

1 2 'नयी किरण', पृ० 49, 50

3 चांद चांदनी और कैक्टस', अम्बाशंकर नागर पृ० 50 51

4 'ओह/विदेशी मनीषी/तुम्हारी पूंजी हमने मोल ली है/अपने भविष्य की माया से/ × × × और हम होली खेल रहे हैं/और हम यहां स्वयं दानव स्वयं देव/इसी सागर में होली खेल रहे हैं। चुका भी हूं नहीं मैं', पृ० 65 66

5 भाषा और भाषा के बीच की दरार में/उत्तर और दक्षिण की तरफ/फन पटकता हुआ/एक दो मुहा विषधर/रेंग रहा है/रोजी के नाम पर/जगह जगह/जहर/फेंक रहा है/× × × हाय! जो असली कसाई है/उसकी निगाह में/तुम्हारा यह तमिल दुख/मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का/भाई है/भाषा उस तिकड़मी दरिन्दे का कौर है/जो सड़क पर और है/संसद में और है।' 'संसद से सड़क तक', पृ० 101 05

ने राष्ट्रभाषा समस्या की जड की ओर इंगित करने मे बडी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। बच्चन ने किसी ऐसे धूर्त नेता को जो अपने जीवन-काल म ही अपनी स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए अपनी प्रस्तर प्रतिमाएँ स्थापित करा चुका है, समझाते हुए कहा है कि *तुम अभी राजनीति के खेल म कच्चे हो। तुम यह क्या भूल गये कि* राजनीतिक हवा बदलते ही 'लोग पोत सकते हैं प्रतिमा के चेहरे पर कोलतार भी/पोत नागरी वर्णों पर अभ्यस्त हुए जो।'[1] *अभिप्राय यह कि नेताओ* ने जनता को नागरी मे लिखे नाम पट्टादि पर कोलतार पोतने का जो नया राजनीतिक पतरा सिखाया है, वह कभी भी मियाँ की जूती मियाँजी के सिर' की उक्ति चरितार्थ करते हुए उनका अपना ही मुह काला करा सकता है। डा० विनय ने भी दगे फसाद/भाषा का विवाद/मुस्कराता दखता/मनुष्य की भीतरी सतहो से/जल्लाद का पुत्र [2] के रूप म इसी तथ्य की ओर इगित किया है। रामप्रसाद मिश्र की यह धारणा उचित ही है कि विभिन्न प्रान्तो के लोग भाषा आदि को लेकर झगडते रहते हैं जबकि बिल्लियो के झगडे मे अग्रेजी का बन्दर/लाभ उठाता, हसता रहता है। वस्तुत हम अँगरेजी सीखने के पीछे पडे रहते हैं जिससे न तो हमे अपनी भाषाओ का ही सम्यक ज्ञान हो पाता है और न अगरेजी का ही, और त्रिशकु की स्थिति मे हम परम सन्तुष्ट है की दशा बनी रहती है।[3]

स्वातन्त्र्योत्तर काल म अगरेजी के बोलवाले तथा हिन्दी की उपेक्षा के सम्बन्ध भी पर्याप्त उद्गार व्यक्त किये गये हैं। पन्त न जनमानस पर अँगरेजी की अमर बेल छाये रहन के तथ्य को वतमान पीढी के मस्तक पर लगा ऐसा कलक चिह्न बताया है जिसके लिए देश के नेताओ की जनघातक रीति-नीतियाँ उत्तरदायी हैं।[4] नरेन्द्र शर्मा न खेदपूर्वक यह प्रश्न किया है कि क्या यही (है) सामन्तवाद का *अन्त ? यही क्या लोकतन्त्र का अथ ? विदेशी बाना-बानी है स्वदेशी भूल गये हम* पथ।'[5] ज० प्र० मिलिन्द ने हिन्दीभाषी क्षेत्र के नेताओ विद्वानो को विद्रूपपूर्वक 'चडूलो' के रूप मे चित्रित करते हुए उनके इस चारित्रिक खोखलेपन को उभारा है कि हम तो वास्तव मे विश्व भाषा अगरेजी' के प्रेमी है अत हमारे प्रति यह आक्षेप करना कि हम अपनी भाषा का दूसरो पर लादना चाहते हैं, सवथा मिथ्या है। उनका तक है, अपनी भाषा स हमे/बोलने तक का लगाव/नही जब जरा भी/तब/

---

1 उभरते प्रतिमानो के रूप पृ० 95 2 सदभ सक०, पृ० 38

3 'देश दिल्ली और अहम, पृ० 17

4 "आकाश बेल अग्रेजी, छायी जन मन पादप पर/जीवन विकास क्रम जिससे कुठित हो रहा निरन्तर/इस पीढी के मस्तक से कब छूटेगा यह लाछन/इतिहास पुकार कहेगा, जन घातक ये नेता गण।' 'लोकायतन, पृ० 166

5 'बहुत रात गये', पृ० 24

कैसे हम औरों पर/लादेंगे निज भाषा ?'[1] धूमिल ने हिन्दी भाषियों के आत्म-गौरव को धिक्कारते हुए यह भाव व्यक्त किया है कि तुम 'यह जानकर कि तुम्हारी मातृभाषा/उस महरी की तरह है, जो/महाजन के साथ रात भर/सोने के लिए एक साड़ी पर राजी है', इसके अतिरिक्त और क्या कर सकते हो कि तुम चुप रहोगे और लज्जा से निरर्थक गूंगेपन से इस तथ्य को सहन कर लोगे।[2] धूमिल ने हिन्दी को एक साड़ी मात्र के लिए अपना सतीत्व बेचने को प्रस्तुत महरी-तुल्य बताकर उसकी दयनीय स्थिति को उभारा है तो रघुवीर सहाय ने हिन्दी को दुहाजू की नयी पत्नी बताते हुए कहा है, 'हमारी हिन्दी सुहागिन है रण्डुए की।' उन्होंने उसकी इस अभिलाषा का भी उल्लेख किया है कि वह अपने खसम से पहले मरे। कवि की इस विद्रूपात्मक टिप्पणी से कि 'पर पहले खसम उससे बचे/तब वह अपनी साध पूरी करे',[3] ध्वनित होता है कि कवि का यह विश्वास रहा है कि भाषा का प्रश्न सरकार को ही ले डूबेगा। उन्होंने अँगरेजी पर अवश्य गाय का अध्यारोप करते हुए उचित ही यह भाव भी व्यक्त किया है कि अँगरेजी के पण्डे-पुजारी घंटे टन टनाकर उसका जय-जयकार बोलते हुए सरकार से इस प्रकार के आश्वासन पाने में सफल हो ही जाते हैं कि वह अवध्य बनी रहेगी, अर्थात् उसका स्थान हिन्दी को नहीं लेने दिया जायेगा।[4] कहना न होगा कि सन् 1990 तक इस स्थिति में कोई व्यतिक्रम नहीं हुआ है।

प्रस्तुत अध्याय में साहित्य और कला विषयक व्यंजित हुई, काव्य चेतना से स्पष्ट होता है कि उनमें सत्य, सौन्दर्य और शिवत्व की भावनाओं का समन्वय मिलने के तथ्य पर बल दिया गया है। आधुनिक काल के साहित्य और कला-जगत में दीन-दलित-उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति की भावना का आधिक्य मिलने के कारण, भद्र-जनों द्वारा उनके प्रतीक, कैक्टस' को अपने बँगलों का शोभोपकरण बना लेने के तथ्य का दृष्टिगत करते हुए आधुनिक काल को कैक्टस-युग की भी संज्ञा प्रदान की गयी है। ताजमहल की सुन्दरता की तो प्रशंसा की गयी है किन्तु मार्क्सवादी रुझान के कवियों ने अन्न और वस्त्राभाव से संत्रस्त लोगों के परिप्रेक्ष्य में उसके निर्माण को अनुचित सिद्ध किया है। इसी प्रकार की संभ्रान्तिमयी धारणा गांधीजी और नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओं के स्मारक बनाने के सम्बन्ध में भी व्यक्त की गयी है।

काव्य की विषय वस्तु और उसके उद्देश्य के सम्बन्ध में अधिसंख्य कवियों ने यह धारणा व्यक्त की है कि उसका सम्बन्ध जन सामान्य की जीवन दशा को सुधारने से होना चाहिए। काव्य हेतु की दृष्टि से यह चेतना अधिक व्यक्त हुई है

---

1 'नई किरण', पृ० 80 82 2 संसद से सड़क तक', पृ० 15
3 4 'आत्महत्या के विरुद्ध', पृ० 78 79, 23

कि जगवासियों के दुःख-द्वन्द्वों से व्यथित कवि-मानस की अन्तर्व्यथा स्वतः ही काव्य के रूप में मुखरित हो उठती है या पके फोड़े के स्वतः फूट जाने के अनुरूप कवि मानस में व्याप्त जागतिक अनुताप कविता के रूप में स्वतः उच्छ्वसित हो उठते हैं। यह धारणा भी व्यक्त हुई है कि कविताएँ युग की धड़कनों का ग्राफ तथा समकालीन परिवेश का थर्मामीटर होती हैं जो हमें आधुनिक काल के अधिसंख्य कवियों की कविताओं के परिप्रेक्ष्य में सटीक प्रतीत होती हैं। इस परिपार्श्व में हमारी निजी धारणा यह है कि आधुनिक काल के काव्य को इसके पूर्ववर्ती तीनों काव्य-कालों के सन्दर्भ में निस्संकोच जन काव्य की संज्ञा प्रदान की जा सकती है क्योंकि तीनों कालों की समग्र कृतियों में मिलाकर भी दीन-दलित उपेक्षित पुरुषों और नारियों के सम्बन्ध में उतने उद्गार उपलब्ध नहीं हो सकते, जितने आधुनिक काल के मात्र दो चार कवियों की कृतियों में उपलब्ध हो जाते हैं।

आधुनिक काव्य में विभिन्न साहित्यिक गुटों द्वारा एक-दूसरे की निन्दा करने की प्रवृत्ति अभूतपूर्व कही जा सकती है। बालीमोत्तरी काल के समस्त काव्य गुटों ने एकजुट होकर विशेषतः छायावाद को अपने प्रहारों का लक्ष्य बनाया है। बच्चन शि० म० सिंह सुमन और अज्ञेय आदि कवियों ने भी स्वनिन्दकों के प्रति प्रत्याक्रमणात्मक उद्गार व्यक्त किये हैं। अधिसंख्य कवियों ने यह धारणा व्यक्त की है कि उनके अतिरिक्त अन्य कवि पूँजीपतियों या सरकार के पिट्ठू हैं।

भारत की दासताकालीन के साथ-साथ और स्वातन्त्र्योत्तरकालीन शिक्षा और परीक्षा प्रणालियों की निन्दा भर्त्सना की गयी है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के राष्ट्रीय स्तर पर प्रयोग और विरोध को लेकर यह चेतना व्यक्त हुई है कि धूर्त राजनीतिज्ञों द्वारा इस समस्या को अपनी राजनीतिक स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से उलझा दिया गया है। वैज्ञानिक आविष्कार और उपलब्धियों के सम्बन्ध में मिश्रित चेतना व्यक्त हुई है। विज्ञान के जन हितकारी आविष्कारों की सराहना की गयी है जबकि उसकी खोजों के फलस्वरूप भावी विश्व युद्ध में धरा से मानवता का समूल विनाश हो जाने अथवा अत्यधिक मशीनीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप मानव-श्रम की रंचमात्र भी महत्ता न रह जाने की भयावह स्थिति को लक्षित करते हुए उसका तीव्र विरोध भी किया गया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि आधुनिक काल के अधिकांश काव्य प्रणेता अपने परिवेश के प्रति पर्याप्त जागरूक रहे हैं और हमारे परिणत सांस्कृतिक जीवन का कोई भी ऐसा पक्ष नहीं है जिसके प्रति उन्होंने अपनी प्रतिक्रियाएँ न व्यक्त की हों। सांस्कृतिक परम्पराओं के भंजन की दिशा में मार्क्सवादी रुझान के कवियों के समान ही अकवितावादियों ने भी बढ़ चढ़कर अभिरुचि प्रदर्शित की है जिसके सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि उनके उद्गारों में व्यंजित हुई चेतना वस्तुस्थिति की उद्घाटक होने की अपेक्षा उनके बौद्धिक विलास की ही अधिक परिचायक है।

(क) आधार ग्रन्थ सूची

(कोष्ठकों मे दिये गये सन सवत प्रयुक्त सस्करणो के हैं)

1 अजित कुमार—अकेले कठ की पुकार (1958) य फूल नहीं (1970)

2 अम्बाशकर नागर—चाँद चादनी और कैक्टस ।

3 अमृता भारती—मैं तट पर हूँ (1971)

4 अ० सि० उपाध्याय हरिऔध—पद्यप्रमोद (1955) बोलचाल (2013 वि०) मम स्पर्श हरिऔध सतसई (2011 वि०) प्रियप्रवास (1973 ई०) चुभन चौपदे पद्य प्रसून पारिजात (1996 वि०)।

5 अशोक वाजपेयी—शहर अब भी सभावना है (1966)

6 अज्ञेय (ही० स० वा०)—अरी ओ करुणा प्रभामय (1959) कितनी नावो म कितना बार (1967) पूर्वा (1967), क्योकि मैं उसे जानता हूँ (1969) सागर मुद्रा (1970), पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ (1974) अतरा (1975)

7 आनन्द मिश्र—पाँसी की रानी (1962)

8 आनन्द शकर माधवन—दीपाराधना (1964)

9 आशुतोष प्रसाद शुक्ल—युगयात्रा (1971)

10 इदु जन—चौसठ कविताएँ (1974)

11 उदयशकर भट्ट—तक्षशिला (1935) पूर्वापर (1963)

12 उपेन्द्रनाथ अश्क—दीप जलेगा (1950) सडको प ढले साये (1960) खाया हुआ प्रभामडल (1965) बरगद की बेटी (1969) अदृश्य नदी (1977)

13 उमाकात मालवीय—सुबह रक्त पलाश की ।

14 ओमप्रकाश भाटिया अराज—क्षितिज की खोज (1968) अनाम युग (1974)

15 कमला कात शुक्ल—वदर्भी (1966)

16 कीर्ति चौधरी—कविताए(1958), खुले आसमान के नीचे (1968)।

17 कन्हैयालाल सठिया—खुली खिड़कियाँ चौडे रास्ते ।

18 कुमार विमल– ये सम्पुट सीपी के (1971)
19 कुंवर नारायण—आत्मजयी (1965)
20 केदारनाथ अग्रवाल—फूल नहीं रंग बोलते हैं।
21 केदारनाथ कोमल—कोहरे म निकलते हुए (1975)
22 केदारनाथ मिश्र प्रभात—कैकेयी, मुक्ति संग्राम (1972)
23 केवल गोस्वामी – बन्द कमरों की संस्कृति (1972)
24 केशव चन्द्र वर्मा—वीणापाणि के कम्पाउण्ड म (1961)
25 कैलाश वाजपेयी—संक्रान्त (1964) देहान्त से हटकर (1967)
26 गणेशचन्द्र जोशी मन्वंतर—रण जागरण (1966)
27 गिरिजाकुमार माथुर—भीतरी नदी की यात्रा (1975)
28 गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश—तारकवध (1958)
29 गिरिराज शरण अग्रवाल—युगध्वनि (1967)
30 गोपालप्रसाद व्यास—रंग जंग और व्यंग्य (1966)
31 गोपाल शरण सिंह—सागरिका (2001 वि०), जगदालोक प्रामिका।
32 गोपाल सिंह नेपाली—उमंग।
33 चन्द्रकांत देवताले—दीवारों पर खून से (1975)
34 चन्द्रप्रकाश सिंह—प्रतिपदा (1960)
35 चन्द्रमौलि उपाध्याय—किरण गांधारी (2019 वि०)
36 चिरंजीत—कहू पलटीदास (1964)
37 जगदीश गुप्त—नाव के पाँव, शब्दंश (2016 वि०)।
38 जगदीश चतुर्वेदी—इतिहास हंता (1970)
39 जगमोहन अवस्थी—सीमा संग्राम (1963)
40 ज० प्र० मिलिन्द—भूमि की अनुभूति (1952) स्वतन्त्रता की बलि वेदी (1962) नयी किरण (1966) बलिपथ के गीत (1971)
41 जबरनाथ पुरोहित—समर्पण (1970)
42 जयनाथ नलिन—धरती के बोल (2015 वि०)
43 जयशंकर प्रसाद—कामायनी (1974) महाराणा का महत्व (2025 वि०) प्रेमपथिक (2025 वि०)
44 जीवन शुक्ल—सिंहद्वार।
45 ताराचन्द्र हारीत—दमयंती (1957)
46 दिनेश नंदिनी—इति (1972) शबरी।
47 दिनकर सोनवलकर—अ से असभ्यता (1971), अंकुर की कृतज्ञता।
48 दुष्यन्त कुमार—एक कंठ विषपायी (1976), आवाजों के घेरे (1963)
49 दूधनाथ सिंह—अपनी शताब्दी के नाम (1967)

50 डा० देवराज—धरती और स्वर्ग (1953) उर्वशी ने कहा (1960) इतिहास पुरुष (1965), इला और अमिताभ (1972)
51 देवराज दिनेश—मधु और पराग (1973) शबरी
52 धर्मवीर भारती—ठंडा लोहा (1970) अंधा युग सात गीत वर्ष।
53 धूमिल—संसद से सड़क तक।
54 नचिकेता—आदमकद खबरें।
55 नरेन्द्र शर्मा—प्रभातफेरी (1929) कामिनी (1953) प्यासा निर्झर (1964) उत्तरजय (1965) अग्निशस्य बहुत रात गये (1967) रक्त चंदन 2006 वि०) पलाशवन (1946), द्रुमवाला (203 वि०)
56 नरेश मेहता—संशय की एक रात (1962) मेरा समर्पित एकांत (1962) बोलने दो चीड़ को (1961)
57 नागार्जुन—प्यासी पथरायी आँखें (1962)
58 नाथूराम शर्मा शंकर—अनुराग रत्न शंकर सर्वस्व (2008 वि०)
59 नवीन (बा० कृ० शर्मा)—हम विषपायी जनम के (1965)
60 निराला (सू० का० त्रि०)—नये पत्ते (1946) गीतिका (ब० सं०), बेला (1962) परिमल (1978) अर्चना (1962) अणिमा (1971)
61 नीरज (गोपालदास)—लहर पुकारे (1959) बादर बरस गयो (1961) गीत भी अगीत भी (1963), नीरज की पाती दो गीत (1963) नदी किनारे (1964)
62 नीरस—वागतोदय (1972)
63 पदम सुधि—डमी (1971)
64 प्रभाकर माचवे—स्वप्न भंग (1957) अनुक्षण (1959) मेपल (167)
65 परमेश्वर द्विरेफ—मीरा।
66 प्रीतमसिंह बागची—नहीं (1970)
67 पुरुषोत्तम प्रतीक—गीत आदमी है, आसन-दर-आसन।
68 बच्चन (हरिवंशराय)—धार के इधर उधर (1960) बंगाल का काल (1963), अभिनव सोपान (1964), उभरते प्रतिमानों के रूप 1969) दो चट्टानें (1965), सूत की माला (1966) कटती प्रतिमाओं की आवाज (1968) चार खेमे चौंसठ खूटे (1962)
69 बरसानेलाल चतुर्वेदी—रंग और व्यंग्य।
70 बलबीरसिंह रंग—सिंहासन (1964)
71 बलदेव प्रसाद मिश्र—रामराज्य।
72 बलदेववंशी—दशक दीर्घा से (1970), उपनगर में वापसी (1974)
73 ब्रह्मदत्त दी० ललाम—जयमानव।

74 बालकवि बरागी—दो टूक (1971)
75 बालकृष्णराव राव—अद्धशती (1964)
76 बालस्वरूप राही—मेरा रूप तुम्हारा दपण (1958) जो नितात मेरी है (1971)
77 भगवतीचरण वर्मा—विस्मृति के फूल एक दिन।
78 भारतेन्दु हरिश्चद्र—भारतेन्दु ग्रथावली, भाग 2 (2010 वि०)
79 भारतभूषण अग्रवाल—ओ अप्रस्तुत मन (1958) कागज के फूल (1963) अनुपस्थित लोग (1965) उतना वह सूरज है (1978)
80 भूषण बनमाली—शब्दा का वक्ष (1970)
81 मणि मधुकर—रस गधव (1975)
82 मलय—हथेलियो का समुद्र (1962)
83 मलयज—जख्म पर धूल (1971)
84 मलखानसिंह सिसोदिया—सूली और शाति (1967) दीवारो के पार (1974)
85 महावीरप्रसाद द्विवेदी—द्विवेदी काव्य माला।
86 महेन्द्र प्रताप—स्फुलिंग (1965)
87 महेन्द्र भटनागर—अभियान (1954) जिजीविषा (1962), बूद नेह की दीप हृदय का (1967) चयनिका टूटती शृखलाए, सवत (1968)
88 महेश उपाध्याय—आँधी आयेगी (1975), आदमी परेशां है (1977)
89 माखन लाल चतुर्वेदी—माता समपण (2013 वि०) वेणु लो गूजे धरा (1975)
90 माधव मधुकर—अँधेरे स लडते हुए (1977)
91 मानिक बच्छावत—नीम की छाँह पका धान और उलझन (1960)
92 मुकुल—पथ क पुनीत पाँव (1967)
93 मुक्तिबोध—चाँद का मुह टेढा है (1971)
94 मुख्तारसिंह दीक्षित—जयभारत।
95 मैथिलीशरण गुप्त—रग मे भग (2019 वि०), जयद्रथ-वध (2028 वि०) भारत भारती किसान हिंदू (2013 वि०), गुरुकुल (2014) स्वदेश संगीत (1982 वि०), साकेत (2005 वि०), यशोधरा (2021 वि०), सिद्धराज (2013 वि०) नहुष (2024 वि०), वन-वैभव (2005 वि०) झकार (2014 वि०) पचवटी (2023 वि०), द्वापर 2023 वि०) राजा और प्रजा (2013 वि०) श्रद्धाजलि और

अघ्य (2017 वि०) लीला (2017) अनघ (2009 वि०), रस मे भग (2019 वि०) भूमि भाग (2010 वि०)

96 रघुवीर शरण मित्र—परतन्त्र (2000 वि०) फाँसी (1997 वि०) भूमिजा (1967 ई०) जननायक (1964 ई०)

97 रघवीर सहाय—आत्महत्या के विरुद्ध (1958) सीढ़िया पर धूप मे (1960)

98 रमेश रजक—किरन के पाँव (1970) हरापन नही टूटेगा (1974)

99 रमेशचन्द्र मिश्र—व्यक्ति और अभिव्यक्ति (1967) कब होगा नामकरण, एक विश्वास और (1975)

100 रवीन्द्रनाथ त्यागी—आदिम राग (1968), कल्पवक्ष।

101 राजा दुबे—एक हस्ताक्षर और।

102 रामचन्द्र शुक्ल—मधुस्रोत (2028 वि०)

103 रामकुमार कृषक—सुर्खियो के स्याह चेहरे।

104 राजीव सक्सेना—आत्म निर्वासन तथा अन्य कविताएँ (1966)

105 राजेन्द्र किशोर—स्थितियाँ अनुभव तथा अन्य कविताए।

106 राजेन्द्र धस्माना—परवलय (1973)

107 रागेय राघव—पिघलते पत्थर (1946) माधवी (1947) मेधावी।

108 रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न,)1985 वि०) पथिक।

109 रामकुमार वर्मा—कुलनलना (1963)

110 रामदरश मिश्र—बरग बेनाम चिटिठ्याँ (1962), पक गयी है धूप (1969) कधे पर सूरज (1977)

111 रामप्रसाद मिश्र—देश दिल्ली और अहम (1965)

112 रामावतार चेतन—चाँद से नीचे (1958)

113 रामधारी सिंह दिनकर—रेणुका (1960), हुकार (1952) रसवन्ती (1960) इतिहास के आँसू (1957) बापू (1947) रश्मिरथी कुरुक्षेत्र (1956) उवशी (1969) चक्रवाल (1956), चेतना की शिखा (1973), सीपी और शख (1966), परशुराम की प्रतीक्षा 1965) नय सुभाषित (1957), धपछाँह (1964) प्रणभग (1976), धूप और धुआँ (1951)

114 रामावतार त्यागी—महक (1965) सपने महक उठे।

115 रामेश्वर शुक्ल अचल—विराम चिह्न (1957) प्रत्यूष की किरन भटकी यायावरी (1964)

116 रामेश्वर करुण—करुण सतसई (1991 वि०) तमसा (1964)

117 रायकृष्ण प्रसाद पूण—स्वदशी कुडल, पूण सग्रह।

118 लक्ष्मीकांत वर्मा—अतुकांत (1968)
119 लीलाधर जगूड़ी—नाटक जारी है इस यात्रा मे (1974)
120 वचनदेव कुमार—ईहामग (1962) ओ अजन्मा सुनो (1967)
121 विजय चन्द्र— जग लगे सपने (1968)
122 विट्ठल भाई पटेल—दीवारो के खिलाफ।
123 विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'—कुटिया का राजपुरुष (1969)
124 विशाल त्रिपाठी—साँस की आधारी (1977)
125 वीरेन्द्रकुमार जैन—शून्य पुरुष और वस्तुएँ (1972)
126 वीरेन्द्र मिश्र—लेखनी वेला (1966) अविराम चल मधुवंती।
127 श्याम विमल—मैमक की भाषा (1970)
128 श्यामसिंह शशि—शिला नगर म।
129 श्यामनारायण पाडय—हल्दी घाटी (1951), जौहर (2000 वि०)
130 श्यामनारायण—चट्टान कलाकार और बालू (1967) खाई की ऊँचाई (1976)
131 शमशेर—कुछ और कविताएँ (1961) चुका भी हू नही मैं (1975)
132 शान्ता सिनहा—समानान्तर सुनें (1958)
133 शम्भुनाथ सिंह—माध्यम मैं (1957) त्रिवालोक खंडित सेतु (1966)
134 शम्भूदयाल शर्मा क्रांतिदूत—क्रान्तिवादिनी (1970)।
135 शरण बिहारी गोस्वामी—पाषाणी (1965)
136 शिव म० सिंह सुमन—विन्ध्य हिमालय (1966) हिरनोल (1972) मिट्टी की बारात (1972) पर आँखें नही भरी युग का मोल।
137 शील—अँगड़ाई (2000 वि०) लावा और फूल (1967) कर्मशाला (1969)
138 शेरजग गर्ग—एक और अनेक क्षण (1951)
139 श्रीकृष्ण सरल—राष्ट्रभारती सरदार भगतसिंह (1964)
140 श्रीकान्त वर्मा—दिनारम्भ (1967) जलसाघर (1973)
141 श्रीधर पाठक—भारतगीत।
142 श्रीमन्नारायण—रजनी म प्रभात का अकुर (1962)
143 स्नेहमयी चौधरी—एकाकी दोनो (1966)
144 सतोपानन्द—गीतो के क्षण (1967)
145 सरोजिनी प्रीतम—हँसिकाएँ (1962)
146 सत्यपाल चुघ—भोरकठ (1965)

147 सर्वे० द० सक्सेना—बांस का पुल (1963) एक सूनी नाव (1966), गर्म हवा (1969) जंगल का दर्द (1976)
148 सिद्धनाथ कुमार—सृष्टि की सांझ तथा अन्य काव्य-नाटक (1970)
149 सियारामशरण गुप्त—उन्मुक्त (2019 वि०) दैनिकी (1991 वि०), मौर्य विजय (2022 वि०) आत्मोत्सर्ग (2004 वि०) बापू (1995 वि०) नोआखाली में (2009 वि०) मृण्मयी (2009 वि०)
150 सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल (1965)
151 सुमन राजे—सपना और मानापर (1973)
152 सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव (1963) गुंजन (2021 वि०), ग्राम्या (1967) शिल्पी (1952), स्वर्णधूलि (1959) हरी बांसुरी सुनहरी टेर (1963) युगवाणी (1966) किरण वीणा (1967) स्वर्णिम रथचक्र (1968) अतिमा (2020 वि०), चिदम्बरा (1966), युगपथ (1964) वाणी (1963), मुक्तियज्ञ, सौवर्ण (1963) पतझर (1968) शंख ध्वनि (1971) आस्था (1973) रजतशिखर (2008 वि०), स्वर्ण किरण (2020 वि०), लोकायतन (1973), सत्यकाम (1975) संक्रान्ति (1977), रश्मिबंध (1977), पौ फटने से पहले
153 सुधीन्द्र—अमृतगंगा (1946), जौहर (2006 वि०)
154 सुरेश किसलय—हलफनामा (1975)
155 सोहनलाल द्विवेदी—प्रभाती, वासन्ती (1951) चित्रा (1962), गांधायन (1970)
156 हरदयालु सिंह—रावण महाकाव्य।
157 हरिकृष्ण प्रेमी, अग्निगान, वन्दना के बोल (1952)
158 हरिश्चन्द्र पाठक अजेय—अंजुरी भर धूप (1970)

(ख) आधार-ग्रंथ   काव्य-संकलन

आज के लोकप्रिय कवि नागार्जुन—संपा० प्रभाकर माचवे—राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1977

आज के लोकप्रिय कवि नीरज—संपा० क्षेमेन्द्र सुमन—राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1963

आज के लोकप्रिय कवि बच्चन—संपा० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली 1976

आज के लोकप्रिय कवि भगवतीचरण वर्मा—संपा० अमृतलाल नागर—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1966

आज के लोकप्रिय कवि रामावतार त्यागी—संपा० क्षेमेन्द्र सुमन—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1961

आज के लोकप्रिय कवि रामकुमार वर्मा—संपा० राधेकृष्ण श्रीवास्तव—राजपाल एण्ड संस दिल्ली, 1975

आज के लोकप्रिय कवि रामेश्वर शुक्ल अंचल—संपा० पन्म सिंह शर्मा कमलेश राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1960

आधुनिक कवि रामनरेश त्रिपाठी—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 1967

आधुनिक कवि डा० गोपालशरण सिंह—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 2003 वि०

अनाहूत—संपा० ललित शुक्ल, समता प्रकाशन दिल्ली, 1971

आयाम—संपा० विश्वनाथ गौड ललित शुक्ल—राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली, 1973

आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत—संपा० क्षेमेन्द्र सुमन—राजपाल एण्ड संस, दिल्ली, 1962

उद्गम—संपा० रामगोपाल परदेशी—प्रगति प्रकाशन, आगरा

एक अपरिचित आकाश—संपा० रमेशकुमार शर्मा राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1971

कविता—सपा० डा० प्रभात, डॉ० शोभा यादव—सहयोग प्रकाशन, बम्बई 1974
कविता कौमुदी (तृतीय भाग) सपा० रामनरेश त्रिपाठी—नवनीत प्रकाशन, बम्बई 1928
कवि भारती—सपा० पन्त, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र—सा० स० चिरगाँव, झाँसी, 2010 वि०
कविताए 1964—सपा० अजितकुमार वि० ना० त्रिपाठी—नश० प० हाउस, दिल्ली
कविताएँ 1965—सपा० अजितकुमार, वि० ना० त्रिपाठी—नेश० प० हाउस दिल्ली
खादी के फल—पन्त, बच्चन—भारती भण्डार प्रयाग, 2005 वि०
गीतांकुर—सपा०, रामगोपाल परदेसी—प्रगति प्रकाशन, आगरा
ज्योति पुरुष—सपा० रमश चन्द्रगुप्त—अशोक प्रकाशन दिल्ली
ताज की छाया मे—सपा० शिवदानसिंह चौहान—लेखक सह० प्रका०, आगरा 1959
तारसप्तक—सपा० अज्ञेय—भारतीय ज्ञानपीठ, (द्वि० स०)
तीसरा सप्तक—सपा० अज्ञेय—भारतीय ज्ञानपीठ, (द्वि० स०)
दिविक—सपा० सुखबीर सिंह—(1970)
दूसरा सप्तक—सपा० अज्ञेय—भारतीय ज्ञानपीठ (द्वि० स०)
नयी कविता (अक एक स चार)—सपा० जगदीश गुप्त वि० दे० ना० साहा—इलाहाबाद सन 1954, 1955 1956 1959
नये स्वर—सपा० नन्दकिशोर तिवारी—लेखक सह० प्रका०, रामपुर, 1969
नारी तेरे रूप अनेक—सपा० क्षेमेन्द्र सुमन—आत्माराम एड सस, दिल्ली 1967
निषेध—सपा० जगदीश चतुर्वेदी—ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1972
प्रतापनारायण मिश्र ग्रथा० (प्र भा०) विजयशकर मल्ल—(2014 वि०)
प्रतिश्रुत पीढ़ी—सपा० रणजीत—नवयुग ग्रथ कुटीर, बीकानेर, 1968
मुट्ठियो म बन्द आकार—प्र० सपा० सावित्री सिन्हा—1971
विजय—ग प्र० वि० जग० चतु०, श्याम पर०, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1967
वाग्देवी—सपा० नरेश मेहता—सरस्वती प्रेस दिल्ली, 1972
शिविर—सपा० विनोदशाही, अशोक सुधाशु—सौरभ प्रकाशन, पटियाला 1975
शेर ओ शायरी—अयोध्याप्रसाद गोयलीय—भारतीय ज्ञानपीठ बनारस 1950
शायरी के नये मोड—अ० प्र० गोयलीय, भार० ज्ञान० वाराणसी (1958)
सन्दर्भ—सपा० डा० विनय—ज्ञान भारती प्रकाशन, दिल्ली, 1969
साठोत्तरी कविता—सक० सलिल गुप्त—एकला प्रकाशन, दिल्ली (1969

सहायक ग्रन्थ-सूची

1 अशोक के फूल —ह० प्र० द्विवेदी नवम स० 1968
2 अकविता और कला सदर्भ —डा० श्याम परमार (1968)
3 'आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत' तथा आधुनिक काव्यधारा'— —डा० केसरी नारायण शुक्ल (क्रम० 1961 2000 वि०)
4 आधुनिक कविता, खड 3, प्र० सपा० डा० ओमप्रकाश शर्मा
5 आधुनिक काल का इतिहास—सी० डी० एम० केटलबी अनु० विश्व प्रकाश (1968)
6 आधुनिक भारत—डा० बी० पी० सिंह (1976)
7 आधुनिक भारतीय सस्कृति का इतिहास—डा० पी० आर० साहनी (1961)
8 आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय (2001 वि०)
9 आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० बच्चन सिंह (1978)
10 आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—डॉ० नगेन्द्र (1951)
11 आधुनिक हिन्दी उर्दू काव्य की प्रवत्तियाँ—डा० सुधेश (1974)
12 आय सस्कृति—डा बलदेव प्रसाद मिश्र (2004 वि०)
13 ऋग्वेद कथा रहस्य—रघुनाथ सिंह (1967)
14 कला और सस्कृति—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
15 कांग्रेस का इतिहास—पटटाभि सीतारमया
16 क्रांतिदूत भगतसिंह और उनका युग—मन्मथनाथ गुप्त (1975)
17 कुछ स्मरणीय मुकदमे—कलाशनाथ काटजू (2014 वि०)
18 द्विवदी (म० प्र०) अभिनन्दन ग्रथ—ना० प्र० सभा काशी (1990 वि०)
19 धमशास्त्र का इतिहास (चार भाग)—डा० पी० वी० काण अनु० अर्जुन चौबे काश्यप
20 नयी कविता का आत्मसघर्ष तथा अन्य निबन्ध—मुक्तिबोध
21 नया काव्य नये मूल्य—डा० ललित शुक्ल (1975)

22 नारी और समाज—चिरंजीलाल पाराशर (प्र० स०)
23 पतंजलिकालीन भारत—डा० प्रभुदयाल अग्निहोत्री (प्र० स०)
24 प्रतापनारायण मिश्र ग्रंथावली—प्र० भाग ना० प्र० सभा काशी (2004 वि०)
25 प्राचीन भारतीय कला और संस्कृति—राजकिशोर सिंह उषा यादव
26 भारतीय संस्कृति का विकास (द० धारा) डा० मंगलदेव शास्त्री (1970)
27 भारतीय संस्कृति की रूपरेखा—डा० गुलाबराय
28 भारतीय कला और संस्कृति की भूमिका—भगवतशरण उपाध्याय (1965)
29, भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास—गुरुमुख निहालसिंह (1967)
30 भारत का सांस्कृतिक इतिहास—जयचंद्र विद्यालंकार (1952)
31 भारत का सांस्कृतिक इतिहास—हरिदत्त वेदालंकार (1962)
32 भारत की संस्कृति और कला—डा० राजकमल मुखर्जी अनु० रमेश वर्मा (1959)
33 भारतेंदु हरिश्चंद्र—डा० रामविलास शर्मा (1966)
34 भारतेंदु काल की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० कमला कानौडिया
35 मध्यकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० मदनगोपाल गुप्त
36 महाभारतकालीन समाज—सुखमय भट्टाचार्य, अनु० पुष्पा जैन
37 मानव संस्कृति और समाज—सम्पा० हैरी एल० शेपीरो, अनु० रामानुज लाल श्रीवास्तव
38 मानव मूल्य और साहित्य—धर्मवीर भारती (1960)
39 मालवीयजी के सपनों का भारत—मक्खन
40 मेरी कहानी—जवाहरलाल नेहरू अनु० हरिभाऊ उपाध्याय
41 रीतिकालीन काव्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि—डा० वेंकटरमण राव
42 राष्ट्रभाषा पर विचार—डा चंद्रबली पांडेय (प्र० स०)
43 वैदिक संस्कृति और सभ्यता—डा० मुंशीराम शर्मा
44 सभ्यता की कहानी (परि० एवं पश्चिमेशिया खंड)—विल डूरेंट अनु० श्रीकांत व्यास
45 संस्कृति का दार्शनिक विवेचन—डा० देवराज
46 संस्कृति के चार अध्याय—रामधारीसिंह दिनकर
47 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में मूल्य संक्रमण—डा० हेमेन्द्र पानेरी
48 स्वातंत्र्योत्तर प्रबंध काव्य—डा० बनवारी लाल शर्मा
49 साम्प्रतिक कविता—सम्पा० श्यामनारायण
50 स्वामी विवेकानन्द की जीवनी—आशा प्रसाद
51 सूर ब्रजभाषा कोष—सम्पा० केसरी नारायण शुक्ल भाग 2

52 हमारी परम्परा—सम्पा० वियोगी हरि (प्र० स०)
53 हर्षचरित एक सास्कृतिक अध्ययन—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल (1964)
54 हिन्दी कविता मे युगान्तर—डा० सुधीन्द्र (प्र० स०)
55 हिन्दी काव्य म मार्क्सवादी चेतना—डा० जनेश्वर वर्मा
56 हिन्दी की प्रगतिशील कविता—डा० रणजीत (1971)
57 हिन्दी विश्वकोष—खड चार (प्र० स०)
58 हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल (2006 वि०)
59 हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास भाग चौदह (प्र० स०)
60 हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० नगेन्द्र (1973)
61 हिन्दी साहित्य का इतिहास—डा० लक्ष्मीनारायण वार्ष्णेय (1965)
62 हिन्दी मे राष्टीय साहित्य का विकास—डा० क० के० शर्मा (1971)
63 हिन्दी शब्दसागर भाग 10—सम्पा० श्यामसुन्दर दास रामचन्द्र शुक्ल
64 हिन्दू सभ्यता—डा० राधाकमल मुखर्जी अनु० डा० वासुदेव श० अग्रवाल (1975)

सस्कृत के सहायक ग्रन्थ

1 अमरकोष—मणिप्रभाव्याख्योपेत (1957)
2 ऐतरेय ब्राह्मण—अनु० गगाप्रसाद उपाध्याय (2006 वि०)
3 ऋक् सूत्र वैजयन्ती—स० हरिहर दामोदर
4 ऋग्वदीय ऐतरेय ब्राह्मण—व्याख्याकार गगाप्रसाद उपाध्याय
5 ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका—स्वा० दयानन्द सरस्वती (2016 वि०)
6 ऋग्वेद विद कमेन्ट्रीज आव स्कन्द स्वामिन उदगीथ वेंकट माधव और मुदगल
7 कौटिलीय अर्थशास्त्रम—टीका० पाण्डेय रामतेज शास्त्री
8 दयानन्द यजुर्वेद भाष्य भास्कर—स्वा० दयानन्द सरस्वती
9 पद इन्डक्स ऑव वाल्मीकि रामायण, भाग 2
10 भागवतपुराण—श्रीधरीय टीकायुते, चतुर्थ स्कध
11 यजुर्वेद सहिता—भाष्यकार—व्या० जयदेव शर्मा विद्यालकार
12 याज्ञवल्क्य स्मृति —व्या० उमेशचन्द्र पाडेय (1967 ई०)
13 वाचस्पत्यम—भाग 6
14 वदिक पदानुक्रम कोष—सहिता भाग खड 1
15 वदिक पदानुक्रम कोष—उपनिषद भाग खड 3
16 वदिक पदानुक्रम कोष—वेदाग भाग, खड 4
17 शब्दार्थ कल्पद्रुम —सक० तारानाथ भट्टाचार्य
18 शतपथ ब्राह्मणम—व्याख्याकार गगाप्रसाद उपाध्याय
19 शुक्ल यजुर्वेद वाजसनेयि सहिता—व्याख्याकार जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य
20 श्रीमद्वाज० माध्यन्दिन शतपथब्राह्मणम्—सायण भाष्यसहित, भाग 4
21 सस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ वाचस्पत्यम (भाग 6) हलायुधकोश
22 सस्कृत हिन्दी कोश—वी० एस० आप्टे

अंग्रेजी के सहायक ग्रन्थ

A Sanskrit English Dictionary—Sir Moniar Williams
A Dictionary of the Social Sciences
An Encyclopaedia of Religion
Book of Quotations
Encyclopaedia of India s Struggle for Freedom
—Jagdish Sharma (1971)
Eighteen Fifty Seven—Dr S N Sen (1958)
Encyclopaedia of Religion & Ethics—Vol IV
Freedom Struggle of India—Dr M M Ahluwalia (1965)
Indian Culture (its strands and trends)
—Hirendra Nath Datta
International Encyclopaedia of Social Sciences Vol III
Notes towards the definition of Culture—T S Illiot
Shorter Oxford English Dict onary
The Indian War of Independence 1857
V D Savarkar (1970)
The Second Sex—Simone de Beauvoir (1957)
The Encyclopaedia of Philosophy—Vol II
The Aftermath of Revolt—Thomas R Metcalf (1965)
The Sepoy Mutiny and the Revolt of 1857
—Dr R C Majumdar (1963)
Theories of the Indian Mutiny
—Dr S B Chaudhari (1965)
Websters Third New International Dictionary P II

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
सौहाद्र	सौहा॰	17/9	बढ़कर	चढ़कर	21/22
मे	मे	26/18	Levolte	Levolt	27/33
उच्छखल	उच्छ खल	28/1	Pensentry	Peasantry	28/28
सवथा	सवथा	38/29	काव	कवि	39/12
किन्तू	किन्तु	44/22	चाले	डोलें	45/10
प्रभत्ति	प्रभृति	46/10	क्ज	क्वे	50/10
कल्चर	कल्चर	58/14	[illegible]	उदगारो	50/21
or	of	58/27	भेंद	भेद	60/3 2
फ्रन्च	फ्रेंच	71/25	अधिक	अधिक	61/11
so	so	82/28	हैं	हैं[5]	81/19
अपितु		85/17	है[5]	है	81/22
सक्या	सक्ता	91/9	माध्यम	मध्यम	89/13
खोओ	खोओ	98/20	प्रभाव	भाव	94/17
समयक	समथन	104/14	परच ही	पर चढ़ी	97/27
पट	पेंट	107/6	वियोकारयिनी	वियोकारयिनी	106/19
ब	ब	107/14	जानवर	जानवर	109/3
पटाकाट	पटीकाट	117/22	कनीन	कनीन	110/4
यात्रिया	यात्रियों	119/5	मरकन	सरकने	117/22
पास	पाप	119/6	स	स	117/25, 28
म	मे	117/28	रेस्टाराआ	रेस्टोराओ	117/28
उजडा	उजडा	126/13	स्टशन	स्टेशन	119/19
कर	कर्म	134/16	क	के	119/2
शिभक	शिक्षण	135/21	प्याम	प्यास	119/24
स्वय	स्वय	138/99	पावन	पावन	137/2
घूस	घूंमे	139/17	देग	देंगे	139/14

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	
अवश्मेव	अवश्यमेव	141/20	प्रवचक	प्रवचक	
छोकररिया	छोकरियो	146/2	नियम	नियमन	
इसाई	ईसाई	157/14	बेढगे	बेढग	
विधवा	विधवा	158/3	और	मौर	,
वतरणी	वतरणी	196/3	निर्माति	निर्माता	1
भातीय	भारतीय	197/27	मुसमान	मुसलमान	2(
कृत	कृति	204/21	हिस्दुस्तान	हिदुस्तान	20
धापे	धापे	212/3	गिरिजाधर	गिरजाघर	23
रासदरश	रामदरश	238/1	स्म्नाध	सम्बाध	237
पुलिम	पुलिस	242/17	स	म	237,
जिसम	जिनम	258/13	स्वप्न	स्वत्व	253,
अत	अत	266/9	पुरुत्थान	पुनरुत्थान	261/
fellen	fallen	295/30	दशनासियो	देशवासिया	287/1
अहिंसाबादी	अहिंसावादी	310/1	Dollipop	Lollipop	300/2
घूर्तों	घूर्तों	329/1	किमी	किसी	327/1
पाकिस्तानी	पाकिस्तान	340/22	अपेक्षा	उपेक्षा	329/5
मुमाप	सुमाप	359/81	अग्रेजो	अगरेजा	357/1



डा० राजपाल शर्मा

जम 1 जुलाई 1936, गाव—लोधा, जिला—अलीगढ़

शिक्षा एम० ए० (हिदी) (1963), तथा पी-एच० डी० (1967) दिल्ली विश्व विद्यालय दिल्ली, डी० लिट०—कुमायू वि० वि० ननीताल (1983)

प्रकाशित आलोचनात्मक कृतिया 1 यशपाल और उनकी दिव्या 2 गादान पुनर्मूल्याकन 3 युगचेता दिनकर और उनकी उवशी तथा 4 आधुनिक प्रतिनिधि कवि।

शोधपरक ग्रथ 1 वीरकाव्य म सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति (पी-एच० डी०) (1974)
2 आधुनिक काव्य नवीन सास्कृतिक चेतना (1991)

सम्प्रति दिल्ली विश्व विद्यालय क मोतीलाल नहरू कालिज (साध्य) म वरिष्ठ *व्याख्याता।*

सम्पक सी 2/75 नवल निकेतन, जनकपुरी, नयी दिल्ली 58

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ	अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ
अवश्मेव	अवश्यमेव	141/20	प्रवचक	प्रवचक	140/5
छोक्ररियो	छोकरियो	146/2	नियम	नियमन	145/4
इसाई	ईसाई	157/14	बेढगे	बेढगे	145/17
बिधवा	विधवा	158/3	ओर	मोर	146/19
वतरणी	वतरणी	196/3	निर्मात	निर्माता	182/26
भातीम	भारतीय	197/27	मुसमान	मुसलमान	202/15
कृत	कृति	204/21	हिस्दुस्तान	हिंदुस्तान	207/85
घोपे	घोपे	212/3	गिरिजाघर	गिरजाघर	230/1
रासदरश	रामदरश	238/1	स्म्नध	सम्बंध	237/8
पुलिम	पुलिस	242/17	स	म	237/22
जिसम	जिनम	258/13	स्वप्न	स्वत्व	253/9
अत	*अत*	*266/9*	*पुररुत्थान*	*पुनरुत्थान*	*261/22*
fellen	fallen	295/30	देशनासियो	देशवासियो	287/13
अहिंसावादी	अहिंसावादी	310/1	Dollipop	Lollipop	300/21
घूतो	घूर्तों	329/1	किमी	किसी	327/1
पाकिस्तानी	पाकिस्तान	340/22	अपेक्षा	उपेक्षा	329/5
मुभाप	सुभाप	359/81	अग्रेजो	अँगरेजा	357/1